यजुर्वेद

सायण भाष्यावलम्बी सरल हिंदी भावार्थ सहित

—सम्पादक

श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

प्रथम संस्करण] १९६० ई० [मूल्य ६) रु०

भूमिका

चारो वेदो में से प्रत्येक की एक-एक विशेषता शास्त्रकारों ने बतलाई है । उसके अनुसार "यजुर्वेद" कर्मकाण्ड-प्रधान है और उसमे यज्ञो के करने विधि बतलाई गई है । पर जैसा हम अन्य स्थानों में लिख चुके है,यहां पर "यज्ञ" का आशय केवल वेदी और अग्निकुण्ड बना कर उसमे विभिन्न देवताओ के नाम से आहुतियां देने से ही नही है, वरन् व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से मानवसमाज के उत्कर्ष तथा कल्याण के जितने महत्वपूर्ण कार्य है उन सबका समावेश "यज्ञ" मे हो जाता है । यही कारण है कि यजुर्वेद में कर्मकाण्ड की बातों के साथ राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, शिल्प, व्यवसाय आदि के सम्बन्ध में भी कल्याणकारी ज्ञान प्रदान किया गया है । इसमें सन्देह नही कि आरम्भिक युग मे "यज्ञ" मानवता तथा सभ्यता के प्रचार का एक बहुत बड़ा साधन था और उसी के आधार पर समाज मे सङ्गठन, व्यवस्था, कार्य-विभाजन, नाना प्रकार के शिल्प, कृषि, व्यापार आदि का विकास और वृद्धि हुई थी। "यजुर्वेद" मे अनेक प्रकार के कारीगरों और शिल्पकारो का उल्लेख मिलता है। साथ ही उसमे राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य आदि का विवरण भी मिलता है। यज्ञों के द्वारा ही प्राचीन काल मे राज्य,शक्ति का उद्भव और सामाजिक-व्यवस्था की स्थापना हुई थी और क्रमशः ज्ञान, विज्ञान, सब प्रकार की विद्या और कलाओं मे आश्चर्यजनक उन्नति दृष्टिगोचर हो सकी थी।

पुराणो का अध्ययन करने से यह भी विदित होता है कि वेद अथवा ईश्वरीय ज्ञान केवल एक ही है और आरम्भ मे उसका रूप यज्ञात्मक ही था। इस दृष्टि से विचार करने पर "यजुर्वेद" को ही सर्व प्रथम मानना पड़ेगा। "मत्स्य पुराण" मे लिखा है—

एकोवेदः चतुष्पादः संह्रत्यतु पुनः पुनः।
संक्षेपादायुषश्चैक व्यस्यते द्वापरेष्विह ॥
(अध्याय १४४)

इसी प्रकार "कूर्म पुराण" के अध्याय ४९ में, वेदों का वर्णन करते हुए बतलाया है—

एक आसीन् यजुर्वेदस्तञ्चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूत् यस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥

इनका आशय यही है कि आरम्भ में केवल एक यज्ञात्मक "यजुर्वेद" ही था, बाद में जब काल प्रभाव से उसमें भूल पड़ने लगी तो सुविधा की दृष्टि से वेद व्यास ने उसे संक्षेप करके चार भागों में विभाजित कर दिया। "विष्णु भागवत पुराण" में लिखा है—

"पाराशर से सत्यवती में अंशांशकला से भगवान ने व्यास रूप में उत्पन्न होकर वेद को चार प्रकार का किया।"

इस विवेचन से "यजुर्वेद" के महत्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और विदित होता है कि संसार की समस्त प्रगति का मूल "यज्ञ" ही है जिसके स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों का वर्णन "यजुर्वेद" में किया गया है। इस संस्करण में यजुर्वेद के कर्मकाण्ड-परक अर्थ ही दिये गये हैं, पर विचार करने से उसके अध्यात्म-परक अर्थ भी विदित हो सकते हैं और आत्मकल्याण की दृष्टि से वे बड़े महत्व के हैं। स्वयं "यजुर्वेद" में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से इन शब्दों में प्रकट किया गया है—

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत्।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥

—श्रीराम शर्मा आचार्य

यजुर्वेद

(सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

॥ ॐ ॥

पूर्व विंशति

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

(ऋषिः—परमेष्ठी प्रजापति. ॥ देवता—सविता; यज्ञः; विष्णुः, अग्निः प्रजापतिः, अप्सवितारौ, इन्द्रः. वायुः, द्यौविद्युतौ ॥ छन्दः—बृहती, उष्णिक्, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, गायत्री)

॥ ॐ ॥ इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण ऽ आप्यायध्वमघ्न्या ऽ इन्द्राय भाग प्रजावतीरनमीवा ऽ अयक्ष्मा मा व स्तेन ऽ ईशत माघश ँ सो ध्रुवा ऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि । परमेण धाम्ना दृ ँ हस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ २ ॥

हे शाखे ! (पलाश) यज्ञ का फल रूप जो वृष्टि है, उसके निमित्त मैं तुझे ग्रहण करता हूं । हे शाखे ! रस और बल की प्राप्ति के लिए मैं तुझे सीधी और स्वच्छ करता हूं । हे गो वत्सो ! तुम क्रीडास्थ हो, अतः माता से पृथक् होकर दूर देश में भी द्रुतवेग वाले होकर जाओ । वायु देवता तुम्हारे रक्षक हैं । हे गौओं ! सब को प्रेरणा देने वाले, दिव्य गुण सम्पन्न ज्योतिर्मान् परमेश्वर तुम्हें श्रेष्ठ यज्ञ कर्म के निमित्त तृण वाली गोचर भूमि प्राप्त करावें ।

हे अहिंसनीय गौत्रों ! तुम निर्लेप मन से और निर्भय होकर तृण रूप अन्न का सेवन करती हुई इन्द्र के निमित्त भाग रूप दुग्ध को सब प्रकार वर्द्धित करो। तुम अपत्यवती, और रोग रहिता को चोर आदि दुष्ट हिंसित न कर सकें, व्याघ्र आदि भी तुम्हें न मारें। तुम इस यजमान के आश्रय में रहो, हे शाखे ! तुम इस ऊँचे स्थान पर अवस्थित होती हुई यजमान के सब पशुओं की रक्षा करती रहो ॥ १ ॥ हे दर्भमय पवित्र ! तुम इन्द्र के इच्छित दुग्ध के शोधन-कर्त्ता हो। तुम इस स्थान पर रहो। हे दुग्ध पात्र ! तुम वर्षा प्रदान करने वाले स्वर्ग लोक के ही रूप हो, क्योंकि तुम यजमान को स्वर्ग प्राप्ति में सहायक होते हो। तुम मिट्टी से बने हो, इसलिए पृथिवी ही हो। हे मृत्तिका पात्र ! तुम वायु के संचरण स्थान हो। इस कारण वायु का धाम अंतरिक्ष तुम्हारे आश्रित है, इसलिए तुम अंतरिक्ष भी कहाते हो। हवि धारण द्वारा जगत को धारण करने वाली होने से त्रैलोक्य रूप हो। तुम अपने दुग्ध धारण वाले तेज से सम्पन्न हो। तुम्हारे टेढ़ी होने से विघ्न होगा, इसलिए यथास्थित ही रहना ॥२॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।

देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।

इन्द्रस्य त्वा भागँसोमेनातनच्मि विष्णो हव्यँ रक्ष ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।

इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

हे छन्ने ! तुम पवित्र कहाते हो। तुम दुग्ध को शोधन करने वाले हो। तुम इस हाँडी पर सहस्र धार वाले दुग्ध को क्षरित करो। हे दुग्ध ! इस सैकड़ों धार वाले छन्ने के द्वारा तुम शुद्ध होओ। सब के प्रेरक परमात्मा तुम्हें पवित्र करें। हे दोहन कर्त्ता पुरुष ! इन गौओं में से किस गौ को तुमने

दुहा है ॥ ३ ॥ मैंने जिस गौ के सम्बंध मे तुमसे पूछा है और तुमने जिसका दोहन किया है, वह गौ यज्ञकर्त्ता ऋत्विजों की आयु वृद्धि करने वाली है और यजमान की भी आयु वृद्धि करती है। वह गौ सब कार्यों की सम्पादिका है, उसके द्वारा सभी क्रियाएं सम्पन्न होती है। वह गौ सभी यज्ञीय देवताओं का पोषण करने वाली है। हे दुग्ध ! तू इन्द्र का भाग है। मैं तुझे सोमवल्ली के रस से जामन देकर कठिन करता हूँ। हे परमेश्वर ! तुम सब में व्याप्त और सबके रक्षक हो। यह हव्य रक्षा के योग्य है, अतः इसकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे यज्ञ सम्पादक अग्ने ! तुम यथार्थवादी और ऐश्वर्य सम्पन्न हो। मैं तुम्हारे अनुग्रह से इस अनुष्ठान को कर रहा हूँ, मैं इसमें समर्थ होऊँ। हमारा यह अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पूर्ण हो। मैं यजमान हूँ। मैंने असत्य का त्याग कर सत्य का आश्रय लिया है ॥५॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

प्रत्युष्ट ँ रक्षः प्रत्युष्टा ऽ अरातयो निष्टप्त ँ रक्षो निष्टप्ता ऽ अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

हे पात्र ! यह जल परमात्मा से व्याप्त है। तुम इन्हें धारण करने वाले हो। इस कार्य में तुम्हें किसने नियुक्त किया है ? तुम किस प्रयोजन से नियुक्त किये गए हो। सभी कर्म परमेश्वर की उपासना के लिए किए जाते हैं, अतः उन प्रजापति परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए ही तुम्हारी इस कर्म मे नियुक्ति की गई है। हे शूर्प और हे अग्निहोत्र हवनी ! तुम यज्ञ कर्म के निमित्त ही ग्रहण किये गए हो। तुम्हें अनेक कर्मो मे लगना है। इसी लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥६॥ शूर्प और अग्निहोत्र हवनी को तप्त करने से राक्षसों द्वारा प्रेरित अशुद्धता भस्म होगई। शत्रु भी तपाने से भस्म होगए। हविर्दान आदि कर्मों मे विघ्न करने वाले दुष्ट जल गए। इस ताप से सूप मे लगी मलीनता और राक्षस, शत्रु भी दग्ध होगए। मैं इस विस्तृत अंतरिक्ष का अनुसरण करता हूँ। मेरे यात्रा काल में सब विघ्न दूर हो जाँय ॥७॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः । देवानामसि वह्नितम ँ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८ ॥

अहृ्नमसि हविर्धानं दृँहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहत ँ रक्षो यच्छतां पञ्च ॥९॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीपोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तुम सब दोषों का नाश करते और अंधकार को मिटाते हो । अतः पापियों और हिंसक राक्षसों को नष्ट करो । जो दुष्ट यज्ञ में विघ्न उपस्थित करता हुआ हमारी हिंसा करना चाहे, उसे भी तुम संतप्त करो । जिसे हम नष्ट करना चाहें, उसे मारो । हे शकट के ईपादण्ड ! तुम देवताओं के सेवनीय पदार्थों का वहन करते हो और अत्यन्त दृढ़, हव्यादि के योग्य धानों से भरे हुए इस शकट को ढोते हो । इसलिए तुम देवताओं के प्रीतिपात्र हो और देवताओं का आह्वान करने वाले हो ॥८॥ हे ईपादण्ड ! तुम टेढ़े नहीं हो । तुम कुटिल मत होना । तुम्हारे स्वामी यजमान भी टेढ़े न हों । हे शकट ! व्यापक यज्ञ पुरुष तुम पर चढ़े । हे शकट ! वायु के प्रविष्ट होने से शुष्क हो जाँय इसलिए तुमको विस्तृत करता हूँ । यज्ञ में विघ्न करने वाली बाधायें दूर हुईं । हे उँगलियो ! तुम व्रीहि रूप हव्य को ग्रहण कर इस शूर्प में रखदो ॥ ९ ॥ हे हव्य पदार्थों ! सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय और पूषा के बाहुओं और हाथों के द्वारा मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । इस प्रिय अंश को मैं अग्नि के निमित्त ग्रहण करता हूँ । अग्निषोम नामक देवताओं के लिए मैं इस प्रिय अंश को ग्रहण करता हूँ ॥ १० ॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषंदृँहन्तां दूर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यँ रक्ष ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण

पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं सुधातु यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

हे शकट स्थित व्रीहि शेष ! तुम्हें ब्राह्मणों को भोजन कराने के निमित्त ग्रहण किया गया है, सञ्चित करने को ग्रहण नहीं किया है। यज्ञ-भूमि स्वर्ग प्राप्ति का साधन-रूप है। मैं इसे भले प्रकार देखता हूँ। पृथिवी पर बना हुआ यह यज्ञ-मण्डप सुदृढ़ हो। मैं इस विशाल आकाश में गमन करता हूँ। दोनों प्रकार की बाधायें नष्ट हों। हे धान्य ! मैं तुम्हें पृथिवी की नाभि रूप वेदी में स्थापित करता हूँ। तुम इस मातृभूता वेदी की गोद में भले प्रकार अवस्थित होओ। हे अग्ने ! यह देवताओं की हव्य-सामग्री है। तुम इस हवि रूप धान्य की रक्षा करो, जिससे कोई बाधा उपस्थित न हो ॥ ११ ॥
हे दो कुशाओ ! तुम पवित्र करने वाले हो। तुम यज्ञ से सम्बन्धित हो। हे जलो ! सबके प्रेरक सवितादेव की प्रेरणा से तुम्हें छिद्र रहित पवित्र करने वाले वायु रूप से सूर्य की शोधक रश्मियों द्वारा मन्त्राभिमन्त्रित कर शोधन करता हूँ। हे जलो ! तुम परमात्मा के तेज से तेजस्वी हो। आज तुम इस यज्ञानुष्ठान को निर्विघ्न सम्पूर्ण करो। क्योंकि तुम सदा नीचे की ओर गमन करते रहते हो। तुम प्रथम शोधक हो। हमारे यज्ञकर्त्ता यजमान को फल प्राप्ति में समर्थ करो। जो यजमान दक्षिणादि के द्वारा यज्ञ कर्म का पालन करता है और हवि देने की इच्छा करता है उसे यज्ञ कर्म में लगाओ। उसका उत्साह भंग न हो ॥ १२ ॥

युष्मा ऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्व देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्या-

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्-ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

हे जलो ! इन्द्र ने वृत्रवध में लगते हुए तुम्हें सहायक रूप से स्वीकार किया और तुमने भी वृत्र हनन कर्म में इन्द्र से प्रीति स्थापित की । हे जल ! तुम्हारे द्वारा सभी यज्ञ-पदार्थ शुद्ध होते हैं । अतः प्रथम तुम्हें शुद्ध किया जाता है । हे जलो ! तुम अग्नि के सेवनीय हो । मैं तुम्हें शुद्ध करता हूँ । हे हवि ! तुम अग्नि, सोम देवता के सेवनीय हो । मैं तुम्हें शुद्ध करता हूँ । हे ऊखल मूसल आदि यज्ञ पात्रो ! तुम इस देवानुष्ठान कार्य में लगोगे । अतः इस शुद्ध जल के द्वारा तुम भी स्वच्छता को प्राप्त होओ । तुम्हें बढ़ई आदि ने बनाया है और तुम निर्माण काल में अपवित्रता को प्राप्त हुए हो, अतः मैं तुम्हें जल द्वारा शुद्ध करता हूँ ॥ १३ ॥ हे कृष्णाजिन ! तुम इस ऊखल के धारण करनेके सर्वथा उपयुक्त हो । इस कृष्णाजिन (काले-मृग चर्म) में जो धूल तिनके आदि मैल छिपा था, वह सब दूर होगया । इस कर्म से यजमान के शत्रु भी इससे पतित होगये । हे कृष्णाजिन ! तुम इस पृथिवी के त्वचा रूप हो । अतः पृथिवी तुम्हें ग्रहण करती हुई अपनी ही त्वचा माने । हे उलूखल ! तुम काष्ट द्वारा निर्मित होते हुए भी इतने दृढ़ हो कि पाषाण ही लगते हो । तुम्हारा मूल देश नितान्त स्थूल है । हे उलूखल ! नीचे बिछाई गई कृष्णाजिन रूप जो त्वचा है; वह तुम्हें स्वात्म भाव से माने ॥ १४ ॥ हे हविरूप धान्य ! जब तुम कुण्ड में डाले जाते हो तब अग्नि की ज्वालाएँ प्रदीप्त होती हैं । इसीलिए तुम अग्नि के देह रूप ही माने गये हो । तुम अग्नि में पहुँचते ही अग्नि रूप हो जाते हो । यह हवि यजमान द्वारा मौन-त्याग करने पर 'वाचो विसर्जन' नाम्नी हो जाती है । मैं तुम्हें अग्न्यादि देवताओं के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे मूसल ! काष्ट-निर्मित होते हुए भी तुम पाषाण के समान दृढ़ हो । हे महान्, मैं तुम्हें देवताओं के कर्म के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे मूसल ! तुम अग्न्यादि देवताओं के हित के लिए इस व्रीहि आदि हवि को भुसी आदि से पृथक

करो। चावलों में भुसी न रहे और वे अधिक न टूटें। इस प्रकार इस कार्य को पूर्ण करो। हे हवि प्रस्तुतकर्त्ता! तुम इधर आओ। हे हवि संस्कारक! इधर आगमन करो। तुम इधर आओ (तीन बार आह्वान करे) ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयᳬ सङ्घातᳬ सङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतᳬ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतᳬरक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥१६॥

धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादᳬ सेधादेवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृᳬह ब्रह्मवनित्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥१७॥

हे शम्यारूप यज्ञ के विशिष्ट आयुध! तुम असुरों के प्रति घोर शब्द करते हो। ऐसे होकर भी तुम देवताओं के लिए मधुर शब्द करने वाले हो। हे आयुध! तुम राक्षसों के हृदय को चीरने वाला और यजमान को अन्नादि प्राप्त कराने वाला शब्द करो। तुम्हारे शब्द से यज्ञ के फल स्वरूप अन्न की अधिकता हो। हे शूर्प! वर्षा के जल से बढ़ने वाली सींकों द्वारा तुम बनाये गए हो। हे तण्डुलरूप हव्य! तुम वर्षा के जल से बढ़े हो और यह शूर्प भी वृष्टि जल से ही वृद्धि को प्राप्त हुआ है। अतः यह तुम्हें अपना आत्मीय माने। तुम इसके साथ सङ्गति करो। भुसी आदि निरर्थक द्रव्य और असुर आदि भी दूर हो गये, हवि के विरोधी प्रमादादि शत्रु भी चले गए। हव्यात्मक सब विघ्न दूर फेंक दिये। हे तण्डुलो! शूर्प के चलने से उत्पन्न हुई वायु तुम्हें भुसी आदि के सूक्ष्म कणों से पृथक् करदे। हे तण्डुलो! सर्व प्रेरक सविता देवता सुवर्णालंकार से सुशोभित और सुवर्ण हस्त हैं। वे अंगुली युक्त हाथों से तुम्हें ग्रहण करें ॥१६॥

हे उपवेश! तुम तीव्र अङ्गारों को चलाने में समर्थ और बुद्धिमान हो। हे आह्वानीय अग्ने! आमाद् अग्नि को त्याग दो और क्रव्याद् अग्नि को विशेष रूप से दूर करो। हे गार्हपत्याग्ने! देवताओं के यज्ञ योग्य अपने

तृतीय रूप को प्रकट करो। हे सिकोरे! तुम स्थिर होओ। इस स्थान में दृढ़ता पूर्वक अवस्थित होओ। इस पृथिवी को दृढ़ करो। हवि सिद्धि के लिये तुम ब्राह्मणों द्वारा ग्रहणीय, क्षत्रियों द्वारा भी ग्रहणीय हो। समान कुल में उत्पन्न यजमान के जाति वालों के हृव्य योग्य शत्रु, राक्षस और पाप को नष्ट करने के लिए तुम्हें अंगार पर स्थित करता हूँ ॥१७॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय।

धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय।

विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८॥

शर्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूताऽ अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु।

धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥१९॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥२०॥

हे शून्य स्थान में स्थित अग्ने! तुम हमारे महान् यज्ञानुष्ठान को ग्रहण कर विघ्नरहित करो। हे द्वितीय कपाल (सिकोरे)! तुम पुरोडाश के धारणकर्त्ता हो। इसलिए अन्तरिक्ष को दृढ़ करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य से स्वीकार योग्य पुरोडाश के सम्पादनार्थ और शत्रु, राक्षस, पाप आदि के नाश करने के लिए तुम्हें नियुक्त करता हूँ। हे तृतीय कपाल! तुम पुरोडाश के धारक हो। स्वर्गलोक को तुम दृढ़ करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा सम्पादित पुरोडाश के प्रस्तुत करने को और विघ्नादि के दूर करने को मैं तुम्हें

नियुक्त करता हूँ। हे चतुर्थ कपाल ! तुम सब दिशाओं को दृढ़ करने वाले हो। मैं तुम्हें इसीलिए स्थापित करता हूँ। हे कपालो ! तुम पृथक् कपाल के दृढ़ करने वाले और अन्य कपालों के हितैषी हो। हे समस्त कपालो ! तुम भृगु और अंगिरा के वंशज ऋषियों के तप रूप अग्नि से तपो ॥१८॥

हे कृष्णाजिन ! तुम शिला धारण करने में समर्थ हो। इस कृष्णाजिन में धूल और तिनका रूप जो मैल छिपा था, वह सब दूर होगया। इस कर्म द्वारा इस यजमान के वैरी भी पतित होगए। हे कृष्णाजिन ! तुम इस पृथिवी के त्वचा रूप हो। अतः यह पृथिवी तुम्हें धारण करे और अपनी त्वचा ही माने। हे शिल ! तुम पीसने की आश्रयभूता हो। तुम पर्वत के खण्ड से निर्मित हुई हो और बुद्धि को धारण करने वाली हो। यह मृगचर्म पृथिवी के त्वचा के समान है और तुम पृथिवी के अस्थिरूप हो। इस प्रकार जानते हुए तुम सुसंगत होओ। हे शम्या ! तुम स्वर्गलोक को धारण करने वाली हो। यह मृगचर्म पृथिवी की त्वचा के समान है और तुम पृथिवी के अस्थिरूप हो। इस प्रकार जानते हुए तुम सुसंगत होओ। हे शम्या ! तुम स्वर्गलोक को धारण करने वाली हो। इसलिए तुम समर्थ हो। हे शिल लोढ़े ! तुम पीसने के व्यापार में कुशल हो। तुम पर्वत से उत्पन्न शिल के पुत्री रूप हो। अत. यह शिला तुम्हें माता के समान होती हुई पुत्र-भाव से अपने हृदय में धारण करे ॥१६॥

हे हव्य ! तुम तृप्तिकारक हो अतः अग्नि आदि देवताओं को प्रसन्न करो। हे हवि ! जो प्राण मुख मे सदा सचेष्ट रहता है, उस प्राण की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें पीसता हूँ। हे हवि ! ऊर्ध्व स्थान में चेष्टा करने वाले उदान की वृद्धि के लिए मैं तुम्हें पीसता हूँ। हे हवि ! सब शरीर में व्याप्त होकर सचेष्ट रहने वाले व्यान की वृद्धि के लिए मैं तुम्हे पीसता हूँ। हे हवि ! अविच्छिन्न धर्म को ध्यान में रखकर यजमान की आयु को बढ़ाने के लिए मैं तुम्हें कृष्णाजिन पर रखता हूँ। सर्व प्रेरक और हिरण्यपाणि सविता देव तुम्हें धारण करें। हे हवि ! यजमान की नेत्रेन्द्रिय के उत्कृष्ट होने के लिए मैं तुम्हें देखता हूँ। हे घृत ! तुम (गो-दुग्ध से निर्मित होने के कारण) गोदुग्ध ही हो ॥२०॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन ।
सᳬं रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताᳬं सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् २१
जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि
विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं
मा हिᳬंसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

हे पिष्टी ! सर्व प्रेरक सवितादेव की प्रेरणा से अश्विद्वय की भुजाओं से और पूषा देवता के हाथों से तुमको पात्री में स्थित करता हूँ। हे उपसर्जनीभूत जल ? तुम इन पिसे हुए चावलों से भले प्रकार मिश्रित होओ। यह जल औषधियों का रस है और इसमें जो रेवती नामक जल भाग है, वह इस पिष्टी में भले प्रकार मिल जाय। इसमें जो मधुमती नामक जलांश है; वह भी पिष्टी के माधुर्य से मिश्रित हो ॥२१॥

हे उपसर्जनी भूत जल और पिष्ट समुदाय ! तुम दोनों को पुरोडाश निर्मित्त करने के लिए भले प्रकार मिलाता हूँ। यह भाग अग्नि से सम्बन्धित हो। यह भाग अग्नि सोम नामक देवताओं का है। हे आज्य ! देवताओं को अन्न प्रस्तुत करने के निमित्त मैं तुम्हें आठ सिकोरों में रखता हूँ। हे पुरोडाश ! तुम इस घृत पर दमकते हो। इस कार्य के द्वारा हमारा यजमान दीर्घजीवी हो। हे पुरोडाश ! तुम स्वभावतः विस्तृत हो, अतः तुम इस काज में भी भले प्रकार विस्तृत होओ और तुम्हारा यह यजमान पुत्र, पशु आदि से सम्पन्न होकर यशस्वी बने। हे पुरोडाश ! पाक क्रिया में प्रवृत्त अग्नि, त्वचा के समान तेरे ऊपरी भाग को नष्ट न करें। पाक-क्रिया से उत्पन्न हव्य का उपद्रव जल स्पर्श से शांत होजाय। हे पुरोडाश ! सर्वप्रेरक सविता देव तुम्हें अत्यन्त समृद्ध स्वर्गलोक में स्थिति नाक नामक दिव्य अग्नि में पक्व करें ॥२२॥

मा भेर्मा संविक्था ऽ अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्
त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥२३॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।

आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिण सहस्रभृष्टि शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वध ॥२४॥
पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिᳫंसिष व्रज गच्छ
गोष्ठान वर्षतु ते द्यौर्बधान देव ।
सवित परमस्या पृथिव्याᳫं शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि
य च वय द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥२५ ॥

हे पुरोडाश ! तुम भयभीत न होओ ॥ तुम चचल मत होओ स्थिर ही रहो यज्ञ का कारण रूप पुरोडाश भस्मादि के ढकने से बचे । इस प्रकार यजमान की सन्तति कभी दु खादि में नहीं पडे । अ गुली प्रक्षालन से छुने हुए जल ! मैं तुम्हें त्रित नामक देवता की तृप्ति के लिए प्रदान करता हूँ, मैं तुम्हे द्वित नामक देवता की संतुष्टि के लिए देता हूँ, मै तुम्हे एकत नामक देवता की तृप्ति के निमित्त देता हूँ ॥२३॥

हे खुरपी कुदाली ! सवितादेव की प्रेरणा से अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषादेवता के हाथो से तुम्हे ग्रहण करता हूँ । देवताओं के तृप्ति साधन यज्ञानुष्ठान में वेदी खनन कार्य के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे खुरपे ! तुम इन्द्र के दक्षिण बाहु के समान हो । तुम सहस्रों शत्रुओं और राक्षसों के नाश करने में अनेक तेजों स सम्पन्न हो । तुम में वायु के समान वेग है । वायु जैसे अग्नि के सहायक होकर ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हैं वैसे ही खनन कर्म में यह स्फ्य तीव्र तेज वाला है और श्रेष्ठ कर्मों से द्वेष करने वाले असुरों का विनाशक है ॥२४॥

हे पृथिवी ! तुम देवताओ के यज्ञ योग्य हो । तुम्हारी प्रिय संतति रूप औषधि के तृण मूलादि को मैं नष्ट नहीं करता हूँ । हे पुरीष ! तुम गौओं के निवास स्थान गोष्ठ को प्राप्त होओ । हे वेदी ! तुम्हारे लिए स्वर्ग लोक के अभिमानी देवता सूर्य, जल की वृष्टि करें । वृष्टि से खनन द्वारा उत्पन्न पीड़ा की शान्ति हो । हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! जो व्यक्ति हम से द्वेष करे अथवा हम जिससे द्वेष करें, ऐसे दोनों प्रकार के वैरियों को तुम इस पृथिवी की अन्तर्सीमा रूप नरक में डालो और सैकड़ों बंधनों में बाँध लो । उनका

उस नरक से कभी छुटकारा न हो ॥ २५ ॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याँ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याँ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ २७ ॥

पृथिवी में स्थित देवताओं के यज्ञ वाले स्थान वेदी से विघ्नकारी अररु नामक असुर को बाहर कर मारता हूँ। हे पुरीष ! तुम गौओं के गोष्ठ को प्राप्त होओ। हे वेदी ! तुम्हारे लिए सूर्य जल-वर्षा करें, जिससे तुम्हारा खनन कालीन कष्ट दूर हो । हे सवितादेव ! जो हमसे द्वेष करे अथवा हम जिससे द्वेष करें, ऐसे शत्रुओं को नरक में डालो और सैकड़ों पाशों में बद्ध करो। वे उस नरक से कभी भी न छूट पावें । हे अररो ! यज्ञ के फल रूप स्वर्गलोक जैसे श्रेष्ठ स्थान को तुम मत जाना । हे वेदी ! तुम्हारा पृथिवी रूप उपजीह्व नामक रस स्वर्गलोक में न जाय। हे पुरीष तुम गौओं के गोष्ठ में गमन करो। हे वेदी ! सूर्य तुम्हारे लिए जल-वृष्टि करें, जिससे तुम्हारी खनन-वेदना शांत हो। हे सवितादेव ! जो हमसे द्वेष करे और हम जिससे द्वेष करें, ऐसे शत्रु नरक के सैकड़ों बंधनों में पड़ें। वे उस घोर नरक से कभी भी न छूट पावें ॥ २६ ॥

हे सर्वव्यापक विष्णो ! जाप करने वाले की रक्षा करने वाले गायत्री छन्द से भावित स्फ्य द्वारा मैं तुम्हें तीनों दिशाओं में ग्रहण करता हूँ। हे विष्णो ! मैं तुम्हें त्रिष्टुप् छन्द से गृहण करता हूँ । मैं तुम्हें जगती छन्द से गृहण करता हूँ। हे वेदी ! तुम पाषाण आदि से हीन होकर सुन्दर हो गई

हो और अरु जैसे असुरों के विघ्न दूर होने पर तुम शांति रूप वाली हुई हो हे वेदी ! तुम सुख की आश्रयभूत हो और सुख पूर्वक देवताओं के निवास योग्य हो। हे वेदी ! तुम अन्न और रस से परिपूर्ण होओ ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा ऽ अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता ऽ अरातय. ।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्टा ऽ अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता ऽ अरातयः ।
अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनी त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ २९ ॥

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषाव-पश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वा प्रसव ऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सवितुर्व. प्रसव ऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभि ।
तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रिय देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

हे विष्णो ! तुम यज्ञ स्थान में तीन वेद के रूप में अनेक शब्द करने वाले हो। तुम हमारी इस बात को अनुग्रहपूर्वक सुनो। अनेक वीरों वाले संग्राम में प्राचीन काल में देवताओं ने प्राणियों के धारण करने वाली जिस पृथिवी को ऊँचा उठाकर वेदों के सहित चन्द्रलोक में स्थित किया था। मेधावी जन उसी पृथिवी के दर्शन से यज्ञ सम्पादन करते हैं। हे आग्नीध्र ! वेदी एक-सी हो गई है। अब इस पर जिसके द्वारा जल सींचा जाता है, उसे लाकर वेदी में स्थापित करो। हे स्फ्य ! तुम शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, हमारे शत्रु को भी नष्ट कर दो ॥ २८ ॥

इस ताप द्वारा राक्षस आदि सभी विघ्न भस्म हो गए। सभी शत्रु भी भस्म हो गए। इस ताप द्वारा यहाँ विद्यमान बाधाएँ, राक्षस और शत्रु आदि सब भस्म हो गए। हे स्रुव ! तुम्हारी धार तीक्ष्ण नहीं है परन्तु तुम शत्रुओं को क्षीण करने वाले हो। इस यज्ञ द्वारा यह देश अन्न से सम्पन्न हो। इसलिए मैं तुम्हें प्रक्षालन करता हूँ जिससे यज्ञ दीप्ति से युक्त हो। इस ताप द्वारा सम्पूर्ण विघ्न और शत्रुगण भस्म हो गए। इस ताप से यहाँ विद्यमान बाधा और शत्रु आदि सभी भस्मीभूत हो गए। हे सुक्त्रय ! तुम तीक्ष्ण धार वाले न होने पर भी शत्रु का नाश करने में समर्थ हो। यह देश प्रचुर अन्न से सम्पन्न हो, इस निमित्त तुम्हारा प्रक्षालन करता हूँ ॥२६॥

हे योक् ! तुम भूमि की मेखला के समान होती हो। हे दक्षिण पाश ! तुम इस सर्वव्यापी यज्ञ को प्रशस्त करने में समर्थ हो। हे आज्य ! श्रेष्ठ रस की प्राप्ति के उद्देश्य से मैं तुम्हें द्रवीभूत करता हूँ। हे आज्य ! स्नेहमयी दृष्टि द्वारा मैं तुम्हें नीचा मुख करके देखती हूँ। तुम अग्नि के जिह्वा रूप हो और भले प्रकार देवताओं का आह्वान करने वाले हो। अतः मेरे इस यज्ञ फल की सिद्धि के योग्य तथा इस यज्ञ की सम्पन्नता के योग्य होओ ॥ ३० ॥

हे आज्य ! मैं सवितादेव की प्रेरणा से तुम्हें छिद्र रहित वायु के समान पवित्र और सूर्य रश्मियों के तेज से शुद्ध करता हूँ। हे प्रोक्षणी ! मैं सवितादेव की प्रेरणा से छिद्र रहित तथा वायु और सूर्य रश्मियों के तेज से तुम्हें पवित्र करता हूँ। हे आज्य ! तुम उज्वल देह वाले होने से तेजस्वी हो। स्निग्ध होने से दीप्ति युक्त हो और अमृत के समान स्थायी और निर्दोष हो। हे आज्य ! तुम देवताओं के हृदय-स्थान हो। तुम उन्हें आनन्द देने वाले हो। तुम्हारा नाम देवताओं के समक्ष लिया जाता है। तुम देवताओं के प्रीति भाजन हो। सारयुक्त होने से तुम तिरस्कृत नहीं होते। तुम इस देवयाग के प्रमुख साधन हो। इसलिए मैं यजमान तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ ३१ ॥

———

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(ऋषिः—परमेष्ठी प्रजापतिः, देवलः, वामदेव. ॥ देवता—यज्ञः, अग्निः, विष्णु ; इन्द्रः, द्यावापृथिवी,सविता, बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ, इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ, विश्वे देवाः, अग्निवायू , अग्निसरस्वत्यौ, प्रजापतिः, त्वष्टा, ईश्वरः पितरः, आपः ॥ छन्दः—पंक्तिः, जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

हे इध्म ! तुम होमीय काष्ठ हो। तुम कठिन वृक्ष से उत्पन्न हुए हो अथवा आह्वानीय अग्नि में वास करने वाले हो। इसलिए अग्नि में डालने के लिए मैं तुम्हें जल से धोकर शुद्ध करता हूँ। हे वेदी ! तुम यज्ञ की नाभि हो। तुम्हें कुशा धारण करने के लिए भले प्रकार जल से धोता हूँ। हे दर्भ ! तुम कुशों का समूह होने से समर्थ हो। तुम्हें तीन स्रुकों के सहित टिकना है, इसलिए मैं तुम्हें जल से स्वच्छ करता हूँ ॥१॥

हे प्रोक्षण से शेष जल ! तुम इस वेदी रूप पृथिवी को सींचते हो। हे कुशाओ ! तुम यज्ञ की शिखा के समान हो। हे वेदी ! तुम ऊन के समान अत्यंत मृदु हो। मैं तुम्हें देवताओं के सुख पूर्वक बैठने का स्थान बनाने के लिए कुशों से ढकता हूँ। यह हवि भुवपति देव के लिए प्रदान की है। यह हवि भुवनपति देवता के लिए प्रदान की है। यह हवि भूतों के स्वामी के निमित्त है ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्त ७ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै ।
सवितुर्बाहू स्थ ऽ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्रा ऽ आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

हे परिधि ! विश्वावसु नामक गंधर्व समस्त विघ्नों की शांति के लिए तुम्हें सब ओर से स्थापित करे और तुम केवल अग्नि की ही परिधि न होकर राक्षसों और शत्रुओं से रक्षा करने वाली, यजमान की भी परिधि होओ। तुम पश्चिम दिशा में स्थापित हो। आह्वानीय अग्नि के प्रथम भ्राता भुवपति नामक अग्नि रूप यज्ञ से स्तुत हो। हे दक्षिण परिधि ! तुम इन्द्र की दक्षिण बाहु रूप हो। विश्व के विघ्नों को दूर करने के लिए तुम यजमान की रक्षिका होओ। आह्वानीय के द्वितीय भ्राता भुवनपति की यज्ञादि से स्तुति की गई हो। हे उत्तर परिधि ! मित्रावरुण, वायु और आदित्य तुम्हें उत्तर दिशा में स्थापित करें। तुम आह्वानीय रूप से विश्व के विघ्नों को दूर करने के लिए और संसार का कल्याण करने के लिये यजमान की रक्षा करो। आह्वानीय के तृतीय भ्राता भूतपति यज्ञादि कर्म द्वारा स्तुत हो ॥ ३ ॥

हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! तुम पुत्र पौत्रादि के देने वाले, धन से सम्पन्न करने वाले, यज्ञ के फल रूप सुख समृद्धि के भी देने वाले, द्योतमान् और महान् हो। हम ऐसे तुम्हें यज्ञ कर्म के निमित्त समिधा द्वारा प्रदीप्त करते हैं ॥ ४ ॥

हे इध्म ! तुम अग्नि देवता को भले प्रकार प्रदीप्त करते हो। हे

आह्वानीय सूर्य ! पूर्व में यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उससे हमारी भले प्रकार रक्षा करो। हे कुश ! तुम दोनों, सविता देव की भुजाओं के समान हो। हे कुशाओ ! तुम ऊन के समान मृदु हो। मैं तुम्हें, देवताओं के सुख पूर्वक बैठने के लिए ऊँचे स्थान में बिछाता हूँ। तीनों सवनों के अभिमानी देवता वसुगण, रुद्रगण और मरुद्गण सब ओर से, हे कुशाओं ! तुम पर विराजमान हों ॥ ५ ॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँ सदऽआसीद घृताच्यसुपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँ सदऽआसीद प्रियेण धाम्ना प्रियँ सद ऽ आसीद ।
ध्रुवा ऽ असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ६ ॥
अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितँ सम्मार्जिम ।
नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

हे जुहू ! तुम घृत से पूर्ण होकर देवताओं के प्रिय उस घृत के सहित इस पाषाण रूप आसन पर स्थिर होओ। हे उपभृत् ! तुम घृत से पूर्ण होने वाले हो। इस समय देवताओं के प्रिय इस घृत से युक्त होकर प्रस्तर रूप इस आसन पर बैठो। हे ध्रुवा ! तुम सदा घृत द्वारा सिंचित हो। इस समय देवताओं के प्रिय इस घृत से पूर्ण होकर तुम प्रस्तर रूप इस आसन पर प्रतिष्ठित होओ। हे हव्य ! तुम घृत के सहित प्रीति युक्त होते हुए इस पर स्थित होओ। हे विष्णो ! फल की अवश्य प्राप्ति के निमित्त सत्य रूप यज्ञ के स्थान में जो हव्य स्थित हैं, उनकी रक्षा करो। हव्य की ही नहीं, समस्त यज्ञ की और यज्ञकर्त्ता यजमान की भी रक्षा करो। हे प्रभो ! हे परमब्रह्म ! मुझ यज्ञ-प्रवर्त्तक अध्वर्यु की भी रक्षा करो ॥ ६ ॥

हे अन्नजेता अग्ने ! तुम अनेक अन्नों के उत्पन्न करने वाले हो। अतः अन्नोत्पत्ति में उपस्थित होने वाले विघ्नों की शांति के लिए मैं तुम्हारा

शोधन करता हूँ। जो देवगण मेरे इस अनुष्ठान में अनुकूल हुए हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। जो पितरगण मेरे इस अनुष्ठान में अनुग्रह करते हैं, मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूं। हे जुहू। हे उपभृत्। तुम दोनों इस कर्म में सावधान रहो। जिससे घृत न गिरे, इस प्रकार घृत को धारण करो ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य ऽ आज्य ँ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वाव-क्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत ऽइन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात ॥ ८ ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेदूँत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवी ऽ अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्र ऽ आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

मयीदमिन्द्र ऽ इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकँ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष ऽ उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥१०॥

हे विष्णो। मैं अपने पाँवों से तुम पर आक्रमक नहीं होता हूँ! वेदी पर पाँव रखने का दोष मुझे न लगे। हे अग्ने! मैं तुम्हारी छाया के समान निकटस्थ भूमि पर बैठता हूँ। हे वसुमति! तुम यज्ञ के स्थान रूप हो। इस देव-यज्ञ के स्थान से उठ कर शत्रु-हनन के लिए बल को धारण करते हुए इन्द्र के लिए ही यह यज्ञ उन्नत हुआ है ॥ ८ ॥

हे अग्ने! तुम होता के कर्म को और दौत्य कर्म को अवश्य ही जानो। स्वर्ग और पृथिवी तुम्हारी रक्षा करें और तुम भी उन दोनों की रक्षा करो और इन्द्र हमारी दी हुई हवि द्वारा देवताओं सहित संतुष्ट हों। वे हम पर प्रसन्न होकर हमारा अभीष्ट पूर्ण करें और हमारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण हो ॥ ९ ॥

इन्द्र इस प्रकार के पराक्रम को मुझ यजमान में स्थापित करें। दिव्य और पार्थिव सब प्रकार के धन हमारे पास आवें। हमारे सब इच्छित पूर्ण

हों और हमारी कामनाएं सत्य फल वाली हों। जो यह पृथिवी स्तुत है, वह संसार को बनाने वाली है। यह माता के समान पृथिवी मुझे हविशेष के भक्षण करने की अनुमति प्रदान करे। हे माता ! अग्नि में आहुति देने से मेरी जठराग्नि अत्यंत दीप्त होगई इसलिए मैं उस भाग को अग्नि रूप से भक्षण करता हूँ ॥ १० ॥

उपहूतो द्यौष्पितोप मा द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥११॥
एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे ।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥ १२ ॥

स्तुत हुए सवितादेव हमारे पालक पिता हैं, वे मुझे हविशेष के भक्षण की आज्ञा दें। हे पिता ! अग्नि में आहुति देते-देते मेरी जठराग्नि अत्यंत दीप्त हुई है उसकी संतुष्टि के लिए मैं इसका भक्षण करता हूँ। हे प्राशित्र ! सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं से और पूषा देवता के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे प्राशित्र ! मैं तुम्हें अग्नि देव के मुख द्वारा भक्षण करता हूँ ॥११॥

हे दानादि गुण सम्पन्न सर्वप्रेरक सवितादेव ! इस यज्ञानुष्ठान को यजमान तुम्हारे निमित्त करते हैं और तुम्हारी प्रेरणा से इस यज्ञ के लिए बृहस्पति को देवताओं का ब्रह्मा मानते हैं। अतः इस यज्ञ की, यजमान की और मेरी भी रक्षा करो ॥१२॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु ।
विश्वे देवासऽइह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ ॥१३॥
एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व ।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ।
अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥१४॥

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ।
अग्नीषोमौ तमपनुद तां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ।
इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ।
इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो
वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥१५॥

यज्ञ सम्बन्धी आज्य घृत सर्वव्यापी सवितादेव की सेवा करे। बृहस्पति इस यज्ञ का विस्तार करें। वे इस यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें। सभी देवता हमारे इस यज्ञ में तृप्त हों। इस प्रकार प्रार्थित सवितादेव यजमान के प्रति अनुकूल हों ॥१२॥

हे अग्ने ! यह समिधा तुम्हें प्रदीप्त करने वाली है। तुम इस समिधा के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और हम सबको भी वृद्धि करो। तुम्हारी इस प्रकार की कृपा से हम समृद्ध होंगे और जब तुम तृप्त होजाओगे तब हम अपने पुत्र, पशु आदि को भी सम्पन्न पावेंगे। हे अन्न के जीतने वाले अग्निदेव ! तुम अन्न की उत्पत्ति के लिए जाते हो। मैं तुम्हें शुद्ध करता हूँ ॥१४॥

द्वितीय पुरोडाश के स्वामी अग्नि सोम ने इस विघ्नरहित हवि को ग्रहण कर लिया है। इस कारण मैं उत्कृष्ट विजय को प्राप्त कर सका हूँ। पुरोडाश और जुहू उपभृत आदि ने मुझ यजमान को इस कर्म में उत्साहित किया है। जो राक्षस आदि शत्रु हमारे यज्ञ को नष्ट करने के लिए हमसे वैर करते हैं, उन्हें अग्नि और सोम देवता तिरस्कृत करें। पुरोडाश आदि के देवता की आज्ञा पाकर मैं हवि के निर्विघ्न स्वीकार किये जाने के कारण इन दोनों स्रुकों का त्याग करता हूँ ॥१५॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी
मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् ।
व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह । चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥१६॥

यं परिधिं पर्यधत्थाऽग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः ।
तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाताऽग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥१७॥

हे मध्यम परिधि ! मैं तुम्हें वसुओं का यज्ञ करने के लिए घृत-सिक्त करता हूँ । हे दक्षिण परिधि ! मैं तुम्हें रुद्रों का यज्ञ करने के निमित्त घृत-सिक्त करता हूँ । हे उत्तर परिधि ! मैं तुम्हें आदित्यों का यज्ञ करने के निमित्त घृताक्त करता हूँ । हे द्यावा पृथिवी ! इस ग्रहण किये पाषाण को तुम भले प्रकार जानो । हे पाषाण ! मित्र, वरुण, वायु और सूर्य तथा प्राणापान तुम्हें जल वृष्टि के वेग से बचावें । घृतसिक्त प्रस्तर का आस्वाद करते हुए अन्तरिक्ष में घूमने वाले देवता गायत्री आदि छन्दों के सहित प्रस्तर लेकर घूमें । हे प्रस्तर ! अन्तरिक्ष में मरुद्गण की अद्भुत गति का तुम अनुसरण करो । तुम अल्प शरीर वाली स्वाधीन गौ होकर विचरण करो । स्वर्ग में जाकर हमारे लिए वृष्टि को लाने वाले बनो ॥१६॥

हे अग्ने ! जब तुम असुरों से घिरे हुए थे, तब तुमने उनके दमन करने के लिए जिस परिधि को पश्चिम दिशा में स्थापित किया था, तुम्हारी उस प्रिय परिधि को मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ । यह परिधि तुमसे वियुक्त न रहे । हे दक्षिण-उत्तर परिधि ! तुम अग्नि की प्रीति-पात्री हो । तुम सेवनीय अन्न के भाव को प्राप्त होओ ॥१७॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥१८॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ।
यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥१९॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु ।
सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥२०॥

हे विश्वेदेवो ! तुम द्रवरूप घृत अथवा घृतयुक्त अन्न के भक्षण करने वाले होने से महान् हुए हो। तुम परिधि से रक्षित पाषाण पर बैठते हो। तुम सब मेरे इस वचन को स्वीकार करो कि यह यजमान भले प्रकार यज्ञ करता है। इस प्रकार सबसे कहते हुए हमारे यज्ञ में आकर तृप्ति को प्राप्त होओ। यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो ॥१८॥

हे जुहू और उपभृत तुम घृत से युक्त हो। शकट वाहक! दोनों वृषभों को घृताक्त करके उनकी रक्षा करो। हे सुखरूप! तुम मुझे महान् सुख में स्थापित करो। हे वेदी! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम प्रवृद्ध होओ। तुम इस अनुष्ठान कर्म में लगो जिससे यह यज्ञ सम्पूर्ण एवं श्रेष्ठ हो ॥१९॥

हे गार्हपत्य अग्ने! तुम यजमान का मङ्गल करने वाले और सर्वत्र व्याप्त हो। शत्रु द्वारा प्रेरित वज्र के समान आयुध से तुम मेरी रक्षा करो। बन्धन कारण रूप पाश से बचाओ। विधि-रहित यज्ञ से मैं दूर रहूँ। कुत्सित भोजन न करूँ। विष-युक्त अन्न और जल से मेरी रक्षा करो। घर में रखे हुए अन्नादि खाद्य पदार्थ भी विष से हीन हों। संवेश पति अग्नि के लिए आहुति स्वाहूत हो। प्रसिद्ध यश की देने वाली वाग्देवी सरस्वती के लिए यह आहुति स्वाहूत हो। इसके फलस्वरूप हम भी यशस्वी बनें ॥२०॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित।
मनसस्पतऽइमं देव यज्ञ ँ स्वाहा वाते धाः ॥२१॥
सं बर्हिरङ्क्ता ँ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः।
समिन्द्रो विश्वेदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥२२॥

हे कुशमुष्टि निर्मित पदार्थ! तुम वेद रूप हो। तुम सबके ज्ञाता हो। तुम जिस कारणवश सम्पूर्ण यज्ञ कर्मों के ज्ञाता हो और जिस कारण से तुम उसे देवताओं को बताते हो, उसी कारण मुझे भी कल्याणकारी कर्म को बताओ। हे यज्ञज्ञाता देवताओ! तुम हमारे यज्ञ के सब वृत्तान्त को जान

घर इस यज्ञ में आओ। हे मन प्रवर्तक ईश्वर! मैं इस यज्ञ को तुम्हें अर्पित करता हूँ, तुम वायु देवता में इसकी स्थापना करो॥२१॥

हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हवि वाले घृत से कुशाओं को लिप्त करो। आदित्यगण, वसुगण, मरुद्गण और विश्वेदेवाओं के सहित लिप्त करो। आदित्यरूप ज्योति को वह बर्हि प्राप्त हो॥२२॥

कस्त्वा विमुंचति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसा भागोऽसि॥२३॥

स वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स७ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥२४॥

दिवि विष्णुर्व्यक्र७स्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि य च वय द्विष्मो ऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्र७स्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वय द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्र७स्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्माद्वेष्टि य च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया ऽअगन्म स्व स ज्योतिषाभूम॥२५॥

हे प्रणीतापात्र! तुम्हें कौन त्यागता है? वह तुम्हें किस प्रयोजन से छोड़ता है? वह तुम्हें प्रजापति के सन्तोष के लिए विसर्जित करता है। मैं तुम्हें यजमान के पुत्र पौत्रादि के पालनार्थ त्यागता हूँ। हे कणो! तुम राक्षसों के भाग रूप हो, इससे अपनी इच्छानुसार गमन करो॥२३॥

हम आज ब्रह्म तेज से युक्त हों, दुग्धादि से सुसंगत हों, अनुष्ठान में समर्थ शरीर के अवयवों से युक्त हों शान्त कर्म में श्रद्धायुक्त मन वाले हों। त्वष्टादेवता हमारे लिए धन प्राप्त करावें और मेरे देह में यदि कोई न्यूनता हो तो उसे पूर्ण करें॥२४॥ विष्णु जगती छन्दरूपी अपने चरण से स्वर्ग पर विशेष रूप से चढ़े हैं। जो शत्रु हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, वे दोनों प्रकार के शत्रु भाग से वंचित कर निकाल दिये गए। सर्वव्यापी भगवान् ने अपने त्रिष्टुप छन्दरूपी चरण से अन्तरिक्ष पर आक्रमण किया। जो शत्रु हमसे द्वेष करते हैं,वे और हम जिनसे द्वेष करते हैं, वे दोनों प्रकार

केशग्रभाग से वचितकर निकालेगए,उन सर्वव्यापी भगवान् ने गायत्री छन्दरूपी चरणसे पृथिवी पर आक्रमण किया। जो शत्रु हमसे द्वेष करतेहैं और हमजिनसे द्वेष करते हैं; वे दोनों प्रकार के शत्रु भाग-हीन कर पृथिवी से निकाले गए। जो यह अन्न-भाग देखा है. इस अन्न से वर्ग को निराशा करते हैं। इस सम्मुख दिखाई देने वाली यज्ञभूमि की प्रतिष्ठा के निमित्त वर्ग को निराश किया। हम इस यज्ञ के फल से पूर्व दिशा में उदित सूर्य के दर्शन करते हैं। आह्वानीय रूप ज्योति से हम युक्त हुए हैं ॥२५॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि ।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२६॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयास ँ सुगृहपति-स्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शत ँ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२७॥

हे सूर्य ! तुम स्वयंभू हो। अत्यन्त श्रेष्ठ, रश्मिवन्त और हिरण्य-गर्भ हो। तुम जिस कारण से तेज के देने वाले हो, मेरे लिए उसी से ब्रह्मतेज प्रदान करो। मैं सूर्यात्मक प्रदक्षिणा को आहूत करता हूँ ॥२६॥

हे ग्रहपति अग्ने ! मैं तुम्हें गृहपति रूप से स्थापित करता हूं। मैं श्रेष्ठ गृहपति होऊँ। हे अग्ने ! मुझ गृहपति द्वारा तुम श्रेष्ठ गृहपति होओ हम दोनों के परस्पर ऐसा करने पर स्त्री पुरुषों द्वारा किये गये कर्म सौ वर्ष तक निरन्तर होते रहें। मैं सूर्यात्मक प्रदक्षिणा को करता हूँ ॥२७॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ।
अपहता ऽ असुरा रक्षा ँ सि वेदिषदः ॥ २९ ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना ऽ असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! तुम सम्पूर्ण व्रतों के स्वामी हो । यह जो यज्ञानुष्ठान किया है, उसे तुम्हारी कृपा से ही सम्पन्न करने में मैं समर्थ हुआ हूँ । मेरे इस कर्म को तुमने ही सिद्ध किया है । मैं जैसा मनुष्य पहिले था, वैसा ही मनुष्य अब भी हूँ ॥ २८ ॥

पितर संबंधी हव्य को कव्य कहते हैं । उस कव्य के वहन करने वाले अग्नि के निमित्त पितरों के लिए यह कव्य अर्पित करते हैं । यह आहुति स्वाहुत हो । पितरों के अधिष्ठान के लिए और सोम देवता के निमित्त यह अग्नि स्वाहुत हो । वेदी में विद्यमान असुर और राक्षस आदि वेदी से बाहर निकाल दिये गये ॥ २९ ॥

पितरों के अन्न का भक्षण करने की इच्छा से अपने रूपों को पितरों के समान बनाकर यह असुर पितृयज्ञ के स्थान में घूमते हैं तथा जो स्थूल देह वाले राक्षस सूक्ष्म देह धारण कर अपना असुरत्व छिपाना चाहते हैं, उन असुरों को इस स्थान से अग्नि दूर कर दें ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास ॥ ३२ ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥३३॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

हे पितरों ! तुम इन कुशों पर बैठकर प्रसन्न होओ । जैसे वृषभ इच्छित भोजन पाकर तृप्त होता है, वैसे ही हवि रूप में अपने अपने भागों को प्राप्त करते हुए तुम तृप्ति को प्राप्त होओ । जिन पितरों से भाग स्वीकार करने

की प्रार्थना की वे पितर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने भाग को गृहण कर तृप्ति को प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

हे पितरो ! तुम्हारे संबंधित रस रूप वसंत ऋतु को नमस्कार है। हे पितरो ! तुम से संबंधित ग्रीष्म ऋतु को नमस्कार है। हे पितरो ! तुम से सम्बन्धित, प्राणियों के प्राण रूप वर्षा-ऋतु को भी नमस्कार है । हे पितरो ! तुमसे संबंधित स्वधा रूप वसंत ऋतु को नमस्कार है। हे पितरो ! तुम से संबंधित,प्राणिमात्र को विषम हेमन्त ऋतु को नमस्कार है । हे पितरो ! तुमसे संबंधित क्रोध रूर शिशिर ऋतु को नमस्कार है। हे छैओं ऋतु के रूप वाले पितरो ! तुम्हें नमस्कार है । तुम हमें भार्या पुत्रादि से युक्त घर दो। हम तुम्हारे लिए यह देय वस्तु देते हैं। हे पितरो ! यह सूत्र रूप परिधेय तुम्हारे लिए परिधान के समान हो जाय ॥ ३२ ॥

हे पितरो ! जैसे इस ऋतु में देवता या पितर मनुष्यों को इच्छित धन देने वाले हों, वैसा ही करो । अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर और स्वस्थ पुत्र प्राप्त कराओ ॥ ३३ ॥

हे जलो ! तुम सब प्रकार के स्वादिष्ट सार रूप, पुष्पों के सार रूप, रोगनाशक, बंधनों के दूर करने और दुग्ध के धारण करने वाले हो। तुम पितरों के लिए हवि रूप हो, अतः मेरे पितरों को तृप्त करो ॥ ३४ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

ऋषि—आङ्गिरसः, सुश्रुतः, भरद्वाजः, प्रजापतिः, सर्पराज्ञी कद्रूः,गोतमः विरूपः, देववातभरतौ, वामदेवः, अवत्सारः, याज्ञवल्क्यः, मधुच्छन्दाः, सुबन्धुः श्रुतवन्धुः, विप्रबन्धुः, मेधातिथि, सत्यधृतिर्वारुणिः, विश्वामित्रः, आसुरिः,शंयुः शंयुर्बार्हस्पत्यः, आगस्त्यः, और्णवाभः, बन्धुः, वसिष्ठः, नारायणः ॥ देवता—अग्निः,सूर्यः, इन्द्राग्नी,आपः,विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः,ब्रह्मणस्पतिः,आदित्यः,इन्द्र

सविता, प्रजापतिः, वास्तुपतिः, मरुतः, यज्ञः, मनः, सोमः, रुद्रः, ॥
छन्द—गायत्री बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप् ॥

समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥
सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! समिधा द्वारा अग्नि की सेवा करो । इन आतिथ्य कर्म वाले अग्नि को घृत-प्रदान द्वारा प्रज्ज्वलित करो और अनेक प्रकार के हव्य पदार्थों द्वारा यज्ञ करते हुए इन्हें दीप्तियुक्त बनाओ ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! भले प्रकार प्रदीप्त जातवेदा अग्नि के लिए अत्यन्त सुस्वादु और शुद्ध घृत प्रदान करो ॥ २ ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय ॥३॥
उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥४॥
भूर्भुवः स्व द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥५॥

हे अग्ने ! तुम्हें समिधाओं और घृताहुतियों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं । तुम सदा तरुण रहने वाले हो । अतः वृद्धि को प्राप्त होते हुए प्रदीप्ति धारण करो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! हवियुक्त एवं घृत में सनी हुई यह समिधा तुम्हें प्राप्त हो । तुम तेजस्वी को मेरी यह समिधाएँ प्रीति पूर्वक सेवनीय हों ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तुम पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक और स्वर्गलोक में सर्वत्र ही विद्यमान हो । हे पृथिवी ! तुम देवताओं के यज्ञ योग्य हो । तुम्हारी पीठ पर श्रेष्ठ अन्न की सिद्धि के लिए अन्न भक्षक गार्हपत्यादि अग्नि की स्थापना करता हूँ । फिर जैसे स्वर्गलोक नक्षत्रादि से पूर्ण है, वैसे ही मैं भी समस्त धनों से पूर्ण होऊँ । बहुतों को आश्रय देने वाली पृथिवी के समान आश्रयदाता बनूँ । यह अग्नि सब वस्तुओं को शुद्ध करने वाले होने से सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥६॥
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥७॥

यह अग्नि दृश्यमान हैं । इन्होंने यज्ञ को निष्पन्न करने के लिए यजमान के घर में गमनशील अद्भुत ज्वालायुक्त रूप बनाया और सब प्रकार से आह्वानीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि के स्थानों में पाद विक्षेप किया तथा पूर्व दिशा में पृथिवी को प्राप्त किया ॥ ६ ॥

इस अग्नि का तेज प्राणापान व्यापारों को करती हुई शरीर के मध्य में गमन करता है। यह जठराग्नि ही देह में जीवन रूप है। इस प्रकार वायु और सूर्य रूप से संसार पर अनुग्रह करने वाले अग्निदेवता यज्ञानुष्ठान के निमित्त प्रकाशित होते हैं ॥ ७ ॥

त्रिँशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ८ ॥
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ।
अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ९ ॥
सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ।
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥१०॥

जो वाणी तीस मुहूर्त्त रूप स्थानों में सुशोभित होती है, वही पूजनीय वाणी अग्नि के निम्न उच्चारण की जाती है। वह नित्य प्रति की स्तुति रूप वाली वाणी यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में अग्नि की ही स्तुति करती हैं, किसी अन्य की स्तुति नहीं करती ॥ ८ ॥

यह अग्नि ही दृश्यमान ज्योति स्वरूप ब्रह्म ज्योति है और यह दृश्यमान ज्योति ही अग्नि हैं। इन ज्योति स्वरूप अग्नि के लिए हवि प्रदान की गई है। यह सूर्य ही ज्योति हैं और यह ज्योति ही सूर्य हैं। उन सूर्य के लिए हवि देता हूँ। जो अग्नि ब्रह्म तेज से सम्पन्न हैं उनकी ज्योति ही ब्रह्म तेज वाली हैं। उन अग्नि के निमित्त हवि देता हूँ। जो सूर्य है, वही ब्रह्म तेज है

और जो ज्योति है वह भी महा तेज है । उन सूर्य के निमित्त हवि देता हूँ । ज्योति ही सूर्य है, सूर्य है वही महाज्योति है । उनके निमित्त हवि देता ॥९॥

सर्व प्रेरक सूर्य रूप परमात्मा के साथ समान प्रीति वाले जिस रात्रि देवता के देवता इन्द्र हैं, वह रात्रि देवता और हम पर अनुग्रह करने वाले अग्नि भी इन्हें जानें । यह आहुति इन अग्नि के लिए ही देता हूँ । सर्व प्रेरक सवितादेव के साथ समान प्रीति वाली जिस उषा के देवता इन्द्र हैं, वह उषा और समान प्रीति वाले सूर्य इस आहुति को ग्रहण करें ॥१०॥

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरेऽअस्मे च शृण्वते ॥११॥
अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपा ँ रेता ँसि जिन्वति ॥ १२ ॥

यज्ञ स्थान की ओर जाते हुए हम दूर या पास में सुनते हुए अग्नि के लिए स्तोत्र उच्चारण करते ही अभीष्टदाता वाक्य समूह का उच्चारण करते हैं ॥११॥

यह अग्नि आकाश के शीर्ष स्थान के समान मुख्य हैं । जैसे शिर सबसे ऊपर रहता है, वैसे ही यह अपने तेज से आकाश के सर्वोच्च स्थान सूर्यमंडल के ऊपर रहते हैं । या जैसे वृषभ का स्कन्ध ऊँचा होता है, वैसा ही ऊँचा इन अग्नि का स्थान है । इस प्रकार संसार के महान् कारण यही हैं । पृथिवी के पालक और जलों के सार भाग को पुष्ट करने वाले हैं ॥१२॥

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधस सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषा ँ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥ १४ ॥
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५ ॥

हे इन्द्राग्ने ! मैं तुम दोनों को आहूत करना चाहता हूँ । तुम दोनों को हवि रूप अन्न से प्रसन्न करने का इच्छुक हूं । क्योंकि तुम दोनों ही अन्न, धन और जल के दाता हो । मैं अन्न और जल की कामना से तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥१३॥

हे अग्ने ! ऋतु विशेष प्राप्त यह गार्हपत्याग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है । प्रातः सायं तुम आह्वानीय स्थान में उत्पन्न होते हो । ऐसे तुम यज्ञादि कर्मों में प्रदीप्त होते हो । हे अग्ने ! अपने उस गार्हपत्य को जानते हुए कर्म की सिद्धि के लिए दक्षिणवेदी में प्रतिष्ठित होओ और हमारे यज्ञ में धन की भले प्रकार वृद्धि करो ॥१४॥

यह अग्नि देवताओं के आह्वान करने वाले और यज्ञ में स्थित होता है । यह सोमयज्ञ आदि में ऋत्विजों द्वारा स्तुत किये जाते हुए यज्ञ स्थान में कर्मवानों द्वारा स्थापित किये जाते हैं । यज्ञ कर्म के ज्ञाता भृगुओं ने विविध कर्मों वाले अद्‌भुत अग्नि को मनुष्यों के हित के निमित्त व्यापक शक्ति सहित वनों में प्रज्ज्वलित किया है ॥१५॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे ऽअह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१६

तनूपा ऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा ऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदा- ऽ अग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म ऽआपृण ॥१७

संस्कार द्वारा शुद्ध हुए और सब प्रकार योग्य होकर सर्व विद्याओं को प्राप्त कराने वाले ऋषिगण ने इस अग्नि के तेज का अनुसरण कर गौ के द्वारा सहस्रों कार्यों में उपयोगी दुग्ध, दधि और आज्य रूप हवि के निमित्त शुद्ध दुग्ध का दोहन किया ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! तुम स्वभाव से ही यज्ञ कर्त्ताओं के देह रक्षक हो । जठराग्नि रूप से देह के पालन करने वाले हो । अतः मेरे शरीर की रक्षा करो । हे अग्ने ! तुम आयुदाता हो, अतः मेरी अकाल मृत्यु को दूर कर पूर्ण आयु प्रदान करो । हे अग्ने ! तुम ब्रह्मवर्च के दाता हो अतः मुझे भी तेजस्वी बनाओ । यदि मेरे देह में कोई न्यूनता हो तो उसे पूर्ण करो ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳसमिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ

सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो ऽ अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

स त्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाँ स्तुतेन । सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्च्चसा सं प्रजया सँ रायस्पोषेण ग्मिषीय॥१९॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोऽर्ज्ज स्थोर्ज्जं वो भक्षीय रायस्पोषं स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

हे अग्ने ! हम तुम्हारी कृपा से तेजस्वी, अन्न सम्पन्न और बलिष्ठ हुए हैं। हम यजमान किसी के द्वारा भी हिंसित न हों। हम इसी प्रकार के गुणों से युक्त होकर तुम्हें सौ वर्ष तक निरन्तर प्रज्ज्वलित करते रहें ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! रात्रि के समय तुम सूर्य के तेज से सुसंगत हुए हो। तुम ऋषियों के स्तोत्रों से सुसंगत होते हुए स्तुतियाँ स्वीकार करते हो। तुम अपनी अपनी प्रिय आहुतियों से भी सुसंगत हुए हो। तुम्हारी कृपा से मैं भी अकाल मृत्यु के दोष से बच कर पूर्ण आयु से, ब्रह्मवर्च से, पुत्र पौत्रादि तथा धन से सुसङ्गत हूँ ॥ १९ ॥

हे गौओं ! तुम क्षीरादि को उत्पन्न करने वाली होने से अन्न रूप हो। अत मैं भी तुम्हारे दुग्ध घृतादि का सेवन करूँ। तुम पूजनीय हो, अतः मैं भी तुम से संबधित महानता को प्राप्त होऊँ। तुम बल रूप हो, तुम्हारी कृपा से मैं भी बलवान होऊँ। तुम धन को पुष्ट करने वाली हो, अत मैं भी तुम्हारे अनुग्रह से धन की प्राप्ति को प्राप्त करूँ ॥ २० ॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये । इहैव स्त मापगात ॥ २१ ॥

सँहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन । उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्द्धिया वयम् । नमो भरन्त ऽ एमसि ॥ २२ ॥

हे धनवती गौओं ! इस उपस्थित यज्ञ स्थान में, दोहन कर्म के पश्चात् गोष्ठ में तथा इस यजमान की दर्शन शक्ति में और यजमान के घर में सदा श्रेष्ठ भाव से विद्यमान रहो। तुम इस गृह से अन्यत्र मत जाओ ॥२१॥

हे गौ ! तुम अद्भुत रूप वाली, दुग्ध घृत देने के निमित यज्ञ कर्मों से सुसङ्गत होती हो । तुम अपने क्षीरादि के द्वारा मुझ में प्रविष्ट होओ। हे अग्ने ! तुम रात्रि में भी निरन्तर निवास करने वाले हो, हम यजमान नित्य प्रति श्रद्धायुक्त मन से तुम्हें नमस्कार करते हुए हवि देते हैं और तुम्हारी ओर गमन करते हैं ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणाँ गोपामृतस्य दीदिवम् । वर्द्धमानꣳस्वे दमे ॥ २३ ॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २४ ॥
अग्ने त्वं नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्व-सुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳरयिं दाः ॥ २५ ॥

अग्नि दीप्तिमान् हैं । हम उन यज्ञों के रक्षक, सत्यनिष्ठ, प्रवृद्ध अग्नि के सम्मुख उपस्थित होते हैं ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! उपरोक्त गुण वाले तुम हमें सुख पूर्वक प्राप्त होते हो। पुत्र जैसे पिता के पास सुख से पहुँच जाता है, वैसे तुम हमें प्राप्त होते हुए हमारे मङ्गल के निमित्त यज्ञ कर्म में लगो ॥ २४ ॥

हे अग्ने ! तुम निर्मल स्वभाव वाले हो। तुम वसुओं के लिए आह्वानीय रूप से गमन करते हो । तुम धनदाता के कारण यशस्वी हुए हो। तुम हमारे निकट रहने वाले, रक्षक, पुत्रादि के हितैषी हो। तुम हमारे यज्ञ-स्थान में अनुष्ठान के समय गमन करो और हमें अत्यन्त तेजस्वी धन प्रदान करो ॥ २५ ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः । स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥
इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥२७॥

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त दीप्ति वाले, सबकी दीप्ति के कारण रूप, गुणी, मित्रों के धन और कल्याण के कारण रूप हो । हम तुमसे अपने मित्रों का उपकार करने की याचना करते हैं । तुम हम उपासकों को जानो और

हमारे आह्वान को सुनो। सभी पापों और शत्रुओं से हमारी भले प्रकार रक्षा करो ॥ २६ ॥

हे धेनु! तुम पृथिवी के समान पालन करने वाली हो। तुम इधर आगमन करो। तुम अदिति के समान देवताओं को घृतादि द्वारा पालन करने वाली हो। तुम इस यज्ञ स्थान में आगमन करो। हे गौओ! तुम सबके अभीष्टों के देने वाली हो, इस यज्ञ स्थान में आगमन करो। तुमने हमारे निमित्त जो फल धारण किया है; वह फल मुझ अनुष्ठाता को प्राप्त हो और मैं भी तुम्हारे अनुग्रह से अपने काम्य फलों का धारण करने वाला बनूँ ॥ २७ ॥

सोमानꣳस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्त यऽऔशिज ॥२८॥
यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धन.। स न' सिषक्तु यस्तुर ॥ २९ ॥
मा न शꣳसोऽअररुषो धूर्ति. प्रणङ्मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

हे ब्रह्मणस्पते! मुझे सोमाभिषव करने वाले शब्द से सम्पन्न करो। जैसे उशिज पुत्र कक्षीवान् को तुमने सोमयाग में स्तुति रूप वाणी से सम्पन्न किया था, उसी प्रकार मुझको भी करो ॥ २८ ॥

जो ब्रह्मणस्पति सर्व धनों के स्वामी हैं, जो ससार के सब भय-रोगादि के नाशक हैं और जो सब धनादि के ज्ञाता और पुष्टि के बढ़ाने वाले हैं, जो क्षणमात्र में सब कुछ करने में समर्थ हैं, वे ब्रह्मणस्पति हमको उपरोक्त सब कल्याणों से युक्त करें ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मणस्पते! जो यज्ञ,विमुख व्यक्ति देवताओं या पितरों के निमित्त कभी कोई कर्म नहीं करते, ऐसे मनुष्य के हिंसामय विरोध हमको पीड़ित न करे। तुम हमारी सब प्रकार रक्षा करो ॥ ३० ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्ण । दुराधर्षं वरुणस्य ॥३१॥
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशꣳस ॥३२॥

मित्र, अर्यमा और वरुण यह तीनों देवता अपने से सम्बन्धित कांतिमय सुवर्णादि धनों से युक्त महिमा के द्वारा हमारी रक्षा करें। उनकी महिमा का तिरस्कार करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है ॥ ३१ ॥

इन तीनों द्वारा रक्षित देवता की हम उपासना करते हैं। उन परमात्म देव को गृह, मार्ग, घोर वन और संग्राम भूमि में भी कोई रोक नहीं सकता। यजमान का कोई भी शत्रु उसे हिंसित करने में समर्थ नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते हि पुत्रासो ऽ अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय ऽ इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥३४॥

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

मित्र, अर्यमा और वरुण देवमाता अदिति के पुत्र हैं। वे इस मृत्युधर्म वाले यजमान को अपना अखण्ड तेज और दीर्घ आयु प्रदान करते हैं ॥ ३३ ॥

हे इन्द्र! तुम हिंसक नहीं हो। हविदाता यजमान की हवि को शीघ्र ग्रहण करते हो। हे मघवन्! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। यजमान तुम्हारे अपरिमित दान को शीघ्र प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

उन सर्व प्रेरक सवितादेव का हम ध्यान करते हैं। वह सबके द्वारा वरणीय, सभी पापों के नाशक और सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि तेज के पुञ्ज हैं। वे हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं ॥ ३५ ॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ ऽ अश्नोतु विश्वतः।
येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शᳬस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥३७॥

हे अग्ने ! तुम्हारा स्वच्छन्द गति वाला रथ सभी दिशाओं में हमारे लिए स्थित हो। उसी रथ के द्वारा तुम यजमान को रक्षा करते हो ॥३६॥

हे अग्ने ! तुम तीन व्याहृति रूप हो। मैं तुम्हारी कृपा से श्रेष्ठ अपत्य भृत्यादि से युक्त होकर सुप्रजावान् कहाऊँ। जिस कारण सर्वगुण सम्पन्न पुत्र प्राप्त करूँ उस कारण से ही श्रेष्ठ पुत्रवान् कहा जाऊँ और श्रेष्ठ सम्पत्तियों से युक्त होकर ऐश्वर्यवान् बनूँ। हे गार्हपत्याग्ने ! मेरे पुत्रादि की तुम रक्षा करने वाले होओ। हे अग्ने ! तुम अनुष्ठानों द्वारा बारम्बार स्तुत्य हो। तुम मेरे पशुओं की रक्षा करो। हे दक्षिणाग्ने ! तुम निरन्तर गमनशील हो। मेरे पिता की रक्षा करो ॥३७॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह ऽ आयच्छस्व ॥३८॥
अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥३९॥
अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः ।
अग्ने पुरीष्यभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥४०॥

हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त हो। हम तुम्हारी ही सेवा के लिए यहाँ आए हैं। तुम सब कर्मों के ज्ञाता हो ।३८। तुम हमारे घर के सब वृत्तान्त के जानने वाले हो। तुम हमें अपरिमित धन प्राप्त कराते हो। हे ऐश्वर्य सम्पन्न अग्निदेव ! तुम अन्न, धन और बल के सहित यहाँ आगमन करो और हममें इन सबकी स्थापना करो ॥३९॥

यह दक्षिणाग्नि पशुओं का हित करने वाले और पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। हे दक्षिणाग्ने ! तुम हमें धन और बल को सब ओर से प्रदान करो ॥४०॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रतऽएमसि ।
ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥४१॥
येषामद्ध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४२॥

हे गृह के अधिष्ठात्री देवो ! तुम भयभीत मत होओ। कम्पित भी मत होओ। हम जिस कारण बल को धारण करने वाले और क्षय-रहित गृह स्वामी तुम्हारे समीप आए हैं, उस कारण तुम भी बलयुक्त होओ। मैं श्रेष्ठ बुद्धि, उत्कृष्ट मन से और प्रसन्न होता हुआ घरों में प्रविष्ट हुआ हूँ ॥४१॥

विदेश जाता हुआ यजमान जिन घरों की कुशल-कामना करता है और जिन घरों में उसकी अत्यन्त प्रीति है, हम उन घरों का आह्वान करते हैं। वे घर के अधिष्ठात्री देवता हमारे उपकार को जानते हुए आगमन करें और हमको किसी प्रकार अकृतज्ञ न मानें ॥४२॥

उपहूताऽइह गावऽउपहूताऽअजावय: ।
अथोऽअन्नस्य कीलालऽउपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳशग्मꣳ शंयोः शंयोः ॥ ४३॥
प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः ।
करम्भेण सजोषसः ॥४४॥
यद ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये ।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥

हे गौओ ! हमारे गोष्ठरूप घर में सुखपूर्वक निवास करो। हे बकरियो, भेड़ो ! तुम भी हमारी आज्ञा से सुखपूर्वक यहाँ रहो। जिससे अन्नात्मक विशिष्ट रस हमारे घरों में यथेष्ट हो—ऐसी तुमसे याचना है। हे गृहो ! मैं अपने प्राप्त धन को रक्षा के लिए, मङ्गल के लिए, अरिष्ट शान्ति के लिए तुम्हारे समीप उपस्थित हुआ हूँ सब सुखों की कामना करने वाले मुझ यजमान का कल्याण हो। पारलौकिक सुख की कामना से परलोक भी कल्याणकारी हो। मैं दोनों लोकों का सुख उपभोग करूँ ॥४३॥

हे मरुद्गण ! तुम शत्रु द्वारा प्रेरित हिंसा को व्यर्थ करने वाले और दधियुक्त सत्तू से प्रीति रखने वाले हो। हे पापनाशक, हवि भक्षण करने वाले मरुतो हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥४४॥

गाँव में रहकर हमने जो पाप किया है, वन में रहकर मृगया रूप जो

पाप किया है, सभा में असत्य भाषण रूप तथा इन्द्रियों द्वारा मिथ्याचरण रूप जो पाप हमसे बन गया है। उन सब, पापों के नष्ट करने के लिए यह आहुति देता हूँ। पाप नाशक देवता के निमित्त यह स्वाहुत हो ॥४५॥

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवया ।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥४६॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा ।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥४७॥

हे इन्द्र ! तुम बलिष्ठ हो। तुम मरुद्गण के सहित हम मित्रों को संग्रामों में नष्ट मत करो। तुम हमारी भले प्रकार रक्षा करो। तुम्हारा यज्ञीय भाग पृथक विद्यमान है। तुम वर्षा द्वारा समस्त संसार को सींचने वाले हो। सब यजमान तुम्हारा पूजन करते हैं। हमारी वाणी तुम्हारे मित्र मरुद्गण को नमस्कार करती है ॥४६॥

ऋत्विजो ने सुख रूप स्तुति के साथ अनुष्ठान को पूर्ण किया है। हे ऋत्विजो ! तुमने जो यज्ञ देवताओं के निमित्त किया है, अब उसके सम्पूर्ण होने पर अपने घर को गमन करो ॥४७॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥४८॥

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जं शतक्रतो ॥४९॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥५०॥

हे मन्दगति जलाशय अवभृथ नामक यज्ञ ! तुम अत्यंत गमनशील होते हुए भी इस स्थान पर मंद गति वाले होओ। मैंने अपने ज्ञान में देवताओं के प्रति जो अपराध किया है, उसे इस जलाशय में विसर्जित कर दिया अथवा ऋत्विजों द्वारा यज्ञ देखने को आए मनुष्यों की जो अवज्ञा आदि होने

से पाप लगा है, उस पाप को भी इस जलाशय में त्याग दिया गया है। हे यज्ञ ! वह पाप तुम्हें न लगे और तुम विरुद्ध फल वाली हिंसा से हमें बचाओ ॥ ४८ ॥

हे काष्ठादि द्वारा निर्मित पात्र ! तुम पूर्ण स्थाली के पास से अन्न को ग्रहण करो और पूर्ण होकर इन्द्र की ओर जाओ। फिर फल से सम्पूर्ण होकर हमारे पास लौट आओ। हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! हमारे और तुम्हारे मध्य परस्पर क्रय-विक्रय जैसा व्यवहार सम्पन्न हो (अर्थात् मुझे हविर्दान का फल मिलता रहे) ॥ ४९ ॥

हे यजमान ! मुझ इन्द्र के लिए हवि दो फिर मैं तुझ यजमान को धनादि दूँगा। तुम मुझ इंद्र के निमित्त प्रथम हव्य-संपादन करो, फिर मैं तुम्हें अभीष्ट फल दूँगा। हे इन्द्र ! मूल्य से क्रय योग्य फल मुझे दो। यह मूल्यभूति तुम्हें अर्पित की जारही है। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ५० ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया ऽ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५१
सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ ऽ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५२ ॥

इस पितृयाग-कर्म में पितरों ने हवि रूप अन्न का भक्षण कर लिय है। उससे प्रसन्न होकर हमारी भक्ति को जान कर तृप्ति के कारण शि हिलाते हुए, उन मेधावी और तेजस्वी पितरों ने हमारी प्रशंसा की। उस प्रकार हे इन्द्र ! तुम भी इन पितरों से मिलने के उद्देश्य से, तृप्ति के निमि अपने हर्यश्वों को, रथ में योजित कर यहाँ आओ और पितरों के साथ संतुष्ट होओ ॥ ५१ ॥

हे इन्द्र ! तुम अत्यंत ऐश्वर्यवान् हो। तुम श्रेष्ठ दर्शन के यो अथवा सबको अनुग्रह पूर्वक देखने वाले हो। हम तुम्हारी स्तुति करते है तुम हमारे कृत स्तोत्रों से हर्षयुक्त होकर अवश्य ही आगमन करोगे। हे इन्द्र

तुम हमारे अभीष्टों के पूरक हो, अत अपने रथ में हर्यश्व योजित कर आगमन करो ॥ ५२ ॥

मनो न्वाह्वामहे नाराश ৺ सेन स्तोमेन ।
पितृणा च मन्मभि ॥ ५३ ॥
आ न ऽ एतु मन पुन क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥
पुनर्न पितरो मनो ददातु दैव्यो जन ।
जीव व्रात ৺ सचेमहि ॥ ५५ ॥

हम मनुष्यों संबधी स्तोत्रों से और पितरों के इच्छित स्तोत्रों से मन के अधिष्ठात्री देवता का आह्वान करते हैं। ५३॥

यज्ञानुष्ठान के लिए, कर्म में उत्साह के लिए, दीर्घ जीवन के लिए तथा चिरकाल तक सूर्य दर्शन करते रहने के लिए हमारा मन हमें प्राप्त हो ॥५४॥

हे पितरो ! तुम्हारी अनुज्ञा से दिव्य पुरुष हमारे मन को इस श्रेष्ठ कर्म को दे । इस प्रकार कर्म करते हुए हम तुम्हारी कृपा से जीवित रहें और पुत्र पौत्रादि का सुख पाते रहें ॥ ५५ ॥

वय ৺ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रत । प्रजावन्त सचेमहि ॥५६॥
एष ते रुद्र भाग सह स्वस्राम्बिकया त जुषस्व स्वाहा ।
एष ते रुद्र भाग ऽ आखुस्ते पशु ॥ ५७ ॥

हे सोम ! हम यजमान तुम्हारे व्रतादि कर्म में लगते हुए और तुम्हारे शरीर के अवयव में मन धारण करते हुए तुम्हारी ही कृपा से पुत्र पौत्रादि वाले होकर सदा तुम्हारी कृपा पाते रहें ॥ ५६ ॥

हे रुद्र ! भगिनी अम्बिका के सहित हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश ग्रहणीय है। अत तुम उसका सेवन करो ॥ ५७ ॥

अव रुद्रमदीमह्यव देव त्र्यम्बकम् ।
यथा नो वस्यसस्करद्यथा न श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५८॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥५९॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

पापियों को संतप्त करने वाले, तीन नेत्र वाले अथवा जिनके नेत्र से तीन लोक प्रकाशित होते हैं, शत्रु जेता, प्राणियों में आत्मा के रूप में विद्यमान एवं स्तुत रुद्र को अन्य देवताओं से पृथक् अथवा उत्कृष्ट जान कर उन्हें यज्ञ-भाग देते हैं। वे हमें श्रेष्ठ निवास से युक्त करें और हमें समान मनुष्यों में अच्छे बनावें और हमें सब श्रेष्ठ कर्मों में लगावें। इसलिए हम इनको जपते हैं ॥ ५८ ॥

हे रुद्र ! तुम सब रोगों को औषधि के समान नष्ट करते हो। अतः हमारे गौ, अश्व, पुत्र-पौत्रादि के लिए सर्व रोग नाशक औषधि प्रदान करो। हमारे पशुओं के रोग-नाश के लिए भी अच्छी औषधि को प्रकट करो ॥५९॥

दिव्य गंध से युक्त, मनुष्यों को दोनों लोक का फल देने वाले, धन धान्य से पुष्ट करने वाले, जिन त्रिनेत्र रुद्र की हम पूजा करते हैं, वह रुद्र हमें अकाल मृत्यु आदि से रक्षित करें। जैसे पका हुआ फल टूट कर पृथिवी पर गिर पड़ता है, वैसे ही इन रुद्र की कृपा से हम जन्म मरण के पाश से मुक्त हों और स्वर्ग रूप सुख से विमुख न हों। मुझे दोनों लोकों का फल प्राप्त हो ॥ ६० ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा ऽ अहिँ सन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो ऽ अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते ऽ अस्तु मा मा हिँसीः ।

निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥ ६३ ॥

हे रुद्र ! तुम्हारा यह हविशेषाख्य नामक भोजन है। इसके साथ तुम तुम्हारे शत्रुओं का शमन करने पर प्रत्यंचा उतारे हुए धनुष को वस्त्र में ढक कर मूजवान् नामक पर्वत के परवर्ती भाग पर जाओ ॥ ६१ ॥

हे रुद्र ! जैसी जमदग्नि और कश्यप ऋषियों की बाल, युवा और वृद्धावस्था है और देवताओं की अवस्था के जैसे चरित्र हैं, वह तीनों अवस्थाएं मुझ यजमान को प्राप्त हों ॥ ६२ ॥

हे लोहक्षुर ! (उस्तरे) तुम अपने नाम से ही कल्याण करने वाले हो और वज्र तुम्हारा रक्षक है। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। तुम मुझे हिंसित मत करना। हे यजमान ! इस क्रिया के कारण आयु के निमित्त अन्नादि के भक्षणार्थ, बहु संतति और अपरिमित धन की पुष्टि के लिए तथा श्रेष्ठ बल पाने के निमित्त मैं तुम्हें मूँडता हूं ॥ ६३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

[ऋषिः—प्रजापतिः, आत्रेयः, आङ्गिरसः, वत्सः, गोतमः । देवता—अन्नौषध्यौ, आपः, मेघः, परमात्मा, यज्ञः, अग्न्यब्वृहस्पतयः, ईश्वर, विद्वान् अग्निः, वाग्विद्युत सविता, वरुणः, सूर्यविद्वांसौ, यजमानः सूर्यः । छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्, पङ्क्तिः, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, शक्वरी, गायत्री ।]

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो ऽ अजुषन्त विश्वे । ऋक्सामाभ्या ँ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमा ऽ आपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनँ हिँ सीः ॥१

आपो ऽ अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वᳪहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत ऽ एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाᳪ शग्मां परिदधे भद्रं
वर्णं पुष्यन् ॥ २ ॥

हम इस पृथिवी पर देवताओं के यज्ञ वाले स्थान पर आये हैं। जिस देव यज्ञ-स्थान में विश्वेदेवागण प्रसन्नता पूर्वक बैठे हैं, वहाँ ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्रों से सोमयाग करते हुए हम धन की पुष्टि और अन्न आदि द्वारा सम्पन्न हों। मेरे लिए यह दिव्य जल अवश्य ही कल्याण करने वाले हों। हे कुशतरुण देव! इस क्षुर से यजमान की भले प्रकार रक्षा करो। हे क्षुर! इस यजमान को हिंसित मत करना ॥ १ ॥

माता के समान पालन करने वाले जल हमें पवित्र करें। क्षरित जलों से हम पवित्र हों। यह जल सभी पापों को अवश्य ही दूर करते हैं। मैं स्नान और आचमन द्वारा बाहर भीतर से पवित्र होकर इस जल द्वारा उत्थान करता हूँ। हे क्षौम वस्त्र! तुम दीक्षा वाले और तप वाले दोनों प्रकार के यज्ञों के अवयव रूप हो। तुम सुख से स्पर्श होने योग्य, और कल्याणकारी हो। मैं मङ्गलमयी कांति को पुष्ट करता हुआ तुम्हें धारण करता हूँ ॥ २ ॥

महीनां पयोऽसि वर्च्चोदा ऽ असि वर्च्चो मे देहि ।
वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा ऽ असि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥
चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥
आ वो देवास ऽ ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे ।
आ वो देवास ऽ आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥

हे नवनीत! (मक्खन) तुम गौ के दुग्ध से उत्पन्न हो। तुम तेज सम्पादन करने वाले हो, अतः मुझे ब्रह्मतेज से सम्पन्न करो। हे अंजन! तुम

वृत्रासुर के नेत्र की कनीनिका हो। तुम नेत्रों के उत्कर्ष में साधन रूप हो। अतः मेरे नेत्रों की ज्योति की वृद्धि करो ॥ ३ ॥

हे मन के अधिष्ठात्री देव ! तुम अछिद्र वायु रूप छन्ने के द्वारा और सूर्य की रश्मियों से मुझ यजमान को शुद्ध करो। वाणी के अधिष्ठात्री देवता वायु और सूर्य मुझे पवित्र करें। सवितादेव मुझे पवित्र करें। हे परमात्मदेव ! मैं तुम्हारे द्वारा पवित्र हुआ हूँ। अब मेरी कामनाएँ पूर्ण करो। जिस कामना के लिए मैं पवित्र हुआ हूँ, उसे तुम्हारी कृपा से प्राप्त करूँगा ॥ ४ ॥

हे देवगण ! यह यज्ञ प्रारम्भ हुआ है, तुम्हारे पास जो वरणीय यज्ञ-फल है उसके सहित आओ। हम तुम्हारी भले प्रकार स्तुति करते हैं। हे देवगण यज्ञ के फलों को लाने के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥५॥

स्वाहा यज्ञ मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी ऽ उरो ऽ अन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ।७।

हम अपने मन द्वारा यज्ञ कर्म में प्रवृत्त हुए हैं और विस्तृत अन्तरिक्ष से स्वाहा करते हैं, स्वर्गलोक और पृथिवी लोक से स्वाहा करते हैं। हमारे द्वारा आरम्भ किया गया यह अनुष्ठान सम्पूर्णता को प्राप्त हो ॥ ६ ॥

यज्ञ करने के लिए बलवती हुई इच्छा से प्रेरणाप्रद अग्नि के निमित्त आहुति देता हूँ। मेधा के निमित्त, मन के प्रवर्त्तक अग्नि के लिए यह आहुति देता हूँ। अग्नि तप को पूर्ण करने वाले और व्रतादि को सम्पन्न करने वाले हैं। यह आहुति उन्हीं के निमित्त देता हूँ। यह आहुति वाग्देवी सरस्वती, पूषा और अग्नि के निमित्त दी जाती है। हे जलो ! तुम उज्ज्वल, महान् और विश्व के सब प्राणियों को आनन्द देने वाले हो। हे स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष ! तुम्हारे लिए हम यज्ञ करते हैं। बृहस्पति देवता को भी हवि देते हैं ॥ ७ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय ऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥
ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः ।
शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्ते ऽ अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥९॥
ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऽ ऊर्ज्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्म्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहस ऽ आस्य यज्ञस्योदृचः ।१०।

सांसारिक मनुष्यों को कर्मों के अनुसार फल प्राप्त कराने वाले नेता, दानादि गुणों से सम्पन्न, सर्वप्रेरक सवितादेव की मित्रता के लिए स्तुति करो । वे पुष्टि के लिए अन्न प्रदान करें । सभी प्राणी उनसे अपनी कामना के लिए स्तुति करते हैं । उनके निमित्त आहुति स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

हे कृष्णाजिन द्वय की कृष्ण शुक्ल रेखा ! तुम ऋक्-साम के मंत्रों के अधिष्ठात्री देवों की कर्म-कुशलता के परिणाम रूप हो । मैं तुम्हारा स्पर्श करता हूँ । तुम इस यज्ञ के सम्पूर्ण होने तक मेरी भले प्रकार रक्षा करो । हे कृष्णाजिन ! तुम शरण देने वाले हो, अतः मुझे आश्रय प्रदान करो । मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । तुम मुझे पीड़ित मत करना ॥ ९ ॥

हे मेखले ! तुम आंगिरस वाली और अन्न-रस से परिपूर्ण हो । तुम ऊन के समान मृदु स्पर्शा हो । मुझ यजमान में अन्न-रस स्थापित करो । हे मेखले ! तुम सोम के लिए प्रिय हो, हमारे लिए नीवी रूप होओ । हे उष्णीष ! तुम इस अत्यंन्त विस्तार वाले यज्ञ में मंगल रूप वाली हो । अतः मुझ यजमान का सब प्रकार कल्याण करो । हे कृष्णविषाण ! तुम जिस प्रकार इन्द्र के स्थान हो, वैसे ही मेरे लिए होओ । हे कृष्णविषाण ! तुम हमारे देश को श्रेष्ठ अन्न से सम्पन्न करो, इसलिए मैं भूमि को कुरेदता हूँ । हे वनस्पति से उत्पन्न दण्ड ! तुम उन्नत होओ और इस यज्ञ की समाप्ति तक मुझे पाप से बचाओ ॥ १० ॥

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः । दैवीं धियं मनामहे

सुमृडीकामभिष्टये वर्च्चोधा यज्ञवाहसᳬ सुतीर्था नो ऽ असद्वशे । ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

श्वात्रा पीता भवत यूयमापो ऽ अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ता ऽ अस्मभ्यमयक्ष्मा ऽ अनमीवा ऽ अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऽ ऋतावृधः ॥ १२ ॥

हे ऋत्विजो ! दुग्ध का दोहनादि कर्म करो । यह यज्ञाग्नि तीनों वेदों का रूप है तथा यज्ञ का साधन है । यज्ञ योग्य वनस्पति भी यज्ञ रूप ही है । अनुष्ठान की सिद्धि के लिए, देवताओं के कर्म में प्रवृत्त होने वाली, श्रेष्ठ मंगल के देने वाली, तेजस्विनी, यज्ञ-निर्वाहिका बुद्धि की हम प्रार्थना करते हैं । ऐसी सर्व प्रशंसनीय बुद्धि हमें प्राप्त हो । मन से उत्पन्न, मन से युक्त, श्रेष्ठ संकल्प वाले, नेत्रादि इन्द्रिय रूपी प्राण, यज्ञानुष्ठान के विघ्नों को दूर कर हमारा सब प्रकार पालन करें । यह हवि प्राण रूप देवता के लिए स्वाहुत हो ॥ ११ ॥

हे जलो ! मेरे द्वारा पान किये जाने पर तुम शीघ्र ही जीर्णता को प्राप्त होओ और हम पीने वालों के उदर को सुख देने वाले होओ । यह जल यक्ष्मा रहित, अन्य रोगों के शामक, प्यास के बुझाने वाले, यज्ञ वृद्धि के निमित्त रूप, दिव्य और अमृत के समान हैं । वे हमारे लिए सुस्वादु हों ॥ १२

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् । अᳬहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

अग्ने त्वᳬ सु जागृहि वयᳬ सु मन्दिषीमहि ।
रक्षा णो ऽ अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन् । वैश्वानरो ऽ अदब्धस्तनूपा ऽ अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

हे यज्ञ पुरुष ! यह पृथिवी ही तुम्हारा यज्ञ-स्थान है । इस कारण

इस मिट्टी के ढेले को ग्रहण करता हूँ । मैं मूत्र त्याग करता हूँ । हे मूत्र रूप जल ! तुम अपवित्र रूप हो । क्षीर पान के समय तुम्हें स्वाहा रूप से स्वीकार किया था, परन्तु अब तुम विकार रूप वाले हुए हो, अतः हमारे देह से निकल कर पृथिवी में प्रविष्ट होओो । हे मृत्तिके ! तुम पृथिवी से एकाकार होओो ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! तुम चैतन्य होओो । हम सुख पूर्वक शयन करें । तुम सावधानी पूर्वक सब ओर से हमारी रक्षा करो और फिर हमें कर्म में प्रेरित करो ॥ १४ ॥

मुझ यजमान का मन शयन काल में विलीन होकर फिर मेरे पास आ गया है । मेरी आयु स्वप्न में नष्ट जैसी होकर मुझे फिर प्राप्त होगई है । वे प्राण पुनः प्राप्त होगए हैं । जीवात्मा, दर्शन शक्ति, श्रवण शक्ति आदि मुझे फिर मिल गई हैं । हमारे शरीरों के पालनकर्त्ता और सर्वोपकारक अग्नि हमें निन्दित पाप से बचावें ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा ऽ असि देव ऽ आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ।
रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥१६॥
एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! तुम दिव्य हो । तुम यज्ञानुष्ठानों के रक्षक हो । सब यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती है । तुम देवताओं और मनुष्यों के व्रतों का पालन कराते हो । हे सोम ! तुम हमें बारंबार धन दो । धनदाता सविता देव हमें पहिले ही धन प्रदान कर चुके हैं, अतः तुम भी हमें बारंबार धन दो ॥१६॥

हे अग्ने ! तुम उज्वल वर्ण वाले हो । यह घृत तुम्हारे देह के समान है । इस घृत में पड़ा हुआ सुवर्ण तुम्हारा तेज है । तुम इस घृत रूप देह से एकाकार को प्राप्त होओो और फिर सुवर्ण की कान्ति को ग्रहण करो । हे वाणी ! तुम वेगवती हो । तुम मन के द्वारा धारण की गई यज्ञ कार्य को सिद्ध करने के लिए प्रीति से सम्पन्न हो ॥१७॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥
चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्यु-भयतःशीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीता पूषाऽध्वनस्पा-त्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥
अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोम ँ रुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

तुम्हारी उस सत्य वाणी के अनुवर्ती हम शरीर के यंत्र को प्राप्त हों। यह घृताहुति स्वाहुत हो। हे सुवर्ण! तुम कान्ति वाले, चन्द्रमा के समान, अविनाशी और विश्वेदेवों से संबंधित हो ॥ १८ ॥

हे वाणी रूप सोमक्रयणी! तुम चित्त रूप वाली तथा मन रूप वाली हो। बुद्धि रूप और दक्षिणा रूप भी हो। सोमक्रय साधन में क्षत्रिया और यज्ञ की पात्री हो। तुम अदिति रूपिणी, दो शिर वाली, हमारे यज्ञ में पूर्व और पश्चिममुखी हो। तुम्हें मित्र देवता दक्षिण पाद में बाँधें और यज्ञपति इन्द्र की प्रसन्नता के लिए पूषा देवता तुम्हारी मार्ग में रक्षा करें ॥ १९ ॥

हे गौ! सोम लाने के कर्म में प्रवृत्त तुम्हें तुम्हारे माता पिता आज्ञा दें। भ्राता, सखा, वत्सादि भी आज्ञा दें। हे सोमक्रयणी! तुम इन्द्र के निमित्त सोम देवता की प्राप्ति के लिए जाओ। सोम ग्रहण करने पर तुम्हें रुद्र हमारी ओर भेजें। तुम सोम के सहित हमारे यहाँ कुशल पूर्वक फिर लौट आओ ॥ २० ॥

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ॥ २१ ॥
अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्म्मि देवयजने पृथिव्या ऽ इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ।

अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वय ँ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥

हे सोमक्रयणी ! तुम वसु देवता की शक्ति हो । अदिति रूपिणी हो, आदित्यों के समान, रुद्रों के समान और चन्द्रमा के समान हो। बृहस्पति तुम्हें सुखी करें। रुद्र और वसुगण भी तुम्हारी रक्षा-कामना करें ॥ २१ ॥

अखण्डिता पृथिवी के शिर रूप, देवयाग के योग्य स्थान में हे घृत ! मैं तुम्हें सींचता हूँ। हे यज्ञ स्थान ! तुम गौ के चरण रूप हो, मैं उस चरण को घृतयुक्त करने को आहुति देता हूँ। हे सोमक्रयणी के चरणचिह्न ! तुम हममें रमण करो। हे सोमक्रयणी के चरणचिह्न ! हम तुम्हारे बन्धु के समान हैं। हे यजमान ! इस पद रूप से तुम में धन स्थित हो, यह मेरे ऐश्वर्यरूप हैं। हम ऋत्विग्गण ऐश्वर्य से हीन न हों। ऐश्वर्य, पशु-पद रूप से इस कुल-वधू में स्थित हों ॥२२॥

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा ।
मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥२३॥
एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामाना ँ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥२४॥

अभित्यं देव ँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसव ँ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा ऽ अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत ।
सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥२५॥

हे सोमक्रयणी ! तुम दिव्य, यज्ञ में मुख्य दक्षिणा के योग्य, विशाल

दर्शन वाली और हमें अपनी प्रकाशित बुद्धि से भले प्रकार देखने वाली हो। मेरी आयु को खण्डित मत करो । मैं तुम्हारे दर्शन के फल स्वरूप श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करने वाला होऊँ ॥२३॥

हे अध्वर्यो ! सोम से मेरी इस प्रार्थना को कहो कि हे सोम ! तुम्हारा यह भाग गायत्री सम्बन्धी है। तुम्हारा क्रय गायत्री छन्द के लिए ही है, अन्य कारण से नहीं। हे अध्वर्यो ! सोम से कहो कि तुम्हारा यह भाग त्रिष्टुप् छन्द वाला है। हे अध्वर्यो ! सोम से कहो कि तुम्हारा यह भाग जगती छन्द वाला है। हे अध्वर्यो ! तुम सभी छन्दों के अधिकारी हो, यह बात सोम से कहो। हे सोम ! तुम क्रय द्वारा प्राप्त होकर हमारे हुए हो। यह शुक्र तुम्हारे लिए ग्रहणीय है। यह सब विद्वान् तुम्हारे सार और असार अंश के ज्ञाता हैं। तुम्हारे सारासार भाग का विचार कर सार भाग का संचय किया जाता है ॥२४॥

उन आकाश पृथिवी में विद्यमान, दिव्य, बुद्धिदाता, सत्य प्रेरणा वाले, रत्नों के धाम, सब प्राणियों के प्रिय, क्रान्तदर्शी सवितादेव का भले प्रकार पूजन करता हूँ, जिनकी अपरिमित दीप्ति आकाश में सबसे ऊपर प्रतिष्ठित है। जिनके प्रकाश से नक्षत्र भी प्रकाशमान हैं। वे हिरण्यपाणि और स्वर्ग के रचयिता हैं, मैं उन्हीं का पूजन करता हूँ। हे सोम ! तुम्हारे दर्शन से प्रजा सुख पावेगी, इसीलिए मैं तुम्हें बाँधता हूँ। हे सोम ! श्वास लेती हुई सब प्रजा तुम्हारा अनुसरण करती हुई जीवित रहे और तुम भी श्वासवान् प्रजाओं का अनुसरण करो ॥ २५ ॥

शुक्र त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन ।
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥२६॥

मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्त ँ स्योनः स्योनम् ।

स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणा-स्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥२७॥

हे सोम ! तुम अमृत के समान तेजस्वी और आह्लादक हो। मैं तुम्हें अविनाशी; दीप्तिमान और आह्लादक सुवर्ण से क्रय करता हूँ। हे सोम-विक्रेता ! तुम्हारे सोम के मूल्य में जो गौ तुम्हें दी थी वह गौ लौटकर पुनः यजमान के घर में स्थित हो परन्तु सुवर्ण तेरे पास रहे। हे सोम विक्रेता ! तुम्हें जो सुवर्ण दिया है, वह हमारे पास आवे। तुम्हारी गौ ही मूल्य रूप में हो। हे अजे ! तुम पुण्य के देह हो, अतः स्तुति के योग्य हो। हे सोम ! इस श्रेष्ठ लक्षण वाले अजा नामक पशु द्वारा तुम क्रय किये जा रहे हो। तुम्हारी कृपा से मैं पुत्र-पशु आदि की सहस्रों पुष्टियों वाला बनूँ ॥२६॥

हे सोम ! तुम मित्र होकर हम श्रेष्ठकर्मा मित्रों का पालन करने वाले हो। तुम हमारी ओर आओ। हे सोम ! तुम परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र की सोम-कामना वाली, मङ्गलमयी दक्षिण जंघा में स्थित होओ। शब्दो-पदेशक, प्रकाशमान, पाप के शत्रु, विश्व-पोषक सुन्दर हाथ वाले, सदा प्रसन्न रहने वाले, निर्बल को जिताने वाले सोम-रक्षक सात देवता तुम्हारे इस सोम क्रय द्वारा प्राप्त पदार्थ के रक्षक हों। तुम्हें शत्रु भी पीड़ित न कर सकें ॥२७॥

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ ऽ अनु ॥२८॥
प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥२६॥
अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद ऽ आसीद।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो ऽ अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥३०॥

हे अग्ने ! मेरे पाप को सब ओर से दूर करो। मैं कभी पाप में प्रवृत्त न होऊँ। मुझ यजमान को पुण्य में ही प्रतिष्ठित करो। श्रेष्ठ दीर्घ-

जीवन वाली आयु से और सुन्दर दानादि युक्त आयु से सोमादि देवताओं को देखता और उनका अनुसरण करता हुआ उत्थान करता हूँ ॥२८॥

हम सुखपूर्वक गमन योग्य पापादि बाधाओं से रहित मार्ग पर गमन करते हैं। उस मार्ग पर जाने वाला पुरुष चोर आदि दुष्टों को रोकता हुआ धन को प्राप्त करने में समर्थ होता है।२९॥

हे कृष्णाजिन! तुम इस शकट में पृथिवी की त्वचा के समान हो। हे सोम! तुम इस स्थान में भले प्रकार स्थित होओ। श्रेष्ठ वरुण ने स्वर्ग को और अन्तरिक्ष को स्थिर किया और पृथिवी को विस्तृत किया, वह वरुण सम्पूर्ण जगत में व्याप्त हुए। यह विश्व का निर्माण आदि कर्म सब वरुण के ही हैं ॥३०॥

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ॥३१॥
सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम्।
यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥३२॥

वरुण ने वन में प्राप्त हुए जलादि में आकाश को विस्तीर्ण किया उन्होंने अश्वों में बल को बढ़ाया, पुरुषों में पराक्रम की वृद्धि की, गौओं में दूध की वृद्धि की, हृदयों में संकल्प वाले मन को विस्तृत किया, प्रजाओं में जठराग्नि को स्थित किया, स्वर्ग में सूर्य को और पर्वतों में सोम को स्थापना की ॥३१॥

हे कृष्णाजिन! तुम अपने उदर में सोम को रखते हो। तुम सूर्य के नेत्र में चढ़ो और अग्नि के नेत्र पर चढ़ो। इन दोनों के प्रकाश में अग्नि द्वारा सूर्य प्रकाशित होकर अश्वों के द्वारा रमण करते हैं ॥३२॥

उस्रावेत धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ।
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥३३॥
भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि।
मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन्।

श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सँस्कृतम् ।३४।
नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृत ँ सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्य्याय शँसत ।।३५।।

हे अनड्वाहो ! तुम शकट-धूलि को धारण करने में सामर्थ्यवान् हो। तुम शकटवहन के दुःख से दुःखी मत होना । तुम अपने सींगों द्वारा बालकों को न मारने वाले और ब्राह्मणों को यज्ञ कर्म में प्रेरित करने वाले हो। तुम इस शकट में जुतकर मंगल पूर्वक यजमान के गृह में गमन करो ॥३३॥

हे सोम ! तुम हमारा कल्याण करने वाले हो। तुम भूमि के स्वामी हो और *सब स्थानों में समान गति से जाने वाले हो। सब और फिरने वाले* चोर तुम्हें न जानें और यज्ञ-विरोधी भी तुम्हें न जानें। तुम्हें हिंसक भेड़िया या पापीजन मार्ग में न मिलें। तुम द्रुत गमन वाले होकर यजमान के घरों को जाओ। उन घरों में ही हमारा तुम्हारा उपयुक्त स्थान है ।।३४॥

मित्र और वरुण देवता अपने तेज से प्रकाशमान, सब प्राणियों को दूर से ही देखने वाले, परब्रह्म से उत्पन्न, द्युलोक के पालक हैं । उनको और सूर्य को नमस्कार करता हूँ। हे ऋत्विजो ! तुम भी सूर्य के लिए यज्ञ करो और उन्हीं की स्तुति करो ॥३५॥

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थोवरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्य ऽ ऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ।।३६।।

या ते धामानि हविषा यजन्ति ताते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्य्यान् ।।३७।।

हे काष्ठ दण्ड ! तुम वरुण की प्रीति के लिये इस शकट में व्यवहृत होते हो। हे शम्ये ! तुम दोनों वरुण की रोधिकारिणी हो। मैं तुम्हें वरुण की प्रीति के लिये मुक्त करता हूँ। हे आसन्दी ! तुम वरुण की प्रीति के लिये यज्ञ प्राप्ति के स्थान रूप तथा सोम की रक्षा के लिये आधार रूप हो। हे

कृष्णाजिन ! तुम वरुण के यज्ञ के लिये स्थान रूप हो। मैं वरुण की प्रीति के निमित्त ही तुम्हें लाया हूं और आसन्दी पर बिछाता हूँ। हे सोम ! तुम वरुण की प्रीति के लिये लाये गये हो। तुम इस उपवेशन स्थान रूप चौकी पर सुख पूर्वक विराजमान होओ ॥ ३६ ॥

हे सोम ! यह ऋत्विगगण तुम्हें प्रात सवनादि में प्राप्त कर, तुम्हारे रस से यज्ञ पुरुष को पूजते हैं, तुम्हारे वे सब स्थान तुम्हारे आश्रित हों। तुम घर की वृद्धि करने वाले, यज्ञ को पार लगाने वाले, वीरों के पालक हो। तुम हमारे पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न इस यज्ञ में आगमन करो ॥ ३७ ॥

॥ पंचमोऽध्यायः ॥

ऋषि—गोतमः, मेधातिथिः, वसिष्ठ, औतथ्यो दीर्घतमा मधुच्छन्दाः, आगस्त्यः ॥ देवता—विष्णु, विष्णुर्यज्ञः, यज्ञ, अग्निः, विद्युत्, सोमः, वाक् सविता सूर्यविद्वांसौ, ईश्वरसभाध्यक्षौ, सोमसवितारौ ॥ छन्द—बृहती, गायत्री; त्रिष्टुप्; पंक्तिः, उष्णिक, बृहती; जगती, ॥

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेराति-थ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥ १ ॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ ऽ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा ऽ असि। गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जाग-तेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

हे सोम ! तुम अग्निदेवता के शरीर हो। मैं तुम्हें विष्णु भगवान् की प्रीति के लिए काटता हूँ । हे सोम ! तुम सोम नामक देवता के प्रतिनिधि, त्रिष्टुप् छन्द के अधिष्ठाता को तृप्त करने वाले शरीर हो । मैं तुम्हें भगवान्

विष्णु की प्रीति के लिए टूक-टूक करता हूँ । हे सोम ! तुम यज्ञ में आगत अतिथि को अतिथि सत्कार द्वारा सन्तुष्ट करने वाले हो । मैं तुम्हें विष्णु की प्रीति के निमित्त खण्ड-खण्ड करता हूँ । हे सोम ! सोम को लाने वाले श्येन पक्षी के समान मुझ उद्योगी यजमान की मंगल-कामना के लिए तुम आओ । भगवान विष्णु की प्रीति के निमित्त मैं तुम्हारे टुकड़े करता हूँ । हे सोम ! धन से पुष्ट करने वाले अग्नि संज्ञक सोम के अनुचर अनुक्त छन्द के अधिष्ठाता अग्नि की प्रीति के लिए और भगवान विष्णु की प्रीति के लिए तुम्हें टूक-टूक करता हूँ ॥ १ ॥

हे वृक्ष-खण्ड ! तुम अग्नि देवता को उत्पन्न करने वाले हो । हे कुशद्वय ! तुम अरणि रूप काष्ठ को दबाकर अग्नि के उत्पन्न करने की सामर्थ्य देते हो । हे अधरारणि ! हमने तुम्हें अग्नि को उत्पन्न करने के लिए स्त्री-भाव से कल्पित कर तुम्हारा नाम उर्वशी रख दिया है । हे स्थाली में स्थित आज्य ! तुम दो अरणियों से उत्पन्न अग्नि की आयु रूप हो । हे उत्तर अरणि ! अग्नि को उत्पन्न करने के कारण हम तुम्हें उत्तर रूप में कल्पित करते हैं । तुम पुरूरवा नाम वाली हुई हो । हे अग्ने ! गायत्री छन्द के अधिष्ठाता अग्नि के बल से मैं तुम्हें उत्पन्न करता हूँ । हे अग्ने ! त्रिष्टुप् छन्द के अधिष्ठाता इन्द्र के बल से मैं तुम्हारा मन्थन करता हूँ । हे अग्ने ! जगती छन्द के अधिष्ठाता विश्वेदेवाओं के बल से मैं तुम्हारा मन्थन करता हूँ ॥ २ ॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऽ ऋषीणां पुत्रो ऽ अभिशस्तिपावा ।
स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्य ँ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥४॥

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ऽ ओजिष्ठाय ।
अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपा ऽ अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेष ँ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे कार्य को सिद्ध करने के लिए एकाग्र मन और समान चित्त से, हमारे द्वारा अपराध होने पर भी क्रोध न करने वाले होओ। तुम हमारे यज्ञ को नष्ट मत करो। यज्ञपति यजमान को हिंसित मत करो। तुम हमारे लिए मंगल रूप होओ ॥ ३ ॥

ऋत्विजों के पुत्र रूप या अभिशाप से रक्षक मथित आह्वानीय अग्नि में विद्यमान हुए हवि का भक्षण करते हैं। हे अग्ने ! ऐसे तुम हमारे लिए कल्याण रूप होकर सुन्दर यज्ञ द्वारा निरालस्य होकर इस स्थान में सदा इन्द्रादि देवताओं के लिए यज्ञ करो। तुम्हारे लिए घृताहुति अर्पित है ॥४॥

हे आज्य ! वायु देवता श्रेष्ठ गति वाले, चलो, आकाश के पुत्र, सब कर्मों में समर्थ, आत्मा के पौत्र और सर्वज्ञ हैं। मैं तुम्हें उन्हीं के लिए ग्रहण करता हूँ। हे आज्य ! तुम्हें प्राण की प्रीति के निमित्त, अनिष्ट निवारण की कामना कर, रक्षक मन की प्रीति के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। शरीर को निष्प्राण न करने वाली जठराग्नि के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे आज्य ! तुम अतिरस्कृत, आगे भी अतिरस्कार योग्य हो। सभी तुम्हें पूज्य मानते हैं। तुम देवताओं के लिए सारपदार्थ हो और हमारी निन्दा आदि अयश से रक्षा करने वाले हो। अतः हे आज्य ! तुम वेद मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्ति में सहायक हो। हम तुम्हारा सत्य अन्तःकरण द्वारा स्पर्श करते हैं। तुम हमें श्रेष्ठ यज्ञानुष्ठान में लगाओ ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि। सह नो व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे।
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व।
आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय।
एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऽ ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥७॥

हे अनुष्ठानादि कर्मों के पालन करने वाले अग्निदेव ! तुम हमारे कर्म

की रक्षा करो । तुम्हारा कर्म रक्षक रूप मुझे प्राप्त हो । जो मेरा शरीर है, वह तुम में हो । हे अनुष्ठान कर्म ! हम अग्नि और यजमान से संगति करें, सोम मेरी दीक्षा को और उपसद् रूप तप को मानें ॥ ६ ॥

हे सोम ! तुम्हारे सभी अवयव और गाँठ धन प्राप्त कराने वाले हैं। तुम इन्द्र की प्रीति के लिए प्रवृद्ध हुए हो । तुम्हारे पान के द्वारा इन्द्र सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त हों और तुम इन्द्र के पान के लिए वृद्धि को प्राप्त होओ । मित्र के समान हम ऋत्विजों को धन-दान एवं मेधा वृद्धि को प्राप्त कराओ । हे सोम ! तुम्हारे कारण हमारा कल्याण हो; मैं तुम्हारी कृपा से अभिषव क्रिया को सम्पन्न कर पाऊँ । हे सोम ! तुम हमारे अभीष्ट धनों को प्रेरित करो । हमको महान् ऐश्वर्य प्राप्त हो । हमारे कर्म का भले प्रकार सम्पादन करो । द्यावापृथिवी को हम नमस्कार करते हैं । उनकी कृपा से हमारा कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो ॥ ७ ॥

या ते ऽ अग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो ऽ अपावधीत्त्वेषं वचो ऽ अपावधीत् स्वाहा । या ते ऽ अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो ऽ अपावधीत्त्वेषं वचो ऽ अपावधीत् स्वाहा । या ते ऽ अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो ऽ अपावधीत्त्वेषं वचो ऽ अपावधीत् स्वाहा ॥ ८ ॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने ऽ अङ्गिर ऽ आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । अनु त्वा देववीतये ॥९॥

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तुम्हारा जो शरीर लोहपुर में निवास करने वाला, देवताओं को काम्य फल-वर्षा करने वाला और असुरों को गर्त में डालने वाला है, तुम्हारा वह शरीर दैत्यों के कर्कश वचनों का नाशक है। इस प्रकार के उपकारी तुम अत्यन्त श्रेष्ठ को यह आहुति स्वाहुत हो। हे अग्ने ! तुम्हारा जो शरीर रजतपुर में निवास करने वाला है, वह देवताओं के निमित्त अभीष्ट वृष्टि कारक है। असुरों को गर्त में डाल कर उनके कठोर वचनों को नाश करता और उनके आक्षेपों को भी दूर करता है। उन उपकारी अग्नि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। हे अग्ने ! तुम्हारा स्वर्णपुर वासी शरीर देवताओं के लिए अभीष्ट वर्षा और असुरों को गर्त में डाल कर उनके कठोर शब्दों को नष्ट करने वाला है। उन उपकारी अग्नि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ॥८॥

हे पृथिवी ! तुम संतप्त एवं दरिद्रों को आश्रय देने वाली हो। हे पृथिवी ! तुम मेरे लिए अनन्त रत्नों की खान हो। तुम धन के लिए निर्धन व्यक्ति को प्राप्त होने वाली हो। तुम्हारी कृपा से ही वह कृषि आदि कर्म करता है। हे पृथिवी ! मुझे इच्छित ऐश्वर्य देकर रक्षित करो। हम याचना द्वारा निर्वाह न करें। हे पृथिवी ! मन की व्यथा से मेरी रक्षा करो। हम मनोवेदना से दुखी न हों। हे मृत्तके ! हम तुम्हें खोदते हैं। नभ नामक अग्नि इस बात को जानें। हे कम्पनशील अग्ने ! तुम इस स्थान में आयु रूप होकर आगमन करो। हे अग्ने ! तुम इस दृश्यमान पृथिवी पर निवास करते हो और तुम्हारा जो रूप अतिरस्कृत, अनिद्य और यज्ञ के योग्य है, उसी तुम्हारे रूप में यज्ञ कर्म के निमित्त इस स्थान में प्रतिष्ठित करता हूँ। हे मृत्तके ! मै तुम्हें खोदता हूँ। नभ नामक अग्नि इस बात को जानें। हे कम्पनशील अग्ने ! तुम इस स्थान में आयु नाम से आगमन करो। हे अग्ने ! तुम जिस कारण अन्तरिक्ष में रहते हो, उसी कारण से तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे कम्पनशील अग्ने तुम इस स्थान में आयु नाम से आओ। हे मृत्तके ! मैं तुम्हारा खनन करता हूँ। नभ नामक अग्नि इसे जानें। हे अग्ने ! तुम पृथिवी पर वास करते हो, मैं तुम्हारे यज्ञ-योग्य रूप को स्थापित करता हूँ। हे कम्पनशील अग्ने ! तुम आयु नाम से आओ। हे अग्ने ! तुम जिस कारण

स्वर्गलोक में स्थित हो, उसी कारण तुम यज्ञ-योग्य रूप वाले को इस यज्ञ स्थान में स्थापित करता हूँ। हे मृतके! देवताओं के लिए यज्ञ करने को उत्तर वेदी बनाई जायगी। इसलिए मैं तुम्हें इस यज्ञ स्थान में लाकर स्थापित करता हूँ ॥९॥

हे वेदी! तुम सिंहिनी के समान विकराल होकर शत्रुओं को हराने वाली हो। तुम देवताओं के हित के लिए उत्तरवेदी के रूप में हुई। हे उत्तरवेदी! तुम सिंहिनी के समान शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली और देवताओं की प्रीति के लिए कंकड़ आदि से रहित होकर शोभायमान हुई हो ॥१०॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ॥११॥

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सि ह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ।१२॥

हे उत्तरवेदी! इन्द्र अष्टावसुओं के सहित तुम्हारी पूर्व दिशा में रक्षा करें। वरुण. रुद्रगण के सहित पश्चिम दिशा में तुम्हारी रक्षा करें। हे वेदी! मन के समान वेगवान् यमराज पितरों के सहित दक्षिण दिशा में तुम्हारी रक्षा करें। विश्वेदेवा द्वादश आदित्यों के सहित उत्तर दिशा में तुम्हारी रक्षा करें। असुरों का निवारण करने के लिए मैंने जिस जल से प्रोक्षण किया था, वह जल उग्र होने से तप्त कहाता है। मैं इसे वेदी से बाहर फेंकता हूँ ॥११॥

हे वेदी! तुम सिंहिनी के समान होकर असुरों का नाश करने में प्रवृत्त होती हो। यह हवि तुम्हारे निमित्त है। हे वेदी! तुम आदित्यों की सेवा करने वाली सिंहिनी के रूप वाली हो। यह हवि तुम्हारे लिए है। हे वेदी! तुम सिंहनी के समान पराक्रम वाली और ब्राह्मण क्षत्रिय से

प्रीति करने वाली हो। यह हवि तुम्हारे लिए है। हे वेदी ! तुम सिहिनी के समान पराक्रम वाली हो। श्रेष्ठ प्रजा और धन को पुष्ट करने वाली हो। यह आहुति तुम्हारे लिए है। हे वेदी ! तुम सिहिनी के समान पराक्रम वाली हो। यजमान के हित के लिए देवताओं को यहाँ लाओ। यह आहुति तुम्हारे लिए है। हे घृतयुक्त जुहू ! सब प्राणियों की प्रीति के लिए तुम्हें वेदी पर ग्रहण करता हूँ ॥१२॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृँह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृँहाच्युतक्षिदसि दिवं दृँहाग्ने पुरीषमसि ॥१३॥

युञ्जते मन ऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चित. ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक ऽइन्मही देवस्य सवितु परिष्टुति स्वाहा १४

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाँसुरे स्वाहा ॥१५॥

हे मध्यम परिधि ! तुम स्थिर होकर इस पृथिवी को दृढ़ करो। हे दक्षिण परिधि ! तुम स्थिर होकर यज्ञ में रहती हो, अत अन्तरिक्ष को दृढ़ करो। हे उत्तर परिधि ! तुम अविनाशी यज्ञ में रहती हो, अत आकाश को दृढ़ करो। हे सम्भार ! तुम अग्नि के पूरक हो ॥१३॥

वेद पाठ से महिमा को प्राप्त, अद्भुत, ब्राह्मणों के सम्बन्धी ऋत्विज् आदि, यज्ञ कर्म में लगे हुए, सब के स्वभावों के ज्ञाताओं को उन एक ही परमात्मा ने रचा है। इसलिए सर्व प्रेरक सवितादेव की महिमा को महान् कहा गया है। यह हवि उन्हीं के निमित्त है ॥१४॥

सर्वव्यापक विष्णु ने इस चराचर विश्व को विभक्त कर प्रथम पृथिवी, दूसरा अन्तरिक्ष और तीसरा स्वर्ग में पद निक्षेप किया है। इन विष्णु के पद में विश्व अन्तर्भूत है। हम उन्हीं परमात्मा के लिए हवि देते हैं ॥१५॥

इरावती धेनुमती हि भूत ँ सूयवसिनी मनवे दशस्या ।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखै स्वाहा १६
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषत प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऽ ऊर्ध्वं यज्ञ

नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमावदतं देवा दुर्य्यो ऽ आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥१७॥

हे द्यावापृथिवी ! इस यजमान का कल्याण करने के लिए तुम बहुत अन्न वाली, बहुत गौओं वाली, बहुत पदार्थों वाली, विज्ञान की वृद्धि करने वाली, यज्ञ-साधिका हो। हे विष्णो ! तुमने इन दोनों को विभक्त कर स्तंभित किया है। तुमने अपने तेजों से ही इसे सब ओर से धारण किया है ॥ १६ ॥

हे शकट के धुरे ! तुम देवताओं में प्रमुख देवताओं से यजमान द्वारा यज्ञ करने की बात को उच्च स्वर से कहो। हे हविर्धान शकट ! तुम पूर्वाभिमुख होकर गमन करो। ऊर्ध्व लोक वासी देवताओं को हमारा यह यज्ञ प्राप्त कराओ। सावधान ! टेढ़े होकर पृथिवी पर मत गिरना।

हे शकट रूप देवद्वय ! अपने वाहक पशुओं के गोष्ठ में कहो। जब तक यजमान का जीवन है तब तक उसे पशु, धन आदि से हीन मत कहो। यजमान के पुत्र आदि से दुष्ट वचन मत बोलो और यजमान की आयु वृद्धि और संतान वृद्धि की इच्छा करो ॥ १७ ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाँसि ।
यो ऽ अस्कभायदुत्तरँ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

दिवो वा विष्ण ऽ उत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

भगवान् विष्णु के किन-किन पराक्रमों का वर्णन करूँ ? उनकी महिमा अपरिमित है। उन्होंने पृथिवी, अंतरिक्ष और स्वर्ग तथा सब प्राणियों और

परमाणुओं की रचना की है। वे तीन लोकों में अग्नि, वायु और सूर्य रूप से विद्यमान होकर श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा स्तुत हैं। उन्होंने स्वर्ग लोक को उच्च स्थान में स्तम्भित किया है। हे स्थूण काष्ठ ! मैं तुम्हें भगवान् विष्णु की प्रीति के निमित्त गाड़ता हूँ ॥१८॥

हे विष्णो ! उस स्वर्ग लोक से, पृथिवी से और महान् अन्तरिक्ष से लाए गए धन द्वारा अपने दोनों हाथों को भर लो। तब उन दक्षिण और वाम हाथों द्वारा हमें विभिन्न प्रकार के रत्न धन दो। हे काष्ठ ! मैं तुम्हें उन विष्णु भगवान् की प्रीति के लिए गाड़ता हूँ ॥१९॥

वह पराक्रमी, पवित्र करने वाले, पृथिवी में रमे हुए, अन्तर्यामी, सिंह के समान भयंकर, सर्वव्यापी विष्णु स्तुतियों को प्राप्त करते हैं। उन्हीं के पाद प्रक्षेप वाले तीनों लोकों में सब प्राणी रहते हैं ॥२०॥

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णो-
र्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा ऽ अपिकृन्तामि ।
बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

हे दर्भमालाधार वंश ! तुम विष्णु के ललाट रूप हो। हे रराटी ! तुम दोनों भगवान् विष्णु के ओष्ठ संधि हो। हे बृहत्सूची ! तुम यज्ञ मंडप की सूची हो। मंडप के सीने वाली हो। हे ग्रंथि ! तुम इस यज्ञ मंडप की गाँठ रूप हो, अतः सुदृढ़ होओ। हे हविर्धान ! तुम विष्णु के लिए होने के कारण विष्णु रूप ही हो। अतः भगवान् विष्णु की प्रीति के लिए मैं तुम्हारा स्पर्श करता हूँ ॥२१॥

हे अभ्रि ! सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं से और पूषा देवता के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे अभ्रे ! तुम हमारा हित करने वाली हो। मैं चार अवट प्रस्तुत करने को चार परिलिखन करता हूँ, इसके द्वारा यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों की ग्रीवा को छिन्न

करता हूँ। हे घोर शब्द वाले उपरव ! तुम महान् हो। तुम इन्द्र की प्रीति के लिए उच्च शब्द वाली वाणी को कहो ॥२२॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्टचो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सवन्धुर्यमसवन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥
स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥ २५ ॥

अमात्य आदि ने किसी कारण कुपित होकर अत्यंत संघातक अभिचार के अभिप्राय से जो अस्थिकेशादि मेरे अनिष्ट के निमित्त गाड़े हैं, मैं उस अभिचार कर्म को बाहर निकालता हूँ। जिस किसी समान पुरुष ने जो कोई अभिचार कर्म स्थापित किया हो, उसे मैं बाहर करता हूँ। मातुलादि संबंधी या असंबंधी ने मेरे निमित्त अभिचार रूप अहित स्थापित किया हो, उसे दूर करता हूँ। हमारे अहित-साधन के निमित्त हमारे समानजन्मा बांधवादि ने जो कृत्या कर्म किया है, उसे दूर करता हूँ। शत्रुओं ने हमारे अहित साधन के निमित्त जहाँ-जहाँ कृत्या स्थापित की हो, उस सब को, सब स्थानों से निकाल बाहर करता हूँ ॥२३॥

हे प्रथम अवट ! तुम स्वयं तेजस्वी और शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, तुम्हारी कृपा से हमारे शत्रु नष्ट हों। हे द्वितीय अवट ! तुम सत्रों में विद्यमान हो। हमारे प्रति अहंकार भाव से वर्तने वाले का तुम नाश करते हो।

हम तुम्हारी कृपा से शत्रुओं से रहित हों। हे तृतीय अवट ! तुम इन यजमान और ऋत्विज के समक्ष दीप्तियुक्त हो और राक्षसों का नाश करने वाले हो, हम तुम्हारी कृपा से शत्रुओं से रहित हों। हे चतुर्थ अवट ! तुम सब के स्वामी और सर्वत्र दीप्तियुक्त रहते हो। तुम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हो। हमारे सब शत्रु नाश को प्राप्त हों ॥ २४ ॥

हे गर्तो ! तुम राक्षसों के नाशक, अभिचार कर्मों को निष्फल करने वाले, विष्णु भगवान से संबंधित हो। मैं तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ। तुम राक्षसों का हनन करने वाले, अभिचार कर्मों को निर्वीर्य करने वाले, विष्णु से संबंधित हो। मैं तुम्हें, सींचकर शेष बचे हुए जल को पृथक् करता हूँ। तुम राक्षसों के हनन करने वाले, अभिचार साधनों के नष्ट करने वाले, विष्णु से संबंधित हो। मैं तुम्हें कुशाओं द्वारा ढकता हूँ। तुम राक्षसों के हनन करने वाले, अभिचार साधनों के नष्ट करने वाले, विष्णु से सम्बन्धित हो। दोनों गर्तों पर दो सोमाभिषवण फलक पृथक् पृथक् स्थापित करता हूँ। तुम राक्षसों के हनन करने वाले, अभिचार साधनों को निरर्थक करने वाले, विष्णु से सम्बन्धित हो। मैं तुम दोनों फलकों को पर्यूहण करता हूँ। हे अधिषवण ! तुम विष्णु भगवान से सम्बन्धित यज्ञ कर्म के मुख्य उपकरण हो। हे ग्रावाओ ! तुम भगवान् विष्णु सम्बन्धी यज्ञ की रक्षा करने वाले हो ॥ २५ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहँ रक्षसां ग्रीवाऽ अपिकृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ २६ ॥

उद्दिवँ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृँहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृँह क्षत्रं दृँहायुर्दृँह प्रजां दृँह ॥ २७ ॥

हे अभ्रे ! सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विद्वय के बाहुओं से, पूषा के

हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे अभ्रे ! तुम हमारा हित करने वाली हो। मैं जो चार अवट प्रस्तुत करने को परिलिखन करता हूँ, उनसे यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों की गर्दन मरोड़ता हूँ। हे शस्य ! तुम जौ हो, इस कारण हमारे शत्रु को हम से दूर करो। हमारे शत्रुओं को भगाकर हमें सुख सौभाग्य प्रदान करो। हे गूलर के अग्रभाग ! दिव्य कीर्ति के लिए तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ। हे मध्यभाग ! तुम्हें अन्तरिक्ष की कीर्ति के लिए प्रोक्षित करता हूँ। हे मूलभाग ! तुम्हें पार्थिव प्रीति के लिए प्रोक्षित करता हूँ। जिन लोकों में पितर रहते हैं, वे लोक इस जल से शुद्ध हों। हे कुशाओ ! तुम पितरों के आसन हो। यहाँ पितरगण सुख पूर्वक बैठेंगे ॥ २६ ॥

हे औदुम्बरी ! तुम स्वर्गलोक को स्तंभित करो, अन्तरिक्ष को पूर्ण करो, पृथिवी को दृढ़ करो। हे औदुम्बरी ! तेजस्वी मरुद्गण तुम्हें इस गर्त से प्रदिप्त करें तथा मित्रावरुण तुम्हारी चिरकाल तक रक्षा करें। हे औदुम्बरी ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति द्वारा स्तुति योग्य हो। मैं इस अवट में पर्यूहण मृत्तिका डाल कर तुम्हें दृढ़ करता हूँ। हे औदुम्बरी ! ब्राह्मण और क्षत्रियों को दृढ़ करो। हमारी आयु और प्रजाओं को दृढ़ करो ॥ २७ ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥२८॥

परि त्वा गिर्वणो गिरऽ इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३०॥

हे औदुम्बरी ! तुम इस स्थान में स्थित हो। यह यजमान अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित सुख पावे और इस शरीर से स्थिरता को प्राप्त हो। इस हवनीय घृत द्वारा स्वर्ग और पृथिवी परिपूर्ण हों। हे तृणमय चटाई ! तुम इन्द्र के इस सभा मंडप के ढकने वाली हो, इसलिये यजमान आदि सब के लिए छाया के समान हो ॥ २८ ॥

हे स्तुतियों के योग्य इन्द्र ! यह स्तोत्र रूप सदन तुम्हें प्रवृद्ध करे। तुम इन स्तुतियों को सब ओर से ग्रहण करो। यह स्तुति मनुष्यों, यजमान आदि के लिए दीर्घायु से युक्त करे। हमारी सेवा द्वारा तुम प्रसन्न होओ॥ २९॥

हे रस्सी ! तुम इन्द्र से सम्बन्धित यज्ञ में सींवन रूपा हो, मैं तुम्हें सींवन के रूप में ग्रहण करता हूँ। हे गाँठ ! तुम इन्द्र से सम्बन्धित होकर स्थिरता को प्राप्त होओ। हे सभा ! तुम इन्द्र की प्रीति के लिए मेरे द्वारा बनाई गई हो। हे आग्नीध्र ! तुम विश्वेदेवाओं के आह्वान करने के स्थान हो॥ ३०॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तु-थोऽसि विश्ववेदा.॥ ३१॥
उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानु. परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः॥३२॥

हे आग्नीध्रधिष्ण्य ! सब से पहले तुम पर ही अग्नि का स्थापन होता है। यही अग्नि क्रम से गमनशील होगी। इस कारण ही अग्नि विविध रूप वाले और व्यापक हैं। तुम्हारे उत्तर दक्षिण में ऋत्विजों का जाने आने का मार्ग है, अतः तुम्हें प्रवाहण कहा जाता है। हे होतृधिष्ण्य ! तुम्हारे द्वारा अधिष्ठित अग्नि इस यज्ञ का निर्वाह करने वालों में प्रमुख हैं। इसीलिए तुम्हारा वह्नि नाम प्रख्यात है। सब देवताओं के निमित्त इन अग्नि में हवि दी जाती है। सब हवियों के वहन करने वाले होने से तुम्हें हव्यवाहन कहा गया है। हे मित्रावरुणधिष्ण्य ! तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित अग्नि हमारे स्वाभाविक मित्र हैं। इसलिए यह 'श्वात्र' कहे जाते हैं और होता के दोषों को ढकने वाले होने से यह ज्ञानी वरुण नाम से विख्यात हैं। हे विप्रशंसीधिष्ण्य ! तुम इन विराजमान अग्नि के निमित्त प्रदक्षिणा के विभाजक हो। इसलिए तुम 'तुथ' कहे जाते हो। जिस ऋत्विज् आदि को जो भाग जिस प्रकार प्राप्त

हो, उस सब के तुम ज्ञाता हो, इसलिये तुम्हें 'विश्ववेद' कहते हैं ॥ ३१ ॥

हे पोतृधिष्ण्य ! तुम पर स्थापित यह अग्नि अधिक शोभायमान होने से कमनीय और क्रान्तदर्शी हैं। हे नेष्ट्रधिष्ण्य ! तुम पर प्रतिष्ठित यह अग्नि पाप का नाश करने और सोम की रक्षा करने वाले हैं। यह यजमान का पालन करने वाले हैं। हे अच्छावाक्धिष्ण्य ! यह अग्नि पुरोडाश का भाग पाते हैं। यह पुरोडाश प्रधान हविरन्न है, अतः तुम्हारे दो नाम अन्न वाले और हवि वाले प्रसिद्ध हैं। हे धिष्ण्य ! यह अग्नि सब ऋत्विज आदि के शुद्ध करने वाले हैं। यह सब यज्ञ पात्र धोने और माँजने के कारण माँजने वाले हो। हे आह्वानीय अग्ने ! तुम देवताओं को सन्तुष्ट करने वाली आहुति को ग्रहण करने वाले हो अतः भले प्रकार दीप्त और व्रतादि कर्मों के कारण दुर्बल शरीर वाले यजमान को अभीष्ट देते हो इसलिये कृशानु कहे जाते हो। हे वहिष्पवन ! तुम परिषद्गण की आधार भूमि होने से परिपद्य कहे जाते हो। तुम्हारे आश्रय से सब शुद्ध होते हैं, इसलिये तुम पवमान कहे जाते हो। हे चत्वाल ! शून्यगर्भ होने से तुम नभ कहे जाते हो। तुम्हारी प्रदक्षिणा करते हुए ऋत्विग्गण जाते आते हैं, इससे तुम गमन रूप कहे जाते हो। हे शामित्र ! तुम्हारे द्वारा हव्य सुस्वादु होता है, इसलिये तुम पवित्र कहे जाते हो। तुम्हारे द्वारा पाक सिद्ध होता है, इसीलिये तुम्हें पाचक कहते हैं। हे औदुम्बरि ! तुम उद्गाता के प्रमुख कार्य-स्थान हो, इसलिए ऋतधामा कहे जाते हो। तुम उन्नत होने के कारण स्वर्ग का प्रकाश करने वाले होते हो ॥ ३२ ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा ऽ अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिꣳसिष्ट ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाᳪ समित् त्वᳪ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य ऽ उरु यन्तासि वरूथᳪ स्वाहा। जुषाणो ऽ अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

हे ब्रह्मासन धिष्ण्य ! तुम्हारे अधिष्ठाता ब्रह्मा चारों वेदों के ज्ञाता और ज्ञान के सागर हैं, इसलिये तुम ज्ञान-सागर कहे जाते हो। सब ऋत्विजों के यज्ञ सम्बन्धी कर्म-अकर्म के देखने से तुम्हें विश्वचा कहते हैं। इसके कारण वेदी को भी यही कहा जाता है। इस योग्य जो हों, वे यहाँ रहें। हे अग्ने ! तुम आह्वानीय रूप से यज्ञ-शाला में जाते हो। रक्षक, अजन्मा और जिनके एक चरण में सब विश्व है, उस ब्रह्म के तृप्त करने वाले होने के कारण तुम अज तथा एकपात् कहे जाते हो। हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो। तुम मूल में होने वाले बुध्न्य नाम से भी प्रसिद्ध हो। हे सदोमण्डप ! तुम वाणी हो; इन्द्र का प्रमुख स्थान होने से इन्द्र रूप हो, ऋत्विजों का प्रमुख सभा-कार्य होने से तुम सभा हो। हे शाखे ! तुम यज्ञ के द्वार में स्थापित हो। तुम मुझे किसी प्रकार व्यथित मत करना। हे सूर्य ! हम जिस मार्ग से जावें उन मार्गों के मध्य में भी मेरी वृद्धि करो। इस देवयान-मार्ग में मेरा कल्याण हो ॥ ३३ ॥

हे ऋत्विजो ! मुझे मित्र के नेत्र से देखो। मित्र के समान इस कार्य को करो। हे धिष्ण्य में स्थित अग्ने ! तुम स्तुत होकर अपने उग्र मुख के द्वारा मेरी रक्षा करो या रुद्र-मुख से मेरी रक्षा करो। मुझे सब धन-धान्यादि से सम्पन्न करो। तुम्हारे लिए नमस्कार करता हूँ मुझे किसी प्रकार हिंसित मत करना ॥ ३४ ॥

हे आज्य ! तुम अनेक आहुतियों के योग्य होने से विश्व रूप, द्युतिमान् और देवताओं के प्रकाशक हो। आज्य के भोजन द्वारा ही देवता प्रसन्न होते हैं। उन देवताओं की तृप्ति के लिए ही समिधा के अन्तिम भाग को घृताक्त करता हूँ। हे सोम ! हमारे विरोधियों द्वारा, प्रेरित राक्षसों अथवा अनिष्ट-साधनों को तुम दण्ड देने वाले हो। हमारे लिए महान् बल के रूप

हो। यह आहुति तुम्हारे लिए है। हे सोम ! मेरे द्वारा प्रदत्त आज्य का सेवन करो। हमारी इस आहुति को स्वीकार करो ॥ ३५ ॥

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥
अयं नो ऽ अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर ऽ एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥३७

हे अग्ने ! तुम सभी मार्गों के ज्ञाता और दिव्य गुणों से सम्पन्न हो। तुम हम अनुष्ठाताओं को श्रेष्ठ मार्गों द्वारा प्राप्त करो और हमारी कामनाओं के पूर्ण करने वाले कार्यों में विघ्न उपस्थित करने वाले पाप को दूर करो। हम तुम्हारे निमित्त आज्य युक्त स्तुति को सम्पादित करते हैं ॥३६॥

यह अग्नि हमें धन प्रदान करें। यह अग्नि रणक्षेत्र में आकर शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न करें। शत्रु के आधीन अन्न को हमारे लिए जीतो। अत्यंत प्रसन्न होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। हमारी आहुति को स्वीकार करो ॥ ३७ ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥
देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् । एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ ऽ उपागा ऽ इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि ।
यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

हे विष्णो ! हमारे शत्रुओं को अपना विकराल पराक्रम दिखाओ। अक्षीणता के निमित्त हमारी वृद्धि करो। तुम घृत द्वारा प्रवृद्ध होने वाले हो,

अत इस आहुति रूप घृत का पान करो। यजमान की वृद्धि करो। यह आहुति तुम्हारे निमित्त हो ॥ ३८ ॥

हे सर्व प्रेरक सवितादेव ! यह सोम दिव्य गुणों से युक्त है। इसे हम तुम्हारे लिए समर्पित करते हैं। तुम्हारी प्रेरणा से ही हमने इसे प्राप्त किया है। अत तुम ही इसकी रक्षा करो। हे सोम-रक्षक ! यह किसी उपद्रव का लक्ष्य न बन पावे। हे सोम ! तुम दिव्य गुण वाले हो। देवगण को इस समय यहाँ लाओ। मैं यजमान धन और पुष्टि के सहित अपने मनुष्यो के निमित्त यहाँ आया हूँ। देवताओं को सोम रूप अन्न देकर मैं वरुण देवता के बंधन से छूट गया हूँ ॥ ३९ ॥

हे अग्ने ! तुम सभी कर्मों के पालक हो और अब भी तुम मेरे अनुष्ठान कर्म का पालन कर रहे हो। इस कर्म में स्तुति करते समय तुमसे सबंधित जो तेज मुझ में स्थित हुआ था, वही तेज मेरे इस शरीर में स्थित हो। हे व्रतों के पालन करने वाले अग्निदेव ! हमारे यज्ञ का सम्पादन करो। इन अग्नि ने मेरे दीक्षा नियम को और तप को स्वीकार किया है ॥ ४० ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृत घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥
अत्यन्याँ ऽ अगा नान्याँ ऽ उपागामामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविद परोऽवरेभ्य ।
तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्ता विष्णवे त्वा ।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैन ँ हिँसी. ॥ ४२ ॥
द्यां मा लेखीरन्तरिक्ष मा हिँसी. पृथिव्या संभव ।
अयँ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय ।
अतस्त्व देव वनस्पत शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वय ँ रुहेम ॥ ४३ ॥

हे विष्णो ! हमारे शत्रुओं और विघ्नों के प्रति अपना पराक्रम करो। हमको प्रवृद्ध करो। तुम घृत से वृद्धि को प्राप्त होने वाले हो, अतः इस घृत का पान करो। यजमान की विस्तृत रूप से वृद्धि करो। हमारी यह घृताहुति तुम्हारे निमित्त है ॥ ४१ ॥

हे यूपवृक्ष ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य अयूप्य वृक्षों को लाँघ कर मैं यहाँ आया हूँ। जो वृक्ष यूप के योग्य नहीं थे, मैं उनके पास नहीं गया। मैं तुम्हें दूर स्थित वृक्षों से समीप जान कर तुम्हारे पास आया हूँ। हे वन-रक्षक देव वृक्ष ! हम देव-यज्ञ के कार्य के निमित्त तुम्हें ग्रहण करते हैं, देवता भी तुम्हें इसी कार्य के लिए स्वीकार करें। हे यूपवृक्ष ! तुम्हें भगवान् विष्णु के यज्ञ के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे औषध ! कुल्हाड़े से भयभीत न हो और मेरी भी उससे रक्षा करु। हे कुठार ! इस यूप के अन्य भाग पर आघात मत करो ॥४२॥

हे यूप वृक्ष ! मेरे स्वर्ग को हिंसित मत करो। अंतरिक्ष को हिंसित न करो, पृथिवी के साथ सुसंगत होओ। हे कटे हुए वृक्ष ! अत्यंत तीक्ष्ण यह कुठार महान् दर्शन और श्रेष्ठ यज्ञ के निमित्त तुम्हें यूप के रूप में प्राप्त करता है। हे वनस्पते ! तुम इस स्थान से शत अंकुर युक्त होकर उत्पन्न होओ। हम भी इस कर्म के बल से पुत्र रूप सहस्रों शाखा वाले हों।.४३॥

—०—

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

ऋषिः—आगस्त्यः, शाकल्य, दीर्घतमा, मेधातिथिः, मधुच्छन्दाः, गौतमः। देवता—सविता, विष्णु, विद्वांसः, त्वष्टा, बृहस्पतिः, सविता, अश्विनौ, पूषा, आपः, वात,, द्यावापृथिव्यौ, अग्निः, विश्वेदेवाः, सेनापतिः, वरुणः, अप्, यज्ञ, सूर्याः, सोमः, प्रजा, प्रजासभ्यराजानः, सभापतीराजा, यज्ञ, इन्द्र। छन्दः—पंक्तिः; उष्णिक्; गायत्री; बृहती; अनुष्टुप; जगती त्रिष्टुप्।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।

आददे नार्यसीदमह७ रक्षसा ग्रीवा ऽ अपिकृन्तामि ।
यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै
त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥१॥
अग्रेणीरसि स्वावेश ऽ उन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः ।
द्यामग्रेणास्पृक्ष ऽ आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृ७ही ॥२॥

हे अभ्रे ! सवितादेव की प्रेरणा, अश्विद्वय के बाहु और पूषा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे अभ्रे ! तुम हमारा हित करने वाली हो । मैं जो अवट प्रस्तुत करने को परिलेख्य करता हूँ, उनसे विघ्न करने वाले राक्षसों को नष्ट करता हूँ । हे यव ! तुम हमारे शत्रु को भगाओ । हमें सुख सौभाग्य दो । हे यूप ! दिव्य कीर्ति के लिए तुम्हारे अग्रभाग को, अन्तरिक्षस्थ कीर्ति के लिए मध्य भाग को और पार्थिव कीर्ति के लिए तुम्हारे मूल भाग का प्रोक्षण करता हूँ । जिन लोकों में पितरगण निवास करते हैं, वे लोक इस जल द्वारा शुद्ध हों । हे कुशारूप आसन ! तुम पर पितरगण सुखपूर्वक विराजमान होंगे ॥१॥

हे यूप ! ऊपर उठाने वाले ऋत्विजों को सुखपूर्वक प्रवेश करने के लिए बढ़ो । तुम इस बात को जान लो कि तुम्हारे ऊपर दूसरा अवट और रखा जायगा । हे यूप ! सर्वप्रेरक सवितादेव तुम्हें मधुर घृत द्वारा सिंचित करें । हे चषाल ! श्रेष्ठ फल वाली व्रीहि आदि औषधियों को पाने के लिए तुझे इस यूप खण्ड पर स्थित करता हूँ । हे यूप ! तुमने अपने अग्र भाग से स्वर्गलोक का स्पर्श किया है, मध्य भाग से अन्तरिक्ष को पूर्ण किया और मूल भाग से पृथिवी को सुदृढ़ किया है ॥२॥

याते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा ऽ अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि ।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ।
ब्रह्म दृ७ह क्षत्रं दृ७हायुर्दृ७ह प्रजां दृ७ह ॥३॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥४॥
तद्विष्णोः परमं पद ँ सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥

हे यूप ! हम तुम्हें जिस स्थान पर पहुँचाना चाहें वहाँ सूर्य की प्रकाशमान रश्मियाँ विस्तृत होती हैं। अथवा श्रेष्ठ गमन वाले ऋषियों द्वारा स्तुत और सामगान द्वारा स्तुतियों को प्राप्त करने वाले विष्णु का जो परमधाम है, वह इस स्थान में शोभित होता है, वह स्थान इस यज्ञ का ही स्थान है। हे यूप ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों द्वारा स्तुति के योग्य हो। मैं तुम्हें इस अवट में पर्यूहण करता हूँ। हे यूप ! ब्राह्मणों को दृढ़ करो, और क्षत्रियों को भी दृढ़ करते हुए यजमान की आयु और उसकी सन्तान को दृढ़ करो ॥३॥

हे ऋत्विजो ! भगवान् विष्णु के कर्मों को देखो। उन्होंने अपने कर्मों द्वारा ही तुम्हारे लौकिक यज्ञादि कर्मों की कल्पना की है। वह विष्णु इन्द्र के वृत्र-हनन आदि कर्मों में मित्र एवं सहयोगी होते हैं ॥४॥

मेधावी जन भगवान् विष्णु के मोक्ष रूप परम पद को सदा देखते हैं, उन विष्णु ने ही सूर्य मंडल में नेत्र रूप सूर्य को बढ़ाया है ॥५॥

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमान ँ रायो मनुष्याणाम् । दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक ऽआरण्यस्ते पशुः ।६।
उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥७॥

हे यूप ! तुम रस्सी से चारों ओर लिपटे हुए हो। तुम स्वर्ग के पुत्र हो। हे यूप ! पृथिवी तुम्हारा आश्रय स्थान है। जङ्गल के पशु तुम्हारे हैं ॥६॥

हे तृण ! तुम पशु के पास में रहने वाले हो। तुम्हें देखकर पशु निकट आते हैं। यह दिव्यगुण वाले पशु देवताओं के पास जाँय। वे

देवता यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वालों मे मुख्य हैं। हे त्वष्टादेव। तुम अपने धन में रमो। हे हवि! तू सुस्वादु हो ॥७॥

रेवती रमध्व बृहस्पते धारया वसूनि ।

ऋतस्य त्वा देवहवि. पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥८॥

देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नीषोमाभ्या जुष्टं नियुनज्मि ।
अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु ।
पितानु भ्रातासगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य. ।
अग्नीषोमाभ्या त्वा जुष्ट प्रोक्षामि ॥९॥

अपा पेरुरस्यापो देवी स्वादन्तु स्वात्त चित्सद्देवहवि ।
सं ते प्राणो वातेन गच्छताᳪसमङ्गानि यजत्रै स यज्ञपतिराशिषा१०

हे पशुओ! तुम क्षीरादि धन वाले हो। तुम यजमान के यहाँ सदा निवास करो और हे बृहस्पते! हममे अनेक प्रकार के पशु आदि धनों को स्थिर करो। हे दिव्य हवि! मैं तुम्हें फल वाले यज्ञ के बन्धन में बाँधता हूँ। और यज्ञ के द्वारा ही कर्म के बन्धन से मुक्त करता हूँ। मनुष्य तुझे शान्त कर सकता है ॥८॥

सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथो से अग्नि और सोम के प्रीति पात्र तुम्हें इस कर्म मे योजित करता हूँ। मैं तुम्हें अग्निं सोम के निमित्त जल से स्वच्छ करता हूँ। इस कर्म में तुम्हारे माता, पिता, भ्राता, मित्र आदि सब सहमत हों ॥९॥

हे पशु! तुम जल पीने वाले हो, अत. इस जल का पान करो। यह दिव्य जल तुम्हारे लिए सुस्वादु हों, हे पशु! तेरे प्राणवायु रूप हों ।१०।

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳪ रेवति यजमाने प्रिय धाऽआविश ।
उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव ।
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धा स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्य स्वाहा ॥११॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त ऽआतानानर्वा प्रेहि ।
घृतस्य कुल्या ऽ उप ऽ ऋतस्य पथ्या ऽ अनु ॥ १२ ॥

हे स्वरुशास ! तुम इस घृताक्त हव्य की रक्षा करो। हे धन युक्त आशीर्वचनो ! इस यजमान की कामनाओं को प्रमुख करो और इस ज्ञान दान के लिए इसके शरीर में प्रविष्ट होओ। वायु देवता से समान प्रीति वाले होकर इस हवि सम्पन्न यज्ञ में आहुति हो। हे तृण। तुम वृष्टि जल से उत्पन्न हुए हो। इस विस्तृत यज्ञ में यजमान को धारण करो। यह आहुति देवताओं के निमित्त हो। वे इसे भले प्रकार स्वीकार करें ॥ ११ ॥

हे नियोजनी। तुम इस चत्वाल में डाली जाने पर सर्प के समान मत हो जाना। हे यज्ञ ! तुमको नमस्कार है। तुम शत्रुओं से हीन होकर सम्पूर्ण होने तक यहाँ रहो। हे यजमान पत्नि ! यह विस्तीर्ण यज्ञशाला शत्रुओं से रहित है, इसलिए देवयान मार्ग की धारा को देख कर आओ ॥ १२ ॥

देवीराप: शुद्धा वोड्ढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

मनस्तऽआप्यायतां वाक् तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽ आप्यायताꣳ श्रोत्रं तऽआप्यायताम् ।
यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्य: ।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसी: ॥ १५ ॥

हे दिव्य जलो ! तुम स्वभाव से ही पवित्र हो। पात्र स्थित इस हव्य को देवताओं के लिए प्राप्त करो। हम भी तुम्हारे अनुग्रह से देवयज्ञ में लगते हैं। उन देवताओं को हम तृप्तिकारक हवि दें ॥ १३ ॥

हे प्राणी ! मैं तेरी इन्द्रियों और प्राण आदि को पवित्र करती हूँ ॥१४॥

तेरा मन शान्त हो, तेरी वाणी और प्राण भी शान्ति को प्राप्त हो। तुम्हारा सब कर्म शांत हो, तुम सब प्रकार दोष रहित होओ। इस यजमान का सदा कल्याण हो। हे औषधे! इसकी रक्षा करो। इसे हिंसित मत करना ॥ १५ ॥

रक्षसा भागोऽसि निरस्तꣳ रक्ष ऽ इदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽववाधऽ इदमहꣳ रक्षोऽधम तमो नयामि।
घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथा वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऽ ऊर्ध्वनभस मारुत गच्छतम् ॥ १६ ॥

इदमाप प्रवहतावद्य च मल च यत।
यच्चाभिदुद्रोहानृत यच्च शपे ऽ अभीरुणम्।
आपो मा तस्मादेनस पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

हे तृण! तुम राक्षसों के भाग हो। विघ्न करने वाले राक्षस नष्ट होगए अध्वर्यु द्वारा त्यागा हुआ तृण रूप मैं इस राक्षस पर अपने चरण से आघात करता हूँ। द्यावापृथिवी रूप यह दोनों पात्र घृत द्वारा परस्पर ढके हुए हैं। हे वायो! सब के सार रूप घृत को जानकर पियो। हे अग्ने! इस घृत का पान करो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे वपाश्रपण्यौ! हम तुम्हे अग्नि में डालते हैं। तुम स्वाहाकार होकर ऊर्ध्व आकाश में जाकर वायु से सुसंगत होओ ॥ १६ ॥

हे जलो! इस पाप को दूर करो अभिशापादि के रूप प्राप्त अस्वच्छता को भी दूर करो। हमारे मिथ्याचरण आदि के द्वारा जो दोष लगा हो, उससे भी हमें भले प्रकार छुड़ाओ ॥ १७ ॥

स ते मनो मनसा स प्राण प्राणेन गच्छताम्।
रडेस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या ऽ ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुत द्वेषः ॥ १८ ॥

घृत घृतपावान पिबत वसा वसापावान पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा।

दिशः प्रदिश ऽ आदिशो विदिश ऽ उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥
ऐन्द्रः प्राणो ऽ अंगे ऽ अङ्गे निदीध्यदैन्द्र ऽ उदानो ऽ अङ्गे ऽ अङ्गे निधीतः ।
देव त्वष्टर्भूरि ते सँ्समेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु । २० ।

प्राण की तीव्र गति और सूर्य के प्रभाव से तुझे तपस्या फल प्राप्त हो । तेरे मन को सब प्रकार के द्वेषभाव से पृथक कर दिया जाय ॥ १८ ॥

हे घृत के पीने वाले देवताओ ! इस घृत का पान करो । हे हवि ! तुम अन्तरिक्ष से सम्बन्धित हो । पूर्वादि दिशाओं के निवासी देवताओं के निमित्त यह आहुति दी गई है । अग्निकोण आदि प्रदिशाओं में स्थित देवगण के निमित्त यह आहुति दी गई है । अधोभाग स्थित देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती है । विदिशाओं में स्थित देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती है । उच्च दिशाओं में स्थित देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती है । सम्पूर्ण दिशाओं में वर्तमान, दिखाई पड़ने वाले या न दिखाई देने वाले देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती है । वे इसे स्वीकार करें ॥ १९ ॥

हे प्राणी ! तेरे प्राण और उदान प्रत्येक अङ्ग में स्थित रहें । तेरा विषम रूप एक-सा होकर शक्ति सम्पन्न हो जाय । दिव्य व्यक्तियों की संगति से तू उच्च स्थिति को प्राप्त हो । मित्र, सम्बन्धी आदि भी तुम्हारे सहायक हों ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवँ् सवितारं गच्छ स्वाहा । मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाँ्सि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥ २१ ॥

मापो मौषधीर्हि९ँसीर्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च ।
यदाहुरघ्न्या ऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधय सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्
द्वेष्टि य च वयं द्विष्मः ।। २२ ।।

हे हवि ! तुम समुद्र को तृप्त करने के लिए गमन करो। यह हवि स्वाहुत हो। यह हवि अन्तरिक्ष के देवताओं की तृप्ति के लिए गमन करे। यह हवि सविता देव के प्रति गमन करे। यह हवि स्वाहुत हो। यह हवि मित्रावरुण को स्वाहुत हो। यह हवि अहोरात्र देवता के लिए स्वाहुत हो। यह हवि छन्दों के अधिष्ठात्री देवता के लिए स्वाहुत हो। यह हवि स्वर्ग और पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। यह हवि यज्ञ देवता के लिए स्वाहुत हो। यह आहुति सोम देवता के लिए स्वाहुत हो। यह आहुति आकाश के लिए स्वाहुत हो। यह आहुति वैश्वानर अग्नि के निमित्त हो। हे समुद्रादि देवताओं ! मेरे मन को चचल मत होने दो। हे स्वरकाष्ठ ! तेरा धुआँ स्वर्ग-लोक में पहुँचे। तुम्हारी ज्वालाएँ वर्षा के निमित्त अन्तरिक्ष में जाँय। तुम पृथिवी को भस्म से परिपूर्ण करो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २१ ॥

हे शलाके ! इस स्थान के जलों को तुम हिंसित न करो। तुम इस औषधि को भी हिंसित न करो। हे वरुण ! जब तुम्हारे पाश वाले स्थान में हमको भय प्राप्त हो, तब तुम अपने उस स्थान से हमको मुक्त करो। हे वरुण ! गौ जैसे अवध्य है, वैसे ही अन्य पशु भी हैं। तुम हमें हिंसा रूप पाप से छुड़ाओ। जल और औषधि हमारे लिए परम बन्धु के समान हों। जो हमसे द्वेष करता है, या जिससे हम द्वेष करते हैं उसके लिए वह जल और औषधि शत्रु के समान हों ॥ २२ ॥

हविष्मतीरिमा ऽ आपो हविष्माँ ऽ आविवासति ।
हविष्मान्देवो ऽ अध्वरो हविष्माँ ऽ अस्तु सूर्यः ।। २३ ।।
अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुण-योर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्या ऽ उप सूर्ये

याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २४ ॥
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा ।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

हवि वाले यजमान, हवियुक्त इन वसतीवरी जलों की परिचर्या करते हैं । यह प्रकाशमान यज्ञ हवि से सम्पन्न हो । सूर्य भी यजमान को फल देने के लिए हविर्वान हों ॥ २३ ॥

हे वसतीवरी जलो ! मैं तुम्हें सुदृढ़ घर वाले अग्नि के पास स्थापित करता हूँ । हे वसतीवरी जलो ! तुम इन्द्र और अग्नि देवों के भाग रूप हो । हे वसतीवरी जलो ! तुम मित्रावरुण के भाग हो । हे वसतीवरी जलो ! तुम सब देवताओं के भाग हो । जो सभी जल बहुत समय तक रहने से सूर्य की रश्मियों द्वारा रक्षित सूर्य के पास स्थित हैं, वे जल हमारे यज्ञ में तृप्ति के कारण हों ॥ २४ ॥

हे सोम ! मैं तुम्हें कर्मवान् पुरुषों के लिए बुलाता हूँ । मैं तुम्हें मनस्वी पितरों के निमित्त लाता हूँ । तुम इस यज्ञ को ऊँचा करके यज्ञ के सह होताओं को स्वर्ग लोक में, देवताओं बीच ले जाकर देवत्व प्राप्त कराओ ॥ २५ ॥

सोम राजन्विश्वास्त्वं प्रजा ऽ उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजा ऽ उपावरोहन्तु ।
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञ ँ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥ २६ ॥
देवीरापो ऽ अपांनपाद्यो व ऽ ऊर्म्मिर्हविष्य ऽ इन्द्रियावान् मदिन्तमः ।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

हे सोम ! तुम इन सब ऋत्विजों को अपना पुत्र मान कर कृपा करो । हे सोम ! सब प्राणी प्रणाम करते हुए तुम्हारे समक्ष उपस्थित हों । हे अग्ने ! मेरी इस आहुति को पाकर आह्वान पर ध्यान दो । जल देवता, वाणी देवी

भी हमारा आह्वान सुनें। हे मावासमूह ! तुम अभिषवण कर्म के लिए आए हो। विद्वज्जनों के समान एकाग्र मन से मेरी स्तुति सुनो। हे सवितादेव तुम भी मेरे आह्वान पर ध्यान दो ॥ २६ ॥

हे जल देवियो ! तुम्हारी कल्लोल करती हुई लहर हव्य योग्य, बलवती और तृप्त करने वाली है । तुम अपनी उस लहर को सोमपायी देवताओं को दो। क्योंकि तुम देवताओं के ही भाग हो ॥ २७ ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या ऽ उन्नयामि ।
समापो ऽ अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् ।
उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्प्पयत मा ॥ ३० ॥

हे घृत ! तुम पाप नाशक हो। हे जलो ! मैं तुम्हें वसतीवरी जलों की अभ्युन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे चमस स्थित जलो ! इन वसतीवरी जलों से भले प्रकार मिलो। सभी ओषधियाँ परस्पर मिल जाँय ॥ २८ ॥

हे अग्ने ! तुम जिस पुरुष की घोर युद्ध में भी रक्षा करते हो अथवा जिस के पास तुम हवि ग्रहण करने के लिए गमन करते हो, वह पुरुष तुम्हारी कृपा से श्रेष्ठ अन्न धन पाता है ॥ २९ ॥

हे उपांशु सवन ! सवितादेव की प्रेरणा, अश्विद्वय के बाहुओं और पूषा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ। तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो, हमारे इस यज्ञ को विस्तृत करो। तुम्हारे द्वारा इन्द्र के निमित्त प्रीति बढ़ाने वाला, बल-सम्पन्न, सुस्वादु एवं मधुर रस दुग्ध में मिश्रित करता हूँ। हे जलो ! हमने तुम्हें भले प्रकार ग्रहण किया है। तुम देवताओं में प्रख्यात हो। तुम इस यज्ञ में आकर मुझे आश्वस्त करो ॥ ३० ॥

मनो मे तर्प्पयत वाचं मे तर्प्पयत प्राणं मे तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रं मे तर्प्पयतात्मानं मे तर्प्पयत प्रजां मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान्मे तर्प्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत ऽ इन्द्राय त्वादित्यवत ऽ इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने ।

श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

हे निग्राभ्य ! मेरे मन को संतुष्ट करो । मेरी वाणी को तृप्त करो । मेरे नेत्र-कान, प्राण, पुत्र-पौत्रादि सब को भले प्रकार संतुष्ट करो । मेरे स्वजन कभी किसी विपत्ति में न पड़ें ॥ ३१ ॥

हे सोम ! वसु, रुद्र और इन्द्र देवताओं के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! तृतीय सवन के देवता आदित्य और इन्द्र के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! शत्रु-हन्ता इन्द्र के निमित्त मैं तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! सोम के लाने वाले श्येन रूप गायत्री के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! धन की पुष्टि प्रदान करने वाली अग्नि के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ ॥ ३२ ॥

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्या यदुरावन्तरिक्षे ।

तेनास्मै यजमानायोरु राये कृद्ध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता ऽ अमृतस्य पत्नीः ।

ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

मा भेर्मा संविक्था ऽ ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।

पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

हे सोम ! तुम्हारी जो दिव्य ज्योति है, जो ज्योति अंतरिक्ष में है तथा जो ज्योति पृथिवी में है, अपनी उस ज्योति से यजमान के अभीष्ट धनों की वृद्धि करो ॥ ३३ ॥

हे जलो ! तुम कल्याण करने वाले हो। तुम वृत्र के हनन करने वाले और अभीष्टपूरक सोम के पालक हो। हे जलो ! इस यज्ञ को तुम देवताओं को प्राप्त कराओ तुम इंगित किये जाने पर पेय होओ ॥ ३४ ॥

हे सोमो ! आघात से भयभीत,न होना, काँपना मत, तुम रस धारण करो। हे द्यावापृथिवी ! तुम सुदृढ़ हो, इस सोम सवन को भी सुदृढ़ करो। इस सोम-रस की वृद्धि करो। अभिषवण प्रस्तर के आघात से सोम नष्ट नहीं होता वह संस्कृत होता है और उससे यजमान के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश ऽ आधावन्तु ।
अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ ३६ ॥
त्वमङ्ग प्रश॑सिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वच ॥ ३७ ॥

हे सोम ! तुम अपने चारों दिशाओं में बिखरे हुए अंशों को एकत्र कर यहाँ आओ। हे माता ! अपने भागों द्वारा सोम को परिपूर्ण करो। हम तुमसे सुसंगत होकर सब न्यूनता को पूर्ण करें। इस यज्ञ को सभी प्राणी जान लें ॥ ३६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सर्वत्र प्राप्त, सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न, महान् बली, सुख देने वाले और यजमान को प्रशंसित करने वाले हो। तुम से अन्य कोई व्यक्ति सुखजनक] नहीं है। हे स्वामिन् ! तुम स्वयं ही कल्याण करने वाले हो; मैं यह बात कहता हूँ ॥ ३७ ॥

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

(ऋषिः—गोतमः, वसिष्ठः, मधुच्छन्दाः, गृत्समदः, त्रिसदस्युः, मेधातिथिः, वत्सारःकाश्यपः;भरद्वाजः, देवश्रवाः,विश्वामित्रः, त्रिशोकवत्सः,प्रस्कण्वः, कुत्सः, आङ्गिरसः ॥ देवता—प्राणः, सोमः, विद्वांसः, मघवा, ईश्वरः, योगी, वायुः, इन्द्रवायू ,मित्रावरुणौ, अश्विनौ, विश्वेदेवाः, प्रजापतिः, यज्ञः, वैश्वानरः यज्ञपतिः, इन्द्राग्नी, प्रजासेनापतिः, सूर्य्यः, अन्तर्यामी जगदीश्वरः, वरुणः, आत्मा ॥ छन्दः—अनुष्टुप्, पंक्तिः, जगती, उष्णिक, त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री)

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो ऽ अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः ।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

मधुमतीर्न ऽ इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

हे सोम ! तुम सभी अभिलाषाओं का फल बरसाने वाले हो। तुम अंशुद्वय और हमारे हाथों द्वारा शोषित होते हुए वाचस्पति देव के लिए इस पात्र में जाओ। हे सोम ! तुम देवता स्वरूप हो, अतः देवताओं की प्रीति के लिए इस पात्र में जाकर देव-भाग होओ ॥ १ ॥

हे सोम ! हमारे अन्न को मधुर रस वाला और सुस्वादु बनाओ। हे सोम ! तुम्हारा जो नाम हिंसा-रहित, चैतन्यशील है, तुम्हारे उस नाम के निमित्त हम यह अंशुद्वय पुनः देते हैं। देवता की प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। मैं इस महान् अंतरिक्ष में गमन करता हूँ ॥ २ ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाꣳशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्य्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् ।
उरुष्य राय ऽ एषो यजस्व ॥ ४ ॥
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

हे उपांशुग्रह ! तुम सब इन्द्रियों से, सब पार्थिव और दिव्य प्राणियों से स्वय उत्पन्न हुए हो। मन प्रजापति तुम्हे मेरी ओर प्रेरित करें। तुम्हारा आविर्भाव प्रशंसित है। मैं तुम्हें सूर्य की प्रीति के लिए यह आहुति देता हूँ। इसे भले प्रकार स्वीकार करो। हे लेप के पात्र ! मरीचि पालक देवताओं को संतुष्ट करने के लिए मैं तुम्हें माँजता हूँ। हे अंशुदेव ! तुम तेजस्वी हो। मै अपने शत्रु के निमित्त तुम्हारी स्तुति करता हूँ, वह अमुक नाम वाला शत्रु शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो। हे उपांशुग्रह ! प्राण देवता की उपासना के लिए मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ। हे उपांशु सवन ! व्यान देवता की प्रीति के लिए मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ ३ ॥

हे सोम रस ! तुम कलश में रखे जाते हो। हे इन्द्र ! तुम इस कलश स्थित सोमरस को अन्तर्ग्रह पात्र में रक्षित करो। शत्रु आदि से इसकी रक्षा करो। पशुओं की रक्षा करो और अन्नादि प्रदान करो। हमारे सन्तान आदि सब यज्ञ करने वाले हों ॥ ४ ॥

हे मघवन् (इन्द्र) ! तुम्हारी कृपा से मै स्वर्ग और पृथिवी की अन्तःस्थापना करूँ। विस्तीर्ण अंतरिक्ष को स्वर्ग और पृथिवी के मध्य स्थापित करता हूँ। पृथिवी के निवासी और स्वर्ग में वास करने वाले देवताओं से तुम समान प्रीति रखने वाले हो। तुम अपने को तृप्त करो ॥ ५ ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्य. पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य ऽ उदानाय त्वा ॥ ६ ॥
आ वायो भूष शुचिपा ऽ उप न सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते ऽ अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥७॥

हे प्राणरूप उपांशुग्रह ! सब इन्द्रियों से, सब पार्थिव और दिव्य प्राणियों से तुम स्वयं आविर्भाव को प्राप्त हुए हो मन रूप प्रजापति तुम्हें मेरी ओर प्रेरित करे। हे लेप-पात्र ! तुम्हें मरीचि पालक देवताओं की तृप्ति के लिए मार्जित करता हूँ। हे अन्तर्याम ग्रह ! मैं तुम्हें उदान देवता के प्रीत्यर्थ यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! पवित्र पान करने वाले वायो ! तुम हमारे पास आओ। तुम सर्व व्याप्त हो। तुम्हारे हजार-हजार वाहन हैं। तुम अपने उन वाहनों के द्वारा हमारे पास आओ। हर्ष प्रदायक सोम रूप अन्न तुम्हारी सेवा में समर्पित करता हूँ। हे देव। तुमने जिस सोम का पूर्व पान धारण किया है, उसी सोम को हम तुम्हारे समक्ष लाते हैं। हे तृतीय ग्रह सोम रस। मैं तुम्हें वायु की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू ऽ इमे सुताऽउप प्रयोमिरागतम् ।
इन्दवो वामुशन्ति हि । उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥८॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऽ ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳहवम् ।
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥९॥

राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तामनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥१०॥

हे इन्द्र और वायो ! यह सोमरस तुम्हारे निमित्त अभिषुत हुआ है। इस रस रूप-अन्न को पीने के लिए तुम शीघ्र ही हमारे पास आओ। क्योंकि तुम सोम पीने की सदा कामना करते हो। हे तृतीय गृह सोमरस ! तुम वायु के निमित्त उपयाम पात्र में एकत्र किए गए हो। मैंने तुम्हें वायु और इन्द्र के निमित्त ग्रहण किया है ॥८॥

हे इन्द्र और वायो ! यह तुम्हारा स्थान है। हे सोम ! तुम्हें इन्द्र और वायु की प्रीति के लिए इसी स्थान में स्थापित करता हूँ।

हे सत्य के बढ़ाने वाले मित्रावरुण देवताओ ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यह सोम निष्पन्न किया गया है। तुम हमारे इस यज्ञ में आकर आह्वान को सुनो। हे चतुर्थ ग्रह सोमरस ! तुम मित्रावरुण नाम वाले उपयाम पात्र मे स्थित हो। मैं तुम्हें मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ ॥९॥

अपने घर में जिस गौ के रहने से हम धन वाले होते हुए सुख पूर्वक रहते हैं तथा हवि प्राप्ति द्वारा जैसे देवता प्रसन्न होते हैं और तृणादि से गौएं जैसे प्रसन्न होती हैं, वैसे ही प्रसन्न होकर हे मित्रावरुण ! उस अन्य पुरुष को प्राप्त न होने वाली गो को हमें सदा प्रदान करो। हे ग्रह ! यह तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है। तुम्हें मित्रावरुण देवताओं की प्रसन्नता के लिए इस स्थान में स्थापित करता हूँ ॥१०॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥११॥
तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳस्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे।
उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥१२॥

हे अश्विद्वय ! तुम्हारी जो वाणी प्रकाश करने वाली, प्रशंसा मे ओत प्रोत, प्रिय सत्य से भरी हुई है, तुम अपनी उसी वाणी के द्वारा इस यज्ञ को सिंचित करो। हे पंचमग्रह ! तुम अश्विनीकुमारों की प्रसन्नता के लिए इस उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। हे अश्विग्रह ! यह तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है, मधुर वाणीयुक्त मन्त्र पढ़ने वाले अश्विद्वय के निमित्त मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥११॥

हे इन्द्र ! जिन यज्ञानुष्ठानों में बारंबार सोमरस का पान करके तुम तृप्ति और वृद्धि को प्राप्त होते हो, उस महान् यज्ञ में तुम कुशा के आसन पर बैठने वाले, स्वर्ग के ज्ञाता, शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले, जीतने योग्य धनों को जीतने वाले और यजमान को यज्ञ का फल प्रदान करने वाले

तुम प्राचीन कालीन ऋषियों के समान, पूर्व प्रथानुसार और सब ऋषि सन्तानों के समान तुम यज्ञ का फल देने वाले हो, ऐसे तुम्हारी हम स्तुति करते हैं। हे शुक्रग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है, तुम इसमें स्थित होकर हमारे बल की रक्षा करो। असुर नेता का अपमार्जन हुआ। हे ग्रह ! सोमपायी देवता तुम्हें आह्वानीय स्थान में प्राप्त करें। हे उत्तरवेदी श्रोणी ! तुम हिंसा करने वाली नहीं हो अतः इस ग्रह को तुमसे कोई भय नहीं है ॥१२॥

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः
शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥१३॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः ॥१४॥
स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्माऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहा-
याऽग्नीत् ॥१५॥

हे ग्रह ! तुम श्रेष्ठ बल वाले हो। इस यजमान के वीर पुत्रादि को प्रकट करते हुए विभिन्न प्रकार के धनों की पुष्टि द्वारा कृपा करो और यहाँ आओ। हे शुक्रग्रह ! तुम अपने पवित्र तेज से पृथिवी और स्वर्ग से सुसंगत होते हुए दमकते हो। शण्ड नामक राक्षस दूर हो गया। हे यूप ! तुम शुक्र ग्रह के अधिष्ठान रूप हो ॥१३॥

हे सोम ! तुम अखण्डित और श्रेष्ठ पराक्रम से युक्त हो। हम तुम्हारी अनुकूलता से सदा दानशील रहें। समस्त ऋत्विजों द्वारा वरणीय यह अभिषवण क्रिया इन्द्र के निमित्त की जाने से सर्वश्रेष्ठ है। संसार का उत्पत्तिकारण होने से वरुण, मित्र, अग्नि का यह सोम अनुगामी है ॥१४॥

वह महान् मेधावी बृहस्पति देवताओं में मुख्य हैं। उन इन्द्र के निमित्त इस निष्पन्न सोम की आहुति दी जाती है। यह आहुति भले प्रकार

ग्रहीत हो। जो मधुर स्वादिष्ट सोम की कामना करने वाले देवता सोम से ही प्रसन्न होते हैं, वे छन्दों के अभिमानी देवता सोम पीकर तृप्त हों। जिस कारण सोम इस कर्म में नियुक्त हुए हैं, वह कारण देवताओं का सोम पान है। इससे देवता प्रसन्न और तृप्त हुए हैं। शुक्रग्रह हवन सम्पन्न होगया ॥१५॥

अय वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपा ᳪ सङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति।
उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥१६॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता।
आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णो ऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥१७॥

यह महान् आभा में ज्योतिर्मान अनुपमेय चन्द्रमा जलवृष्टि करने वाला है। मेधावी जन सूर्य से जल के मिलने के समान इस सोम की शिशु के समान स्तुति करते हैं। हे सप्तम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र द्वारा ग्रहीत हो। असुर के निमित्त तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥१६॥

श्रेष्ठकर्मा मेधावी पुरुष उत्साह पूर्वक कर्म करते हुए जिन सोम-यागों में अपने मन को लगाये रहते हैं, वह हाथों में स्थित इस सोम को अंगुलियों द्वारा सब ओर से सत्तू में मिलाते हैं। हे मन्थिग्रह ! यह तेरा स्थान है। तू यहाँ रहकर इस यजमान की सन्तति सहित रक्षा कर। राक्षस अपमार्जित होगया। हे मन्थिग्रह ! पान करने वाले देवता तुम्हें यज्ञस्थान में पावें। हे वेदीश्रोणी ! तू हिंसा करने वाली न हो ॥१७॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥१८॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥१९॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः ।
पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥२०॥

हे सुप्रजारूप ग्रह ! तुम यजमान को अपत्यवान् करते हुए धन की पुष्टि के लिए यजमान के समक्ष आओ। यह मन्थिग्रह अपने तेज से स्वर्ग और पृथिवी से सुसंगत होकर यूप की रक्षा करता है। मर्क नामक असुर दूर हुआ। हे यूप ! तुम मन्थिग्रह के अधिष्ठान हो ॥१८॥

हे विश्वेदेवाओ ! तुम अपनी महिमा से स्वर्ग में ग्यारह हो और महान् होने से, पृथिवी पर बारह हो जाते हो। तुम अन्तरिक्ष में भी ग्यारह ही रहते हो। तुम इस यज्ञ कर्म को स्वीकार करो ॥ १९ ॥

हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में स्थित हो। तुम आग्रयण नाम से श्रेष्ठ होते हुए, इस यज्ञ की रक्षा करो और इस यजमान की भी रक्षा करो। यज्ञ के अधिपति भगवान् विष्णु अपनी महिमा से तुम्हारी रक्षा करें और तुम भी यज्ञस्वामी विष्णु के रक्षक होओ। तुम इस यज्ञ के तीनों सवनों की भी भले प्रकार रक्षा करो ॥ २० ॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत ऽ इष ऽ ऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्य ऽ ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत ऽ उक्थाव्यं गृह्णामि । यत्त ऽ इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

यह सोम ब्राह्मणों का प्रीति पात्र होने के निमित्त क्षरित होता है। यह सोम क्षत्रिय जाति का प्रिय होने के लिए ग्रह-पात्र में क्षरित होता है। यह सोम इस अभिषवकारी यजमान के निमित्त क्षरित होता है। यह अन्न वृद्धि के लिए, क्षीरादि की वृद्धि के लिए, अभीष्ट वृष्टि के लिए, व्रीहि धान्य

आदि की वृद्धि के लिए क्षरित होता है। यह सोम अपने क्षरण द्वारा स्वर्ग और पृथिवी को परिपूर्ण करता और तीनों लोकों मे उत्पन्न प्राणियों की अभीष्ट सिद्धि करता है। सभी कल्याणों के लिए यह सोम ग्रह पात्र मे क्षरित होता है। हे आग्रयण ! सब देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मैं तुम्हे ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें सब देवताओं को प्रसन्न करने के लिए स्थापित करता हूँ ॥ २१ ॥

हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में एकत्र हुए हो। हे उक्थ ग्रह ! तुम्हें मित्रावरुण के लिए तृप्तिकर जानता हुआ ग्रहण करता हूँ। हे बृहत् साम के प्रिय पात्र सोम ! तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र ! तुम्हारा जो महान् सोमरस रूप खाद्य है, उसे पीने के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। हे सोम ! मैं तुम्हें भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे उक्थ ग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है। उक्थ से प्रेम करने वाले देवताओं की प्रसन्नता के लिए तुम्हें इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे सोम ! मैं तुम्हें मित्र, वरुण आदि देवताओं के लिए प्रिय जान कर देवगण की तृप्ति के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ तथा यज्ञ की समाप्ति पर फल मिलने तक अथवा यजमान के दीर्घजीवन के लिए ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

मूर्द्धानं दिवो ऽ अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽ आ जातमग्निम् ।
कविँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम ऽ एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ।

ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममव नयामि ।
अथा न ऽ इन्द्र ऽ इद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

हे सोमांश ! तुम्हें देवताओं को सन्तुष्ट करने वाला मान कर, मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिए तथा यज्ञ के विघ्न रहित सम्पूर्ण होने के लिए मैं ग्रहण करता हूँ। देवताओं की तृप्ति का साधन मानकर इन्द्र आदि देवताओं की प्रसन्नता-प्राप्ति के लिये तथा यज्ञ की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिये मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। मैं तुम्हें देवताओं को सन्तुष्ट करने वाला जानता हुआ, इन्द्र और अग्नि की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये तथा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ। देवताओं को तृप्त करने वाला जान कर, इन्द्र और वरुण की प्रीति के लिये तथा यज्ञानुष्ठान की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मैं तुम्हे ग्रहण करता हूँ। देवताओं की सन्तुष्टि का उपाय रूप मानकर इन्द्र और बृहस्पति की प्रीति के लिए तथा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। देवताओं को सन्तुष्ट करने वाला जान कर इन्द्र और विष्णु को सन्तुष्ट करने के लिये और यज्ञ की बिना बाधा समाप्ति के लिये मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥

स्वर्ग के मूर्द्धा रूप सूर्य द्वारा प्रकाशित पृथिवी की पूर्ति स्वरूप, वैश्वानर इस यज्ञ रूप सत्य में दो अरणियों द्वारा उत्पन्न होकर तेजस्वी, क्रान्तदर्शी, ज्योतिर्मानों में सम्राट्, यजमान आदि अतिथि हव्य द्वारा सुसम्मानित अग्निदेव को देवताओं ने प्रमुख चमस पात्र द्वारा प्रकट किया ॥ २४ ॥

हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में रखे गये हो। तुम स्थिर निवास वाले सब ग्रह नक्षत्रों से अधिक स्थिर और अच्युतों में अच्युत हो। तुम ध्रुव नाम से विख्यात हो। मैं तुम्हें समस्त मनुष्यों के हितकारी देवता की प्रसन्नता के लिए इस स्थान पर प्रतिष्ठित करता हूँ। स्थिर मन और वाणी द्वारा मैं इस सोम को चमस में डालता हूँ। फिर इन्द्र देवता ही हमारे पुत्रादि को स्थिर बुद्धि और शत्रुओं से शून्य करें ॥ २५ ॥

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्ते ऽ अᳬशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् ।
अध्वर्य्योर्वा परि वा य. पवित्रात्त ते जुहोमि मनसा वषट्कृतᳬ
स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वो-
दानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व
क्रतूदक्षाभ्या मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे
पवस्व चक्षुर्भ्या मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

हे सोम ! तुम्हारा जो रस पात्र में डालते समय पृथिवी पर गिर जाता है, और तुम्हारे जो अंश पाषाणों द्वारा कूटते समय इधर उधर उछटते हैं तथा जो तुम्हारा रस अभिषवण फलक के बीच से क्षरित होता है अथवा जो अध्वर्यु आदि द्वारा निष्पन्न करने मे नष्ट होता है, हे सोम ! तुम्हारे वे सब अंश मन के द्वारा ग्रहण कर स्वाहाकार पूर्वक अग्नि में होम करता हूं । हे चषाल ! तुम देवताओं के स्वर्ग जाने के लिए सोपान रूप हो ॥२६॥

हे उपांशु ग्रह ! जिस प्रकार तेज प्रदान करने वाले हो, उसी प्रकार मेरे हृदयस्थ प्राणवायु में तेज वृद्धि करने वाले होओ । हे उपांशु सवन ! तुम्हारा स्वभाव ही तेज प्रदान करने वाला है । मेरे व्यान वायु की तेज वृद्धि के लिए यत्नशील होओ । हे अन्तर्याम ग्रह ! जिस प्रकार तुम अपने स्वभाव से तेज प्रदान करने वाले हो वैसे ही मेरी तेज वृद्धि की कामना करो । हे इन्द्र वायव ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी वाणी सम्बन्धी कांति को तीक्ष्ण करो । हे मैत्रावरुण ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी कार्य कुशलता और अभीष्ट सम्बन्धी कान्ति को बढ़ाओ । हे आश्विन ग्रह ! तुम तेज दाता स्वभाव वाले हो, मेरी श्रोत्रेन्द्रिय को तेजस्विनी करो । हे शुक्र और मन्थिग्रह ! तुम तेज देने वाले स्वभाव के हो । मेरी नेत्र ज्योति को बढ़ाओ ॥ २७ ॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ।२८

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि ।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम ।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥२६
उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयाम-गृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयाम-गृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयाम-गृहीतोऽस्यᳬंहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

हे आग्रयण ग्रह ! तुम स्वभाव से ही कान्तिदाता हो । मुझे आत्म तेज दो । हे उक्थ ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज दाता हो, मुझे वल संबंधी तेज दो । हे ध्रुवग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज प्रदान करने वाले हो मेरी आयु को तेजोमय करो । हे आह्वानीय ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज देने वाले हो, सब प्राणियों को तेज प्रदान करो ॥ २८ ॥

हे द्रोण कलश ! तुम प्रजापति हो । तुम वहुतों में कौन से हो ? तुम किस प्रजापति के हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? हम तुम्हारे उस नाम को जानें । हम तुम्हें जानकर सोम से परिपूर्ण कर चुके हैं, यदि तुम वही हो तो हमारे अभीष्ट पूर्ण कर हमारे नाम की प्रसिद्धि करो । हे अग्ने ! वायु और सूर्य ! मैं तुम्हारी कृपा पाकर सुन्दर सन्तान वाला होकर प्रसिद्धि को प्राप्त करूँ । मैं वीर पुत्रों वाला होकर विख्यात हुआ हूँ । मैं श्रेष्ठ धन से सम्पन्न होकर प्रसिद्ध हुआ हूँ ॥ २६ ॥

हे प्रथम ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो । चैत्र की मधुरता की कामना करता हुआ मैं तुम को ग्रहण करता हूँ । हे द्वितीय ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो । मैं वैसाख मास की सन्तुष्टि के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे तृतीय ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो । मैं ज्येष्ठ मास की सन्तुष्टि के लिए तुम्हें ग्रहण

करता हूं। हे चतुर्थ ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र मे गृहण किये गए हो । मैं तुम्हें आषाढ़ मास में संतुष्टि के निमित्त गृहण करता हूँ । हे पंचम ऋतु गृह ! तुम उपयाम पात्र में गृहण किये गए हो । मैं तुम्हें श्रावण मास में सन्तुष्टि के लिए गृहण करता हूं । हे षष्ठ ऋतु गृह ! तुम उपयाम पात्र में गृहण किये गए हो । मैं तुम्हें भादों मास की सन्तुष्टि के निमित्त गृहण करता हूँ। हे सप्तम ऋतु गृह ! तुम उपयाम पात्र में गृहण किये गए हो। मैं तुम्हें आश्विन मास की सन्तुष्टि के निमित्त गृहण करता हूं । हे अष्टम ऋतु गृह ! तुम उपयाम पात्र में गृहण किये गए हो, मैं तुम्हें कार्तिक मास में ईख, अन्न, उपार्जन आदि के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे नवम ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो, मैं तुम्हें मार्गशीर्ष मास की संतुष्टि के लिए ग्रहण करता हूँ । हे दशम ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। मैं तुम्हें पौष मास की संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे एकादश ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो । मैं तुम्हें माघ मास की संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे द्वादश ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। मैं तुम्हें फाल्गुण मास की संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे त्रयोदश ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। पाप के स्वामी अधिक मास की संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नी ऽ आगतᳬ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ ३१ ॥

आ घा ये ऽ अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥३२॥

हे इन्द्र और अग्नि तुम भले प्रकार अभिषुत किये गए हो । तुम ऋक्, यजु और साम मन्त्रों द्वारा आदित्य के समान स्तुत्य हो, अतः सोमपान के निमित्त आगमन करो । तुम यजमान की स्तुति से प्रसन्न होकर

अपने भाग को ग्रहण करो। हे चौबीसवें ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। मैं तुम्हें इन्द्र और अग्नि देवताओं की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र और अग्ने ! तुम्हारा यह स्थान है। इन्द्र और अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ अधिष्ठित करता हूँ ॥ ३१ ॥

जो यजमान अग्नि के लिए इच्छित सोमादि द्वारा यज्ञ करते और कुशा बिछाते हैं, वे इन्द्र को अपना मित्र मानते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, इन्द्र, और अग्नि देवता के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र और अग्नि सम्बन्धी ग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है। इन देवताओं की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥ ३२ ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास ऽ आगत । दाश्वाँसो दाशुषः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३३॥

विश्वे देवास ऽ आगत शृणुता म इमँ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

इन्द्र मरुत्व ऽ इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते ऽ अपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५॥

हे विश्वेदेवो ! तुम सब प्रकार हमारी रक्षा करते हो। तुम मनुष्यों को पुष्ट करते हो। जो यजमान तुम्हारा अभिषव करता है, उसके पास सोमपान के निमित्त आगमन करो। हे पचीसवें ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। विश्वेदेवाओं की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे विश्वेदेवो ! यह तुम्हारा स्थान है। विश्वेदेवों की प्रसन्नता के लिए तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ ३३ ॥

हे विश्वेदेवो ! हमारे यज्ञ में आगमन करो। मेरे इस आह्वान को सुनो। तुम इस विस्तृत कुशा पर अवस्थित होओ। हे ग्रह तुम उपयाम

पात्र में ग्रहीत हो । विश्वेदेवों के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ । विश्वेदेवो ! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हें विश्वेदेवाओं की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूँ ॥ ३४ ॥

हे मरुत्वान् इन्द्र ! जैसे कर्मवान् शर्याति के यज्ञ में तुमने निष्पन्न सोम के रस का पान किया था, वैसे ही हमारे यज्ञ में सोम पान करो । ऐसा होने पर तुम्हारे आज्ञानुवर्ती ऋत्विक तुम्हारे कल्याणकारी स्थान में तुम्हारी सेवा करते हैं । हे ग्रह ! तुम इस उपयाम पात्र में गृहीत हो, मरुत्वान् इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे मरुद्गण सम्बन्धी ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हे मरुत्वान् इन्द्र की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूं ॥३५॥

मरुत्वन्त वृषभ वावृधानमकवारि दिव्य ७ शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्र ७ सहोदामिह त७ हुवेम ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते । उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥३६।
सजोषा ऽ इन्द्र सगणो मरुद्भि सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रू ऽ रप मृधो नुदस्वाथाभय कृणुहि विश्वतो न ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७॥

मरुद्गण से युक्त, वृष्टिकारक, धान्यादि को वृद्धि करने वाले, प्रमाद रहित, बलदाता, यजमान की रक्षा के लिए वज्र वाले उन इन्द्र को रक्षा के लिए बुलाते है । हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो । मरुत्वान इन्द्र की प्रीति के लिए तुम्हे स्थापित करता हूँ । हे तृतीयग्रह ! इस ऋतुग्रह में तुम्हें मरुद्गण के बल सम्पादन के लिये ग्रहण करता हूँ ॥३६॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे यज्ञ को स्वीकार कर हमसे सन्तुष्ट होने वाले वृत्रहन्ता, सर्वज्ञाता हो । मरुतों के सहित सोम पान करो । शत्रुओं को नष्ट

करो, उन्हें रणभूमि से भगाओ फिर हमें सब प्रकार से अभय प्रदान करो हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, इन्द्र की प्रसन्नता को ग्रहण किए गए हो, इसी कार्य के लिए तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे ग्रह ! इस ऋतु ग्रह में तुम्हें इन्द्र के बल के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ३७ ॥

मरुत्वाँ ऽ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय। आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऽ ऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३८॥

महाँ ऽ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा ऽ उत द्विबर्हा ऽ अमिनः सहोभिः। अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्य्यायोरु पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

महाँ ऽ इन्द्रो य ऽ ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ ऽ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥

हे मरुत्वान् इन्द्र ! तुम जल-वृष्टि करने वाले हो। तुम धान्यमन्थ दुग्ध-दधि रूप सोम रस को हर्ष के निमित्त पान करो और शत्रुओं या राक्षसों से संग्राम करो। इस मधुर रस की तरंगों को उदर में सींचो। तुम प्रतिपदा आदि तिथियों में निष्पन्न हुए सोम के राजा हो। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में संगृह किये गए हो, मरुत्वान् इन्द्र के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥३८॥

जैसे राजा अपनी प्रजा की इच्छाऐं पूर्ण करता है, वैसे ही मनुष्यों की कामना पूर्ण करने वाले, सोम याग की वृद्धि करने वाले, अनुपमेय, बलवान् और हम पर अनुकूल महान् इन्द्र पराक्रम के लिए प्रवृद्ध होते हैं। वही यश और बल से बढ़े हुए इन्द्र यजमानों द्वारा पूजित होकर हमारे बल को बढ़ावें। हे चतुर्थ ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें महान् इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे महेन्द्र ग्रह ! यह स्थान तुम्हारा है, महान् इन्द्र की प्रीति के निमित्त तुम्हें यहां अवस्थित करता हूँ ॥ ३९ ॥

जो इन्द्र महान् हैं, अपने तेज से तेजस्वी हैं, वे वृष्टिकारक मेघ के समान वत्सल और यजमान की स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध होते हैं। हे ग्रह ! तुम

उपयाम पात्र में गृहीत हो, तुम्हें इन्द्र के लिए ग्रहण करता हूँ। हे महेन्द्र भद्र! यह तुम्हारा स्थान है, महान् इन्द्र के लिए तुम्हें यहाँ प्रतिष्ठित करता हूँ ॥ ४० ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यंᳫं स्वाहा ॥ ४१ ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षᳫं सूर्य्य ऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

सूर्य देवता रश्मियों के समूह वाले, सब पदार्थों के ज्ञाता दिव्य तेज वाले हैं। सम्पूर्ण जगत में प्रकाश के लिए उनकी रश्मियाँ ऊर्ध्व वहन करती हैं। यह हवि उनको स्वाहुत हो ॥४१॥

वह अद्भुत सूर्य दिव्य रश्मियों के पुंज रूप हैं। वे मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षु के समान प्रकाशमान हैं। स्थावर जंगम रूप विश्व की आत्मा और संसार को प्रकाशित करने वाले वे सूर्य उदित होकर स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं। यह आहुति सूर्य के निमित्त स्वाहुत हो ॥ ४२ ॥

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥
अयं नो ऽ अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर ऽ एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयᳫं शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥४४
रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु ।
ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

हे अग्ने! तुम समस्त मार्गों के ज्ञाता हो। हम अनुष्ठाताओं को ऐश्वर्य के निमित्त सुन्दर मार्ग से प्राप्त होओ। कर्म में बाधा रूप पाप को

हमसे दूर करो । हम तुम्हारे निमित्त नमस्कार युक्त हवि रूप वचन का सम्पादन करते हैं ॥ ४३ ॥

यह अग्नि हमें धन दें । रणभूमि में हमारी शत्रु-सेनाओं को छिन्न-भिन्न करें । शत्रु के अधिकार में जो अन्न है उसे हमें प्राप्त करावें । यह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें । यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ४४ ॥

हे दक्षिणा रूप गौओ ! मैंने तुम्हारे रूप को प्राप्त किया है । सर्वज्ञ ब्रह्म तुम्हें बाँटकर ऋत्विजों को दें । तुम यज्ञ मार्ग से जाओ । हे दक्षिणा रूप गौओ ! हम तुम्हें पाकर स्वर्ग के देवयान मार्ग को देखते हैं और अन्तरिक्ष के पितृयान मार्ग को देखते हैं । हे ऋत्विजो ! सब सभासदों को यथा भाग पूर्ण होने पर भी कुछ गौऐं दक्षिणा से शेष बचें ऐसा कार्य करो ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् ।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्र ऽ एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्र ऽ एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्र ऽ एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय हयो दात्र ऽ एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

कोऽदात्कस्मा ऽ अदात्कामोऽदात्कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

मैं आज यशस्वी पिता वाले और सर्वमान्य पितामह वाले ऋषियों में प्रसिद्ध ऋषि और मन्त्रों के व्याख्याता सर्व गुण सम्पन्न ब्राह्मण को प्राप्त करूँ, जिनके पास सम्पूर्ण सुवर्ण-दक्षिणा एकत्र की जाय । हे सम्पूर्ण दक्षिणा ! हमारे द्वारा प्रदत्त तुम देवताओं द्वारा अधिष्ठित ऋत्विजों के पास जाओ और देवगण को सन्तुष्ट कर, दक्षिणादाता यजमान में, उसे यज्ञ का फल प्राप्त कराने के लिए प्रविष्ट होओ ॥ ४६ ॥

हे स्वर्ण ! अग्नि रूप को प्राप्त हुए वरुण तुम्हें मुझे दें। इस प्रकार प्राप्त सुवर्ण मुझे आरोग्यता दे। हे स्वर्ण ! तुम दाता की परमायु को बढ़ाओ। प्रतिग्रहकर्त्ता मैं भी सुखी होऊँ। हे गौ ! रुद्र रूप वरुण तुम्हें मुझको दें। गौ पाने वाला मैं आरोग्यता प्राप्त करूँ। हे गौ ! तुम दाता के प्राण बल को बढ़ाओ और मुझ प्रतिग्रह वाले की आयु वृद्धि करो। हे परिधान ! बृहस्पति रूप वरुण तुम्हें मुझको दे रहे हैं। मैं तुम्हें पाकर अमरणशील होऊँ। तुम दाता की त्वचा को प्रवृद्ध करो और मुझ प्रतिग्रहीता के लिए सुख वृद्धि करो। हे अश्व ! यमरूप वरुण ने तुम्हें मेरे लिए दिया है। मैं तुम्हें पाकर आरोग्यता को प्राप्त करूँ। तुम दाता के लिए अश्वों की वृद्धि करो और मुझ प्रतिग्रहीता के लिए भी पशु आदि की वृद्धि करो ॥ ४७ ॥

किसने दान किया ? किसको दान किया ? यज्ञ फल रूपी कामना के निमित्त दान किया। कामना ही दान करने वाली है। कामना ही प्रतिग्रहीता है। हे कामना ! यह सभी काम्य वस्तुऐं तुम्हारी ही तो हैं ॥ ४८ ॥

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

(ऋषिः—अङ्गिरसः, कुत्सः, भरद्वाजः, अग्निः, शुनःशेपः, गोतमः, मेधातिथिः, मधुच्छन्दाः, विवस्वान्, वैखानसः, प्रस्कण्वः, कुसुरुबिन्दुः, गासः, देवाः, वसिष्ठः, कश्यपः ॥ देवता—बृहस्पतिस्सोमः, गृहपतिर्मघवा, आदित्यो गृहपतिः, गृहपतयः, सविता गृहपतिः, विश्वेदेवा गृहपतयः, गृहपतयो विश्वेदेवाः, दम्पती, परमेश्वरः, सूर्यः, इन्द्रः, ईश्वरसभेशौ राजानौ, विश्वकर्मेन्द्रः, प्रजापतय, यज्ञ ॥ छन्दः—पंक्ति, जगती, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती, उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्णऽ उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १ ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय ऽ इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत ऽ आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

हे सोम ! तुम उपयाम ग्रह में गृहीत हो। हे सोम ! तुम्हें आदित्य-गण की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे महान् स्तुतियों को प्राप्त करने वाले विष्णो ! यह सोम तुम्हारी सेवा में समर्पित है, तुम उस सोम-रस की रक्षा करो। रक्षा करने में प्रवृत्त हुए तुम पर राक्षस आक्रमण न करें ॥१॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा हिंसा करने का स्वभाव नहीं है। तुम यजमान द्वारा प्रदत्त हवि को पास आकर सेवन करते हो। हे इन्द्र ! तुम्हारा हवि रूप दान तुम्हीं से संबंधित होता है। हे ग्रह ! तुम्हें आदित्य की प्रीति के निमित्त गृहण करता हूँ ॥ २ ॥

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त ऽ इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥
विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व ।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः ।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप ऽ एधते गृहे ॥५॥

हे आदित्य ! तुम आलस्य कभी नहीं करते। देवताओं और मनुष्यों दोनों की रक्षा करते हो। तुम्हारा जो पराक्रम माया से रहित, अविनाशी और विज्ञानमय आनंद वाला है, वह सूर्य मंडल में प्रतिष्ठित है। हे ग्रह ! मैं तुम्हें आदित्य की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

आदित्य की प्रीति के निमित्त यज्ञ आता है। अतः हे आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण करने वाले होओ। तुम्हारी मंगलमयी बुद्धि हमें प्राप्त

हो। पापियों की भी धनोपार्जन वाली बुद्धि हमारे अभिमुख हो। हे सोम! आदित्य की प्रीति के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ ४ ॥

हे सूर्य! तुम अंधकार का नाश करने वाले हो। पात्र में स्थित यह सोम तुम्हारे पान-योग्य है। अत तुम इसका पान करके प्रसन्नता को प्राप्त होओ। हे कर्मवान् पुरुषो! तुम आशीर्वाद देने वाले हो। अपने इस आशीर्वचन में विश्वास करो, जिससे यह यजमान दम्पत्ति वरणीय यज्ञ के फल को प्राप्त कर सकें और इस यजमान के पुत्रोत्पत्ति हो। इसका वह पुत्र ऐश्वर्य को प्राप्त करे और नित्य प्रति वृद्धि को प्राप्त होता हुआ। वह पाप तथा ऋणादि से मुक्त रहता हुआ श्रेष्ठ घर में रहे ॥ ५ ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावी ।
वामस्य हि क्षयस्व देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥
उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा ऽ असि चनो मयि धेहि। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥७॥

हे सर्व प्रेरक सविता देव! आज हमारे लिए वरणीय यज्ञ फल को प्रेरित करो। आगामी दिवस में भी हमें यज्ञ फल दो। इस प्रकार नित्य प्रति हमें यज्ञ फल प्रदान करते हुए संभजनीय, स्थायी दिव्य सिद्धि के लिए इस श्रद्धामयी बुद्धि को भी हमें प्राप्त कराओ, जिससे हम यज्ञ का श्रेष्ठ फल भोगने में सब प्रकार समर्थ हों ॥ ६ ॥

हे सोम! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। तुम सवितादेव से संबंधित हो और तुम अन्न के धारण करने वाले हो अतः मुझे भी अन्न प्रदान करो। मुझे यज्ञ फल दो। यजमान से और मुझसे दोनों से स्नेह करो। मैं तुम्हें ऐश्वर्यादि से सम्पन्न, सर्वोत्पादक सवितादेव के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूं ॥७॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥८॥
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त ऽ इन्दोरिन्द्रियावत ।

पत्नीवतो ग्रहाँ ऽ ऋध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् । अह ँ सूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥९॥
अग्नाइ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा ।
प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥१०॥

हे महावैश्वदेव ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। तुम भले प्रकार पात्र में स्थित और सुख के आश्रय रूप हो। विश्व के रचयिता और अत्यन्त सेचन समर्थ प्रजापति के निमित्त ही यह अन्न है। मैं तुम्हें विश्वेदेवों की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥८॥

हे सामे ! तुम दिव्य हो। उपयाम पात्र में ग्रहण किए गए हो। अतः ब्राह्मण ऋत्विजादि द्वारा निष्पन्न हुए तुम्हें, तुम्हारे रसयुक्त बल को, अन्य ग्रहों को मैं पत्नी के सहित समृद्ध करता हूँ। परमात्मरूप होकर मैं ही स्वर्गादि उन्नत लोकों में, और पृथिवी में भी स्थित हूँ। जो अन्तरिक्ष लोक हैं वही मुझ देहधारी का पिता के समान पालन करने वाला है। परम रूप होकर ही जो हृदय रूप गुहा अत्यन्त गोप्य है, वह मैं ही हूँ ॥९॥

हे अग्ने ! तुम त्वष्टा देव के सहित सोम-पान करो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे उद्गाता ! तुम प्रजा-पालक हो वीर्यवान् हो, तुम्हारी कृपा से मैं पुत्रवान होकर बली पुत्र को पाऊँ ॥१०॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा ।
हर्य्योर्द्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ॥११॥

यस्ते ऽ अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त ऽ इष्टयजुप स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥१२॥

हे पंचम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। तुम हरे वर्ण वाले सोमरूप हो। मैं ऋग्वेद और सामवेद की प्रीति के निमित्त तुम्हें

ग्रहण करता हूँ। हे सोमयुक्त धान्यो! तुम इन्द्र के दोनों हर्यश्व के निमित्त इस ग्रह में मिलते हो ॥११॥

हे सोम से सिक्त धान्य! यजुर्मन्त्रों द्वारा कामना किये गये और ऋक् मन्त्रों द्वारा स्तुत, साम के उक्थों द्वारा प्रवृद्ध, तुम्हारा सेवन का जो फल अश्वों का और गौओं का देने वाला है, तुम्हारे उस भक्षण के फल की इच्छा करता हुआ मैं तुम्हारा भक्षण करता हूँ ॥१२॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनस ऽ एनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥१३॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सᳪ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥
समिन्द्रणो मनसा नेषि गोभि सᳪ सूरिभिर्मघवन्त्सᳪ स्वस्त्या।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाᳪ सुमतौ यज्ञियानाᳪ स्वाहा।१५।

हे शकल! अग्नि में डालने योग्य तुम, देवताओं के निमित्त यज्ञादि कर्म से रहित रहने के कारण उत्पन्न पाप के हटाने वाले हो। हे काष्ठखण्ड! मनुष्यों द्वारा किये गए द्रोह और निन्दा आदि पापों को तुम दूर करते हो। हे काष्ठखण्ड! पितरों के लिए श्राद्धादि कर्म न करने के कारण उत्पन्न पाप को तुम शांत करते हो। हे काष्ठखण्ड! तुम सभी प्रकार प्राप्त हुए पाप दोषों से छुड़ाने वाले हो। मैंने जो पाप जानते हुए और जो पाप बिना जाने किए हैं उन सब पापों को तुम नष्ट करते हो। अतः हमारे सब प्रकार के पापों को दूर करो ॥१३॥

हम आज ब्रह्मतेज से युक्त होते हुए दुग्धादि रस को प्राप्त करें और कर्म करने में समर्थ देह वाले हों। त्वष्टादेव हमें धन प्राप्त करावें और मेरे देह में जो न्यूनता हो, उसे पूर्ण करें ॥१४॥

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हमें श्रेष्ठ मनवाला करो, हमें गवादि धन प्राप्त कराओ। हमें श्रेष्ठ विद्वानों से युक्त करो और उत्कृष्ट कल्याण दो। तुम परब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान से युक्त करते हो। जो कर्म हमसे देवताओं के निमित्त किया गया है और जो कर्म हमें देवताओंकी कृपा वुद्धि प्राप्त कराता है, वह यज्ञ रूप श्रेष्ठ कर्म तुम्हारे निमित्त हो ॥१५॥

सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स ँ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमाष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१६॥
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो ऽ अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया स ँ रराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा॥१७

ब्रह्मतेज से युक्त होकर हम दुग्धादि को पावें और कर्म करने में सामर्थ्य वाले देह से युक्त हों। त्वष्टादेव हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराते हुए हमारी देहगत न्यूनता को पूर्ण करें ॥१६॥

दानशील धाता, सर्वप्रेरक सविता, निधियों के पालक प्रजापति, दीप्तियुक्त अग्नि, त्वष्टादेव और भगवान् विष्णु हमारी इस हवि को ग्रहण करें। यही देवता यजमान के पुत्रादि के साथ प्रसन्न होते हुए, यजमान को धन दें और यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो ॥१७॥

सुगा वो देवाः सदना ऽ अकर्म्म य ऽ आजग्मेद ँ सवनं जुषाणाः।
भरमाणा वहमाना हवी ँ ष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥
याँ ऽ आवह ऽ उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे ऽ अग्ने सधस्थे।
जक्षिवा ँ सः पपिवा ँ सश्च विश्वेऽसु घर्म्म ँ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥ १९ ॥
वय ँ हि त्वा प्रयति यज्ञे ऽ अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह।
ऋधगया ऽ ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥

हे देवगण! इस यज्ञ के सेवन करने के निमित्त तुमने यहाँ आगमन किया है। तुम्हारे स्थानों को हमने सुख से प्राप्त होने योग्य कर दिया है। हे

देवताओ ! तुम सब मे निवास करने वाले हो। यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर जो रथ में बैठते हो, वे अपने हव्य को रथ में रखकर और जिनके पास रथ नहीं है, वे स्वय ही उसे वहन करें। और हमारे लिए श्रेष्ठ धनों को धारण करें। यह आहुति भले प्रकार स्वाहुत हो ॥ १८ ॥

हे अग्निदेव ! तुम जिन हवि की इच्छा करने वाले देवताओं को बुला कर लाए थे, उन देवताओं को अपने अपने स्थान पर पहुँचाओ। हे देवताओ ! तुम सभी पुराडाश आदि का भक्षण करते हुए, सोम पीकर तृप्त हुए इस यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर प्राण रूप वायु मंडल में, सूर्य मडल मे या स्वर्ग मे आश्रय करो। हे अग्ने ! इस प्रकार उनसे कह कर उन्हे अपने अपने स्थान को भेजो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १९ ॥

हे अग्ने ! इस स्थान में हमने तुम्हें जिस निमित्त वरण किया था, यज्ञ के प्रारम्भ होने पर वह कारण देवताओं का आह्वान करना था। इसी कारण तुमने यज्ञ को समृद्ध करते हुए उसे पूर्ण कराया। अब तुम यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ जानकर अपने स्थान को जाओ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २० ॥

देवा गातुविदो गातु वित्त्वा गातुमित ।
मनसस्पत ऽ इम देव यज्ञᳪ स्वाहा वाते धा ॥२१॥
यज्ञ यज्ञ गच्छ यज्ञपति गच्छ स्वा योनि गच्छ स्वाहा ।
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाक सर्ववीरस्त जुषस्व स्वाहा ॥२२॥

हे यज्ञ के जानने वाले देवगण ! तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो और यज्ञ में तृप्त होकर अपने अपने मार्ग से गमन करो। हे मन के प्रवर्त्तक पर-मात्मदेव ! इस यज्ञानुष्ठान को तुम्हें समर्पित करता हूँ। तुम इसे वायु देवता में प्रतिष्ठित करो ॥ २१ ॥

हे यज्ञ ! तू सुफल के निमित्त विष्णु की ओर जा और फल देने के लिए यजमान की ओर गमन कर। अपने कारणभूत वायु की ओर जा। यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो। हे यजमान ! तेरा यह भले प्रकार अनुष्ठान

किया हुआ यज्ञ ऋग्वेद और सामवेद के मंत्रों वाला है और पुरोडाशादि से सर्वाङ्गपूर्ण है। तुम उस यज्ञ के फल के भोग को प्राप्त होओ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २२ ॥

माहिर्भूर्म्मा पृदाकुः ।
उरुँ हि राजा वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थामन्वेतवा ऽ उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ।
नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥
अग्नेरनीकमप ऽ आविवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् ।
दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत स्वाहा ॥२४॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५॥

हे रज्जु रूप मेखला ! तुम जल में गिर कर सर्प के आकार वाली मत हो जाना। हे कृष्ण विषाण ! तुम अजगर के आकार में मत होना ॥२३॥

हे अग्ने ! तुम्हारा अपान्नपात् नामक मुख है, उसे जलों में प्रविष्ट करो। उस स्थान में यज्ञ में राक्षसों द्वारा उपस्थित विघ्न से हमारी रक्षा करते हुए समिधा-युक्त घृत से मिलो। हे अग्ने ! तुम्हारी जिह्वा घृत ग्रहण करने के लिए उद्यत हो ॥ २४ ॥

हे सोम ! तुम्हारा जो हृदय समुद्र के जलों में स्थित है, मैं तुम्हें वहीं भेजता हूँ। तुम में औषधियाँ और जल प्रविष्ट हों। तुम यज्ञ के पालन करने वाले हो, हम तुम्हें यज्ञ में उच्चारण किये जाने वाले नमस्कार आदि वचनों में स्थापित करते हैं। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २५ ॥

देवीराप ऽ एष वो गर्भस्तँ सुप्रीतँ सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवदेवैर्वकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि।

देवाना ᳣ समिदसि ॥२७॥

हे दिव्य गुण वाले जलो ! यह सोम कुंभ तुम्हारा स्थान है। तुम इसे पुष्टिप्रद करते हुए भले प्रकार धारण करो। हे सोम ! तुम्हारा यह स्थान जल रूप है। तुम इसमें अवस्थान कर कल्याण का वहन करो और हमारे सब दुखों को दूर कर हमारी रक्षा करो ॥ २६ ॥

हे अवभृथ यज्ञ ! तुम तीव्र गति वाले हो, किन्तु अब अति मन्द गति से गमन करो। हमारे द्वारा जो पाप देवताओं के प्रति होगया है, वह हमने जल में त्याग दिया है। हमारे ऋत्विजों द्वारा यज्ञ देखने के लिए आए हुए मनुष्यों की जो अवज्ञा हुई है, उससे उत्पन्न पाप भी जल में त्याग दिया है। तुम अत्यंत विरुद्ध फल वाली हिंसा से हमारी रक्षा करो। तुम्हारी कृपा से हम किसी प्रकार के पाप के भागी न रहें। देवताओं से संबंधित समिधा दीप्तिमती होती हैं ॥ २७ ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र ऽ एजति ।
एवायं दशमास्यो ऽ अस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥
यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ।
अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमᳪ स्वाहा ॥२९॥
पुरुदस्मो विषुरूप ऽ इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः ।
एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताᳪ स्वाहा
॥ ३० ॥

दश महीने पूर्ण होने पर यह गर्भ जरायु सहित चलायमान हो। जैसे यह वायु कम्पित होता है और समुद्र की लहरें जैसे काँपती हैं, वैसे ही दश महीने का यह पूर्ण गर्भ वेष्टन सहित गर्भ से बाहर आवे ॥ २८ ॥

हे सुन्दर लक्षण वाली नारी ! तेरा गर्भ यज्ञ से संबंधित है। तेरा गर्भ स्थान सुवर्ण के समान शुद्ध है। जिस गर्भ के सभी अवयव अखंडित,

अकुटिल और श्रेष्ठ हैं, उस गर्भ को मंत्र द्वारा भले प्रकार माता से मिलाता हूँ। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २९ ॥

बहुत दान वाला, बहुत रूप वाला, उदर में स्थित मेधावी गर्भ महिमा को प्रकट करे। इस प्रकार गर्भवती माता को एक पद वाली, दो पद वाली, त्रिपदी, चतुष्पदी और चारों वर्णों से प्रशंसित, चारों आश्रम से युक्त इस प्रकार अष्टापदी रूप से प्रशंसित करें। यह हवि स्वाहुत हो ॥ ३० ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।
स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥
मही द्यौः पृथिवी च न ऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

हे स्वर्ग के निवासी, विशेष महिमा वाले मरुद्गण! तुमने जिस यजमान के यज्ञ में सोम-पान किया, वह यजमान तुम्हारे द्वारा बहुत काल तक रक्षित रहे ॥ ३१ ॥

महान् स्वर्ग लोक, और विस्तीर्ण पृथिवी हमारे इस यज्ञानुष्ठान को अपने-अपने कर्मों द्वारा पूर्ण करें और कृपा पूर्वक जल वृष्टि करते हुए, सुवर्ण, पशु, रत्न, प्रजा आदि जो भी धन उपयोगी हैं, उन्हें अपने अपने कर्मों द्वारा ही पूर्ण करें ॥ ३२ ॥

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न ऽ इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणा च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम्हारे हयधद्वय तीनों वेद रूपी मंत्रों द्वारा रथ में योजित हुए हैं। अतः तुम इस अश्वयुक्त रथ पर आरूढ होओ। यह सोमाभिषवण प्रस्तर तुम्हारे मन को अभिषव कर्म में उत्पन्न शब्द से यज्ञ के अभिमुख करे। हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो। मैं तुम्हें षोडशी याग में बुलाए गए इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूं। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें षोडशी याग में आह्वान किये इन्द्र के लिए ग्रहण करता हूं ॥ ३३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे दोनों अश्व लम्बे केश वाले, युवा, दृढ़ अवयव वाले और हरित वर्ण के हैं। तुम उन्हें अपने श्रेष्ठ रथ में योजित करो। फिर यहाँ सोम पान द्वारा प्रसन्न होकर हमारी स्तुतियों को सुनो। हे सोम तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूं। हे ग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है, मैं तुम्हें षोडशी याग में बुलाए गए इन्द्र को प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ ॥ ३४ ॥

इन्द्र के हयधद्वय महान् बलशाली इन्द्र को ऋषि स्तोताओं की श्रेष्ठ स्तुतियों के पास लाते हैं और मनुष्य यजमानों के यज्ञ में भी लाते हैं ॥३५॥

यस्मान्न जातः परो ऽ अन्यो ऽ अस्ति य ऽ आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥३६
इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र ऽ एतम् ।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

जिन इन्द्र से अन्य कोई भी श्रेष्ठ नहीं हुआ, जो सभी लोकों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं, वह सोलह कलात्मक इन्द्र प्रजा के स्वामी

और प्रजा रूप से भले प्रकार व्यवहृत हुए, प्राणियों का, पालन करने के निमित्त, सूर्य, वायु, अग्नि रूप तीन तेजों में अपने तेज को प्रविष्ट करते हैं ॥ ३६ ॥

हे षोडशी ग्रह ! भले प्रकार तेजस्वी इन्द्र और वरुण दोनों ने ही तुम्हारे इस सोम का प्रथम भक्षण किया था । उन इन्द्र और वरुण के सेवनीय अन्न को उनके पश्चात् मैं भक्षण करता हूँ । मेरे द्वारा भक्षण किये जाने पर सरस्वती प्राण के सहित तृप्ति को प्राप्त हों । यह आहुति स्वाहुत हो ॥३७॥

अग्ने पवस्व स्वपा ऽ अस्मे वर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस ऽ एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वांस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥३८

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे ऽ अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ ऽ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ कर्म वाले हो । मुझ यजमान में धन की प्रतिष्ठा को स्थित करो । हमको श्रेष्ठ बल वाले महातेज की प्राप्ति हो । हे अतिग्राह्य प्रथम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें तेजदाता अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे द्वितीय ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । तेज प्रदान करने वाले इन्द्र के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ । हे अत्यन्त तेजस्वी अग्ने ! तुम सब देवताओं से अधिक तेजस्वी हो, अतः मैं तुम्हारी कृपा से सब मनुष्यों से अधिक तेजस्वी हो जाऊँ ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने ओज के सहित उठकर अभिषुत किये हुए इस सोम-रस का पान करो और अपनी चिबुक को कम्पित करो । हे द्वितीय अति-

ग्राह्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहण किये गए हो, मैं तुम्हें बल सम्पन्न इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हें ओजस्वी इन्द्र की प्रसन्नता के लिए यहाँ स्थापित करता हूँ । हे इन्द्र ! तुम ओजस्वी हो, सब देवताओं में अधिक बल वाले हो । मैं तुम्हारी कृपा से सब मनुष्यों में अधिक बलवान् होऊँ ॥ ३९ ॥

सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली सूर्य-रश्मियाँ सब प्राणियों में जाती हुई विशेष रूप से उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं, जिस प्रकार दीप्तिमान अग्नि सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं । हे तृतीय अतिग्राह्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । मैं तुम्हें ज्योतिर्मान सूर्य की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । तेजस्वी सूर्य के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ । हे ज्योतिर्मान् सूर्य ! तुम सब देवताओं में अधिक तेजस्वी हो । मैं भी तुम्हारी कृपा से सब मनुष्यों में अत्यधिक तेजस्वी होऊँ ॥ ४० ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः ।
पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ॥ ४२ ॥

यह प्रकाशमयी रश्मियाँ सब प्राणियों के जानने वाले जिन सूर्य को, सम्पूर्ण विश्व को, दृष्टि प्रदान करने के लिए उद्वहन करती हैं, तब अन्धकार दूर होने पर दृष्टि फैलती है । हे अतिग्राह्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत को मैं सूर्य के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । सूर्य के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ ४१ ॥

हे महिमामयी गौ ! इस द्रोणकलश को सूँघो । सोम की यह सार-गन्ध तुम्हारे नासारन्ध्रों में प्रविष्ट हो । तब तुम अपने श्रेष्ठ दुग्ध रूप रस के

सहित फिर हमारे प्रति वर्त्तमान होओ। इस प्रकार स्तुत तुम हमें सहस्रों धनों से सम्पन्न करो । तुम्हारी कृपा से बहुत दूध की धारों वाली गौएं और धन-ऐश्वर्य मुझे पुनः प्राप्त हो। हमारा घर उससे पुनः पूर्ण हो ॥४२॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।
एता ते ऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥
वि न ऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो ऽ अस्माँ ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे । ४४ ॥
वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं वाजे ऽ अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मण ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥ ४५ ॥

हे गौ ! तुम सब के द्वारा स्तुत्य, रमणीय, यज्ञ में आह्वान करने योग्य, देवताओं और मनुष्यों द्वारा अभिलाषित, प्रसन्नता देने वाली, ज्योति के देने वाली, अदिति के समान अदीना, दुग्धवती, अवध्य और महिमामयी हो। तुम्हारे यह अनेक नाम गुण की दृष्टि से ही हैं। इस प्रकार आह्वान की गई तुम हमारे इस देवताओं के प्रति किये जाने वाले श्रेष्ठ यज्ञ को देवताओं से कहो, जिससे वे हमारे कार्य को जान लें ॥ ४३ ॥

हे इन्द्र ! समुपस्थित युद्ध में शत्रुओं को पराजित करो। रणक्षेत्र में जाकर शत्रुओं को पतित करो। जो हमें व्यथित करे उसे घोर नर्क में डालो। हे इन्द्र ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। रणक्षेत्र में विशिष्ट होने वाले इन्द्र के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्रग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूँ ॥४४॥

हम अपने उन उपास्यदेव का आह्वान करते हैं, जो महाव्रती, वाच-

रूपती, मन के समान वेगवान् सृष्टिकर्त्ता और प्रलय के कारण रूप हैं। उन इन्द्र को अन्न की समृद्धि और रक्षा के लिए आहूत करते हैं। हे इन्द्र ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत को विश्वकर्मा इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्रग्रह! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें विश्वकर्मा इन्द्र की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूँ ॥ ४५ ॥

विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मण ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥ ४६ ॥
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

हे परमात्म देव! हे विश्वकर्म्मन्! तुम भक्तों की वृद्धि करने वाले हवि प्रदान द्वारा वृद्धिप्रद वाक्यों को चाहने वाले हो। तुम्हें प्राचीन ऋषि आदि भी प्रणाम करते थे। तुमने इन्द्र को विश्व की रक्षा करने और स्वयं अवध्य रहने योग्य किया है। वे इन्द्र वज्र ग्रहण कर आह्वान के योग्य हुए हैं, इसीलिए सब प्रणाम करते हैं। हे भगवन्! तुम्हारे हवि रूप पराक्रम से इन्द्र की यह महिमा है। हे ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। तुम्हें परमात्मदेव की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह! यह तुम्हारा स्थान है, तुम्हें विश्वकर्मा की प्रसन्नता के लिए यहाँ स्थापित करता हूँ ॥४६॥

हे प्रथम अदाभ्य ग्रह सोम! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, गायत्री छन्द के वरण योग्य तुम्हें मैं अग्नि की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ। हे द्वितीय ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो और अनुष्टुप छन्द के वरणीय हो, मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे तृतीय अदाभ्य ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत और जगती छन्द से वरण करने योग्य हो, मैं तुम्हें विश्वेदेवों की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे अदाभ्य नामक

गृहीत सोम ! अनुष्टुप छन्द तुम्हारी स्तुति के लिए प्रयुक्त है ॥ ४७ ॥

व्रशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । शुक्रं त्वा शुक्र ऽ आधूनोम्यह्नो रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

ककुभ॑ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

हे सोम ! इधर-उधर घूमते हुए मेघों के पेट में जो जल हैं, उनकी वृष्टि के लिए तुम्हें कम्पायमान करता हूँ। हे सोम संसार का कल्याण करने वाले शब्दवान् मेघों के उदर में जो जल हैं, उनकी वृष्टि के निमित्त मैं तुम्हें कम्पित करता हूँ। हे सोम ! जो उदर में जलयुक्त मेघ हमको अत्यन्त प्रसन्न करने वाले हैं, उनकी वृष्टि के निमित्त मैं तुम्हें कम्पायमान करता हूँ। हे सोम ! उदरस्थ जल वाले और अत्यन्त तृप्ति देने वाले जो मेघ हैं, उनकी वृष्टि के निमित्त मैं तुम्हें कम्पायमान करता हूँ। हे सोम ! जो मेघ अमृत रूप जल से सम्पन्न हैं, उनकी वृष्टि के लिए मैं तुम्हें कँपाता हूँ। हे सोम ! तुम पवित्र हो, मैं तुम्हें पवित्र, स्वच्छ जल में कम्पित करता हूँ और तुम्हें दिवस रूप सूर्य की रश्मियों द्वारा भी कम्पित करता हूँ ॥ ४८ ॥

हे सोम ! तुम सेंचन समर्थ हो, तुम्हारा ककुद् महान् आदित्य के समान तेजस्वी होता है। महान् आदित्य पवित्र सोम के पुरोगामी हैं अथवा सोम ही सोम के पुरोगामी हैं। हे सोम ! तुम अनुपहिंसित, चैतन्य नाम वाले हो। मैं ऐसे तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥४९॥

हे देवतारूप सोम ! तुम्हें प्राप्त करके सभी कामना वाले होते है, अत तुम अग्नि के भक्ष्य भाव को प्राप्त होओ ! हे सोम ! तुम तेजस्वी हो और इन्द्र के प्रिय अन्नरूप हो। हे सोम ! तुम हमारे मित्र रूप और विश्व देवों के प्रिय अन्न रूप हो ॥५०॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृति स्वाहा ।
उपसृजन्धरुण मात्रे धरुणो मातर धयन् ।
रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥५१॥
सत्रस्य ऽ ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽ अभूम ।
दिव पृथिव्या ऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्व ज्योति ॥५२॥

हे गौओं ! तुम इस यजमान से प्रीति करने वाली होओ। तुम इस यजमान से सन्तुष्ट रहती हुई इसी के यहाँ रमण करो। यह आहुति स्वाहुत हो। धारणकर्त्ता अग्नि, धारणकर्त्ता, पार्थिव अग्नि को आविर्भूत करता हुआ और पृथिवी के रस का पान करता हुआ हम पुत्र पौत्रादि ऐश्वर्यों से पुष्ट करे। यह आहुति स्वाहुत हो ॥५१॥

हे हविर्धान ! तुम यज्ञ की समृद्धि के समान हो। हम यजमान तुम्हारी कृपा से सूर्य रूप ज्योति को पाते हुए अमृतत्व वाले होने की कामना करते है और पृथिवी से स्वर्ग पर चढ़े हुए इन्द्रादि देवता जान लें कि हम उस दैदीप्यमान स्वर्ग को देखने की इच्छा करते हैं ॥५२॥

युव तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो न पृतन्यादप तन्तमिद्धत
वज्रेण तन्तमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहन यदिनक्षत् ।
अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वत ।
भूर्भुव स्व सुप्रजा प्रजाभि स्याम सुवीरा वीरै सुपोषा पोषै ॥५३
परमेष्ठ्यभिधीत प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायाम घो ऽ अच्छेत ।
सविता सन्या विश्वकर्म्मा दीक्षाया पूषा सोमक्रयण्याम् ॥५४॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऽऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ।। ५५ ।।

हे संग्राम में आगे बढ़ने वाले और युद्ध करने वाले इन्द्र और पर्वत ! तुम उसी शत्रु को अपने वज्र रूप तीक्ष्ण आयुध से हिंसित करो जो शत्रु सेना लेकर हमसे संग्राम करना चाहे । हे वीर इन्द्र ! जब तुम्हारा वज्र अत्यन्त गहरे जल में दूर से भी दूर रहते हुए शत्रु की इच्छा करे, तब वह उसे प्राप्त करले। वह वज्र हमारे सब ओर विद्यमान शत्रुओं को भले प्रकार चीर डाले। हे अग्ने, वायो और सूर्य ! तुम्हारी कृपा प्राप्त होने पर हम श्रेष्ठ सन्तान वाले वीर पुत्रादि से युक्त हों और श्रेष्ठ सम्पत्ति को पाकर धनवान् कहावें ॥ ५३ ॥

सोमयाग में प्रवृत्त सोम के परमेष्ठी नाम होने पर यजमान, किसी विघ्न के उपस्थित होने पर 'परमेष्ठिने स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। जब यजमान सोम के निमित्त वाणी उच्चारित करे तब प्रजापति नाम होता है। किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित होने पर 'प्रजापतये स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। सोम जब अभिमुख प्राप्त होता है तब अन्ध नाम वाला होता है। किसी प्रकार के विघ्न होने पर 'अन्धसे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। यथा भाग रक्षित होने पर सोम सविता नाम वाला होता है । विघ्न की उपस्थिति पर 'सवित्रे स्वाहा' मंत्र से आज्य की आहुति दे। दीक्षा में सोम विश्वकर्मा नाम वाला होता है। विघ्न उपस्थित हो तो 'विश्वकर्मणे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे । क्रयणी गौ को लाने में सोम का पूषा नाम होता है। यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'पूष्णे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे ॥ ५४ ॥

क्रयार्थ प्राप्त होने पर सोम इन्द्र और मरुत् नामक होता है। विघ्न उपस्थित होने पर 'इन्द्राय मरुद्भयश्च स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। क्रय करने के समय सोम असुर नाम वाला होता है। कोई विघ्न उपस्थित होने पर 'असुराय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। क्रय किया हुआ सोम मित्र नाम वाला होता है । कोई विघ्न समुपस्थित होने पर 'मित्राय

स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। यजमान के अङ्क में प्राप्त हुआ सोम 'विष्णु' संज्ञक होता है। उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसकी शान्ति के निमित्त 'विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। गाड़ी में रखकर वहन किया जाता हुआ सोम विश्व-पालक विष्णु नामक होता है। उस समय कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'विष्णवे नरन्धिषाय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे ॥ ५५ ॥

प्रोह्यमाणः सोम ऽ आगतो वरुण ऽ आसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्र ऽ इन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥ ५६ ॥
विश्वे देवा ऽ अᳬशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपा ऽ आप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः । शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥

शकट द्वारा आने वाला सोम, सोम होता है। उस समय विघ्न के उपस्थित होने पर 'सोमाय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति प्रदान करे। सोम रखने की आसन्दी में रखित सोम वरुण नाम वाला होता है। उस समय किसी विघ्न के उपस्थित होने पर 'वरुणाय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। आग्नीध्र में विद्यमान सोम अग्नि नाम वाला होता है। उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'अग्नये स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। हविर्धान में विद्यमान सोम इन्द्र नाम वाला होता है। उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'इन्द्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। कूटने के लिए उपस्थित सोम अथर्व नामक होता है। उस समय किसी विघ्न के उपस्थित होने पर 'अथर्वाय स्वाहा' से आज्य की आहुति दे ॥ ५६ ॥

खंडों में कण्डन करके रखा हुआ सोम 'विश्वेदेवा' नामक होता है। उस समय विघ्न उपस्थित होने पर 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' से घृताहुति दे। वृद्धि को प्राप्त सोम उपासकों का रक्षक और विष्णु नामक होता है। उस समय विघ्न उपस्थित होने पर 'विष्णवे आप्रीतपाय स्वाहा' से घृत की आहुति दे। सोम का अभिषव हो तब वह यम नाम वाला होता है। उस

समय विघ्न उपस्थित हो तो 'यमाय स्वाहा' से घृत की आहुति दे। अभिषुत सोम विष्णु संज्ञक है। उस समय विघ्न उपस्थित होने पर 'विष्णवे स्वाहा' से घृताहुति दे। छाना जाता हुआ सोम वायु संज्ञक है। उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'वायवे स्वाहा' से घृत की आहुति दे। छन कर शुद्ध हुआ सोम शुक्र होता है। उस समय यदि विघ्न हो तो 'शुक्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे! छना हुआ सोम दुग्ध में मिश्रित किया जाता हुआ भी शुक्र संज्ञक ही होता है। उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'शुक्राय स्वाहा' से घृताहुति दे। सत्तू में मिश्रित सोम का नाम मन्थी होता है। उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'मन्थिने स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति दे ॥ ५७ ॥

विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृतो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥५८॥
सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा।
या पत्येते ऽअप्रतीता सहोभिर्विष्णू ऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥५९॥
देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

चमस पात्रों में गृहीत सोम विश्वेदेवों के नाम वाला होता है। उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति दे। ग्रहहोम को उद्यत सोम असु नाम वाला होता है। उस समय उपस्थित विघ्न की शांति के निमित्त 'असुवे स्वाहा' मन्त्र से घृत की आहुति दे। हूयमान सोम रुद्र नाम वाला है। उस समय विघ्न हो तो 'रुद्राय स्वाहा' से आज्याहुति दे। हुत शेष सोम भक्षणार्थ लाया हुआ वात नाम वाला है। उस समय उपस्थित विघ्न के निवारणार्थ 'वाताय स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति दे। हे ब्रह्मन् ! इस हुत शेष सोम का पान करो, इस प्रकार निवेदित

सोम नृचक्ष नाम वाला होता है । उस समय कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसके निवारणार्थ 'नृचक्षसे स्वाहा' मन्त्र पूर्वक घृताहुति दे । भक्षण किया जाता सोम भक्ष नाम वाला है । उस समय उपस्थित विघ्न को दूर करने के लिए 'भक्षाय स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति प्रदान करे । भक्षण करने पर सोम नाराशंस पितर नाम वाला होता है । उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'पितृभ्यो नाराशंसेभ्य स्वाहा' मन्त्र के द्वारा घृत की आहुति प्रदान करे ॥ ५८ ॥

अवभृथ के निमित्त उद्यत सोम सिन्धु नामक होता है । उस समय उपस्थित हुए विघ्न के कारण 'सिन्धवे स्वाहा' से आज्याहुति दे । ऋजीष कुम्भ में जल के ऊपर अवस्थित होता हुआ सोम समुद्र होता है । उस समय विघ्न के उपस्थित होने पर 'समुद्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति दे । ऋजीष कुम्भ में जल मग्न किया जाता सोम सलिल होता है । उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'सलिलाय स्वाहा' मन्त्र पूर्वक घृताहुति दे । जिन विष्णु और वरुण के ओज द्वारा सब लोक अपने अपने स्थान पर ठहरे हुए हैं, जो विष्णु और वरुण अपने पराक्रम से अत्यन्त पराक्रमी हैं, जिनके बल के सामने कोई ठहर नहीं सकता, वे तीनों लोकों के स्वामी यज्ञ में प्रथम आहूत होते हैं । उन्हीं विष्णु और वरुण की ओर सोम गया और समान कार्य वाले होने से विष्णु ही वरुण और वरुण ही विष्णु हैं । यह मङ्गलमयी हवि भी उनके ही समीप गई ॥ ५९ ॥

स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं के निमित्त यह यज्ञ उनकी ओर गया । स्वर्ग में स्थित हुए उस यज्ञ के फल रूप विशिष्ट भोग के साधन रूप ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हों । स्वर्ग से उतरता हुआ यह सोम मनुष्यों के लोक में आता हुआ जब अन्तरिक्ष लोक में पहुँचे तब मुझे असंख्य धन प्राप्त हो । यह यज्ञ धूम्रादि के द्वारा पितरों के पास जाकर जब पृथिवी पर आवे तब उस स्थान में स्थित यज्ञ के फल से मुझे ऐश्वर्य की प्राप्ति हो । यह यज्ञ जिस लोक में भी गया हो, वहीं स्थित फल रूप सुख से मुझे सम्पन्न करे ॥ ६० ॥

चतुस्त्रिँशत्तन्तवो ये वितत्निरे य ऽ इमं यज्ञँ स्वधया ददन्ते ।
तेषाँ छिन्नँ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो ऽ अप्येपु देवान् ॥६१॥
यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो ऽ अष्टधा दिवमन्वाततान् ।
स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाँ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥६२
आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमाभर स्वाहा ॥६३

चौंतीस प्रायश्चितों के पश्चात् यज्ञ की वृद्धि करने वाले प्रजापति आदि चौंतीस देवता इस यज्ञ को बढ़ाते हुए अन्नादि का पोषण प्रदान करते हैं, उन यज्ञ विस्तारक देवताओं का जो अंश छिन्न हुआ है, उसको घर्म पात्र में एकत्र करता हूँ । यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो और देवताओं की प्रसन्नता के लिए उनकी ओर गमन करे ॥ ६१ ॥

जो यज्ञ आहुति वाला है, उस यज्ञ का प्रसिद्ध फल अनेक प्रकार से बढ़े और आठों दिशाओं में व्याप्त हो । पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग में व्याप्त हुआ वह यज्ञ मुझे सन्तान और महानता प्रदान करे । मैं धन की पुष्टि को और सम्पूर्ण आयु को पाऊँ । यह घृताहुति स्वाहुत हो ॥६२॥

हे सोम ! तुम इस यूप स्तम्भ को शुद्ध करो और हमें सुवर्ण, अश्व, गौ और अन्न आदि सब प्रकार से दो । यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ६३ ॥

नवमोऽध्यायः

ऋषि—इन्द्राबृहस्पती:, बृहस्पतिः, दधिक्रावा:, वसिष्ठः, नाभानेदिष्ठः, तापसः, वरुणः, देववातः । देवता—सविता इन्द्रः, अश्वः, प्रजापतिः, वीरः, इन्द्राबृहस्पती:, बृहस्पतिः, यज्ञः, दिशः, सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्य्यबृहस्पतयः, अर्य्यमादिमन्त्रोक्ताः, अग्निः, पूषादयो मन्त्रोक्ताः, मित्रादयो मन्त्रोक्ताः, वस्वादयो मन्त्रोक्ताः, विश्वेदेवाः, रक्षोघ्नः, यजमान, । छन्द—त्रिष्टुप्; पंक्तिः; शक्वरी; कृतिः; अष्टि; जगती; उष्णिक्; अनुष्टुप्; गायत्री; बृहती ।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ॥१॥
ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।
अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।
पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

हे सर्व प्रेरक सवितादेव ! इस वाजपेय नामक यज्ञ को प्रारम्भ करो । इस यजमान को ऐश्वर्य-प्राप्ति के निमित्त अनुष्ठान को प्रेरित करो । दिव्य अन्न के पवित्र करने वाले रश्मिवंत सूर्य हमारे अन्न को पवित्र करें । वाणी के स्वामी वाचस्पति हमारे हविरन्न का आस्वादन करें । यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १ ॥

हे प्रथम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में इन्द्र की प्रसन्नता के लिए गृहीत हो । तुम इस स्थिर लोक में, मनुष्यों के मध्य रहने वाले, मन में रमने वाले और इन्द्र के प्रिय हो । मैं गुमें तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हें इन्द्र की प्रीति के निमित्त यहाँ स्थापित करता हूँ । हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । जल और घृत में स्थित होने वाले तथा आकाश में भी स्थित होने वाले हो । मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । इन्द्र की प्रीति के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे तृतीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । तुम पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, दुःख रहित देव-स्थान और देवताओं में स्थित होने वाले हो । मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे इन्द्र ! यह तुम्हारा स्थान है । इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ २ ॥

अपा ँ रसमुद्वयस ँ सूर्ये सन्त ँ समाहितम् ।
अपा ँ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥३॥
ग्रहा ऽ ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् ।
तेषाँ विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्ज ँ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।
सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥४॥
इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाज ँ सेत् ।
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ५ ॥

हे चतुर्थ ग्रह ! सूर्य में विद्यमान सभी अन्नों के उत्पादक जलों के सार रूप वायु और उनके भी सार रूप प्रजापति हैं, हे देवगण ! उन श्रेष्ठ प्रजापति को तुम्हारे लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, तुम्हें प्रजापति के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । प्रजापति की प्रसन्नता के लिए तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥३॥

हे ग्रहो ! अन्न रस के आह्वान के कारण रूप तुम मेधावी इन्द्र के लिए श्रेष्ठ मति को प्राप्त कराते हो । मैं उन यजमानों के लिए अन्न-रस को भले प्रकार से ग्रहण करता हूँ । हे पंचम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । तुम्हें इन्द्र की प्रीति के लिए यहाँ स्थापित करता हूँ । हे सोम ! सुराग्रह ! तुम दोनों सम्मिलित हो । तुम दोनों ही मुझे कल्याण से युक्त करो । हे सोम और सुराग्रह ! तुम दोनों परस्पर अलग हो । मुझे पापों से अलग रखो ॥ ४ ॥

हे अन्नदाता रथ ! तुम इन्द्र के वज्र के समान हो । यह यजमान तुम्हारी वज्र के समान महायता को प्राप्त होकर अन्न लाभ करे । अन्न की कामना में लगे हुए हम इस विश्व-निर्मात्री अखंडित, पूज्या माता पृथिवी को स्तुति द्वारा अपने अनुकूल करते हैं, जिसमें यह सब लोक प्रविष्ट हैं। सर्वप्रेरक सविता देव इस पृथिवी में हमें दृढ़ता पूर्वक प्रतिष्ठित करें ॥५॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो व ऽ ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥ ६ ॥

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः ।
ते ऽ अग्रे ऽश्वमयुञ्जँस्ते ऽ अस्मिन् जवमादधुः ॥ ७ ॥

जलों में अमृत है और जलों में ही आरोग्यदायिनी तथा पुष्टि देने वाली औषधियाँ स्थित हैं । हे अश्वो ! इस प्रकार से अमृत और औषधि रूप जलोंमें वेगवान् होकर जलों के प्रशस्त मार्गों में प्रविष्ट होओ । हे उज्ज्वल जलो ! तुम्हारी जो ऊँची लहरें शीघ्रगामिनी और अन्नदात्री हैं, उनके द्वारा सींचा गया यह अश्व यजमान के द्वारा अभीष्ट अन्न को देने में सर्वदा समर्थ हो ॥ ६ ॥

वायु, मन अथवा सत्ताइस गन्धर्व और पृथिवी के धारणकर्त्ता नक्षत्र, वातादि के प्रथम अश्व को रथ में योजित करते हैं और उन्होंने इस अश्व में अपने-अपने वेग रूप अंश को धारण किया है ॥ ७ ॥

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमान ऽ इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस ऽ आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥८॥

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो ऽ अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥९॥

देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवस ऽ इन्द्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।

देवस्याहᳪं सवितुः सवे सत्यप्रववसो वृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ।
देवस्याहᳪं सवितुः सवे सत्यप्रसवस ऽ इन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥१०॥

हे अश्व ! योजित किये जाने पर तुम वायु के समान वेग वाले होओ। दक्षिण भाग में खड़े हुए इन्द्र के अश्व के समान सुशोभित होओ। तुम्हें सब के जानने वाले मरुद्गण रथ में जोड़ें और त्वष्टा तुम्हारे पावों में वेग की स्थापना करें ॥ ८ ॥

हे अश्व ! तुम्हारा जो वेग हृदय में स्थित है, जो वेग श्येन पक्षी में है और जो वेग वात में स्थित है,, तुम अपने उस वेग से वेगवान् होकर हमारे लिए अन्न के विजेता होओ और युद्ध में शत्रु-सैन्य को हराकर हमारे लिए यथेष्ट अन्न को जीतो । हे अन्न विजेता अश्वो ! तुम अन्न की ओर जाते हुए वृहस्पति के भाग चरु को सूँघो ॥ ६ ॥

सत्य की प्रेरणा देने वाले सविता देव की अनुज्ञा में रहने वाला मैं वृहस्पति सम्बन्धित उत्तम लोक स्वर्ग में चढ़ता हूँ। सत्य प्रेरक सवितादेव की अनुज्ञा में रहने वाला मैं इन्द्र से संबंधित, श्रेष्ठ स्वर्ग की इच्छा से चढ़ता हूँ। सत्य-प्रेरक सवितादेव की अनुज्ञा वश मैं वृहस्पति के श्रेष्ठ स्वर्ग की कामना से इस रथ के पहिये पर चढ़ता हूँ । सत्य-प्रेरक सवितादेव की अनुज्ञा के वशीभूत हुआ मैं इन्द्र सम्बन्धी श्रेष्ठ स्वर्ग की कामना से इस चक्र पर आरुढ़ हुआ हूँ ॥ १० ॥

वृहस्पते वाजं जय वृहस्पतये वाचं वदत वृहस्पतिं वाजं जापयत ।
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥ ११ ॥
एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया वृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत वृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ।
एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

हे दुंदुभियो ! तुम वृहस्पति के प्रति इस प्रकार निवेदन करो कि हे वृहस्पते ! तुम अन्न को जीतो। हे दुंदुभियो ! तुम वृहस्पति को अन्न-लाभ

कराओ । हे दुंदुभियो ! तुम इन्द्र से इस प्रकार कहो कि हे इन्द्र ! तुम अन्न पर विजय पाओ । तुम स्वयं भी इन्द्र को अन्न के जीतने वाले बनाओ ॥११॥

हे दुंदुभियो ! तुम्हारी वह वाणी सत्य हो, जिसके द्वारा बृहस्पति को अन्न को जिताया । अब तुम प्रसन्न होकर बृहस्पति के रथ को दौड़ने वाला करो ॥ १२ ॥

देवस्याहॅं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥ १३ ॥

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो ऽअपिकक्ष ऽआसनि । क्रतुं दधिक्रा ऽ अनु सॅं सनिष्यदत्पथामङ्काॅंस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतो ऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

सवितादेव की आज्ञा मे रहने वाला मैं अन्न-जेता बृहस्पति-सम्बंधी अन्न को जीतूँ । हे अश्वो ! तुम अन्न जेता हो । तुम मार्गों को खोदते हुए द्रुतगति से योजनों को पार करो । तुम अठारह निमेष मात्र में ही योजन तक चले जाते हो ॥ १३ ॥

यह अश्व ग्रीवा, कक्ष और मुख में भी बँधा हुआ है । वह मार्ग को रोकने वाले पत्थर, धूल, काँटे आदि को रोकने वाला और रथी के अभिप्राय को समझ कर उसके अनुसार द्रुतगति से दौड़ता है । यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १४ ॥

यह अश्व धूल, काँटे, पाषाण आदि को लाँघता हुआ वेग से जाता है । जैसे पक्षी के पंख शोभित होते हैं वैसे ही इस अश्व के देह में अलंकारादि सुशोभित हैं ॥ १५ ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥
ते नो ऽ अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।
सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥

देव-कार्य के लिए यज्ञ में आहूत किये जाने पर जो प्रचुर दौड़ने वाले और श्रेष्ठ प्रकाश युक्त हैं, वे अश्व सर्प, भेड़िया, राक्षसादि का नाश करके कल्याण के देने वाले हैं। वे हमसे नई-पुरानी सब प्रकार की व्याधियों को दूर करें ॥ १६ ॥

यजमान के मन के अनुसार चलने वाले वे अश्व हमारे आह्वान को सुनने वाले हैं। वे कुटिल मार्ग वाले, अनेकों को अन्नादि से तृप्त करते हैं। वे यज्ञ स्थान को पूर्ण करने वाले अश्व हमारे आह्वान को सुन कर युद्ध से अपरिमित धनों को जीत लाते हैं ॥ १७ ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽ अमृता ऽ ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो ऽ अमृतत्त्वेन गम्यात्।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥
आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन ऽ आन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

हे अश्वो ! तुम मेधावी और अविनाशी हो। तुम हमें सभी अन्न और धनों में प्रतिष्ठित करो। तुम दौड़ने से पहले सूँघे हुए माधुर्यमय हवि का पान करके तृप्ति को प्राप्त होओ और देवयान मार्गों से जाओ ॥ १८ ॥

उत्पन्न अन्न हमारे घर मे आवे। यह सर्व रूप वाले स्वर्ग, पृथिवी हमारे माता पिता रूप से हमारी रक्षा के लिए आगमन करें। यह सोम हमारे पीने में अमृत रूप हो। हे अश्वो! तुम अन्न को जीतने के लिए चरु को शुद्ध करते हुए बृहस्पति से संबंधित भाग को सूँघो ॥ १६ ॥

व्यापक सम्वत्सर और आदित्य के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। प्रजापति के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। सर्व व्यापक प्रजापति के निमित्त स्वाहुत हो। पुनः पुनः प्रकट होने वाले के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। यज्ञरूप के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जगत के स्थिति और कारण के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। दिन के स्वामी के लिए आहुति स्वाहुत हो। मुग्ध नाम वाले के लिए स्वाहुत हो। विनाशशील नाम वाले के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। त्रिभुवन की सीमा वाले क लिए यह आहुति स्वाहुत हो। सब लोकों के स्वामी के निमित्त आहुति स्वाहुत हो। सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने वाले के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २० ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं
यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
प्रजापतेः प्रजा ऽअभूम स्वर्देवा ऽअगन्मामृता ऽअभूम ॥ २१ ॥

अस्मे वो ऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाᳬसि सन्तु वः ।
नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या ऽइयं ते राडयन्तासि यमनो
ध्रुवोऽसि धरुणः ।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

इस वाजपेय यज्ञ के फल से हमारी आयु-वृद्धि हो। इस वाजपेय यज्ञ के फल से हमारे प्राणों की वृद्धि हो। इस यज्ञ के फल से हमारी नेत्रेन्द्रिय समर्थ हो। इस यज्ञ के फल से हमारी कर्णेन्द्रिय समर्थ हो। इस यज्ञ के फल से हमारी पीठ का बल बढ़े। इस यज्ञ के फल से यज्ञ की क्षमता बढ़े।

हम प्रजापति की सन्तान होगए। हे ऋत्विजो ! हमको स्वर्ग की प्राप्ति हुई है। हम अमृतत्व वाले हुए हैं ॥ २१ ॥

हे चारों दिशाओं ! तुमसे सम्बन्धित इन्द्रियाँ हम में हों। तुम्हारा धन हमें प्राप्त हो और तुमसे सम्बन्धित यज्ञ कर्म और तेज हमारे लिए हों। माता के समान पृथिवी को नमस्कार है, पृथिवी माता को नमस्कार है। हे आसन्दी ! यह तुम्हारा राष्ट्र है। हे यजमान ! तुम सब के नियन्ता हो। स्वयं भी संयमशील, स्थिर और धारक हो। तुम सब प्रजा पर शासन करने वाले और राज्य की शांति-रक्षा के लिए कृतकार्य हो। तुम्हें धन की वृद्धि और प्रजा पालन के निमित्त इस स्थान पर उपविष्ट करते हैं ॥ २२ ॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु ।
ता ऽ अस्मभ्य मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो ऽ अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

अन्न के उत्पादनकर्त्ता प्रजापति ने सर्व प्रथम, सृष्टि के आदि में औषधि और जलों के मध्य इस सोम रूप तेजस्वी पदार्थ को उत्पन्न किया। सोम के उत्पादक वे औषधि और जल हमारे लिए रसयुक्त मधुरता से सम्पन्न हों। यज्ञादि कर्मों में उन प्रमुख के द्वारा अभिषिक्त हुए हम अपने राज्य में सब का कल्याण करने वाले होते हुए सदा सावधानी पूर्वक रहें ॥२३॥

इस सब अन्न के उत्पादक परमात्मा ने इस स्वर्ग को और इन सब लोकों को रचा है। वे सब के स्वामी मुझ हवि देने की इच्छा न करने वाले

की बुद्धि को आहुति-दान के लिए प्रेरित करते हैं। ये हमें पुत्रादि से सम्पन्न धन प्रदान करें। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २४ ॥

अन्न के उत्पादक प्रजापति ने इन सब लोकों को उत्पन्न किया। ये प्रजापति सब के जानने वाले और प्राचीनकालीन हैं। वे हमें पुत्रादि से सम्पन्न धन की पुष्टि दें। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २५ ॥

सोमँ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यान्विष्णुँ सूर्य्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिँ स्वाहा ॥ २६ ॥
अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वाचं विष्णुँ सरस्वतीँ सवितारं च वाजिनँ स्वाहा ॥२७॥

अन्न के उत्पन्न करने वाले प्रजापति ने हमारा पालन करने के निमित्त राजा सोम, वैश्वानर अग्नि, द्वादश आदित्य, ब्रह्मा और बृहस्पति को नियुक्त किया है। हम उन देवरूप प्रजापति को आहूत करते हैं। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २६ ॥

हे प्रभो ! तुमने अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, विष्णु आदि को सब प्राणियों को अन्न देने के लिए रचा है। इनको धन प्रदान के लिए प्रेरित करो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २७ ॥

अग्ने ऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वँ हि धनदा ऽअसि स्वाहा ॥ २८ ॥
प्र नो यच्छत्वर्य्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः ।
प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! इस यज्ञ में हमारे हितकारी वचनों को अभिमुख होकर कहो। हमारे लिए श्रेष्ठ मन वाले होओ। हे विजेता श्रेष्ठ ! तुम स्वभाव से ही धन देने वाले हो, अतः हमको भी धन दो। तुम हमारी याचना पूर्ण

करने में समर्थ हो अतः हमारे निवेदन को स्वीकार करो । यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २८ ॥

हे परमात्मन् ! तुम्हारी कृपा से अर्यमा हमें इच्छित प्रदान करें । पूषा भी काम्य धन दें । बृहस्पति कामना पूरी करें और वाक्देवी सरस्वती भी हमें अभीष्ट ऐश्वर्य देने वाली हों ॥ २९ ॥

सर्वप्रेरक सविता की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों द्वारा मैं तुझ यजमान का बृहस्पति के साम्राज्य से अभिषेक करता हूँ। हे यजमान मैं तुम्हें सरस्वती के ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित करता हूँ । वे वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती नियमन करें । मैं अमुक नाम वाले यजमान को अभिषिक्त करता हूँ ॥ ३० ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥३१॥
पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश ऽ उदजयत्ता ऽ उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ।३२

एकाक्षर के प्रभाव से अग्नि ने उत्कृष्ट प्राण को जीता है। मैं भी उस प्राण को एकाक्षर के प्रभाव से ही जीतूँ । दो अक्षर वाले छन्द से अश्विनीकुमारों ने दो चरण वाले मनुष्यों को भले प्रकार जीता है, मैं भी द्व्यक्षर वाले छन्द से मनुष्यों पर विजय पाऊँ । तीन अक्षर छन्द के प्रभाव से विष्णु ने तीनों लोकों को जीत लिया, मैं भी उनके प्रभाव से तीनों लोकों का जीतने वाला होऊँ । चतुरक्षर छन्द से सोम देवता ने सब चार पाँव वाले पशुओं को जीता है। मैं भी उनके प्रभाव से उन पशुओं को जीतूँ ॥३१॥

पंचाक्षरी छन्द के प्रभाव से पूषा ने पाँचों दिशाओं को भले प्रकार जीता है, मैं भी उसी प्रकार (ऊपर की दिशा समेत) पाँचों दिशाओं को भले प्रकार जीतूँ । षडक्षर छन्द से सवितादेव ने छैओं ऋतुओं को जीत

लिया है, मैं भी उसी प्रकार उन छओं ऋतुओं पर जय लाभ करूँ । सप्ताक्षर छन्द के द्वारा मरुद्गण ने सात गवादि ग्राम्य पशुओं को जीत लिया । मैं भी उन्हें उसी प्रकार जीतूँ । अष्टाक्षर छन्द के बल से गायत्री छन्द के अभिमानी देवता को बृहस्पति ने जीता है । मैं भी उसी अष्टाक्षर छन्द से उसे जीत लूँ ॥ ३२ ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत॑ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र ऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेष विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥३३॥

वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदश॑ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेष॑ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दश॑ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम् ।
आदित्या पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदश॑ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदिति षोडशाक्षरेण षोडश॑ स्तोममुदजयत्तामुज्जेष प्रजापति सप्तदशाक्षरेण सप्तदश॑ स्तोममुदजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

एष ते निरृते भागस्त जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्य पुर सद्भ्य स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्य स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्य पश्चात्सद्भ्य स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य ऽ उत्तरासद्भ्य स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य ऽ उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्य स्वाहा ॥ ३५ ॥

नवाक्षर मन्त्र के प्रभाव से मित्र देवता ने त्रिवृत स्तोम को जीत लिया । मैं भी उसे नवाक्षर स्तोत्र के द्वारा अपने वश में करूँ । दशाक्षर मन्त्र से वरुण ने विराट् को जीत लिया है । मैं भी उसी प्रकार विराट् को जीतूँ । एकादश अक्षर वाले स्तोत्र से इन्द्र ने त्रिष्टुप् छन्द के अभिमानी देवता को अपने वश में किया है, मैं भी उसे उसी प्रकार अपने वश में करूँ । द्वादशाक्षर स्तोत्र से विश्वेदेवों ने जगती छन्द के अभिमानी देवता को अपने अधिकार में किया है । मैं भी उसे उसी प्रकार अपने वश में करूँ ॥३३॥

त्रयोदशाक्षर छन्द से वसुगण ने त्रयोदश स्तोम को जीत लिया ।

मैं भी उसे उसी प्रकार जीत लूँ । चतुर्दशाक्षर छन्द से रुद्रगण ने चतुर्दश स्तोम को भले प्रकार जीत लिया । मैं भी उसे उसी प्रकार जीतूँ । पंचदशाक्षर छंद के द्वारा आदित्यगण ने पन्द्रहवें स्तोम पर विजय प्राप्त की है, मैं भी उसे उसी प्रकार जीतने वाला होऊँ । षोडशाक्षर छन्द के प्रभाव से अदिति ने सोलहवें स्तोम को भले प्रकार जीत लिया है, मैं भी उसे श्रेष्ठ रूप से अपने वश में करूँ । सप्तदशाक्षर छन्द के प्रभाव से प्रजापति ने सत्तरहवें स्तोम को उत्कृष्ट रूप से जीत लिया है, मैं भी उसे उत्कृष्ट प्रकार से जीत लूँ ॥ ३४ ॥

हे पृथिवी ! तुम अपने इस भाग का प्रसन्नता पूर्वक सेवन करो । यह आहुति स्वाहुत हो । जिन पूर्व दिशा में रहने वाले देवताओं के नेता अग्नि हैं, उनके लिए यह आहुति स्वाहुत हो । दक्षिण दिशा में रहने वाले जिन देवताओं के नेता यम हैं, उनके लिए स्वाहुत हो । पश्चिम में निवास करने वाले जिन देवताओं के नेता विश्वेदेवा हैं, उनके निमित्त स्वाहुत हो । उत्तर दिशा में वास करने वाले जिन देवताओं के नेता मित्रावरुण अथवा मरुद्गण हैं, उन देवताओं के लिए यह आहुति स्वाहुत हो । जो देवता अन्तरिक्ष में या स्वर्ग में वास करते हैं, जो हव्य सेवन करने वाले हैं, जिनके नेता सोम हैं, उन देवताओं के लिए यह स्वाहुत हो ॥३५॥

ये देवा ऽ अग्निनेत्राः पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा ऽ उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥३६॥

अग्ने सहस्व पृतना ऽ अभिमातीरपास्य ।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

पूर्व में निवास करने वाले जिने देवताओं के नेता अग्नि हैं, उनके लिए यह आहुति स्वाहुत हो । दक्षिण में निवास करने वाले जिन देवताओं के नेता यम हैं, उनके लिए स्वाहुत हो । पश्चिम में निवास करने वाले जिन

देवताओं के नेता विश्वेदेवा हैं, उनके लिए स्वाहुत हो । जो देवता उत्तर में निवास करते हैं, जिनके नेता मरुद्गण या मित्रावरुण हैं, उनके लिए स्वाहुत हो । ऊपर के लोकों में निवास करने वाले जिन देवताओं के नेता सोम हैं, उन हव्यसेवी देवताओं के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ३६ ॥

हे अग्ने ! तुम शत्रु-सैन्यों को हराओ । शत्रुओं को चीर डालो । तुम किसी के द्वारा रोके नहीं जा सकते । तुम शत्रुओं का तिरस्कार कर इस अनुष्ठान करने वाले यजमान को तेज प्रदान करो ॥ ३७ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
उपाꣳशोर्वीर्य्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा वधायाव-धिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

सविता त्वा सवानाꣳ सुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाच ऽ इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

इमं देवा ऽ असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।
इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश ऽ एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ ४० ॥

सब को कर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाले सवितादेव की प्रेरणा से अश्विद्वय की भुजाओं से और पूषा के दोनों हाथों से, उपांशु ग्रह के पराक्रम से तुम्हें आहुति देता हूँ । यह आहुति स्वाहुत हो । हे स्रुव ! मैं तुम्हें राक्षसों के संहार के निमित्त प्रक्षेप करता हूँ । राक्षस-वंश का नाश किया, अमुक शत्रु का वध किया । यह शत्रु हत होगया ॥ ३८ ॥

हे यजमान ! सर्व नियंता सवितादेव प्रजा के शासन-कार्य में तुम्हें प्रेरित करें । गृहस्थों के उपास्य अग्नि देवता तुम्हें गृहस्थों पर आधिपत्य करावें । सोम देवता तुम्हें वनस्पति विषयक सिद्धि दें । बृहस्पति देवता तुम्हें वाणी पर प्रतिष्ठित करें । इन्द्र तुम्हें ज्येष्ठ आधिपत्य में, रुद्र तुम्हें

पशुओं के आधिपत्य में, मित्र तुम्हें सत्य व्यवहार के आधिपत्य में और वरुण तुम्हें धर्म के आधिपत्य में अधिष्ठित करें ॥ ३८ ॥

हे देवताओ ! तुम इस यजमान, अमुक अमुकी के पुत्र को महान् क्षात्र धर्म के निमित्त, ज्येष्ठ होने के निमित्त, जनता पर शासन करने के और आत्म-ज्ञान के निमित्त शत्रुओं से शून्य करो और इसे अमुक जाति वाली प्रजाओं का राजा बनाओ । हे प्रजागण ! यह अमुक नाम वाला यजमान तुम्हारा राजा हो और हम ब्राह्मणों का राजा सोम हो ॥ ४० ॥

॥ दशमोऽध्यायः ॥

ऋषिः—वरुणः, देवव्रातः, वामदेवः, शुनःशेपः ॥ देवता—आपः, वृषा, अपांपतिः, सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ताः,अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः, वरुणः, यजमानः, प्रजापतिः, परमात्मा, मित्रावरुणौ, क्षत्रपतिः; इन्द्रः, सूर्य्यः, अग्निः, सवित्रादि मन्त्रोक्ताः, अश्विनौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, कृतिः, जगती, धृतिः, बृहती, अष्टिः, अनुष्टुप् ।

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥१॥
वृष्ण ऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

इन मधुर स्वाद वाले, विशिष्ट अन्न रस वाले, राज्याभिषेक वाले, ज्ञान-सम्पादक जलों को इन्द्रादि देवताओं ने ग्रहण किया । जिन जलों से मित्रावरुण देवताओं ने अभिषेक किया और जिन जलों से देवगण ने शत्रुओं को तिरस्कृत कर इन्द्र को अभिषिक्त किया, उन जलों को हम ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

हे कल्लोल ! तुम सेंचन समर्थ मनुष्यों से संबंधित तरंग हो। तुम स्वभाव से ही राष्ट्र को देने वाली हो, अतः मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो। यह आहुति तुम्हारी प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। हे कल्लोल ! तुम सेंचन समर्थ पुरुष से सम्बन्धित तरंग हो। स्वभाव से ही राष्ट्र को देने वाली हो, अतः अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो। हे सेंचन समर्थ जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो, अतः मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे सेंचन समर्थ जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो, अतः अमुक यजमान को राष्ट्र दान करो ॥ २ ॥

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्ताप परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहाप. परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम-

मुष्मै दत्त विश्वभृत-स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना ऽ अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥४॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा ऽंशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्य्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

हे प्रवाह युक्त जलो! तुम स्वभाव से ही राष्ट्रदाता हो। मुझ यजमान को राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे जलो! तुम राष्ट्रदाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो। हे ओजस्वी जलो! तुम राष्ट्रदाता हो। मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे ओजस्वी जलो! तुम राष्ट्र के देने वाले हो। इस यजमान को भी राष्ट्र दो। हे परिवाही जलो! तुम राष्ट्र दाता हो, मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे परिवाही जलो! तुम राष्ट्रदाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्रदान करो। हे समुद्र के जलो! तुम राष्ट्र के देने वाले हो। मुझे राष्ट्र प्रदान करो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे समुद्र के जलो! तुम राष्ट्र-दाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे भँवर के जलो! तुम राष्ट्र के देने वाले हो। मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे भँवर के जलो! तुम राष्ट्र-दाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दान करो ॥ ३ ॥

हे जलो! तुम सूर्य की त्वचा में रहने वाले हो और स्वभाव से राष्ट्र-दाता हो। तुम मुझे राष्ट्र प्रदान करो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे सूर्य-त्वचा में स्थित जलो! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो। तुम अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे जलो! तुम सूर्य के तेज में रहने वाले हो और राष्ट्रदान वाले स्वभाव के हो। अतः मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो। यह आहुति

स्वाहुत हो। हे सूर्य के तेज में स्थित जलो! तुम राष्ट्र-दाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे मांदजलो! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो। तुम मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो। तुम्हारे निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। हे मान्दजलो! तुम राष्ट्र-दाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे व्रजक्षितस्थ जलो! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र प्रदान करने वाले हो, अतः मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे व्रजक्षितस्थ जलो! तुम राष्ट्र दायक हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे जलो! तुम तृणाग्र में स्थित हो और राष्ट्र के देने वाले हो। मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे तृणस्थ जलो! तुम राष्ट्र-दायक हो। अमुक यजमान को राष्ट्र-प्रदान करो। हे मधु रूप जलो! तुम त्रिदोष नाशक होने से बल देते हो और स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो। मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे मधु रूप जलो! तुम राष्ट्र-दाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो। हे जलो! तुम विश्व का कल्याण करने वाली गौ से संबन्धित हो और राष्ट्र प्रदायक हो। मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे शक्वरी जलो! तुम राष्ट्र के देने वाले हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे जनभृत् जलो! तुम राष्ट्र के देने वाले हो, मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे जनभृत् जलो! तुम राष्ट्र प्रदायक हो, अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो। हे विश्वभृत् जलो! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो। मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे विश्वभृत जलो! तुम राष्ट्र दाता हो। अमुक यजमान को राष्ट्र दो। हे मरीचि रूप जलो! तुम अपने राज्य में स्थित हो और स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो। अतः इस अमुक यजमान को भी राष्ट्र दो। हे मधुररस वाले जलो! सब माधुर्यमय जलों के सहित महान् क्षात्र बल वाले राजा यजमान के लिए राष्ट्र देते हुए उसे अपने रसों से अभिषिक्त करो। हे जलो! तुम असुरों से न हारने वाले बल को इस राजा में स्थापित करते हुए इस स्थान पर रहो ॥ ४ ॥

—हे चर्म! तुम सोम की कांति से युक्त हो, तुम्हारी कांति मुझमें प्रविष्ट हो। यह आहुति अग्नि की प्रीति के लिए स्वाहुत हो। सोम की प्रस-

न्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। सविता की प्रीति के लिए यह आहूति स्वाहुत हो। प्रवाह रूप सरस्वती के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। पूषा देवता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। बृहस्पति देवता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। इन्द्र की प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। घोष युक्त देवता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जनों द्वारा प्रशंसित कर्मों के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। पुण्य-पाप के विभाजन के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। भग देवता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। अर्यमा देवता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ५॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव ऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

सधमादो द्युम्निनीराप ऽ एता ऽ अनाधृष्टा ऽ अपस्यो वसानाः।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाँ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ ७ ॥

हे पवित्र कुशद्वय! तुम यज्ञ के कार्य में लगो। सर्व प्रेरक सविता देव की आज्ञा में वर्तमान रह कर छिद्र रहित पवित्र से और सूर्य की रश्मियों से मैं तुम्हें उत्पवन सींचता हूँ। हे जलो! तुम राक्षसों से कभी नहीं हारे। तुम वाणी के बन्धु रूप हो। तुम तेज से उत्पन्न सोम के उत्पन्न करने वाले हो। स्वाहाकार द्वारा शुद्ध होकर तुम इस यजमान को राज्यश्री से विभूषित करो ॥ ६ ॥

यह जल चार पात्र में स्थित हैं। यह वीर्यवान्, अपराजेय, पात्रों के पूर्ण करने वाले इस समय अभिषेक कर्म में वरण किये गए हैं। यह सबके धारण करने में घर के समान, और विश्व का निर्माण करने से मातृ रूप हैं। इन जलों के शिशु रूप यजमान ने इन्हें आदर सहित स्थापित किया है ॥ ७ ॥

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिर-सीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्।

हवासि रुजासि क्षुमासि ।
पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्य. पात ॥ ८ ॥
आविर्मर्य्या ऽ आवित्तो ऽ अग्निर्गृहपतिरावित्त ऽ इन्द्रो वृद्धश्रवा ऽ
आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्त पूषा विश्ववेदा ऽ आवित्ते
द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥ ९ ॥
अवेष्टा दन्दशूका प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरᳯ साम त्रिवृत्
स्तोमो वसन्त ऽ ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

हे ताप्य वस्त्र ! इन क्षात्र धर्म वाले यजमान के लिए तुम गर्भाधार-भूत जल के समान हो। हे रक्त कम्बल ! तुम इस क्षात्र धर्म वाले यजमान के लिए जरायु रूप हो। हे अधिवास ! तुम इस क्षात्र धर्म वाले यजमान के लिए गर्भ-स्थान के समान हो। हे उष्णीष ! तुम इस क्षात्र धर्म वाले यजमान के गर्भ बंधन स्थान रूप हो। हे धनुष ! तुम इस इन्द्र रूप ऐश्वर्य-धान् यजमान के लिए वृत्र के समान शत्रुओं के लिए आयुध हो। हे दक्षिण कोटि! तू मित्र-सम्बन्धी और हे वामकोटि ! तुमवरुण सम्बन्धी हो। हे धनुष! तुम्हारे द्वारा यह यजमान सब शत्रुओं को मारे। हे बाणो! तुम शत्रुओं को चीरने वाले होओ। हे बाणो ! तुम शत्रुओं के भंग करने वाले होओ। हे बाणो ! तुम शत्रुओं को कँपाने वाले होओ। हे बाणो ! तुम पूर्व दिशा की ओर से इस यजमान की रक्षा करो। हे बाणो ! पश्चिम दिशा की ओर से इस यजमान की तुम रक्षा करो। हे बाणो ! तुम उत्तर दिशा की ओर से इस यजमान की रक्षा करो। सभी दिशाओं से इसकी रक्षा करो ॥ ८ ॥

पृथिवी पर रहने वाला मनुष्य समाज इस यजमान को जाने। गृह पालक अग्नि इस यजमान को जानें। यश में बढ़े हुए इन्द्र, व्रतधारी मित्रा-वरुण, सूर्य-चन्द्रमा, सर्वज्ञाता पूषा, विश्वेदेवा, विश्व का कल्याण करने वाली द्यावापृथिवी सुख की आश्रय रूपा अदिति इस यजमान को जानें ॥ ९ ॥

काटने के स्वभाव वाले सर्पादि सब विरुष्ट हुए। हे यजमान ! तुम पूर्व दिशा में जाओ। गायत्री छन्द तुम्हारी रक्षा करे। सामों में रथन्तर साम,

स्तोमों में त्रिवृत् स्तोम, ऋतुओं में वसंत ऋतु, परब्रह्म और धन रूप ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे ॥ १० ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म-ऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपँ साम-सप्तदश स्तोमो वर्षा-ऽऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥

हे यजमान ! तुम दक्षिण दिशा में गमन करो । बृहत् साम, पंचदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु, क्षात्र धर्म और ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे ॥ ११ ॥

हे यजमान ! तुम पश्चिम दिशा में गमन करो । जगती छन्द, वैरूप साम, सप्तदश स्तोम, वर्षा ऋतु वैश्य धर्म वाला ऐश्वर्य तुम्हारा रक्षक हो ॥ १२ ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजँ सामैकविँशं स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वमारोह पंक्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिँशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् ।

मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥ १५ ॥

हे यजमान ! तुम उत्तर दिशा में जाओ । अनुष्टुप् छन्द वैराज साम, इक्कीस स्तोम, शरद ऋतु और यज्ञात्मक ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे ॥१३॥

हे यजमान ! तुम ऊर्ध्वलोक पर आरोहण करो । पंक्ति छन्द, शाक्वर साम त्रिनव और तैंतीस स्तोम, हेमन्त और शिशिर ऋतु, तेजात्मक ऐश्वर्य तुम्हारे रक्षक हों । नमुचि नामक राक्षस का शिर दूर फेंक दिया ॥१४॥

हे व्याघ्र चर्म ! तुम सोम की त्वचा के समान तेजस्वी हो । तुम्हारा तेज मुझमें भी व्याप्त हो । हे सुवर्ण ! तुम मुझे मृत्यु से बचाओ । हे सुवर्ण के मुकुट ! तुम विजय के लिए साहसी हो । तुम धन के साहस के कारण ही जल रूप हो और अविनाशी हो ॥१५॥

हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्य्यश्च ।
आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि
वरुणोऽसि ॥ १६ ॥
सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्य्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण।
क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥ १७ ॥

हे शत्रु का निवारण करने वाली दक्षिण भुजा ! और हे मित्र के समान हितैषी वाम भुजा ! तुम दोनों ही पुरुष में युक्त होओ । सुवर्णादि अलंकार से युक्त, सुवर्ण के समान सामर्थ्य वाली तुम दोनों रात्रि के अन्त में जागती हो । उसी समय सूर्य भी तुम्हारे कार्य-संपादनार्थ उदित होते हैं । फिर अदिति और दिति यथाक्रम पुण्य और पाप की दृष्टि से देखें । हे वाम-भुजा ! तुम मित्र रूप हो और हे दक्षिण भुजा ! तुम वरुण रूप हो ॥ १६ ॥

हे यजमान ! मैं तुम्हें चन्द्रमा की कान्ति से अभिषिक्त करता हूँ और तुम अभिषिक्त होकर राजाओं के भी अधिपति होकर वृद्धि को प्राप्त होओ और शत्रुओं के वाणों को निष्फल करते हुए प्रजा का पालन करो । हे सोम ! तुम भी यजमान की रक्षा करो । हे यजमान ! अग्नि के तेज से तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ तुम क्षत्रियों के अधिपति होकर वृद्धि को प्राप्त होओ । विपक्षियों को जीतकर प्रजा का पालन करो । हे हविवाले देवताओ ! इस यजमान को शत्रु रहित करके महान् आत्म-लाभ वाला बनाओ । हे यजमान ! सूर्य के प्रचण्ड तेज से तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ । तुम क्षत्रियों के अधिपति होकर बढ़ो और शत्रुओं को जीत कर प्रजा पालन करो । हे यजमान ! इन्द्र के ऐश्वर्य से तुम्हारा अभिषेक करता हूँ । तुम क्षत्रियों के राज राजेश्वर होकर प्रवृद्ध होओ और शत्रु जेता होकर प्रजा पालक बनो ॥१७॥

इमं देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जान-
राज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।
इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं
ब्राह्मणानाꣳराजा ॥ १८ ॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच ऽ इयानाः ।
ता ऽ आववृत्रन्नधरागुदक्ता ऽ अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः ।
विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥१९॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽ अस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पिता वय ँ
स्याम पतयो रयीणा ँ स्वाहा ।

रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

हे श्रेष्ठ हवि वाले देवताओ ! इस अमुक, अमुकी के पुत्र, अमुक नाम वाले यजमान के लिए महान् क्षात्र धर्म, महान् बड़प्पन, महान् जनराज्य और इन्द्र के ऐश्वर्य के निमित्त अमुक जाति वाली प्रजा का पालन करने के लिए इसे प्रतिष्ठित करो और शत्रु-हीन करके इसे प्रेरणा दो । हे देशवासियो! यह तुम्हारे राजा हैं और हम ब्राह्मणों के राजा सोम हैं ॥ १८ ॥

संसार को स्वयं ही सींचने वाले, गमनशील, फल प्रेरक, आहुति के परिणाम रूपी जल वर्षाकारी पर्वत की पीठ से सूर्य मंडल की ओर गमन करते हैं । हे प्रथम क्रम ! तुम विष्णु के प्रथम पाद प्रक्षेप से जीते हुए पृथिवी लोक हो । तुम्हारी कृपा से यह यजमान भले प्रकार जीतने वाला हो । हे द्वितीय प्रक्रम ! तुम विष्णु के द्वितीय पाद-प्रक्षेप द्वारा जीते हुए अन्तरिक्ष हो। तुम्हारी कृपा से यह यजमान अन्तरिक्ष पर जय-प्राप्त करे । हे तृतीय प्रक्रम ! तुम विष्णु के तृतीय पाद-प्रक्षेप द्वारा जीते हुए त्रिविष्टप् रूप हो । तुम्हारी कृपा से यह यजमान स्वर्ग लोक को जीते ॥ १९ ॥

हे प्रजापते ! तुम्हारे सिवाय अन्य कोई भी संसार के विभिन्न कार्यों में समर्थ नहीं है, अत. तुम ही हमारी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हो। हम जिस कामना से तुम्हारा यज्ञ करते हैं,वह पूर्ण हो । यह और इसका पिता दीर्घजीवी रहें और हम भी महान् ऐश्वर्य वाले हों । यह आहुति स्वाहुत हो । हे रुद्र! तुम्हारा प्रलय करने वाला जो श्रेष्ठ नाम है, हे हवि तुम उस रुद्र नाम में

स्वाहुत होओ। तुम हमारे घर में हुत होने से सब प्रकार कल्याण करने वाली हो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ २० ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥२१॥

मा त ऽ इन्द्र ते वय तुराषाडयुक्तासो ऽ अब्रह्मता विदसाम ।
तिष्ठा रथमधि य वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥२२॥

हे रथ ! तुम इन्द्र के वज्र की समान काष्ठ द्वारा निर्मित हो। हे अश्वो ! तुम्हें मित्रावरुण के बल से इस रथ में योजित करता हूँ। हे रथ ! अहिंसित, अर्जुन के समान इन्द्र के समान मैं भय निवारणार्थ और देश में सुभिक्ष सम्पादन के निमित्त मैं तुम पर चढ़ता हूँ। हे रथवाहक अश्व ! तू मरुद्गण की आज्ञा पाकर वेगवान् हो और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर। हमने अपने आरम्भ किये कार्य को मन के द्वारा ही पूर्ण कर लिया हम वीर्य से सम्पन्न होगए ॥२१॥

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को शीघ्र तिरस्कृत करने वाले, वज्रधारी और तेजस्वी हो। तुम जिस रथ पर आरूढ होकर चतुर अश्वों की लगाम पकड़ते हो, तुम्हारे उसी रथ से हम वियुक्त न हों और हानि को न पावें। हम अमान्य करने वाले न हों ॥२२॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा हिꣳसीर्मोऽअहं त्वाम्॥२३।

हꣳ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽ ऋतं बृहत् ॥२४॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्ग-स्यूर्ज्जं मयि धेहि ।
इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू ऽ अभ्युपावहरामि ॥२५॥

गृह के पालनकर्त्ता अग्नि को स्वाहुत हो। सोम की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। मरुद्गण के ओज के लिए स्वाहुत हो। इन्द्र के पराक्रम के लिए स्वाहुत हो। हे पृथिवी ! तुम सब प्राणियों की माता हो। तुम मुझे हिंसित न करो और मैं भी तुम्हें असन्तुष्ट न करूँ ॥२३॥

आदित्य रूपी आत्मा पवित्र स्थान में स्थित होकर अहंकार को दूर करता है और वायुरूप से अन्तरिक्ष में स्थित तथा अग्निरूप से वेदी में स्थित होकर देवाह्वाक होता है। वह आह्वानीय रूप से यज्ञ स्थान में सबके द्वारा पूजनीय मनुष्यों में प्राण रूप से स्थित, इस प्रकार सब स्थानों में स्थित रहता है। मत्स्यादि रूप जल में, पशु आदि के रूप से वीर्य में, अग्नि रूप से पाषाण में और मेघरूप से सभी स्थानों को प्राप्त होता है। उसी पर-ब्रह्म का स्मरण कर मैं रथ से उतरता हूँ ॥२४॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि ।
स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥२६॥
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥२७॥

हे शतमान् ! तुम सौ रत्ती परिमाण के हो, तुम साक्षात् जीवन हो, अतः मुझमें प्राण धारण कराओ। हे शतमान ! तुम रथ में बँधकर दक्षिणा-युक्त होते हो तथा तेज वृद्धि के कारण रूप हो, तुम मुझमें तेज धारण कराओ। हे उदुम्बरि ! तुम अन्न वृद्धि के कारण रूप हो अतः मुझमें अन्न स्थापन कराओ। यजमान की दोनों भुजाओ ! तुम मित्रावरुण की प्रीति के लिए रक्षित हुई हो, मैं तुम्हें उन्हीं की प्रीति के निमित्त नीची करता हूँ ॥ २५॥

हे आसन्दी ! तुम सुख रूप हो और सुख प्रदान करने वाली हो। हे अधोवास ! (बिछौना) तुम इस क्षत्रिय यजमान के स्थान रूप हो। हे यजमान् ! सुख करने वाली आसन्दी में चढ़। यह अधोवास और आसन्दी तुम्हारे उपवेशन के योग्य है, अतः इस पर बैठो ॥२६॥

श्रेष्ठ संकल्प वाले व्रतधारी इस यजमान ने साम्राज्य के निमित्त प्रजा पर अधिपत्य स्थापित किया ॥२७॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥२८॥
अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो ऽ अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा।

स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्व ँ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥२९॥
सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥३०॥

हे यजमान! तुम सबके जीतने वाले हो, अतः यह पाँचों दिशाएं तुम्हारे आधीन हों। हे ब्रह्मन्! तुम ब्रह्म महिमा से सम्पन्न हो। हे यजमान! तुम अत्यन्त महिमा वाले, उपदेश देने में समर्थ और प्रजा के दुःख दूर करने वाले होने से सविता हो। हे यजमान! तुम प्रजाओं की विपत्ति दूर करने वाले अमोघ वीर्य होने से वरुण हो। हे महा महिमा वाले यजमान! तुम ऐश्वर्यशालों के रक्षक होने के कारण इन्द्र हो।। हे यजमान! तुम आश्रितों को सुख देने वाले और शत्रुओं की स्त्रियों को रुलाने वाले होने से रुद्र हो। हे यजमान! तुम महिमामय हो इस कारण ब्रह्मा हो।

हे पुरोहित! तुम सभी कार्यों में निपुण और श्रेष्ठ कर्मों के प्रवर्त्तक हो, अतः इस स्थान मे आओ। हे स्फ्य! तुम इन्द्र के वज्र हो, अत मेरे यजमान के अनुकूल होकर कार्य सिद्ध करो ॥२८॥

अग्नि देवता, सब देवताओं में प्रथम पूजनीय एवं महान् हैं। वे संसार के धारणकर्त्ता, हवि सेवन करने वाले, स्वामी, वृद्धि-स्वभाव वाले, गृहस्थ धर्म के साक्षी हैं। वे अग्नि हमारी आज्याहुति का सेवन करें। यह आहुति स्वाहुत हो। हे अपो! आहुति प्रदान द्वारा ग्रहण किये गये तुम सूर्य की रश्मियों से स्पर्द्धा करने वाले होओ। सजन्मा क्षत्रियों में मेरे सर्वश्रेष्ठ होने की घोषणा करो ॥२९॥

सर्व प्रेरक सविता, वाणी रूपी सरस्वती, रूप के अधिष्ठात्री, त्वष्टा, पशुओं के अधिष्ठात्री पूषा, इन्द्र, देवयाग में ब्रह्मत्व-प्राप्त बृहस्पति, ओजस्वी वरुण, तेजस्वी अग्नि, चन्द्रमा और यज्ञ के स्वामी विष्णु की आज्ञा में रहने वाला मैं प्रसर्पण करता हूँ ॥३०॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ।
वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३१॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम ऽ उक्तिं यजन्ति ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३२॥

हे व्रीहि ! तुम देवताओं के योग्य हो । अश्विद्वय की प्रसन्नता के लिए रस रूप होओ । हे व्रीहि ! तुम सरस्वती की प्रीति के निमित्त रस रूप में परिणत होओ । रक्षक और इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में लगाने वाले इन्द्र की प्रसन्नता के लिए हे व्रीहि ! तुम पाक को प्राप्त होओ । इन्द्र के सखाभूत छन्ने द्वारा छाना गया, वायु द्वारा शुद्ध हुआ सोम नीचा मुख करके इस छन्ने को पार कर गया । हे सोम ! जैसे इस पृथिवी में बहुत से जौ वाला एक कृषक शस्य को विचार पूर्वक पृथक् करके काटता है, वैसे ही तुम थोड़े से भी देवताओं के लिए प्रिय हो । तुम यजमानों से सम्बन्धित खाद्य इस यजमान को प्राप्त कराओ । कुशा के आसनों पर बैठे हुए ऋत्विज् हविरन्न ग्रहण कर याज्य का नाम लेकर यज्ञ करते हैं । हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, अश्विद्वय की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, सरस्वती की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, इन्द्र की प्रीति के निमित्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।

युवँसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती ऽइन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥३३॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथु काव्यैदं सनाभि ।
यत्सुराम व्यपिब शचीभि सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक ॥३४॥

हे अश्विद्वय ! नमचि नामक राक्षस में स्थित सोम को भले प्रकार पान करते हुए तुमने अनेक कर्मों में इन्द्र की रक्षा की । ३३॥

हे इन्द्र ! हितैषी अश्विद्वय मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के मन्त्र और कर्मों के प्रयोगों द्वारा राक्षस के साथ रहे अशुद्ध सोम को पीकर विपत्ति में पड़े । जिस प्रकार पिता पुत्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही अश्विद्वय ने तुम्हारी रक्षा की । हे मघवन् ! तुमने नमुचि को मार कर प्रसन्नताप्रद सोम का पान किया । देवी सरस्वती तुम्हारे अनुकूल होकर परिचर्या करती है ॥ ३४ ॥

एकादशोऽध्यायः

ऋषि — प्रजापति, नाभानेदिष्ठ, कुश्रि, शुन शेप, पुरोधा, मयोभू, गृत्समद, सोमक, पायु, भरद्वाज, देवश्रवो देववात, प्रस्कण्व, सिन्धुद्वीप, विश्वमना, कण्व, त्रित चित्र, उत्कील, विश्वामित्र, आत्रेय, सोमाहुति, विरूप, वारुणि, जमदग्नि, नाभानेदि, ॥ देवता—सविता, वाजी, क्षत्रपति, गणपति, अग्नि, द्रविणोदा, प्रजापति, दम्पती, जायापती, होता, आप, वायु, मित्र, रुद्र, सिनीवाली, अदिति वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा, वस्वादयो मन्त्रोक्ता, आदित्यादयो लिङ्गोक्ता, वस्वादयो लिङ्गोक्ता, अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता, अग्न्या, सेनापति, अध्यापकोपदेशकौ, पुरोहितयजमानौ, सभापतिर्यजमान, यजमानपुरोहितौ ॥ छन्द —अनुष्टुप्, गायत्री, जगती, त्रिष्टुप्, शक्वरी, पङ्क्ति, बृहती, कृति, धृति, उष्णिक् ।

युञ्जान प्रथम मनस्तत्त्वाय सविता धिय ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ऽ अध्याभरत् ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।
स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥
युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्य्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

युञ्जते मन ऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक ऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक ऽ एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे ऽ अमृतस्य पुत्रा ऽ आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

सर्व प्रेरक प्रजापति अपने मन को एकाग्र कर अग्नि के तेज का विस्तार कर और उसे पशु आदि में प्रविष्ट जान कर प्रारंभ में अग्नि को पृथिवी से लाये ॥ १ ॥

सर्व प्रेरक सविता देव की प्रेरणा से हम एकाग्र मन के द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति वाले कर्म में लगते हैं ॥ २ ॥

सर्व प्रेरक सविता देव कर्मानुष्ठान, यज्ञ या ज्ञान से दिव्य हुए स्वर्ग लोक में गमन करने वाले और महान् ज्योति के संस्कार करने वाले हैं । वे देवताओं को यज्ञ कर्म में योजित कर अग्नि के तेज को प्रकाशित करते हुए देवताओं को अग्निचयन में लगाते हैं ॥ ३ ॥

मेधावी ब्राह्मण यजमान के होता, अध्वर्यु आदि इस अग्नि-चयन कर्म में अपने मन को लगाते हैं और बुद्धि को भी उधर ही नियुक्त करते हैं । एक अद्वितीय सविता देव बुद्धि के ज्ञाता, ऋत्विज् और यजमान के उद्देश्य के जानने वाले हैं । उन्हीं ने विश्व की रचना की है । उनकी वेदोक्त स्तुति अत्यंत महिमामयी है ॥ ४ ॥

हे यजमान दम्पति ! मैं तुम्हारे निमित्त, नमस्कार वाला अन्न घृत की आहुति वाला, प्राचीन ऋषियों द्वारा अनुष्ठित, आत्म ज्योति के बढ़ाने वाला

अग्नि-चयन कर्म सम्पादित करता हूँ। इस यजमान का यश दोनों लोकों में बढ़े, प्रजापति के अविनाशी पुत्र सभी देवता उसके यश को सुनें ॥ ५ ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य ऽ इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स ऽ एतशो रजाँऽसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥

इम नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यँ सखिविदँ सत्राजितं धनजितँ स्वर्जितम् ।
ऋचा स्तोमँ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥८॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६ ॥

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निँ शकेम खनितुँ सधस्थ आ ।
जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥

अन्य सब देवता जिन सवितादेव की महिमा को अपने तप के बल से अनुकूल कर लेते हैं और जिन सवितादेव ने सभी लोकों की रचना की है, वे देव सब प्राणियों में अपनी महिमा से व्याप्त हैं ॥ ६ ॥

हे सविता देव ! यज्ञ कर्म की प्राप्ति के लिए यजमान को सौभाग्य के निमित्त प्रेरित करो। वे दिव्य लोक में वास करने वाले, ज्ञान के शोधक वाणी के धारक सवितादेव हमारे मन के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान से पवित्र करें। वही वाणी के अधिपति हमारी वाणी को मधुर करें ॥ ७ ॥

हे सवितादेव ! यह यज्ञ देवताओं को तृप्त करने वाला, मित्रता निष्पादन करने वालों का ज्ञाता, सब यज्ञ कर्मों को या ब्रह्म को वश करने वाला और धन का जीतने वाला है। तुम, स्वर्ग को जिताने वाले इस फलयुक्त

यज्ञ को सम्पन्न करो। हे प्रभो! स्तोम को समृद्ध करो और गायत्र साम वाले रथन्तर साम से बृहत् साम को सम्पन्न करो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

हे अभ्रि! सर्व प्रेरक सविता देव की प्रेरणा से, गायत्री छन्द के प्रभाव से अश्विद्वय के बाहुओं और पूषा के हाथों से, मैं तुझे अंगिरा के समान ग्रहण करता हूँ। तू अंगिरा के समान त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से पृथिवी के भीतर से पशुओं के हितकारी अग्नि का अंगिरावत् आहरण कर ॥ ९ ॥

हे अभ्रि! तुम काष्ठ विशेष से निर्मित स्त्री रूपा और शत्रुओं से शून्य हो। हम तुम्हारे द्वारा जगती छंद के प्रभाव से पृथिवी के भीतर व्याप्त अंगिरा के तुल्य अग्नि को खोदकर निकालने में समर्थ हों ॥१०॥

हस्त ऽ आधाय सविता बिभ्रदभ्रिᳬ हिरण्ययीम् ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ऽ अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्
॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१२॥

युञ्जाथाᳬ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू ।
अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय ऽ इन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥१५॥

सर्व प्रेरक सवितादेव अंगिरावत् सुवर्ण की अभ्रि को हाथ में लेकर अग्नि की ज्योति का निश्चय करके पृथिवी के नीचे से अनुष्टुप् छंद के प्रभाव से निकाल लाये ॥ ११ ॥

हे शीघ्रगामी अश्व! इस श्रेष्ठ यज्ञ स्थान को गन्तव्य मान कर शीघ्र

आगमन करो। तुम स्वर्ग लोक में आदित्य के समान उत्पन्न हुए हो, अन्त-रिक्ष में तुम्हारी नाभि और पृथिवी पर तुम्हारा स्थान है ॥ १२ ॥

हे यजमान दम्पत्ति ! तुम दोनों धन की वृद्धि करने वाले हो। इस अग्नि कर्म में अपने हितकारी, अग्नि रूप मिट्टी का वहन करने वाले रासभ को युक्त करो ॥ १३ ॥

परस्पर मित्र भाव को प्राप्त हुए हम ऋत्विज् और यजमान सब कर्मों में उत्साहयुक्त, बलवान "अज" को देवता और पितरों के इस यज्ञ में, रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥ १४ ॥

हे अश्व ! तुम शत्रु-हन्ता और निन्दा के निवारक हो। तुम हमारे सुख के कारण रूप होकर यहाँ आगमन करो। क्योंकि तुम रुद्र देवता के गणों पर आधिपत्य प्राप्त हो। हे रासभ ! तुम कल्याणमय मार्ग वाले, अभयदाता, ऋत्विज्-यजमान के भय को दूर करने वाले, कर्म में समान भाव से नियुक्त, पृथिवी के साथ विशाल अन्तरिक्ष को विशेषत गमन करने वाले होओ ॥१५॥

पृथिव्या सधस्थादग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वद-च्छेमोऽग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्याम ॥ १६ ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदा ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी ऽ आततन्थ ॥ १७ ॥

आगत्य वाज्यध्वान१ँ सर्वा मृधो विधूनुते ।
अग्नि१ँ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ १८ ॥

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यत खनेम त वयम् ॥ १९ ॥

द्यौस्ते पृष्ठ पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्ष१ँ समुद्रो योनि ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यत ॥ २० ॥

हे अश्व ! पृथिवी के स्थान से पशुओं से सम्बन्धित अंगिरा तुल्य अग्नि को निकाल। पशु-संबन्धी अग्नि को अंगिरा के समान प्राप्त करने के लिए हम सामने होते हैं। पशु सम्बन्धी अग्नि को हम अंगिरा के समान सम्पादित करेंगे ॥ १६ ॥

उषाकाल से पूर्व जो अग्नि प्रकाशमान रहे, वे अग्नि प्रथम दिनों को प्रकाशित करते हुए सूर्य की रश्मियों को अनेक प्रकार से संचालित करते हैं। हम लोकों के रचयिता उन अग्नि को स्वर्ग और पृथिवी में भले प्रकार क्रम पूर्वक व्याप्त हुआ देखते हैं ॥१७॥

यह द्रुतगामी अश्व युद्ध मार्ग में जाता हुआ युद्धों को कम्पायमान करता है। महिमामयी पृथिवी के यज्ञ-स्थान को प्राप्त होता हुआ यह अश्व स्थिर नेत्र द्वारा अग्नि को देखता है ॥१८॥

हे अश्व ! तू पृथिवी को कुरेदता हुआ अग्नि को खोज, भूमि के तल को स्पर्श कर 'यह प्रदेश अग्नियुक्त मृत्तिका वाला है' यह बता, जिससे उस स्थान पर अग्नि को खोद कर हम निकालें ॥१८॥

हे अश्व ! स्वर्ग तुम्हारी पीठ है। पृथिवी तुम्हारे पाँव हैं। अंतरिक्ष तुम्हारी आत्मा है, समुद्र तुम्हारी योनि (उत्पत्ति स्थान) है। तुम अपने नेत्रों द्वारा मृत्तिका को देखकर रणोत्सुक शत्रु और राक्षसों को मृत्तिका में स्थिर जानकर अपने पैरों से रौंद डालो ॥२०॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वय ँ स्याम सुमतौ पृथिव्या ऽ अग्निं खनन्त ऽ उपस्थेऽअस्याः ।२१।
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोक ँ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्नि ँ स्वो रुहाणाऽ अधि नाकमुत्तमम् ॥२२॥
आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥२३॥
आ विश्वतः प्रत्यंचं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीस्पृहयद्वर्णोऽअग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥२४॥
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२५॥

हे अश्व ! तुम धन के देने वाले हो । महान् सौभाग्य को बढ़ाने के लिए इस स्थान से उठो और हम भी पृथिवी के ऊपरी भाग में अग्नि को

खोदते हुए उत्कृष्ट बुद्धि में नियमान हों ॥ २१ ॥

यह धन देने वाला गमनशील अश्व मृत्पिंड से पृथिवी में उतर आया और इसने श्रेष्ठ लोक को पुण्य कर्म वाला किया । हम उस देश मे दु:ख शून्य और अत्यन्त श्रेष्ठ स्वर्ग पर चढ़ने की कामना करने वाले श्रेष्ठ सुखदाता अग्नि को मृत्पिंड से खोदने का यत्न करते हैं ॥ २८ ॥

हे अग्ने ! सब लोको में निवास करते हुए तिर्यक ज्योति द्वारा विस्तीर्ण धूम से महान् और अनेक स्थानों में व्याप्त होने वाले, विविध अन्नों उत्साहित, सोत्साह दृष्टि के द्वारा प्रदीप्त करता हूं ॥२३॥

हे अग्ने ! तुम प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र व्याप्त हो । मैं तुम्हें आज्याहुति द्वारा प्रदीप्त करता हूँ । तुम शान्त मन से उस आहुति का सेवन करो । ज्वाला रूप, मनुष्यों द्वारा सेवन करने योग्य और दर्शनीय अग्नि अग्राह्य करने योग्य नहीं हैं ॥२४॥

क्रान्तदर्शी अग्नि अन्नों के स्वामी हैं । वे हविदाता यजमान को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ रत्न देते हुए हवियों को ग्रहण करते हैं ॥२५॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रँ सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२६॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥२७॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि ।
ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम् ।
शिवं प्रजाभ्योऽहिँसन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गि-
रस्वत् खनामः ॥२८॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।

वर्धमानो महाँऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२६॥
शर्म च स्थोवर्म च स्थोऽछिद्रे बहुलेऽउभे।
व्यचस्वती संवसाथां भृतमग्निं पूरीष्यम् ॥३०॥

हे अग्ने! तुम बलपूर्वक मन्थन द्वारा उत्पन्न होते हो। तुम पुरु से सबके शरीरों में निवास कर उनका पालन करने वाले, ब्रह्म रूप, नित्य, राक्षसों या पापों के नष्ट करने वाले हो, हम तुम्हारा सब ओर से ध्यान क ते हैं ॥२५॥

हे अग्ने! तुम मनुष्यों का पालन करने वाले, परम पवित्र और तेज से अन्धकार व आद्रता को दूर करने वाले, नित्य और मन्थन द्वारा उत्पन्न होने वाले हो। तुम जलों में विद्युत रूप से वर्तमान, पाषाण घर्षण से और अरणियों के घर्षण से प्रकट होते हो। तुम यज्ञकर्त्ता यजमानों के रूप हो ॥२६॥

हे अभ्रे! सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों से, भूमि के उत्तर प्रदेश से, पशु-सम्बन्धी अग्नि को अँगिरा के समान खनन करता हूँ ॥२७॥

हे अग्ने! तुम ज्वाला रूपी, श्रेष्ठ मुख वाले, निरन्तर विद्यमान, किरणों द्वारा दमकते हुए और अहिंसक, प्रजा के हितार्थ शांत रहने वाले हो। मैं तुम्हें पृथिवी के नीचे से अंगिरा के समान खनन करता हूँ ॥२८॥

हे पत्र! तुम जलों के ऊपर रहने से उनकी पीठ के समान हो। अग्नि के कारण रूप के भी कारण हो। सिंचनशील जल समुद्र को सब ओर से बढ़ाते हुए, महान् जल में भले प्रकार विस्तृत हो। हे पद्मपत्र! तुम स्वर्ग के परिमाण से विस्तृत होओ ॥२९॥

हे कृष्णाजिन और हे पुष्करपत्र! तुम दोनों छिद्र रहित और अत्यन्त विस्तृत हो। तुम अग्नि के लिए सुख देने वाले और कवच के तुल्य रक्षक हो। तुम पुरीष्य अग्नि को आच्छादित और धारण करो ॥३०॥

संवसाथा ँ स्वर्विदा समीची ऽउरसात्मना।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥३१॥

पुरीष्योऽसि विश्वभरा ऽ अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥३२॥
तमु त्वा दध्यंग् ऋषिः पुत्र ऽ ईधे ऽ अथर्वणः ।
वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३३॥
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनंजय ँ रणेरणे ॥३४॥
सीद होतः स्व ऽ उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञ ँ सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥३५॥

हे कृष्णाजिन और हे पुष्करपर्ण ! तुम स्वर्ग-प्राप्ति के साधन रूप, समान मन वाले, निरन्तर तेज वाले अग्नि को भीतर उदर में धारण करते हुए अपने हृदय से अग्नि को सदा आच्छादित और धारण करो ॥३१॥

हे अग्ने ! तुम पशुओं के हितैषी और सभी प्राणियों के पालक हो । सर्व प्रथम अथर्वा ने तुम्हें उत्पन्न किया । हे अग्ने ! अथर्वा ने जल के मन्थन द्वारा तुम्हें प्रकट किया और संसार के सभी ऋत्विजों ने आदरपूर्वक तुम्हारा मन्थन किया ॥३२॥

अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि ने उस वृत्रनाशक रूप द्वारा तुम्हें प्रज्वलित किया ॥३३॥

हे अग्ने तुम श्रेष्ठ मार्ग में अवस्थित और मन को सींचने वाले हो । तुम शत्रुओं और पापों को पराभूत करने वाले तथा धनों के जीतने वाले हो । मैं तुम्हें प्रदीप्त करता हूँ ॥३४॥

हे अग्ने ! तुम आह्वान कार्य में नियुक्त होते हो, तुम सचेष्ट होने वाले और कृष्णाजिन पर स्थापित पुष्करपर्ण पर विद्यमान हो । तुम उत्कृष्ट कर्म रूप यज्ञ को प्रारम्भ करो । हे देवताओं के लिए प्रसन्नताप्रद अग्ने ! तुम हवि द्वारा देवताओं को यज्ञ करते हुए उन्हें तृप्त करते हो । अतः यजमान में दीर्घ आयु और अन्न को स्थापित करो ॥३५॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ ऽ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो ऽ अग्निः ॥३६॥
सᳪसीदस्व महाँ ऽ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने ऽ अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥३७॥
अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ३८ ॥
सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥
सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः ।
वासोऽग्ने विश्वरूप संव्ययस्व विभावसो ॥ ४० ॥

देवाह्वाक, अपने कर्म के ज्ञाता, तेजस्वी, गमनशील, निपुण, सिद्ध कर्म वाले तथा अत्युत्कृष्ट बुद्धि वाले, सहस्रों के पालक, पार्थिव अग्नि अत्यन्त पवित्र जिह्वा वाले होम को प्रतिष्ठित हुए ॥३६॥

हे अग्ने ! तुम यज्ञ के उपयुक्त, देवताओं के प्रीति पात्र और महान् हो । इस कृष्णाजिन पर स्थित पुष्कर-पर्ण पर स्थित होकर प्रदीप्त होते हुए, आज्याहुति द्वारा दर्शनीय होते हो । तुम अपने सघन धूम का त्याग करो ॥३७॥

हे अध्वर्यो ! प्राणियों के आरोग्य के निमित्त दिव्य एवं तेज-सम्पन्न अमृत रूप जल को इस खनन प्रदेश में सींचो और सींचे हुए जलों के स्थान से श्रेष्ठ फल वाली औषधियाँ प्राप्त करो ॥ ३८ ॥

हे पृथिवी ! उत्तान मुख से अवस्थित तुम्हारा हृदय महान् एवं विकसित है, उस स्थान को वायु देवता जल प्रक्षेप और तृणादि द्वारा भले प्रकार पूर्ण करें । हे देव ! तुम सभी देवताओं के आत्मा रूप से विचरते हो । अतः यह पृथिवी तुम्हारे निमित्त प्रजापति रूप से वषट्कार से युक्त होओ ॥ ३९ ॥

यह अग्नि भले प्रकार प्रकट होकर अपनी दीप्ति से सुख रूप स्वर्ग के

समान वरणीय ग्रह कृष्णाजिन पर आसीन हों। हे अग्ने ! तुम ज्योतिमय वैभव वाले हो। तुम इस अद्भुत वर्ण वाले कृष्णाजिन रूपी वस्त्र को व्यवहृत करो ॥ ४० ॥

उदुतिष्ठ स्व वरावा नो देव्या धिया ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभि ॥ ४१ ॥
ऊर्ध्व ऽ ऊ षु ण ऽ ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघाद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥
स जातो गर्भो ऽ असि रोदस्योरग्ने चार्रुविभृत ऽ ओषधीषु ।
चित्र शिशु परि तमाᳬस्यक्तून् प्र मातृभ्यो ऽ अधि कनिक्रदद् गा.।४३
स्थिरो भव वीड्वङ्ग ऽ आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्ने पुरीषवाहण ॥ ४४ ॥
शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिर ।
मा द्यावापृथिवी ऽ अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

हे अग्ने ! तुम उत्कृष्ट यज्ञ रूप कर्म का निर्वाह करने वाले हो, अतः उठो और हमें दिव्य गुण कर्म वाली बुद्धि के द्वारा पुष्ट करो। तुम श्रेष्ठ रश्मियों से युक्त महान् तेज से सब प्राणियों के दर्शन के निमित्त श्रेष्ठ यश के सहित आओ ॥ ४१ ॥

हे अग्ने ! सर्व प्रेरक सवितादेव हमारी रक्षा के लिए देवताओं के समान ऊँचे उठ कर स्थित हों। उन्नत होते हुए तुम भी अन्न के देने वाले हो। जिस निमित्त ऋत्विज् मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक आह्वान करते हैं वैसे ही तुम ऊँचे होकर सविता देव के समान अन्न प्रदान करते हो ॥४२॥

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ, पूजन के योग्य, औषधियों में पोषण के लिए स्थित, अद्भुत वर्ण की ज्वालाओं से युक्त, नित्य नवीन होने से शिशु रूप, स्वर्ग पृथिवी के मध्य उत्पन्न गर्भ के समान हो। तुम रात्रि रूप अंधकारों को हटाते हुए और औषधियों, वनस्पतियों के सकाश से शब्द करते हुए गमन करो ॥४३॥

हे गमनशील प्राणी ! तुम स्थिर काया वाले हो। वेगवान् होकर

अन्न के कारण रूप होते हो। तुम पांशु रूप मृत्तिका के वहन करने वाले हो ॥ ४४ ॥

हे अग्नि के शिशु के समान अज! तुम भी अग्नि रूप ही हो। तुम मनुष्यों की प्रजाओं का कल्याण करने वाले हो। तुम द्यावा-पृथिवी, अन्तरिक्ष और ओषधियों को संतप्त मत करना ॥ ४५ ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा ।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ।
वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भ ँ समुद्रियम् ।
अग्न ऽ आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥
ऋत ँ सत्यमृत ँ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ।
ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेत ँ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः ।
व्यस्यन् विश्वा ऽ अनिरा ऽ अमीवा निषीदन्नो ऽ अप दुर्मतिं जहि ॥४७॥
ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भऽऋत्वियः प्रत्न ँ सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥
वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो ऽ अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरह ँ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥५०

वेगवान् अश्व शब्द करता हुआ गमन करे। दिशाओं को शब्दायमान करता हुआ रासभ पीछे चले। यह अश्व पुरीष्य अग्नि को धारण करके कर्म से पूर्व नष्ट न हो। यह आहुति के फल रूप दान में समर्थ, जलों में विद्युत रूप, समुद्र में वडवा रूप अग्नि को धारण करता हुआ चले। हे अग्ने! हवि भक्षण के लिए आओ ॥ ४६ ॥

जो आदित्य रूप अग्नि है उस ऋत और सत्य रूप अग्नि को अज पर रखते हैं। पुरीष्य अग्नि को अङ्गिरा के समान चयन करते हैं। हे समस्त ओषधियो! इस शांत और कल्याणमय स्थान में अपने अभिमुख आते हुए अग्नि को प्रसन्न करो। हे अग्ने! तुम यहाँ विराजमान होकर हमारे सब अक-

ल्याणमय स्थान से अपने अभिमुख आते हुए अग्नि को प्रसन्न करो। हे अग्ने! तुम यहाँ विराजमान होकर हमारे सब अकल्याण और रोगादि को दूर करते हुए, हमारी जो मति यज्ञादि से पराङ् मुख होगई है, उसे शुद्ध करो॥ ४७॥

हे श्रेष्ठ पुष्पों वाली और उत्तम फलों वाली औषधियो! तुम इस अग्नि को ग्रहण करो। यह अग्नि गर्भ रूप ऋतुकाल प्राप्त कर प्राचीन स्थान में स्थित हुए हैं॥ ४८॥

हे अग्ने! तुम महान् बल वाले हो। सभी शत्रुओं, राक्षसों और व्याधियों को दूर करो। मैं श्रेष्ठ कल्याण के लिए महान् सुख से आह्वान योग्य अग्नि को प्रसन्न करने वाले कार्य में शांत मन से लगा हूँ॥ ४६॥

हे जलो! तुम कल्याणप्रद हो, स्नान-पान आदि के द्वारा सुखी करने वाले हो। तुम हमारे लिए श्रेष्ठ दर्शन और महानन्द की अनुभूति के निमित्त स्थापित होओ॥ ५०॥

यो व. शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥५१॥
तस्मा ऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥५२॥
मित्रः स ᳪ सृज्य पृथिवी भूमि च ज्योतिषा सह।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सᳪसृजामि प्रजाभ्य॥५३॥
रुद्रा सᳪ सृज्य पृथिवी बृहज्ज्योतिः समीधिरे।
तेषां भानुरजस्र ऽ इच्छुक्रो देवेषु रोचते॥५४॥
सᳪ सृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्या मृदम्।
हस्ताभ्या मृद्वी कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्॥५५॥

हे जलो! तुम्हारा जो कल्याणप्रद रस इस लोक में विद्यमान है, हमें उस रस का भागी बनाओ। जैसे स्नेहमयी माता अपने शिशु को दुग्ध देती है, वैसे ही रस प्रदान करो॥५१॥

हे जलो ! तुम से सम्बन्धित उस रस की प्राप्ति के लिए हम शीघ्रता पूर्वक गमन करें। जिस रस के एक अंश से तुम सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हो और उसके भोगों को हमारे लिए उत्पन्न करते हो, उस रस की प्राप्ति के लिए हम तुम्हारे समीप आए हैं ! हे जलो ! तुम हमें प्रजोत्पादक बनाओ ॥ ५२ ॥

स्वर्ग और पृथिवी को, ज्योतिरूप अज लोम के सहित मित्र देवता मुझ अध्वर्यु को देते हैं और मैं तुम श्रेष्ठ जन्म वाले प्रज्ञावान् अग्नि को प्राणियों के रोग निवारणार्थ पिण्ड में युक्त करता हूँ ॥ ५३ ॥

जिन रुद्रों ने पार्थिव पिण्ड को पाषाण-चूर्ण से युक्त कर महान् ज्योति वाले अग्नि को प्रदीप्त किया, उन रुद्रों का तेज देवताओं के मध्य भले प्रकार प्रकाशित होता है ॥ ५४ ॥

अमावस्या की अभिमानी देवता सिनीवाली, बुद्धिमान वसुगण और रुद्रगण द्वारा सुसिद्ध मृत्तिका को हाथों ले मृदु करके उसे कर्म के योग्य बनावे ॥ ५५ ॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा ।
सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥
उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भ ऽआ ।
मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाᳯं रायस्पोषं गौपत्यᳯं सुवीर्य्यᳯं सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाᳯं रायस्पोषं गौपत्यᳯं सुवीर्य्यᳯं सजातान्यजमानायाऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳯं रायस्पोषं गौपत्यᳯं सुवीर्य्यᳯं सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गि-

रस्वद्ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषं गौपत्यᳬं सुवीर्य्यᳬं सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु ।
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये ।
पुत्रेभ्य प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद् रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥६०॥

हे पूजनीया देवमाता अदिति ! हे सुन्दर केश, मस्तक और देह वाली सिनीवाली ! अपने हाथों में पाक-पात्र उखा को स्थापित करो ॥२६॥

अपनी सामर्थ्य द्वारा अदिति देवी सुमति पूर्वक अपने हाथों से पाक-पात्र को पकड़े और वह पाक पात्र भले प्रकार अपने मध्य में अग्नि को उसी प्रकार धारण करे, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को अङ्क में लेती है। हे मृत्तिका पिंड ! तुम यज्ञाह्वानीय के मस्तक रूप हो ॥ २७ ॥

हे उखे ! तुम्हें गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण अङ्गिरा के समान करें। तब तुम दृढ़ होकर पृथिवी के समान होओ और मुझ यजमान के लिए सन्तान, धन, पुष्टि, वीर्य, गौओं का स्वामित्व सजातीय बान्धवों का सौहार्द आदि धारण कराओ। हे उखे ! त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से रुद्रगण तुम्हें अङ्गिरा के समान बनावें। तुम अन्तरिक्ष के समान दृढ़ होकर मुझ यजमान को सन्तान, धन, गौ आदि की प्राप्ति कराओ। हे उखे ! जगती छन्द के द्वारा आदित्यगण तुम्हें अंगिरा के समान बनावें। तुम स्वर्ग के समान दृढ़ होकर मुझ यजमान को सन्तान, गवादि पशु धन और सौहार्द की प्राप्ति कराओ। हे उखे ! अनुष्टुप् छन्द के द्वारा सर्व हितैषी विश्वेदेवा तुम्हें अङ्गिरा के समान बनावें। तुम दिशाओं के रूप वाले होकर दृढ़ होओ और मुझ

यजमान को श्रेष्ठ अपत्य गवादि धन और समान पुरुषों का सौहार्द्र प्राप्त कराओ ॥ ५८ ॥

हे रेखा ! तुम मिट्टी से निर्मित हुई हो । तुम अदिति के प्रभाव से इस उखा की काञ्ची गुण-स्थान से युक्त हो। हे उखे ! अदिति तुम्हारे मध्य को ग्रहण करें। देवमाता अदिति ने इस पृथिवी रूप मृत्तिका की अग्नि की स्थान भूत उखा को निर्मित किया और यह कहते हुए कि 'हे पुत्रों तुम इसे पकाओ' पाक कार्य के निमित्त अपने पुत्र देवताओं को प्रदान किया ॥ ५९ ॥

हे उखे ! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण तुम्हें अङ्गिरा के समान धूप देते हैं। हे उखे ! त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से रुद्रगण तुम्हें अङ्गिरावत् धूपित करते हैं । हे उखे ! जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण तुम्हें अङ्गिरा के समान धूपित करते हैं । हे उखे ! अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से वैश्वानर विश्वेदेवा तुम्हें अङ्गिरावत् धूपित करते हैं । हे उखे ! इन्द्र तुम्हें धूपित करें। हे उखे ! विष्णु तुम्हें धूपित करें ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे ऽ अङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अङ्गिरस्वद् धतूखे धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अङ्गिरस्वदभीन्धताम् उखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे जनयस्त्वाऽछिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ॥ ६१ ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या ।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश ऽ आपृण ॥ ६३ ॥

उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।

मित्रै तां स उखा परिददाम्यभित्याऽ एषा मा भेदि ॥ ६४ ॥
वसवस्त्वाछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाछृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा ऽ आछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥६५॥

हे गर्त्त ! सब देवताओं की अधिष्ठात्री देवी सभी दिव्य गुण सम्पन्न अदिति पृथिवी के ऊपरी भाग में अङ्गिरा से समान तुम्हें खनन करें । हे उखे ! देवताओं की स्त्रियाँ सभी देवताओं के सहित दीप्तिमती पृथिवी के ऊपर तुम्हें अङ्गिरा के समान स्थापित करें । हे उखे ! सब देवताओं की अधिष्ठात्री देवी, वाणी की अधिष्ठात्री तुम्हें पृथिवी के ऊपर अङ्गिरा के समान दीप्ति से युक्त करें । हे उखे ! सब देवताओं से युक्त अहोरात्र के अभिमानी देवता तुम्हें पृथिवी के ऊपर अंगिरा के समान पकावें । हे उखे ! सब देवताओं की अधिष्ठात्री देवता तथा वेद छन्दों के अधिष्ठानी देवता तुम्हें पृथिवी के ऊपर अङ्गिरा के समान पकावें । हे उखे ! गमनशील, नक्षत्रों के अभिमानी देवता, सब देवताओं के सहित तुम्हें पृथिवी के ऊपर अङ्गिरा के समान पकावें ॥ ६१ ॥

जो मनुष्यों को पुष्ट करने वाला, दीप्तिमान्, मित्र देवता से रक्षित, यश नाम से प्रसिद्ध अद्भुत और सुनने योग्य है, उस यश की हम याचना करते हैं ॥ ६२ ॥

हे उखे ! सुन्दर हाथ, उङ्गली और बाहु वाले देवता सर्वप्रेरक सविता अपनी बुद्धि और शक्ति के/द्वारा तुम्हें प्रकाशित करें ॥ ६३ ॥

हे उखे ! तुम पाक गर्त्त से बाहर आकर महिमामयी बनो और स्थिर होकर अपने कर्म में लगो। हे मित्र देवता ! इस प्राणियों की हित-कारिणी उखा को तुम्हें रक्षार्थ देता हूँ । यह उखा किसी प्रकार टूटे नहीं, इसी प्रकार रहे ॥ ६४ ॥

हे उखे ! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण तुम्हें अंगिरा के समान बकरी के दूध से सींचें । हे उखे ! त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से रुद्रगण तुम्हें

अंगिरा के समान बकरी के दूध से सींचें। हे उखे! जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण तुम्हें अंगिरा के समान अजादुग्ध से सींचें। हे उखे! अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से विश्वेदेवा तुम्हें अंगिरा के समान अजादुग्ध से सींचें ॥ ६५ ॥

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय ऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥६७॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु ।
अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय ऽ आसुरी माया स्वधया कृतासि ।
जुष्टं देवेभ्य ऽ इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे ऽ अस्मिन् ॥ ६९ ॥

द्रन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो ऽ अद्भुतः ॥ ७० ॥

यज्ञ-संकल्प की प्रेरणा करने वाले अग्नि को यह आहुति स्वाहुत हो। मन, मेधा, श्रुति, स्मृति की प्रेरणा करने वाले अग्नि के निमित्त स्वाहुत हो। अविज्ञात अनुष्ठान के ज्ञान-साधक और विज्ञान की प्रेरणा वाले अग्नि के लिए स्वाहुत हो। वाणी और धारणा के प्रेरक अग्नि के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। मन्वन्तर प्रवर्त्तक प्रजापति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। वैश्वानर अग्नि के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ६६ ॥

सभी मनुष्य फल-प्राप्त कराने वाले परमात्मा की मित्रता की कामना करें, ज्ञान की पुष्टि के लिए अन्न की कामना करें। जिन परमात्मा से धन की याचना की जाती है, उनके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥६७॥

हे उखे ! तुम विदीर्ण मत होना, तुम विनष्ट मत होना। तुम प्रगल्भतापूर्वक इस वीर कर्म को करो। अग्नि और तुम, दोनों ही हमारे इस कर्म को सम्पूर्ण करोगे ॥६८॥

हे उखे ! यजमान का मंगल करने के लिए दृढ़ता को प्राप्त हो। अन्न के *निमित्त तुमने माया धारण की है। यह हविरन्न देवताओं को* प्रसन्न करने वाला हो। जब तक कार्य सम्पूर्ण हो तब तक तुम इस यज्ञ में ही रहो ॥६९॥

जिन अग्नि का मुख्य भक्ष्य पलाश-काष्ठ है, जिनका मुख्य पान घृत है, जो प्राचीन होता और बल-पूर्वक मन्थन द्वारा उत्पन्न होने वाले हैं, वह अद्भुत रूप वाले अग्निदेव इन समिधाओं का भक्षण करें ॥७०॥

परस्या ऽ अधि संवतोऽवराँ ऽ अभ्यातर ।
यत्राहमस्मि ताँ ऽ अव ॥७१॥
परमस्याः परावतो रोहिदश्व ऽ इहागहि ।
पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥७२॥
यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥७३॥
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो ऽ अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥
अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिधा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५॥

शत्रुओं के संग्राम में हमारे मनुष्यों की रक्षा के निमित्त सम्मुख आगमन करो। हे अग्ने ! मैं जिस स्थान में स्थित हूँ, उस स्थान की भले प्रकार रक्षा करो ॥७१॥

हे रोहित नामक अश्व वाले अग्निदेव ! तुम बहुतों के प्रिय और अत्यन्त दूरवर्ती स्थान में निवास करने वाले हो। तुम हमारे इस यज्ञानुष्ठान में आओ और रणक्षेत्र में शत्रुओं को नष्ट कर कार्य को सम्पन्न करो ॥७२॥

हे अग्ने ! तुम्हें जो भी काष्ठ अर्पित किया जाय, वही तुम्हें घृत के समान प्रिय लगे। हे अग्ने ! तुम उस काष्ठ को प्रसन्नतापूर्वक भक्षण करो ॥७३॥

हे अग्ने ! उपजिह्विका (दीमक) जिस काष्ठ का भक्षण करती है, वल्मीक (दीमक) जिस काष्ठ को व्याप्त करती हुई व्याप्त होती है, वह काष्ठ तुम्हें घृत के समान प्रिय हो, और तुम उस काष्ठ को प्रसन्नता पूर्वक सेवन करो ॥७४॥

हे अग्ने ! हम तुम्हारे आश्रय वाले निरन्तर सावधान रहते हुए समिधा रूप तुम्हारे भक्ष्य को सम्पादित करते हैं। जैसे अश्वशाला में स्थित अश्व को प्रतिदिन तृणादि देते हैं, वैसे हर्षित होते हुए हम धन की पुष्टि और अन्न की वृद्धि से हर्षित होते हुए कभी हिंसित न हों ॥७५॥

नाभा पृथिव्याः समिधाने ऽ अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥७६॥
याः सेना ऽ अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा ऽ उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते ऽ अग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥७७॥
दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कराँ ऽ उत ।
हनुभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्तांस्त्वं खाद सुखादितान् ॥७८॥
ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने ।
ये कक्षेष्वघायवस्तांस्ते दधामि जम्भयोः ॥७९॥
यो ऽ अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो ऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥८०॥

पृथिवी की नाभि के समान उखा के मध्य प्रदीप्त आहवनीय अग्नि के प्रज्वलित होने पर अन्न से सन्तुष्ट होने वाले, बृहद् उक्थ वाले, यजन योग्य, युद्धों में विजेता, शत्रुओं के तिरस्कारकर्त्ता अग्नि को हम महान् धन द्वारा पोषण के निमित्त आहूत करते हैं ॥७६॥

जो शत्रु सेना हमारे सामने आकर ललकारने वाली है, जो शस्त्रधारी चोर, डाकू हैं, उन सबको हे अग्ने ! तुम्हारे मुख में डालता हूँ ॥७७॥

ऐश्वर्य सम्पन्न हे अग्ने ! गाँव में प्रत्यक्ष चोरी करने वाले या अन्य प्रकार से धन हरण करने वाले तस्करों को तुम अपनी दाढ़ों में रखकर चबा डालो। निर्जन स्थान में डकैती करने वालों को अगले दाँतों द्वारा और अन्य प्रकार के चोरों को ठोड़ी द्वारा पीड़ित करो। इस प्रकार के सब दुष्कर्मियों को भक्षण करो ॥७८॥

ग्राम में रहने वाले जो मलिम्लुच और स्तेन संज्ञक गुप्त चोर तथा निर्जन प्रदेश में गमन करने वाले तस्कर हैं और जो लोभवश मनुष्यों की हिंसा करने वाले पापी हैं उन सबको तुम्हारी दाढ़ों में डालता हूँ ॥७९॥

जो पुरुष हमसे शत्रुता करता है, जो पुरुष हमारे देय धन को हमें न दे, जो हमारा निन्दक है और जो हमारी हिंसा करना चाहता है, ऐसे सब प्रकार के पापी पुरुषों को हे अग्ने ! तुम भस्म कर डालो ॥८०॥

सँशितं मे ब्रह्म सँशितं वीर्यं बलम् ।
सँशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥८१॥
उदेषां बाहूऽअतिरमुद्वर्चोऽ अथो बलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँऽअहम् ॥८२॥
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्र दातारं तारिषऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥८३॥

हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से मेरा ब्राह्मणत्व तीक्ष्ण हुआ है मेरी सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने कर्मों में समर्थ हुई हैं। मैं जिसका पुरोहित हूँ, उसका क्षात्र धर्म भी विजयशील होगया ॥८१॥

इन अग्नि की कृपा पाकर इन ब्राह्मणों और राजाओं के मध्य अपने बाहु को ऊँचा किया। ब्रह्मतेज ने सबकी दीप्ति को लाँघा और

बल ने सबके बल पर विजय पाई । मैं शत्रुओं को मन्त्र के बल से नष्ट करता हूँ अपने पुत्र पौत्रादि को श्रेष्ठ बनाता हूँ ॥८२॥

हे अन्न के पालनकर्त्ता अग्निदेव ! हमारे लिए रोग-रहित, बल देने वाला अन्न दो । अन्न देने के पश्चात् हमें हर प्रकार बढ़ाओ और हमारे मनुष्यों और पशुओं को भी अन्न प्रदान करो ॥८३॥

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

ऋषि—वत्सप्रीः, कुत्सः, श्यावाश्वः, ध्रुवः,शुनःशेपः, त्रितः, विरूपाक्षः, विरूपः, तापसः; वसिष्ठः, दीर्घतमा, सोमाहुतिः, विश्वामित्रः, प्रियमेधाः, सुतजेतृमधुच्छन्दा, मधुच्छन्दा, विश्वावसुः, कुमारहारितः, भिषग्. वरुणः, हिरण्यगर्भः, पावकाग्निः, गोतमः, वत्सारः, प्रजापतिः ।

देवता—अग्निः, सविता, गरुत्मान, विष्णुः वरुणः, जीवेश्वरौ, आप, पितरः, इन्द्रः, दम्पती, पत्नी, निर्ऋतिः, यजमानः, कृषीवलाः कवयो वा, कृषीवलाः, मित्रादयो लिंगोक्ताः, अघ्न्याः, अश्विनौ, वैद्यः; चिकित्सु, ओषधयः, वैद्याः, भिषजः, भिषग्वराः; ओषधिः, विद्वान् , सोमः ।

छन्दः—पंक्तिः, त्रिष्टुप् , जगती, धृतिः, 'कृतिः, अनुष्टुप् , गायत्री, उष्णिक् , बृहती ।

दृशानो रुक्मऽ उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥२

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥३॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमऽआत्मा छन्दाꣳस्यंगानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं

यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द ऽ आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द ऽ आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व ।विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द ऽ आरोह दिवमनु विक्रमस्व। विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द ऽ आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

सूर्य प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले, अतिरस्कृत और जीवन रूप होते हुए लक्ष्मी प्रदान करने के लिए दिव्य प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं। उसी प्रकार यह अग्नि पुरोडाश आदि से प्रदीप्त होकर प्रकाश युक्त होते हैं। स्वर्ग के निवासी देवताओं ने इस अग्नि को प्रकट किया ॥ १ ॥

हे उखे ! समान मन वाले दिन रात्रि कृष्ण और शुक्ल रूप में परस्पर मिलते हुए शिशु रूप अग्नि को तृप्त करते हैं। इस प्रकार दिवस रात्रि रूप इण्डु से उखा को ग्रहण करता हूँ। द्यावा पृथिवी के मध्य रूप अन्तरिक्ष में उठाई गई उखा अत्यन्त शोभित होती है, मैं उसे ग्रहण करता हूँ। यज्ञ द्वारा धन रूपी फल के देने वाले देवताओं ने अग्नि को धारण किया, अथवा यज्ञकर्त्ता यजमान के प्राणों ने इस उखा रूप अग्नि को भले प्रकार धारण किया है ॥ २ ॥

वरणीय एवं विद्वान् सवितादेव के अनुज्ञा में वर्तमान विश्व की सभी वस्तुएँ अनेक रूपों को धारण करती हैं। मनुष्य और पशु आदि सब प्राणी उन सविता से ही अपने-अपने कर्म की प्रेरणा पाते हैं। वही सविता स्वर्ग को प्रकाशित करते हुए उषा के जाने पर विराजमान होते हैं ॥ ३ ॥

हे उखा के अग्रभाग ! जिस कारण तुम ऊर्ध्वगामी होने में समर्थ और महान् हो, उसी कारण तुम श्रेष्ठ पङ्ख वाले गरुड के समान वेगवान् भी हो। त्रिवृत् स्तोम तुम्हारा शिर, गायत्री छन्द तुम्हारे नेत्र, बृहत् साम और रथन्तर साम तुम्हारे पङ्ख, स्तोम तुम्हारी आत्मा, छन्दांसि छन्द तुम्हारे

शरीर के विभिन्न अवयव हैं। यजु तुम्हारे नाम, वामदेव नामक साम तुम्हारा देह, यज्ञायज्ञिय साम तुम्हारी पूँछ और विष्ण्य में स्थित अग्नि तुम्हारे खुर नख आदि हैं। अतः हे अग्ने ! तुम स्वर्ग की ओर जाओ ॥ ४ ॥

हे प्रथम पाद विन्यास ! तुम यज्ञाग्नि के शत्रुओं की हिंसा करने वाले हो, अतः गायत्री छन्द को ग्रहण करो। फिर पृथिवी के इस दिव्य प्रदेश को प्राप्त होओ। हे द्वितीय पाद विन्यास ! तुम यज्ञाग्नि के शत्रु-नाशक क्रम हो, अतः त्रिष्टुप् छन्द को कृपा पूर्वक स्वीकार करो। फिर स्वर्ग लोक को प्राप्त होओ। तुम्हारी कृपा से हिंसक शत्रुओं का नाश हो। हे तृतीय पाद विन्यास ! तुम यज्ञाग्नि के शत्रु-नाशक क्रम हो। अतः जगती छन्द को कृपा पूर्वक स्वीकार करो। फिर स्वर्ग लोक को प्राप्त होओ। तुम्हारी कृपा से अहङ्कारी और लोभी मनुष्य नष्ट हों। हे चतुर्थ पाद विन्यास ! तुम यज्ञाग्नि के शत्रु-नाशक क्रम हो। अतः अनुष्टुप् छन्द को अनुग्रह पूर्वक ग्रहण करो। फिर तुरीय लोक में जाओ। तुम्हारी शक्ति से दुष्ट कर्म वाले पापी नाश को प्राप्त हों। हे अग्ने ! तुम दिशाओं और उपदिशाओं में अपना विक्रय करने वाले हो ॥ ५ ॥

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो ऽ अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥६॥
अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नाभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन ।
सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥
अग्ने ऽ अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त ऽ उपावृतः ।
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥८॥
पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न ऽ इषायुषा। पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥९॥
सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।१०

हे अग्ने ! तुम आकाश के समान गर्जन करते हुए पृथिवी का आस्वादन करो। यह अग्नि वृक्षों को अंकुरित करते और अपनी ज्वालाओं से औषधियों को व्याप्त करते हुए प्रदीप्त होते हैं। यह प्रकट होते ही दीप्त होते

हुए आकाश और पृथिवी के मध्य में प्रकाशित होते हैं। जैसे मेघ विद्युत द्वारा आकाश पृथिवी के मध्य में प्रकाशयुक्त होता है, वैसे ही इन अग्नि की भी पर्जन्य के समान स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे अभिमुख प्रत्यक्ष होते हो। तुम गमन आगमन में समर्थ हो। तुम आयु, तेज, अपत्य, अभीष्ट लाभ, श्रेष्ठ बुद्धि, सुवर्णादि अलङ्कार और देह पोषण आदि के सहित मेरे अभिमुख शीघ्र आगमन करो ॥ ७ ॥

हे अङ्गिरा अग्ने ! तुम सैकड़ों पराक्रमों से युक्त हो तुम्हारी निवारण शक्ति भी सहस्रों हो। अत हमारी प्रार्थना है कि तुम अपनी शक्तियों के प्रभाव से लाखों प्रकार की पुष्टियों द्वारा हमारे व्यय हुए धन को पुन प्राप्त कराओ और हमारे पूर्व सम्पादित धन का पुन सम्पादन करो ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम दुग्धादि रस के सहित फिर यहाँ आओ और अन्न तथा आयु को साथ लेकर आते हुए सब प्रकार के पापों से हमारी रक्षा करो ॥९॥

हे अग्ने ! तुम धन के सहित प्रत्यावर्तित होओ। सम्पूर्ण जगत के उपभोग के योग्य वृष्टि जल की धारा से सभी तृण, लता और धान्यादि ओषधियों, वनस्पतियों, वृक्षों आदि को सिंचित करो ॥१०॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलि ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत ॥११॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳश्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो ऽ अदितये स्याम ॥१२॥

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो ऽ अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग ऽ आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१३॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऽ ऋतजा ऽ अद्रिजा ऽ ऋतं बृहत् ॥१४॥

सीद त्वं मातुरस्या ऽ उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याᳬ शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१५॥

हे अग्ने ! मैंने तुम्हें आहरण किया है । तुम अत्यन्त अविचल रहकर उखा के मध्य स्थिरतापूर्वक स्थित होओ । हमारी सभी प्रजा तुम्हारी कामना करे । हमारा राष्ट्र तुमसे शून्य कभी भी न हो ॥११॥

हे वरुण ! तुम सब बन्धनों और सन्तापों से मुक्त करने वाले हो। हमारे उत्तम अंग में स्थापित अपनी पाश को हमसे पृथक् करो। नीचे के अङ्गों में स्थापित अपनी पाश को खेंच लो और मध्यमांगों में स्थापित अपनी पाश को भी हमसे दूर कर दो। इसके पश्चात् हम अपराधों से मुक्त होकर तुम्हारे कर्म में लगें। हे आदित्यपुत्र वरुण ! हम दीनता से रहित अखंडित ऐश्वर्य के योग्य हों ॥१२॥

महिमामय अग्नि उषाकाल से पूर्व उन्नत हुए। रात्रिरूपी अन्धकार से निकल कर दिवस रूपी ज्योति के साथ यहाँ प्रकट होगये। अन्धकार को दूर करने वाली रश्मियों के जाल से आवृत्त हो सुन्दर देह वाले हुए। यह अग्नि उत्पन्न होते ही सब लोकों और स्थानों को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं- ॥१२॥

पवित्र स्थान से दीप्त अग्नि वायुरूप से अन्तरिक्ष में स्थित्त तथा मनुष्यों के प्रवर्त्तक होकर वेदी में स्थित होते हैं। वे होतारूप से सबके पूजनीय तथा मनुष्यों में प्राण-भाव से स्थित हैं। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त महिमा वाले तथा सब प्रकार प्रवृद्ध हो ॥१४॥

हे अग्ने ! तुम सभी ज्ञानों के उपायों के ज्ञाता हो। तुम माता के समान इस उखा की गोद में स्थित हो अतः इसे अपने ताप से सन्तप्त मत करना तथा अपनी ज्वाला से दग्ध मत करना। क्योंकि तुम इस उखा के मध्य में अपनी उज्वल ज्योति से भले प्रकार प्रकाशमान हो ॥१५॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे ।

तस्यास्त्व ᳫ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव. ॥१६॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने ऽ अथो सीद शिवस्त्वम् ।
शिवा. कृत्वा दिशः सर्वा स्व योनिमिहासद ॥१७

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे ऽ अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदा. ।
तृतीयमप्सु नृमणाऽअजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधी. ॥१८॥

विद्मा ते ऽ अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यतऽआजगन्थ ॥१९॥

समुद्रे त्वा नृमणा ऽ अप्स्वन्तर्नृचक्षा ऽ ईधे दिवो अग्नऽऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवा ᳫ समपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन् ॥२०॥

हे अग्ने ! तुम इस उखा के मध्य दीप्त होकर अपने घर में विराजमान हो। हे सर्वज्ञाता अग्ने ! तुम अपनी ज्योति से तेजस्वी होते हुए इस उखा के लिये भी मंगल करने वाले होओ ॥१६॥

हे अग्ने ! तुम मेरे लिए भी कल्याणकारी होकर हर प्रकार मंगल रूप होते हुए और सब दिशाओं को भी मेरे लिए कल्याण करने वाली बनाते हुए अपने इस उखा रूप श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित होओ ॥१७॥

जातवेदा अग्नि सर्व प्रथम स्वर्ग में सूर्य रूप से उत्पन्न हुए। द्वितीय अग्नि हम ब्राह्मणों के सकाश में आविर्भूत हुए। तृतीय अग्नि जल के गर्भ में वड़वा रूप से उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह अग्नि बहुत जन्म वाले हैं। श्रेष्ठ बुद्धि वाला यजमान इस अग्नि को प्रकट करता है ॥१८॥

हे अग्ने ! तुम्हारे जो तीन रूप सूर्य, अग्नि और वड़वा हैं, उन रूपों को हम भले प्रकार जानते हैं। गार्हपत्य आह्वनीय, अन्वाहार्य पचन अग्नीध्रीय आदि तुम्हारे सब स्थानों को भी हम जानते हैं और तुम्हारा जो मन्त्र स्थित गुह्य नाम है उसको भी हम जानते हैं। तुम्हारे उस जल रूप स्थान को भी हम जानते हैं जिससे तुम विद्युत रूप से प्रकट हुए हो ॥१९॥

हे अग्ने ! तुम्हें मनुष्यों का हित करने वाले प्रजापति ने बड़वा रूप से प्रकट किया। मंत्र पाठियों में श्रेष्ठ प्रजापति ने तुम्हें वृष्टि-जलों के मध्य विद्युत रूप से प्रदीप्त किया है। तृतीय रंजक सूर्य मंडल में सूर्य रूप से तुम्हें प्रजापति ने ही प्रकाशित किया। जलों में उपस्थित तुम्हें महान् प्राणों ने प्रवृद्ध किया ॥ २० ॥

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो ऽ अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥२१॥
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो ऽ अप्सु राजा विभात्यग्र ऽ उषसामिधानः ॥२२॥
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽ आ रोदसी ऽ अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥
उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्त्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥
दृशानो रुक्म ऽ उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो ऽ अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

मेघ के समान गर्जनशील अग्नि पृथिवी का आस्वादन करते हुए औषधि और वृक्षादि को अंकुरित करते हैं। वे शीघ्र प्रकट होकर स्वर्ग और पृथिवी में व्याप्त होते हुए अपनी महिमा से तेजस्वी होते हैं ॥ २१ ॥

यह अग्नि महान् ऐश्वर्य के देने वाले, धनों के धारण करने वाले, अभीष्टों के प्राप्त कराने वाले; यजमान के सोमयाग के रक्षक, सब के निवास के कारण रूप, मन्थन द्वारा बल पूर्वक प्रकट होने के कारण पुत्र रूप, जल में स्थित होने से वरुण, मेघों में विद्युत रूप से दिव्यमान और उषा के पूर्व सूर्य रूप से प्रकाशमान होते हैं ॥ २२ ॥

यह अग्नि समस्त संसार के केतु रूप, सब प्राणियों के हृदयों में वायु रूप से आत्मा और सूर्य रूप से प्रकट होकर स्वर्ग और पृथिवी को तेज से

परिपूर्ण करते हैं। यह चन्द्रमा के रूप से सर्वत्र गमन करने वाले और अत्यन्त दृढ़ मेघ के विदीर्ण करने वाले हैं, उन्हीं अग्नि के लिए पंचजन यज्ञ करते हैं ॥ २३ ॥

प्राणियों द्वारा कामना किये गये, शुद्ध करने वाले, दुष्टों से प्रीति न करने वाले, मेधावी, मरणधर्म से हीन यह अग्नि मरणधर्म वाले मनुष्यों में देवताओं द्वारा स्थापित किये गए हैं । यह अग्नि अपने निरपद्रव धूम को आकाश में व्याप्त कर जल वृष्टि के कारण बनते हैं । यही इस विश्व को धारण कर अपनी महिमा से स्वर्ग को व्याप्त करते हैं ॥ २४ ॥

प्रत्यच प्राप्त अग्नि अतिरस्कृत होते हुए दिव्य प्रकाश से प्रकाशित होकर प्राणियों को श्री सम्पन्न करते हैं। पुरोडाशादि से प्रदीप्त अग्नि प्रकाशमान होते हैं। देवताओं ने इन महान् कर्मा अग्नि को प्रकट किया ॥ २५ ॥

यस्ते ऽ अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूप देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र त नय प्रतरं वस्यो ऽ अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥
आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न ऽ उक्थ ऽ उक्थ ऽ आभज शस्यमाने ।
प्रिय. सूर्ये प्रियो ऽ अग्ना भवात्युज्जातेन भिनदद्गुज्जनित्वैः ॥२७॥
त्वामग्ने यजमाना ऽ अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥२८॥
अस्ताव्यग्निर्नराᳬ सुशेवो वैश्वानर ऽ ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥२९॥
समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

हे मंगलमयी दीप्ति और दिव्य गुणों से सम्पन्न अग्ने ! इस प्रतिपदा में जो यजमान तुम्हें घृत से सिंचित करता है अथवा घृताक्त पुरोडाश देता है, तुम उस यजमान को अत्यंत उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त कराते हुए देवताओं के भोगने योग्य सुख को भी भले प्रकार प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥

हे अग्ने ! इस यजमान की यश-वृद्धि वाले यज्ञानुष्ठान में सव प्रकार अनुकूल होओ। तुम इस यजमान को अव प्रीति-पात्र बनाओ और सूर्य के लिए भी प्रिय करो। वह उत्पन्न संतान द्वारा सुख को प्राप्त करे और उत्पन्न होने वाले पौत्रादि का भी सुख पावे। इसकी हर प्रकार समृद्धि हो ॥ २७ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी सेवा में लगे हुए यजमान प्रतिदिन सब धन-धान्यादि को प्राप्त करते हैं और तुम्हारे यज्ञादि कर्म करने की इच्छा करने वाले मेधावी जन यज्ञ फल रूप से देवयान मार्ग को प्राप्त होते हुए स्वर्ग में जाते हैं ॥ २८ ॥

जठराग्नि रूप सब को हितैषी और मनुष्यों को सुख देने वाले, सोम रक्षक अग्नि की ऋषिगण स्तुति करते हैं और द्वेष रहित स्वर्ग-पृथिवी के अधिष्ठात्री देवता को आहूत करते हैं। हे देवगण ! तुम हम में वीर पुत्रादि तथा श्रेष्ठ ऐश्वर्य की भले प्रकार स्थापना करो ॥ २९ ॥

हे ऋत्विजो ! समिधाएं प्रदान करते हुए तुम अग्नि देवता की सेवा करो। यह अग्नि अतिथि रूप हैं तुम इन्हें प्रदीप्त करने के लिए आज्याहुति दो ॥ ३० ॥

उदु त्वा विश्वे देवा ऽ अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥
प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥
अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो ऽ अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥३३॥
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो ऽ अतिथिः शिवो नः ॥३४॥
आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳ सुरभा ऽ उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं विभृताप्स्वेनत् ॥३५॥

हे अग्ने ! सभी देवता अपनी श्रेष्ठ बुद्धियों द्वारा तुम्हें उन्नत करें

और ऊँचे उठते हुए तुम श्रेष्ठ सुख वाले और शोभन दीप्ति वाले होकर हमारा सब प्रकार कल्याण करने वाले बनो ॥ ३१ ॥

हे अग्ने ! तुम अपनी कल्याणकारिणी ज्वालाओं के द्वारा प्रकाशमान् होकर गमन करो। तुम अपनी महती रश्मियों द्वारा दीप्तिमान् होकर हमारे पुत्र पुत्रादि को किसी प्रकार की पीड़ा मत देना। (हमारा शकट गमन निर्विघ्न पूर्ण हो) ॥ ३२ ॥

हे अग्ने ! आकाश के समान गर्जनशील होते हुए तुम पृथिवी का आस्वादन करो। यह अग्नि वृक्षादि को अंकुरित करते हुए प्रदीप्त होते हैं। जैसे मेघ विद्युत द्वारा द्युलोक और पृथिवी के मध्य प्रकाशित होता है, वैसे ही मेघ के समान अग्नि भी महिमा से युक्त होते हैं ॥ ३३ ॥

यह अग्नि हवि धारण करने वाले यजमान के आह्वान को भले प्रकार श्रवण करते हैं और अत्यन्त दीप्तिमान होते हुए सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं। जो युद्धों में राक्षसों से सामना करते हैं, वे अग्नि हमारे लिए कल्याणप्रद होते हुए प्रकाशमान होते हैं ॥ ३४ ॥

हे दिव्य गुण सम्पन्न जलो ! तुम भस्म को ग्रहण करो। यह मंगलमयी भस्म पुष्प धूप आदि के योग से सुरभित हुई है, तुम इसे धारण करो। जिनके श्रेष्ठ स्वामी वरुण हैं, वे वृक्षादि को उत्पन्न कर अग्नि को प्रकट करने वाले हैं। ऐसे हे जलो ! तुम इस भस्म रूप अग्नि के निमित्त नम्र होओ। जैसे माता पुत्र को अङ्क में धारण करती है, वैसे ही तुम इस भस्म को धारण करो। अनुष्ठाता तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ३५ ॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ ३६ ॥
गर्भो ऽ अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो ऽ अपामसि ॥ ३७ ॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सᳬसृज्य मातृभिष्ट्व ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने ।
शेपे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याँ शिवतमः ॥ ३९ ॥
पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न ऽ इषायुषा ।
पुनर्नः पाह्यँहसः ॥ ४० ॥

हे भस्म रूप अग्ने ! तुम्हारा स्थान जल में ही है । वही भस्म जल के द्वारा यवादि रूप में परिणित हुई अरणी के मध्य में पुनः प्रकट होती है ॥ ३६ ॥

हे अग्ने ! तुम औषधियों के गर्भ रूप हो, वनस्पतियों के गर्भ हो तथा सभी प्राणियों के गर्भ रूप उत्पत्ति करने वाले हो । तुम ही समस्त जलों के गर्भ रूप एवं उत्पन्न करने वाले हो ॥ ३७ ॥

हे अग्ने ! तुम भस्म के द्वारा इस पृथिवी को और जलों को प्राप्त होकर मातृभूत जलों में मिल कर तेज युक्त होते हुए उखा में स्थित होओ ॥ ३८ ॥

हे अग्ने ! तुम महान् कल्याणरूप हो । तुम जल और पृथिवी के स्थान को प्राप्त होकर उखा के मध्य में, जैसे माता की गोद में शिशु शयन करता है, वैसे ही शयन करते हो ॥ ३९ ॥

हे अग्ने ! तुम दुग्धादि से युक्त होकर पुनः आओ । जब तुम अन्न और जीवन के सहित यहाँ आओ तब पापों से भी हमारी रक्षा करना ॥४०॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥
बोधा मे ऽ अस्य वचसो यविष्ठ मँहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो ऽ अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे ऽ अग्ने ॥४२॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।
युयोध्यस्मद् द्वेषाँसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥
पुनस्त्वाऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतना ।
अदाद्यमोऽवसान पृथिव्या ऽ अक्रन्निम पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

हे अग्ने ! तुम धन के सहित लौट आओ और सब प्राणियों के लिए उपयोगी वृष्टिरूप जल धारा को सब तृण लता और वनौषधियों पर सींचो ॥ ४१ ॥

हे युदकतम, धन सम्पन्न अग्ने ! मेरे इस बारम्बार निवेदन को सुनते हुए तुम मेरे अभिप्राय को जानो । एक तुम्हारा निन्दक है और एक तुम्हारी स्तुति करता है, यह मनुष्य का स्वभाव ही है। परन्तु मैं तो तुम्हारा स्तोता हूँ और सदा तुम्हारी वंदना करता हूँ ॥ ४२ ॥

हे धन के स्वामी और दाता अग्ने ! तुम सब के जानने वाले हो अतः हमारे अभिप्राय को जानो और हमसे प्रसन्न होकर दुर्भाग्य को हमसे दूर करो। तुम संसार की रचना आदि कर्म करने वाले हो, अतः यह आहुति तुम्हारे लिए स्वाहुत हो ॥ ४३ ॥

हे अग्ने ! धन के निमित्त तुम्हें आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगण पुनः प्रदीप्त करें। ऋत्विज् यजमान भी तुम्हें पुनः यज्ञ-कर्म में प्रदीप्त करें और तुम घृत के द्वारा अपने देह की वृद्धि करो, क्योंकि तुम्हारी वृद्धि से ही यजमान के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ४४ ॥

हे यमदूतो ! तुम पुराने या नये जैसे भी इस स्थान में हो यहाँ से दूर चले जाओ । संघात त्याग कर तुम अनेक स्थानों में अत्यन्त दूर चले जाओ । इस यजमान को यम ने पृथिवी का अवकाश दिया है और पितरों ने भी इस यजमान को यह लोक कल्पित किया है ॥४५॥

स ज्ञानमसि कामधरण मयि ते कामधरण भूयात् ।
अग्नेर्भस्मास्यग्ने पुरीषमसि चित स्थ परिचित ऽ ऊर्ध्वचित.
श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥
अयᳪ सो ऽ अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्र सुत दधे जठरे वावशान ।
सहस्रियं वाजमत्य न सप्तिᳪ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेद ॥४७॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्च: पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥४८॥
अग्ने दिवो ऽ अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऽ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त ऽ आपः ॥४९॥
पुरीष्यासो ऽ अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा ऽ इषो महीः॥५०॥

हे उषा ! तुम पशुओं के सम्यक् ज्ञान की साधन रूप हो तथा यज्ञ के द्वारा श्रेष्ठ ज्ञान का सम्पादन करती हो। इसलिए तुम्हारी ज्ञान-सम्पादन वाली सामर्थ्य मुझ यजमान में भी हो। हे सिकता ! तुम भस्म रूप हो और अग्नि के पूर्ण करने वाले हो। हे शर्करा ! तुम पृथिवी पर डाले हुए सब ओर स्थापित हो अतः इस गार्हपत्य स्थान का सेवन करो ॥४६॥

यह अग्नि है। अग्निचयन के इच्छुक इन्द्र ने अभिषव किये और सहस्रों के पालन-योग्य अन्न को भक्षण करते हुए अपने जठर में धारण किया। हे अग्ने ! तुम भी भक्षण करते हुए,ऋत्विजो से स्तुतियाँ प्राप्त करते हो ॥४७॥

हे अग्ने ! तुम्हारी जो ज्योति स्वर्ग में और जो तेज पृथिवी में, औषधियों में हैं तथा जलों में जिस ज्योति ने विद्युत रूप से महान् अंतरिक्ष को व्याप्त किया है, वह संसार को प्रकाशित करने वाली तुम्हारी ज्योति मनुष्यों के कर्मों को देखने वाली है ॥४८॥

हे अग्ने ! तुम दिव्य जलों को अभिमुख होकर पाते हो। बुद्धि को प्रेरित करने वाले जो प्राण कहाते हैं, उन प्राण रूप देवताओं के सामने भी गमन करते हो। सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य के परे जो जल हैं तथा जो जल नीचे हैं, उन सब जलों में तुम विद्यमान हो ॥४९॥

अग्नि पशुओं के हितैषी, समान मन वालों में प्रीतियुक्त, अहिंसाशील हैं। वह अभीष्ट रूप इस यज्ञ को भूख, प्यास शमन करने वाले बहुत अन्न से युक्त होकर सेवन करें ॥५०॥

इडामग्ने पुरुदꣳस ꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।

स्यान्न. सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५१॥
अय ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो ऽ अरोचथा ।
त जानन्नग्न ऽ आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५२॥
चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।
परिचिदसितया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ॥५३॥
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन्॥५४॥
ता ऽ अस्य सूददोहस सोम ७ श्रीणन्ति पृश्नय ।
जन्मन्देवाना विशस्त्रिष्वा रोचने दिव ॥५५॥

हे अग्ने ! जो अन्न बहुत कर्मों का साधक है तथा जो गौ निरन्तर दुग्धादि देती है, उनसे सम्बन्धित दान का तुम सम्पादन करो। हम प्रजावान् पुत्र को प्राप्त करें। हे अग्ने ! अन्न, गौ, पुत्र आदि के देने वाली तुम्हारी सुन्दर हितकारिणी बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥५१॥

हे अग्ने ! गार्हपत्य अग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है। तुम जिस गार्हपत्य से उत्पन्न होकर प्रदीप्त होते हो, उसे जानकर अनुष्ठान सिद्धि के लिए दक्षिण कुण्ड में आरोहण करो। फिर यज्ञादि कर्म करने के लिए हमारे निमित्त धन की वृद्धि करो ॥५२॥

हे इष्टके ! तुम भोगों को एकत्र करने वाली हो। उस प्रख्यात वाक् रूप देवता द्वारा स्थापित होकर तुम अंगिरा के समान इस स्थान में दृढ़ता से स्थापित होओ। हे इष्टके तुम सब ओर से भोगों को एकत्र करने वाली और प्रख्यात वाक् देवता द्वारा स्थापित हो। तुम अंगिरा के समान इस स्थान में दृढ़तापूर्वक स्थित रहो ॥५३॥

हे इष्टके ! तुम गार्हपत्य के चयन स्थान में पूर्व इष्टकाओं द्वारा आक्रान्त न होती हुई स्थान को पूर्ण करो और छिद्र को भरदो तथा दृढ़ता पूर्वक स्थित हो। इन्द्र, अग्नि और बृहस्पति देवताओं ने तुम्हें इस स्थान में स्थापित किया है ॥५४॥

दिव्य लोक से क्षरित होने वाले, अन्नरूप धान्यादि के सम्पादन करने वाले जल और अन्न से युक्त वे प्रसिद्ध जल, देवताओं के उत्पन्न करने वाले संवत्सर में स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों में यज्ञात्मक सोम को परिपक्व करते हैं ॥५५॥

इन्द्रं विश्वा ऽ अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतम ँ रथीनां वाजना ँ सत्पतिं पतिम् ॥५६॥
समित ँ सं कल्पेथा ँ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
इषमूर्जमभि संवसानौ ॥५७॥
सं वां मना ँसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न ऽ इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥५८॥
अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ ऽ असि ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥५९॥
भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञ ँ हि ँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ।६०।

सम्पूर्ण वाणी रूप स्तुति, समुद्र के समान व्यापक, सब रथियों में महारथी, अन्नों के स्वामी और सत्य के अधीश्वर इन्द्र को बढ़ाती हैं ॥५६॥

हे अग्नियो ! तुम ज्योतिर्मान, समान मन वाले, श्रेष्ठ विचार वाले हो। तुम इन अन्न घृतादि रस का भोग करते हुए एक मन से यहाँ आकर यज्ञ कर्म को भले प्रकार सम्पन्न करो ॥५७॥

हे अग्नियो ! तुम्हारे मनों को सुसंगत करता हूँ। तुम्हारे कर्म को सुसंगत करता हूँ। तुम्हारे मनोगत संस्कार को एक करता हूँ। हे पुरीष्य अग्ने ! तुम हमारे स्वामी हो। तुम हमारे यजमान को अन्न और बल दो ॥५८॥

हे अग्ने ! तुम पुरीष्य, धन-सम्पन्न और पुष्टि से सम्पन्न हो। हम तुम्हारी कृपा से ऐश्वर्य और पुष्टि को प्राप्त करें। तुम सब दिशाओं को

हमारे लिए कल्याण करने वाली बनाते हुए अपने इस स्थान पर प्रतिष्ठित होओ ॥५९॥

हे अग्निद्वय ! हमारे कार्य की सिद्धि के लिए तुम समान मन और समान चित्त वाले तथा आलस्यादि से रहित होते हुए हमारे यज्ञ को हिंसित मत होने दो। यज्ञपति यजमान की भी हिंसा न हो। तुम हमारे लिए कल्याण रूप होओ ॥६०॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्नि ँ स्वेयोनावभारुखा।
ता विश्वैर्देवैर्ऋतुभि संविदान प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥६१॥
असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥६२॥
नम सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मय विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्व यम्या स विदानोत्तमे नाके ऽअधि रोहयैनम् ॥६३॥
यस्यास्ते घोर ऽआसन् जुहोम्येषा बन्धनामवसर्जनाय।
या त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वत ।६४।
य ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाश ग्रीवास्वविचृत्यम्।
त ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैत पितुमद्धि प्रसूत।
नमो भूत्यै येदं चकार ॥६५॥

पृथिवी रूप मृत्तिका से बनी हुई उखा ने पशुओं का हित करने वाले अग्नि को अपने स्थान में माता द्वारा पुत्र को धारण करने के समान धारण किया। विश्वेदेवों और समस्त ऋतुओं द्वारा समान मति को प्राप्त उखा ने यह महान् कर्म किया। ऐसा कहते विश्वकर्मा प्रजापति उस उखा को शिक्य पाश से छुड़ावें ॥ ६१ ॥

हे निर्ऋते ! (हे पाप देवता अलक्ष्मी) जो पुरुष यज्ञादि कर्मों को नहीं करते अथवा जो देवताओं को हव्यादि नहीं देते तू उन्हीं पुरुषों के पास जा। तू छिपे या प्रकट चोर को प्राप्त कर। हमसे दूर

चली जा, क्योंकि वही तेरी गति है । हे देवी ! हम तो तुझे नमस्कार करते हैं ॥६२॥

हे निऋते ! तुम तीक्ष्ण तेज वाले और घोर क्रूर कर्म रूप हो । हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । तुम हमारे लौह-पाश के समान दृढ़ जन्म-मरण रूप पाश को तोड़ो और यम—यमी से एकमत को प्राप्त होकर इस पुरुष को श्रेष्ठ स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित करो ॥६३॥

हे क्रूर रूप वाली निऋते ! इन यजमानों के पाश रूप पापों को नाश करने के लिए तुम्हारे मुख में आहुति के समान इष्टका का धारणकरता हूँ । सभी शास्त्र न जानने वाले मनुष्य तुम्हें 'भूमि है' ऐसा कहते हुए स्तुति करते हैं । परन्तु मैं शास्त्र का ज्ञाता तुम्हें सब प्रकार पाप देवी ही जानता हूँ ॥६४॥

हे यजमान ! निऋतिदेवी ने तुम्हारे कण्ठ में जो न कटने योग्य दृढ़ पाश को बाँधा था, उसे मैं अग्नि के मध्य निऋति के अनुमति क्रम द्वारा अभी दूर करता हूँ । पाश के हटने पर निऋति की अनुज्ञा प्राप्त हो । हे यजमान ! इस रक्षा करने वाले श्रेष्ठ अन्न का भक्षण करो । जिस देवी की कृपा से यह समस्त क्रिया पूर्ण हो गई उस ऐश्वर्यरूपी देवी को नमस्कार है ॥६५॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः ।
देव ऽ इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥६६॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥६७॥
युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥६८॥
शुनꣳसु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ऽ ओषधीः कर्त्तनास्मे ॥६९॥
घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥७०॥

अग्नि यजमान को उसके घर में स्थापित करते, धनों को प्राप्त कराते और अवश्यम्भावी फल युक्त यज्ञ का सम्पादन करते हैं। यही अग्नि अपने-अपने कर्मों से युक्त सब रूपों को प्रकाशित करते हैं। सविता देवता के समान प्रकाशक होकर यह अग्नि, इन्द्र के समान ही संग्राम में स्थित होते हैं ॥६६॥

मेधावी और क्रान्तदर्शी अग्नि स्वर्ग का हित करने को हलों को बैलों से जोड़ते हैं और बैलों के जोड़ों को पृथक्-पृथक् वहन कराते हैं ॥६७॥

हे कृषको! हलों को युक्त करो। हलादि को ठीक करके बैलों के कन्धों पर जुए रक्खो। फिर इस संस्कारित भूमि में बीज का वपन करो। सभी अन्न फलादि से सम्पन्न होकर पुष्टि को प्राप्त हों। फिर पके हुए अन्न को दरांती से शीघ्र काट लो और हमारा घर, जो अत्यन्त निकट है, उसमें इसे रख दो ॥ ६८ ॥

हे हल! तुम श्रेष्ठ फाल से युक्त हो। इस भूमि को सुख-पूर्वक जोतो। हल युक्त किसान वृषभ आदि के सहित सुखपूर्वक विचरण करें। हे वायु और आदित्य! तुम दोनों हमारी पृथिवी को जल से सींचकर इन औषधि आदि को श्रेष्ठ फल वाली बनाओ ॥ ६९ ॥

विश्वेदेवों और मरुतों से अनुमति प्राप्त यह हल की फाल मधुर घृत द्वारा सिंचित हो। हे फाल! तू अन्नवती होकर दुग्ध, दधि, घृत आदि से दिशाओं को पूर्ण कर और सब प्रकार हमारे अनुकूल हो। इस खेत में उत्पन्न होने वाली सब औषधि आदि अमृत गुण वाले जल से पुष्ट और तेज से युक्त हों ॥ ७० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवꣳसोमपित्सरु ।

तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥७१॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।

इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ऽओषधीभ्यः ॥७२॥

वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना ऽअगन्म तमसस्पारमस्य ।

ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

सजूरब्दो ऽ अयवोभिः सजूरुषा ऽ अरुणीभिः ।
सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर ऽ एतशेन सजूर्वैश्वा-
नर ऽ इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

वह फालयुक्त हल यजमान के लिए पृथिवी को खोदने वाला, सोम-निष्पादक, सुखकारी है। वह भेड़, गौ और रथ वहन करने वाले अश्वादि को प्राप्त कराता है ॥ ७१ ॥

हे हल ! तुम अभीष्ट पूर्ण करने वाले हो। मित्र, वरुण, इन्द्र, पूषा और दोनों अश्विनीकुमार प्रजाओं के और औषधियों के लिए कामना किये हुए भोगों का सम्पादन करें ॥ ७२ ॥

हे कर्म द्वारा देवयान मार्ग प्राप्त कराने वाले देव ! अहिंसित गौ-वृषभ आदि से संसार की स्थिति के हेतु कृषि-कर्म का सम्पादन कर। तुमसे पृथक् होकर अब तुम्हारी कृपा से हम क्षुधा-पिपासा रूप दुःख से पार लगे और ज्योति रूप यज्ञ को प्राप्त हुए ॥ ७३ ॥

जलों का देने वाला संवत्सर मास-दिवस आदि अपने अवयवों से प्रीति-युक्त होता है। उषा गौओं से प्रीति करती है। अश्विद्वय चिकित्सादि कर्मों से प्रीति करते हैं। सूर्य अश्व से और वैश्वानर अग्नि अन्न-घृत से प्रीति करते हैं। इन सबके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ७४ ॥

सृष्टि के आरम्भ में जो औषधियाँ देवताओं द्वारा वसन्त, वर्षा और शरद् ऋतु में उत्पन्न हुईं, उन संसार की रचना में समर्थ, पक कर पीले वर्ण की हुई औषधियों के सैकड़ों और व्रीहि आदि के सात-सात नामों को मैं जानता हूँ ॥ ७५ ॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे ऽ अगदं कृत ॥ ७६ ॥

ओपधी प्रतिमोदध्व पुष्पवती प्रसूवरी ।
अश्वा ऽ इव सजित्वरीर्वीरुध पारयिष्ण्व ॥ ७७ ॥
ओपधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्व गा वास ऽ आत्मान तव पूरुष ॥ ७८ ॥
अश्वत्थे वो निषदन पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पूरुपम् ॥ ७९ ॥
यत्रौपधी समग्मत राजान समिताविव ।
विप्र स ऽ उच्यत भिषग्रक्षोहामीवचातन ॥ ८० ॥

हे औपधियो ! तुम माता के समान हितकारिणी हो । तुम सबके ही सैकड़ों नाम हैं और अ कुर असख्य हैं । तुम्हारे कर्म द्वारा स सार के सैकड़ों कार्य बनते हैं । अत हे कर्मों को सिद्ध करने वाली औपधियो ! तुम इस यजमान को भूख, प्यास और रोग आदि स रक्षित करो ॥ ७६ ॥

हे औपधियो ! तुम पुष्पों से युक्त और फलोत्पादिका हो । अश्वों के समान वेगवती, अनेक प्रकार की व्याधियों का दूर करने वाली, फल पाक वाली और दीर्घकाल तक कर्म में लगी रहने वाली हो । तुम मोदवती होओ। पुष्पा और फलों से सम्पन्न होओ ॥ ७७ ॥

हे औपधियो ! तुम माता के समान पालन करने वाली, दिव्य गुण वाली, जगत निर्मात्री हो । हे यज्ञ पुरुष ! हम तुम्हारी कृपा से अश्व गौ, वस्त्र और निरोग शरीर को भोगे । हमारी इस प्रार्थना को औपधियाँ भी सुन लें ॥ ७८ ॥

हे औपधियो ! तुम्हारा स्थान पीपल की लकड़ी से बने उपभृत और स्रुच पात्र में है । पलाश के पत्र से बनी जुहू में भी तुमने अपना स्थान बनाया है । हे हविर्भूत औपधियो ! तुम अवश्य ही आदित्य का भजन करती हो । क्योंकि अग्नि में होमी हुई आहुति आदित्य को प्राप्त होती है, जिससे तुम इस यजमान को अन्नादि से सम्पन्न करो ॥ ७९ ॥

हे औषधियो ! तुम जिस चिकित्सक के पास रोग जीतने के लिए वैसे ही गमन करती हो, जैसे राजा अपने शत्रु को जीतने के लिए रणभूमि में गमन करता है, वह तुम्हारा आश्रित चिकित्सक औषधि देकर ही घोर रोगों को नष्ट करता है और रोग का नाश करने वाला होने से ही उसे वैद्य कहा जाता है ॥ ८० ॥

अश्वावतीᳬं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ऽ ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ८१ ॥
उच्छुष्मा ऽ ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनᳬं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥
इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयᳬं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन ऽ इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्कि च तन्वो रपः ॥ ८४ ॥
यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त ऽ आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥

इस यजमान के रोगादि को दूर करने के लिए अश्वादि पशुओं को उपयोगी, सोम-यज्ञादि में उपयोगी, बल और प्राण को पुष्ट करने वाली, ओज की सम्पादिका इन सब औषधियों को मैं भले प्रकार जानता हूँ ॥ ८१ ॥

हे यज्ञ पुरुष ! तुम्हारे देह के लिए धन रूप हवि देने की कामना करती हुई औषधियों का बल प्रकट होता है। जैसे गोष्ठ से गौऐं निकलती हैं, वैसे ही कर्म में प्रयुक्त होने पर औषधियों की सामर्थ्य का प्रकाश होता है ॥ ८२ ॥

हे औषधियो ! तुम्हारी माता का नाम भूमि है। वह सम्पूर्ण व्याधियों को दूर करने वाली है, और तुम भी सब व्याधियों को दूर करती हो। तुम अन्न के सहित विद्यमान तथा वेग से गमन करने वाली हो।

मनुष्यों में स्थित रोग को तुम नष्ट करो और क्षुधा राक्षसी के हाथ से हमें छुड़ाओ ॥ ८३ ॥

यह सर्व औषधियाँ सब ओर से रोगों को वशीभूत करती हैं। जैसे दस्यु गौओं के गोष्ठ को व्याप्त करता है, वैसे ही यह भक्षित होने पर देह को व्याप्त करती हैं। उस समय देह में जो कुछ भी रोग हो, उस सबको यह अपने सामर्थ्य से नष्ट करती हैं ॥ ८४ ॥

जब मैं इस औषधि का पूजन कर इसे हाथ में ग्रहण करता हूँ, तब यक्ष्मा रोग का स्वरूप इसके भक्षित होने से पहिले ही नष्ट होने लगता है। जैसे वध गृह को ले जाया जाता हुआ पुरुष वध से पूर्व ही अपने को मरा हुआ मानने लगता है, वैसे ही रोग भी अपने को नष्ट हुआ मान लेता है ॥ ८५ ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्ग परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व ऽ उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥
अन्या वो ऽ अन्यामवत्वन्यान्यस्या ऽ उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना ऽ इदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥
या फलिनीर्या ऽ अफला ऽ अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ ८९ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ ९० ॥

हे औषधियो! तुम जिस रोगी के अंग, ग्रंथी और केश आदि तक में रमती हो और यक्ष्मा रोग के लिए बाधा देने वाली होती हो, जैसे मर्म भाग को पीड़ित करने वाला उग्र मनुष्य शत्रु को बाधा देता है, वैसे ही तुम रोगी के देहगत रोग को बाधा देती हो ॥ ८६ ॥

हे व्याधियों ! तुम कफ द्वारा अवरुद्ध कण्ठ से निकलने वाले शब्द से खेलने वाले श्लेष्म रोग और पित्त रोग के साथ चली जाओ तथा वात रोग के साथ नाश को प्राप्त होओ। जो रोगी सर्वाङ्ग वेदना से तड़पता है, उसकी उस घोर वेदना के सहित तुम नष्ट हो जाओ ॥८७॥

हे औषधियो ! तुम परस्पर एक दूसरी औषधि के गुणों की रक्षा करने वाली होओ। रक्षित औषधि अरक्षित औषधि की रक्षा करने के लिए उससे संगति करे । सब प्रकार की यह औषधियाँ समान मति वाली होकर मेरे निवेदन को सत्य करें ॥ ८८ ॥

फल वाली औषधि, पुष्प वाली औषधि, फल रहित औषधि और पुष्प रहित औषधि यह सभी औषधियाँ बृहस्पति द्वारा रची जाकर हमें रोग से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

शपथ के कारण उत्पन्न हुए पाप से जो रोग शरीर को प्राप्त हुआ है, जल-विहार करते हुए जो रोग उत्पन्न होगया है, यम से सम्बन्धित किसी पाप से जो रोग प्रकट हुआ है और देवताओं के क्रोध से जिस रोग की प्राप्ति हुई है, उन सब प्रकार के रोगों से यह औषधियाँ मुझे छुड़ावें ॥९०॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ऽ ओषधयस्परि ।
य जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥
या ऽ ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥ ९२ ॥
या ऽ ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता ऽ अस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९३ ॥
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९४ ॥
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

स्वर्ग लोक से पृथिवी लोक पर आती हुई औषधियाँ कहती हैं कि हम जिस प्राणी के शरीर में रम जाती हैं, वह नाश को प्राप्त नहीं होता, रोग उस पर आक्रमण नहीं करते ॥ ९१ ॥

जिन औषधियों के राजा सोम हैं, वे औषधियाँ अनन्त गुण वाली हैं। उनके मध्य में रहती हुई हे औषधि ! तू श्रेष्ठ हो और हमारी कामना के लिए तथा हृदय के निमित्त कल्याणकारिणी हो ॥ ९२ ॥

जिन औषधियों के राजा सोम हैं और जो विभिन्न रूपों में पृथिवी पर स्थित हैं, वे बृहस्पति द्वारा उत्पन्न औषधियाँ हमारे द्वारा ग्रहण की हुई इस औषधि को वीर्यवती करें, जिससे यह हमारी रक्षा कर सके ॥९३॥

जो औषधि निकट में स्थित हैं अथवा जो औषधि दूर पर खड़ी हैं और जो हमारे निवेदन पर ध्यान देती हैं, वे वृक्षादि रूप से उत्पन्न औषधियाँ सुसंगत होकर हमारी इस औषधि को बलवती करें, जिससे यह हमारी भले प्रकार रक्षा कर सके ॥ ९४ ॥

हे औषधियो ! रोग की चिकित्सा के निमित्त तुम्हारे मूल को ग्रहण करने के लिए जो खननकर्त्ता तुम्हारे मूल को खोदता है, उसको खनन अपराध से कोई हानि न हो । तुम्हें रोगी की चिकित्सा के निमित्त मैं खोदता हूँ, अतः मेरा भी अनिष्ट न हो । हमारे स्त्री, पुत्र, पशु आदि सब रोग-रहित रहें ॥ ९५ ॥

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ँ राजन् पारयामसि ॥९६॥
नाशयित्री बलासस्यार्शस ऽ उपचितामसि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥९७॥
त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥९८॥
सहस्व मे ऽ अराती सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वं पाप्मान ँ सहमानास्योषधे ॥९९॥

दीर्घायुस्त ऽ ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥१००॥

अपने राजा सोम के सहित उन औषधियों ने कहा कि यह ब्राह्मण जिस रोगी की चिकित्सा के लिए हमारे मूल, फल, पत्र आदि को ग्रहण करता है, हे सोम राजा ! उस रोगी को हम निरोग करती हैं ॥ ९६ ॥

हे औषधि ! तुम क्षय, अर्श, मेद रोग, श्वयथु, श्लीपद आदि रोगों को नष्ट करने वाली हो और सैकड़ों अन्य मुख-पाकादि रोगों को भी नष्ट करती हो ॥ ९७ ॥

हे औषधि ! गन्धर्वों ने तुम्हारा खनन किया, इन्द्र ने खनन किया, बृहस्पति ने भी खनन किया तब सोम ने तुम्हारी सामर्थ्य को जानकर तुमको सेवन किया और यक्ष्मा रूप रोग से मुक्ति को प्राप्त किया और फिर तुम्हारे गुणों के जानने वाले तुम्हें पाकर रोगों से छूट गए ॥ ९८ ॥

हे औषधि ! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करने में समर्थ हो । अत: मेरे अदानशील शत्रुओं की सेना को तिरस्कृत करो । युद्धाभिलाषी शत्रुओं पर भले प्रकार विजय प्राप्त करो और सब प्रकार के अमंगल को हमारे पास से दूर कर दो ॥ ९९ ॥

हे औषधि ! तुम्हें खोदने वाला पुरुष दीर्घ आयु प्राप्त करे । जिस रोगी के लिए तुम्हें खोदा जा रहा है, वह भी दीर्घ आयु को प्राप्त हो । तुम भी दीर्घ आयु वाली होकर सैकड़ों अंकुरों से सम्पन्न होओ और सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त करो ॥ १०० ॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा ऽ उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो ऽ अस्माँ ऽ अभिदासति ॥ १०१ ॥
मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०२॥
अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ।
वपां ते ऽ अग्निरिषितो ऽ अरोहत् ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् ।
तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥
इषमूर्जमहमित ऽ आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥१०५॥

हे औषधे ! तुम श्रेष्ठ हो तुम्हारे समीपस्थ शाल ताल तमाल आदि वृक्ष उपद्रवों को दूर करने वाले और छाया आदि के द्वारा मनुष्यों का उपकार करने वाले हैं। जो शत्रु हम से बहुत समय से द्वेष करता आ रहा है, वह द्वेष को त्याग कर हमारा अनुगामी हो जाय ॥ १०१ ॥

जो प्रजापति पृथिवी के उत्पन्न करने वाले, सत्य के धारण करने वाले, स्वर्ग लोक की रचना करने वाले हैं। जो आदि पुरुष विश्व के आह्लादक और तृप्ति के साधन करने वाले, जल के उत्पन्न करने वाले हैं, वे प्रजापति मुझे हिंसित न करें, वे हमारे रक्षक हों । हम उनके लिये हव्य देते हैं ॥ १०२ ॥

हे पृथिवी ! यज्ञानुष्ठान और उसके फल रूप वृष्टि के सहित तुम हमारे अभिमुख होओ । प्रजापति द्वारा प्रेरित अग्नि तुम्हारी पीठ पर प्रतिष्ठित हो ॥ १०३ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारा जो देह उज्ज्वल ज्योति वाला है तथा जो देह चन्द्रमा की ज्योति के समान आह्लादक है और जो तेजस्वी अंग गृहकार्य के योग्य पवित्र है, जो यज्ञ-कर्म का भले प्रकार सम्पादक है; उस ज्योति रूप श्लाघनीय अंग को हम देव-कार्य की सिद्धि के लिए प्रदीप्त करते हैं ॥१०४॥

सत्य रूप यज्ञ की उत्पत्ति के कारण रूप अन्न और दही दुग्ध घृत आदि की महान् कामना वाले अग्नि के निमित्त उदीची दिशा से धारण करता हूँ। यह सब इडा आदि मुझ में प्रविष्ट हों और मेरे पुत्रादि के शरीरों में भी प्रवेश करें। अन्न के अभाव में उत्पन्न हुई क्लेशदायिनी व्याधि को मैं दूर करता हूँ ॥ १०५ ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते ऽ अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१०६॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा ऽ अनूनवर्चा ऽ उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी ऽ उभे ॥१०७ ॥
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे ऽ इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जातुभिरस्मे रायो ऽ अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥१०९॥
इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥११०॥

हे अग्ने ! तुम ज्योति रूप ऐश्वर्य वाले, महान् प्रकाशमान् और यजमान की कामनाओं के भले प्रकार जानने वाले हो। यज्ञानुष्ठान की बात कहने वाली तुम्हारी धूम प्रकाशित होकर देवताओं के पास पहुँचती है। तुम हवि देने वाले यजमान के लिए बलपूर्वक शस्त्रादि से युक्त यज्ञ-योग्य अन्न के देने वाले होओ ॥ १०६ ॥

हे अग्ने ! तुम शुद्ध करने वाली ज्योति से सम्पन्न और निर्मल दीप्ति वाले हो। तुम अपनी महिमा द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त होकर पूर्ण शक्ति-सम्पन्न होते हो। तुम सब ओर विचरण करते हुए देवताओं और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण संसार की रक्षा करते हो। जैसे पुत्र अपने वृद्ध माता-पिता की रक्षा करता है, वैसे ही तुम माता पिता रूप स्वर्ग और पृथिवी की हर प्रकार रक्षा करते हो ॥ १०० ॥

हे जलों के पौत्र अग्ने ! तुम अन्नों के पालक हो। तुम यज्ञानुष्ठान के निमित्त स्थापित किये जाने पर श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा वर्द्धित एवं अनेक रूप वाले होते हो। तुम अद्भुत अन्न वाले, सुन्दर जन्म वाले और यजमानों द्वारा होमी हुई श्रेष्ठ हवियों के ग्रहण करने वाले हो। तुम इस हविदाता के कार्य सिद्ध करने के निमित्त अनुकूल होओ ॥ १०८ ॥

हे अविनाशी अग्ने ! हविदाता यजमानों द्वारा प्रदीप्त किये जाते हुये हमारे पास अनेक प्रकार के धनों को विस्तृत करो। तुम अत्यन्त दर्शनीय

और देह के मध्य विशिष्ट प्रकार से प्रदीप्त होने वाले हो। तुम हमारे श्रेष्ठ संकल्पों को पूर्ण करने में समर्थ हो ॥१०९॥

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ मन वाले और यज्ञादि अनुष्ठानों के सृजन करने वाले हो। तुम यज्ञ स्थान में रहने वाले यजमान के लिए महान् धन और उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाला अन्न धारण करते हो। अतः इस यजमान को श्रेष्ठ धन दो ॥ ११० ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निᳪ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः
श्रुत्कर्णᳪ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥१११॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥११२॥

सं ते पयाᳪसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो ऽ अमृताय सोम दिवि श्रवाᳪस्युत्तमानि धिष्व ॥११३

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरᳪशुभिः ।
भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामया गिरा ॥ ११५ ॥

तुभ्यं ता ऽ अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥११७॥

हे अग्ने सुबुद्धि वाले मनुष्य ऋत्विज् एवं यजमान पूर्णिमा या अमावस्या आदि पर्वों में वेदवाणी द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं और सत्य-स्वरूप, महिमामय, दर्शनीय, महान् यश वाले, देवताओं के हितैषी तुम्हें

यज्ञानुष्ठान के निमित्त आह्वानीय रूप से पूर्व भाग में स्थापित करते हैं ॥ १११ ॥

हे सोम ! तुम्हें सब प्राणियों की रचना वाला तेज सब ओर से प्राप्त हो। तुम अपने श्रेष्ठ वीर्य द्वारा स्वयं ही प्रवृद्ध होओ। तुम यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के निमित्त अपने उपयोगी रस रूप अन्न के सहित शीघ्र हमें प्राप्त होओ ॥११२॥

हे सोम ! तुम उत्तम पेय और पापों को दूर करने वाले हो। हम तुमसे सुसंगत हों। तुमसे दुग्ध रूप अन्न और पराक्रम सुसंगति करें और इनके द्वारा बढ़ते हुए तुम अमृतत्व दीर्घायु वाले पुत्र पौत्रादि की इस यजमान के लिए वृद्धि करो। उत्कृष्ट स्वर्ग लोक में श्रेष्ठ आहुति वाले अन्न को भी धारण करो ॥११३॥

हे सोम ! तुम्हारा अन्तःकरण अत्यन्त तृप्त रहता है। तुम्हारा यश सर्वत्र विस्तृत है। तुम अपने सभी सूक्ष्म अवयवों द्वारा सदा बढ़ो और हमारे बढ़ाने के निमित्त भी मित्र रूप होकर हमारी सहायता करो ॥११४॥

हे अग्ने ! यह यजमान तुम्हारे पुत्र के समान है। यह तुम्हारी स्तुति करना चाहता है। यह वेदवाणी के द्वारा तुम्हारे मन को स्वर्ग लोक से हटाकर अपने यज्ञ की ओर आकर्षित करता है ॥११५॥

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त हवि भक्षक हो। जो अनेक प्रकार की श्रेष्ठ स्तुतियाँ प्रसिद्ध स्वर्ग लोक को प्राप्त कराने वाली और अभीष्टों को पूर्ण करने वाली हैं, वे सम्पूर्ण स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही की जा रही हैं ॥११६॥

वे उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले प्राणियों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले सबके सम्राट रूप अग्नि अपने श्रेष्ठ एवं प्रिय स्थानों में विराजमान होते हैं ॥११७॥

त्रयोदशोऽध्यायः

ऋषि—वत्सारः हिरण्यगर्भ, वामदेव, त्रिशिराः, अग्नि, इन्द्राग्नी, सविता, गोतमः, भारद्वाज, विरूप, उशना ।

देवता—अग्नि, आदित्य, प्रजापतिः, ईश्वरः, सूर्य, हिरण्यगर्भः, बृहस्पति, ऋतव, सत्पति, विश्वेदेवाः, वरुणः, द्यावापृथिव्यौ, विष्णुः, जातवेदाः, आप, प्राण ।

छन्दः—पङ्क्तिः, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, अनुष्टुप्, जगती बृहती गायत्री, कृति ।

मयि गृह्णाम्यग्रे ऽ अग्नि ँ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।
मामु देवता सचन्ताम् ॥१॥
अपा पृष्ठमसि योनिरग्ने समुद्रमभित पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ ऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२॥
ब्रह्म जज्ञानं प्रथम पुरस्ताद्वि सीमत सुरुचो वेन ऽ आवः ।
सबुध्न्या ऽ उपमा ऽ अस्य विष्ठा सतश्च योनिमसतश्च विव ॥३॥
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक ऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिम च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सचरन्त द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा ॥५॥

मैं यजमान धन की पुष्टि की कामना करता हुआ, सुन्दर पुत्र, पौत्रादि को चाहता हुआ और श्रेष्ठ पराक्रम की इच्छा करता हुआ इन अग्नि को अपने आत्मा में ग्रहण करता हूँ। सब देवता भी मुझे आश्रय दें ॥१॥

हे पत्र ! तुम जलों के ऊपर रहने के कारण पृष्ठ रूप हो और अग्नि के लिए पिण्ड के कारण हो। सींचते हुए जल समुद्र को सब ओर से बढ़ाते हुए महान् जल में मिल जाँय। इस प्रकार तुम बृहद् आकार वाले होकर पुरीष्य अग्नि के आश्रय रूप होओ। हे पत्र ! तुम दिव्य परिमाण से दीर्घ होते हुए विस्तृत होओ ॥२॥

इस सूर्य रूपी ब्रह्म ने पूर्व दिशा से प्रथम उदित होकर भूगोल मध्य से आरम्भ करके श्रेष्ठ रमणीय इन लोकों को अपने प्रकाश से प्रकाशित किया और उन्होंने अत्यन्त मेधावी, अवकाशयुक्त, अन्तरिक्ष में होने वाली दिशाओं और घट पट आदि, वायु आदि के स्थान को प्रकाशित किया ॥३॥

सर्व प्रथम हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति उत्पन्न होते ही वे इस सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र स्वामी हुए। उन्होंने स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकों की रचना की। उन्हीं महान् देवता की प्रीति के निमित्त हम हवि का विधान करते हैं ॥४॥

जो सर्व प्रथम उत्पन्न, सबके आदि रूप, द्रप्स नाम से प्रख्यात आदित्य रूप के कारणभूत, अन्तरिक्ष को देहधारियों के तथा इस भूमि को भी आहुति परिणाम रूप रस से तृप्त करता है, तीनों लोकों में विचरणशील हैं, उन आदित्य को सात दिशाओं में स्थापित करता हूँ ॥५॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥६॥

या ऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ२ऽरनु ।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥७॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥८॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ऽइभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥९॥

तव भ्रमास ऽ आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूᳬंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥१०॥

पृथिवी के अनुगत जितने भी लोक और नक्षत्र हैं, उन सभी को नमस्कार करता हूं। जो लोक अन्तरिक्ष में तथा जो स्वर्ग लोक में आश्रित हैं, उन सभी लोकों और उनमें स्थित सर्पों को मैं नमस्कार करता हूं ॥६॥

राक्षसों के द्वारा प्रेरित बाणरूप सर्प, चन्दन आदि वृक्षों के आश्रय में रहने वाले सर्प, बिलों में रहने वाले सर्प इन सब सर्पों को मैं नमस्कार करता हूं ॥७॥

जो सभी सर्प या प्राणी स्वर्ग के ज्योतिर्मय स्थान में हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़ते, अथवा जो सूर्य की रश्मियों में या जल में निवास करते हैं, उन सब प्रकार के जीवों को नमस्कार है ॥८॥

हे अग्ने ! तुम शत्रुओं को दूर करने में समर्थ हो। अतः शत्रुओं के ऊपर होओ। जैसे सशक्त राजा हाथी पर चढ़कर शत्रुओं पर आक्रमण करता है, वैसे ही तुम भी आक्रमण करो। पक्षियों को फँसाने वाले बृहद् जाल के समान तुम अपने बल को बढ़ाओ और अपने दृढ़ जाल द्वारा हिंसक और सन्ताप देने वाले राक्षसों को ललकारो ॥६॥

हे अग्ने ! तुम्हारी द्रुतगामी ज्वालाओं द्वारा प्रकाश युक्त होते हुए तुम सन्तप्त करने वाले राक्षसों और पिशाचों को भस्म कर डालो और स्रुक द्वारा हूयमान तुम अहिंसित रहतेहुए अपनी विषम ज्वालाओं को राक्षसों का संहार करने के लिए प्रेरित करो। तब वे राक्षस तुम में प्रविष्ट होते हुए नाश को प्राप्त हों ॥१०॥

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽ अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे ऽ अघशᳬंसो योऽअन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥११॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्रा ऽ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो ऽ अरातिᳬंसमिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥१२॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामि प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥
अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽ अयम् ।
अप ँ रेता ँसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! हमारा जो शत्रु दूर देश में निवास करता है, और जो शत्रु हमारे समीपवर्ती स्थान में रहता है, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं पर तुम अपने अत्यन्त वेगवान् बंधन को प्रेरित करो। हमारे पुत्र-पौत्रादि की तुम भले प्रकार रक्षा करो। कोई शत्रु तुम्हारा सामना न कर सके ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! उठो । चैतन्य होकर अपनी ज्वालाओं को बढ़ाओ, उत्साह ही तुम्हारा आयुध है, तुम उत्साहित होकर शत्रुओं को भले प्रकार भस्म करो। हे तेजस्वी अग्ने ! जो शत्रु हमारे दान में बाधा उपस्थित करता है, उसे जैसे तुम सूखे हुए अतस नामक वृक्ष को भस्म करते हो, वैसे ही भस्म कर डालो। वह शत्रु पतित और नष्ट हो ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! ऊँचे उठो। हमारे ऊपर आक्रमण करने वाले शत्रुओं को ताड़ित करो और देवताओं से सम्बन्धित कर्मों को प्रारम्भ करो। राक्षसों के दृढ़ धनुषों को प्रत्यञ्चा-हीन करो। ललकारे या न ललकारे गए, नवीन अथवा पुराने सब प्रकार के शत्रुओं को नष्ट कर डालो। हे स्रुक ! मैं तुम्हें अग्नि के तेज के द्वारा स्थापित करता हूँ ॥ १३ ॥

यह अग्नि स्वर्ग लोक के शिर के समान प्रमुख हैं। जैसे बैल का कन्धा सबसे ऊँचा होता है, वैसे ही अग्नि ने उच्च स्थान प्राप्त किया है। यह अग्नि ही संसार के महान् कारण रूप हैं। यह पृथिवी के पालन करने वाले और जलों के सारों को पुष्ट करने वाले हैं। हे स्रुक ! मैं तुम्हें इन्द्र देवता के ओज के द्वारा स्थापित करता हूँ ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! जब तुम अपनी हवि-धारिणी ज्वालाओं को प्रकट करते हो सब द्रव्य देवता त्याग रूप यज्ञ के तथा यज्ञ के फलस्वरूप जल के प्रदाता करने वाले होते हैं। तुम अश्वों के सहित कल्याण रूप होते हुए सूर्य-मण्डल में स्थित सूर्य को धारण करते हो ॥ १५ ॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवी दृꣳह ॥१६॥
प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ।
व्यचस्वती प्रथस्वती प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥
भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥ १८ ॥
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया
देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १९ ॥
काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥

हे स्वयमातृणे ! तुम पृथिवी रूप से जगत के धारण करने वाली और विश्वकर्मा द्वारा विस्तृत की जाने पर दृढ़ता को प्राप्त होती हो। तुम्हें समुद्र नष्ट न करे, तुम्हें वायु भी नष्ट न करे। तुम अविचल रहकर भू भाग को दृढ़ करने वाली हो, अतः हमारी भूमि को दृढ़ करो ॥ १६ ॥

हे स्वयमातृणे ! तुम अवकाशवान् और विस्तृत जलों के ऊपर समुद्र के स्थान में प्रजापति द्वारा स्थापित की जाओ। तुम प्रजापति द्वारा ही विस्तार को प्राप्त होओ। तुम पृथिवी से प्रकट मिट्टी द्वारा बनने के कारण पृथिवी रूप ही हो ॥ १७ ॥

हे स्वयमातृणे ! तुम सुख की भावना वाली भूमि रूप हो। तुम विश्व को पुष्ट करने वाली अदिति हो। सब जगत के धारण करने वाली होकर

इस भूमि के अनुकूल होओ और भू-भाग को दृढ़ करती हुई इसे कभी नष्ट न करो ॥ १८ ॥

हे स्वयमातृणे ! विश्व के प्राण, अपान, व्यान, उदान नामक शरीरस्थ वायु की उन्नति के लिए और यश-लाभ के निमित्त मैं तुम्हें इस स्थान में स्थापित करता हूँ। अपनी अत्यन्त कृपा और कल्याणमयी महिमा के द्वारा तथा श्रेष्ठ सुखकारी गृह के द्वारा अग्नि देव तुम्हारी रक्षा करें। तुम उन महान्कर्मा अग्नि की कृपा को प्राप्त होकर अंगिरा के समान दृढ़ होती हुई स्थित होओ ॥ १९ ॥

हे दूर्वा इष्टके ! तुम प्रत्येक काण्ड और पर्व से अंकुरित होती हो। तुम हजारों या सैकड़ों अंकुरों के समान हमारे पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि करो ॥२०

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि ।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥
यास्ते ऽ अग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।
ताभिर्नो ऽ अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥
या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिधारयत् ।
प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥२४॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ऽ अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे वासन्तिकावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥२५॥

हे दिव्य गुण वाली इष्टके ! तुम सैकड़ों शाखाओं सहित बढती हो और सहस्रों अंकुरों से सम्पन्न होती हुई अंकुरित होती हो। तुम्हारे निमित्त हम हवि-विधान करते हैं ॥२१॥

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्योति सूर्यमंडल में स्थित रश्मियों से स्वर्ग लोक को प्रकाशित करती है। तुम अपनी उस श्रेष्ठ ज्योति को इस समय हमारे पुत्र पौत्रादि की प्रसिद्धि के लिए प्रेरित करो और सब प्रकार हमारी शोभा-वृद्धि करो ॥२२॥

हे इन्द्र अग्ने ! हे बृहस्पते ! हे देवताओ ! तुम्हारी जो दीप्तियाँ सूर्य मंडल में विद्यमान हैं तथा जो दीप्तियाँ गौओं और अश्वों में वर्त्तमान हैं, उन सभी दीप्तियों से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए तुम हमारे लिए आरोग्य और कान्ति का विधान करो ॥२३॥

इस अत्यन्त सुशोभित एवं विराटरूप इस लोक ने अग्नि की ज्योति को धारण किया। स्वयं ज्योतिर्मान एवं विराट् रूप स्वर्गलोक ने इस अग्नि रूप तेज को धारण किया। हे इष्टके ! सम्पूर्ण जगत में प्राण अपान, व्यान के निमित्त प्रजापति रूप एवं ज्योतिर्मान तुम्हें पृथिवी पर स्थापित करें। तुम सम्पूर्ण ज्योतियों पर शासन करो। अग्नि तुम्हारे ईश्वर हैं, उन अग्न्यात्म देवता के साथ दृढ़ होकर तुम अङ्गिरा के समान स्थित होओ ॥२४॥

चैत्र और वैशाख यह दोनों मास वसन्त ऋतु से सम्बन्धित हैं। हे ऋतुरूप इष्टकाद्वय ! तुम अग्नि के अन्तर में विद्यमान होकर जैसे छत में दृढ़ता के लिये काष्ठ की लकड़ी लगाते हैं, वैसे ही तुम दृढ़ता के निमित्त लगे हो। मुझ अग्नि चयन करते हुए यजमान की उत्कृष्टता के लिये यह आकाश पृथिवी उपकार करने वाली हों। जल और औषधि भी हमें श्रेष्ठता देने वाले हों। समान कर्म में स्थित अनेक नाम वाली अग्नियाँ वसंत से सम्बन्धित ऋतु का सम्पादन करती हुई इस कर्म को आश्रित हों। जैसे देवगण इन्द्र की सेवा द्वारा कर्म सम्पादन करते हैं, वैसे ही

यह इष्टका हो। हे इष्टके! उन प्रसिद्ध देवता के द्वारा अङ्गिरा के समान दृढ़ होकर तुम स्थित होओ ॥२५॥

अपाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः ।
सहस्रवीर्य्यासि सा मा जिन्व ॥२६॥
मधु वाता ऽ ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥२७॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२८॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ ऽ अस्तु सूर्य्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥२९॥
अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा ऽ अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३०॥

हे इष्टके! तुम स्वभाव से ही शत्रुओं को जीतने वाली हो। तुम शत्रु को सहन नहीं करतीं। अतः हमारे शत्रुओं को तिरस्कृत करो। युद्ध की इच्छा वाले शत्रुओं को परास्त करो। क्योंकि तुम अनन्त पराक्रम वाली और मुझ पर प्रसन्न रहने वाली हो ॥ २६ ॥

यज्ञानुष्ठान करने की इच्छा वाले यजमान के लिए वायु पुष्प-रस रूप मधु का वहन करते हैं, प्रवाहमान नदियाँ मधु के समान मधुर जल को बहाती हैं, सभी औषधियाँ हमारे लिए मधुर रस से सम्पन्न हों ॥ २७ ॥

पिता के समान हमारा पालक स्वर्ग लोक मधुमय हो, माता के समान हमारी रक्षा करने वाली पृथिवी मधुर रस से सम्पन्न हो। रात्रि और दिवस भी मधुरिमामय हों। सब ओर से हमारा मंगल ही हो ॥ २८ ॥

सभी वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुर रस वाली हों। सूर्य हमें माधुर्य से भर दें। गौ हमें मधुर दुग्ध प्रदान करे ॥ २९ ॥

हे कूर्म! तुम जलों के गहन स्थान सूर्य मंडल में स्थित हो। तुम्हारे

वहाँ स्थित होने से सूर्य तुम्हें संतप्त न करें। सब मनुष्यों का हित करने वाले वैश्वानर अग्नि तुम्हें सतप्त न करें। सभी अंगों से पूर्ण अखण्डित इष्टका तुम्हें निरंतर देखे तथा दिव्य वृष्टि तुम्हारा सदा सेवन करे ॥ ३० ॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ ऽ इष्टकानाम् ।
पुरीषं वसान सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेता ॥ ३१ ॥
मही द्यौ पृथिवी च न ऽ इमं यज्ञ मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभि ॥ ३२ ॥
विष्णो कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्य. सखा ॥ ३३ ॥
ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो ऽ अधि जातवेदा ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥
इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऽ ऊर्जे ऽ अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥

हे जलों के स्वामी कूर्म ! तुम इष्टकाओं के प्रमुख अंग हो। तुमने भोग के साधन रूप तीनों लोकों को भले प्रकार प्राप्त किया। तुम पशुओं को आच्छादित करते हुए पुण्यात्माओं के लोक में उस स्थान पर जाओ जहाँ अग्नियों द्वारा उपहृत पुरातन कूर्म गए हैं ॥ ३१ ॥

महान् स्वर्ग और पृथिवी हमारे इस यज्ञ को अपने अपने अंशों द्वारा पूर्ण करें। जल वृष्टि, धान्य, सुवर्ण, पशु, प्रजा आदि सभी प्रयोजनीय वस्तुओं से हमें समृद्ध करते हुए हमारा सब प्रकार कल्याण करें ॥ ३२ ॥

हे ऋत्विजो ! विष्णु भगवान के सृष्टि रचना और संहार आदि के चरित्रों को देखो। जिन्होंने अपने महान् कर्मों द्वारा तुम्हारे व्रत अनुष्ठान आदि का विधान किया है, वह विष्णु इन्द्र के वृत्र हनन आदि कर्मों में सखा होते हैं। यह सभी दृश्यमान पदार्थ भगवान् विष्णु के बल विक्रम के साक्षी रूप हैं ॥ ३३ ॥

हे उखे ! तुम विश्व को धारण करने वाली हो, और स्थिर हो। इस

उखा से पहिले अग्नि उत्पन्न हुए, वही अग्नि फिर अपने स्थान से प्रकट होकर अपने कर्म को भले प्रकार जानने वाले होते हैं। तुम इस हवि को गायत्री, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छंद के प्रभाव से वहन करो ॥ ३४ ॥

हे उखे ! तुम अन्न, धन, बल, यश, दुग्धादि रस और पुत्र पौत्रादि प्रदान करने के निमित्त यहाँ दीर्घकाल तक रमण करो। तुम भूमि को भले प्रकार प्रकाशित करने वाली विराट् और स्वर्ग को प्रकाशित करने वाली स्वराट् हो। सरस्वती-संबंधित वाणी तुम्हारा पालन करे ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ ऽ अश्वाँ ऽ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सद ॥ ३७ ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
घृतस्य धारा ऽ अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये ऽ अग्नेः ॥३८॥
ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥
अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ।
सहस्रदा ऽ असि सहस्राय त्वा ॥ ४० ॥

हे दिव्य लक्षण सम्पन्न अग्ने ! तुम्हारे गमन-कुशल जो अश्व तुम्हें यज्ञ के निमित्त लाते हैं, अपने उन्हीं अश्वों को रथ में योजित करो ॥ ३६ ॥

हे अग्नि ! देवताओं को बारंबार यज्ञ में बुलाने वाले अश्वों को रथी के समान शीघ्र ही रथ में योजित करो, क्योंकि तुम पुरातन होता हो। हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञानुष्ठान में आकर इस स्थान पर विराजमान होओ॥ ३७॥

अग्नि के मध्य में स्थित हिरण्यमय पुरुष अपने हृदय में वर्तमान विषयों के संताप से विमुक्त श्रद्धायुक्त मन के द्वारा शुद्ध किये हुए अन्न और घृत की धारा को स्रवित करते हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में पहुँचती हैं, वैसे ही

हवन की हुई हवियाँ उस हिरण्यमय पुरुष को प्राप्त होती हैं ॥ ३८ ॥

हे हिरण्य शकल ! मैं तुम्हें यज्ञादि कर्मों की सिद्धि के निमित्त वाम नासिका में प्राशित करता हूँ । हे हिरण्य शकल ! भले प्रकार दीप्ति के लिए मैं तुम्हें दक्षिण नासिका में प्राशित करता हूँ । हे हिरण्य शकल ! मैं तुम्हें कान्ति के निमित्त वाम चक्षु का स्पर्श कराता हूँ । हे हिरण्य शकल ! मैं तुम्हें तेज प्राप्ति के लिए दक्षिण नेत्र का स्पर्श कराता हूँ । यह श्रोत्र (कान) समस्त प्राणियों और सब मनुष्यों का हित करने वाले अग्नि के वचन को जानते हैं, मैं इनको प्राशन कराता हूँ ॥ ३९ ॥

यह अग्नि हिरण्यमय कांति से कांतिमान हैं, यह प्रकाशमान अग्नि सुवर्ण के तेज से तेजस्वी हैं । हे पुरुष ! तुम यजमान की हजारों कामनाओं को सिद्ध करने में समर्थ हो । अतः मैं तुम्हें सहस्रों कामनाओं की पूर्ति के निमित्त अपने अनुकूल करता हूँ ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्‌धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परिवृङ्‌धि हरसा माभि मᳪस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१॥
वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानᳪ सरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाᳪ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिᳪसीः परमे व्योमन् ॥४२॥
अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिᳪसीरदितिं विराजम् ॥४३॥
वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाᳪ रजसः परस्मात् ।
महीᳪ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिᳪसीः परमे व्योमन् ॥४४॥
यो ऽअग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या ऽउत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

हे पुरुष ! तुम चयन-कार्य में लगे हो । देवताओं के उत्पत्ति स्थान सभी प्राणी पशु के समान हैं । उनके पालन करने वाले सहस्रमूर्ति एवं विश्वरूप आदित्य इस अग्नि को दुग्धादि से सिंचित करें और सब के पराक्रम

को वशीभूत करने वाले अग्नि के तेज से यजमान को हिंसित न होने दें। तथा इस चयन-कर्म वाले यजमान को सुखी करते हुए सौ वर्ष की आयु वाला करें ॥ ४१ ॥

हे अग्ने! तुम वायु के समान वेगवान् हो। वरुण के नाभि रूप, जल के मध्य में आविर्भूत, नदियों के शिशु रूप, हरित वर्ण वाले इस लोक में निवास करने वाले, खुरों से पर्वत को खोदने वाले इस अश्व को हिंसित मत करो ॥ ४२ ॥

ऐश्वर्यवान्, अविनाशी, रोष रहित, प्राचीनकालीन ऋषियों द्वारा चयनीय, अन्नों द्वारा सब प्राणियों के पोषक अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वह अग्नि पत्रों या इष्टकाओं द्वारा प्रत्येक ऋतु में कर्मों का सम्पादन करते हैं। वे दुग्धादि से सम्पन्न अदिति रूपिणी गौ की किसी प्रकार हिंसा न करें ॥ ४३ ॥

हे अग्ने! तुम श्रेष्ठ आकाश में स्थापित रूपों को रचने वाली वरुण की नाभि के समान रक्षा-योग्य, दिशा रूप लोक से उत्पन्न होने वाली, महिमामयी, प्राणियों का उपकार करने वाली अवि को हिंसित न करो ॥ ४४ ॥

जो अग्नि रूप अज प्रजापति के संताप से उत्पन्न हुआ है, उस अज पर हे अग्ने! तुम्हारा क्रोध न पड़े ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्ष ँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

इमं मा हि ँसीर्द्विपादं पशु ँ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छन्तु ॥४७॥

इमं मा हि ँसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४८॥

इमꣳसाहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९॥
इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५०॥

यह कितने विस्मय की बात है कि रश्मियों के समूह रूप तथा मित्र वरुण और अग्नि के नेत्र के समान प्रकाशमान सब प्राणियों के अन्तर्यामी सूर्य सब संसार को प्रकाशित करने के निमित्त उदय को प्राप्त होते हैं। यह अपने तेज से तीनों लोकों को पूर्ण करते हैं। इन सूर्य के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ४६ ॥

हे अग्ने ! तुम यज्ञ-कर्म के निमित्त चयन किये गए हो। तुम सहस्र नेत्र वाले हो। इस दो पाँव वाले पुरुष रूप पशु की हिंसा मत करो। तुम्हारा सन्ताप देने वाला क्रोध किसी अन्य पुरुष को अथवा जो शत्रु हमसे द्वेष करता हो उसे ही पीड़ित करे ॥४७॥

हे अग्ने। इस हिनहिनाने वाले वेगवान् अश्व को हिंसित न करो। तुम्हारा सन्ताप देने वाला क्रोध और मृग को प्राप्त हो और जो शत्रु हमसे द्वेष करता है उसे तुम्हारा क्रोध पीड़ित करे ॥४८॥

हे अग्ने ! यह गौ श्रेष्ठ स्थान में रहने वाली है। यह सहस्रों उपकार करने वाली, दुग्धादि की सैकड़ों धारा वाली, कूप के समान दुग्ध-स्रोत वाली, लोकों में विविध व्यवहार को प्राप्त और मनुष्यों का हित करने को घृत, दुग्ध को देने वाली है। अदिति रूपा इस गौ को पीड़ित मत करो। तुम्हारा क्रोध गवय नामक पशु को प्राप्त हो और जो हमसे द्वेष करते हैं वे तुम्हारे सन्ताप को प्राप्त हों ॥४९॥

हे अग्ने ! श्रेष्ठ स्थान में स्थित इस ऊन से युक्त और वरुण की नाभि के समान, मनुष्यों और पशुओं को कम्बलादि से ढकने वाली, त्वचा रक्षक, प्रजापति की सृष्टि में प्रथम उत्पन्न होने वाली अवि को हिंसित मत करो। तुम अपनी ज्वालाओं को जंगली ऊँट पर डालो और मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को पीड़ित करो ॥ ५० ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो ऽ अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ५२ ॥

यह अज प्रजापति अग्नि के संताप से उत्पन्न हुई है। इसने अपने उत्पन्न करने वाले प्रजापति को देखा। देवगण इसी के द्वारा देवत्व को प्राप्त हुए और यजमानों ने भी स्वर्ग की प्राप्ति की। अतः हे अग्ने ! इसको पीड़ित मत करना। तुम अपनी ज्वाला को सिंहघाती शरभ पर प्रेरित कर उसे पीड़ा दो और हमसे द्वेष करने वाले शत्रु को संताप दो ॥ ५१ ॥

हे तरुणतम अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियाँ सुनो। हविर्दान करने वाले यजमानों की रक्षा करो तथा उनके पुत्र पौत्रादि की भी रक्षा करो ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि ।
सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा

योनौ सादयाम्यपा त्वा पुरीषे सादयाम्यपा त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

अय पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

हे अपस्या नामक इष्टके ! मैं तुम्हें जलों के स्थान में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! मैं तुम्हें औषधियों में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! मैं तुम्हें अभ्र में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें विद्युत में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें भूमि में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें प्राण के स्थान में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें मन के स्थान में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! वाणी के स्थान में तुम्हारा स्थापन करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें चक्षु स्थान में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें श्रोत्र में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें स्वर्ग में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें अंतरिक्ष में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें समुद्र में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें सिकता में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें अन्नों में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें गायत्री छन्द से स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें त्रिष्टुप् छन्द से स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें जगती छन्द से स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें अनुष्टुप् छन्द से स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें पंक्ति छन्द से स्थापित करता हूँ ॥ ५३ ॥

हे इष्टके ! यह अग्नि प्रथम उत्पन्न हुए हैं । तुम इस अग्नि के समान रूप वाली हो । प्राण अग्नि रूप होकर आगे प्रतिष्ठित होता है अतः मैं तुम अग्नि रूप वाली को स्थापित करता हूँ । प्राण उस भुव नामक अग्नि

का पुत्र होने से भौवायन कहा गया है । अतः मैं उस भौवायन देवता का मनन करता हुआ इष्टका स्थापित करता हूँ । प्राण का पुत्र वसंत प्राणायान नाम वाला है, उस प्राणायन देव के निमित्त इष्टका स्थापित करता हूँ। वसन्त की सन्तान गायत्री का मनन करता हुआ मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। गायत्री से उत्पन्न गायत्र साम का मनन करता हुआ मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। गायत्र साम से उत्पन्न उपांशु ग्रह का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ । उपांशु ग्रह से उत्पन्न त्रिवृत् स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । त्रिवृत् स्तोम से उत्पन्न रथन्तर साम का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । रथन्तर साम द्वारा विदित वशिष्ठ रूप प्राण का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टके ! तुम प्रजापति द्वारा गृहीत को मैं प्रजाओं और आरोग्यता लाभ के लिए ग्रहण करता हूँ अर्थात् सन्तानों की आयु वृद्धि के लिए स्थापित करता हूँ ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् ।
स्वारादन्तर्य्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥
अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऽ ऋक्सममृ ।
ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

यह इष्टका विश्वकर्मा नाम वाली है । यह दक्षिण दिशा प्रवाहित होती है। दक्षिण में वायु देवता का मनन करता हुआ मैं इष्टका का सादन करता हूँ। उन विश्वकर्मा की सन्तान मन है अतः वैश्यकर्म नाम वाले मन का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । मन की सन्तान ग्रीष्म ऋतु है। अतः ग्रीष्म ऋतु का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ । ग्रीष्म

ऋतु से उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ । स्वार साम त्रिष्टुप् छन्द से प्रकट हुआ है । मैं स्वार साम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । स्वार साम द्वारा अन्तर्याम ग्रह उत्पन्न होता है । मैं अन्तर्याम ग्रह का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । अन्तर्याम से पंचदश स्तोम उत्पन्न हुआ है । मैं पंचदश स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूं । पंचदश स्तोम से उत्पन्न बृहत् साम का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ । बृहत्साम से प्रख्यात भरद्वाज का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टके ! तुम प्रजापति द्वारा आदर सहित गृहीत हो । मैं तुम्हारी कृपा से प्रजाओं के मन को ग्रहण करता हूँ ॥ ५५ ॥

यह आदित्य पश्चिम की ओर गमन करते हैं । इनका मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ । आदित्य से उत्पन्न चक्षु का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । चक्षु से ऋतु प्रकट है । मैं ऋतु का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । ऋतु से जगती छन्द उत्पन्न हुआ अतः जगती छन्द का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ । जगती छन्द से उत्पन्न ऋक् साम का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । ऋक् साम से शुक्र ग्रह की उत्पत्ति हुई । शुक्र ग्रह का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । शुक्र ग्रह से प्रकट सप्तदश स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । सप्तदश स्तोम से उत्पन्न वैरूप पृष्ठ का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । वैरूप से प्रकट चक्षु रूप जमदग्नि का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टके ! तुम प्रजापति द्वारा सादर ग्रहण की हुई को प्रजा के लिए, चक्षु रूप से ग्रहण करता हूँ ॥ ५६ ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रँ सौवँ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऽ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन ऽ एकविँश ऽ एकविँशाद् वैराजं विश्वामित्र ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती

पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत ऽ आग्रयणः ।
आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिँशौ त्रिणवत्रयस्त्रिँशाभ्याँ . शाक्वररैवते विश्वकर्म ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

उत्तर दिशा में स्वर्गलोक स्थित है । उस स्वर्गलोक का मनन करते हुए सादन करता हूँ । उस स्वर्गलोक से सम्बन्धित श्रोत्र का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । श्रोत्र से विदित शरद् ऋतु का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । शरद् ऋतु से प्रकट अनुष्टुप् छन्द का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । अनुष्टुप् छन्द से प्रकट ऐडसाम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । ऐडसाम द्वारा विदित मन्थी ग्रह का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ । मन्थी ग्रह से उत्पन्न इक्कीसवें स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । इक्कीसवें स्तोम से उत्पन्न वैराज नामक साम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । वैराज नामक साम से विदित विश्वामित्र का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टके ! तुम प्रजापति द्वारा आदर से गृहीत हुई की सहायता से प्रजा के निमित्त श्रोत्र को ग्रहण करता हूँ ॥ ५७ ॥

सर्वोपरि विराजमान् चन्द्रमा को मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । चन्द्रमा रूप मति से उत्पन्न वाणी को मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । वाणी से प्रकट हेमन्त ऋतु का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । हेमन्त से प्रकट हैमन्ती नामक पंक्ति छन्द का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । पंक्ति छन्द से प्रकट निधनवत् साम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । निधनवत्साम से प्रकट आग्रयण ग्रह का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । आग्रयण ग्रह से विदित त्रिणव और त्रयस्त्रिंश नामक दो स्तोमों का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । त्रिणव और त्रयस्त्रिंश स्तोमों से विदित शाक्वर और रैवत नामक साम देवताओं का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । शाक्वर और रैवत साम से विदित विश्वकर्मा नामक ऋषि का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टके ! तुम प्रजापति के द्वारा गृहीत

हो । तुम्हारी अनुकूलता से प्रजाओं की आरोग्य-वृद्धि के निमित्त इन दश मन्त्रों से वाणी को ग्रहण करता हूँ । हे इष्टका ! इन पचास प्राणभूत इष्टका के मिलन-स्थान में रहे छिद्र को पूर्ण करती हुई तुम अत्यन्त स्थिरता पूर्वक स्थित होओ । इन्द्र, अग्नि और विश्वकर्मा इस स्थान में तुम्हारी स्थापना करते हैं । अन्न का सम्पादन करने वाले जल स्वर्ग से पृथिवी पर गिरते हैं और देवताओं के जन्म वाले संवत्सर में स्वर्ग पृथिवी और अन्तरिक्ष में इस यज्ञात्मक सोम को भले प्रकार परिपक्व करते हैं । समुद्र के समान व्यापक सब स्तुतियाँ महारथी, अन्नों के स्वामी और कर्मवानों के रक्षक इन्द्र को भले प्रकार सेवन करती हुई बढ़ाती हैं ॥५८॥

चतुर्दशोऽध्यायः ॥

ऋषि—उशनाः, विश्वेदेवाः, विश्वकर्मा ।

देवता—अश्विनौ, ग्रीष्मर्तुः, वस्वादयो मन्त्रोक्ताः, दम्पती, प्रजापत्यादयः, विद्वांसः, इन्द्राग्नी, वायुः, दिशः, ऋतवः, छन्दांसि, पृथिव्यादयः, अग्न्यादयः; विदुषी, यज्ञः, मेधाविनः, वस्वादयो लिंगोक्ता, ऋभवः, ईश्वरः, जगदीश्वर, प्रजापतिः ।

छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्तिः, उष्णिक्, अनुष्टुप् जगती, गायत्री कृतिः ।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥
कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।

अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवाना ँ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव ऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥४॥

आदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्री दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ।
ऊर्मिर्द्रप्सो ऽअपामसि विश्वकर्मा त ऽ ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

हे इष्टके ! तुम दृढ स्थिति वाली, अविचला अग्नि के पूर्व प्रथम चिति रूप स्थान को सेवन करती हुई स्थिर हो । देवताओं के अध्वर्यु दोनों अश्विनीकुमार तुम्हें इस श्रेष्ठ स्थान में स्थापित करें ॥१॥

हे इष्टके ! पक्षी के घौंसले के समान घर वाली, आहुति रूप घृत से सम्पन्न प्रथम चिति इष्टकाओं के धारण करने वाली तुम इस भूमि के कल्याणकारी स्थान में रहो । रुद्रगण और वसुगण तुम्हारी स्तुति करें । तुम ऐश्वर्य-लाभ के निमित्त इन स्तोत्रों को प्रवृद्ध करो । देवताओं के अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस श्रेष्ठ स्थान में स्थापित करें ॥२॥

हे इष्टके ! तुम बल की रक्षा करने वाली हो । तुम देवताओं के अत्यन्त श्रेष्ठ सुख के निमित्त अपने बल से द्वितीय चिति के स्थान में स्थित होकर सर्व मंगल-दायिनी होओ । जैसे पिता पुत्र के लिए सुख का विधान करता है, वैसे ही तुम सुख रूप होकर सशरीर यहाँ रहो । देवताओं के अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस स्थल में स्थापित करें । हे इष्टके ! तुम प्रथम चिति को पूर्ण करने वाली और जल से उत्पन्न हो । ऐसी तुम सभी देवताओं

द्वारा स्तुत हुई हो। जिसमें स्तोत्र पाठ होता है, उस यज्ञ में तुम हवन-घृत से युक्त होकर द्वितीय चिति में स्थित होओ। हमें पुत्र पौत्रादि धन सब ओर से प्रदान करो। अश्विद्वय तुम्हें इस स्थान में स्थापित करें ॥४॥

हे इष्टके ! तुम अन्तरिक्ष की धारण करने वाली, दिशाओं को स्तम्भित करने वाली और सब प्राणियों की अधीश्वरी हो। मैं तुम्हें प्रथम चिति पर स्थापित करता हूँ। तुम जलों की द्रव तरङ्ग के समान हो। विश्वकर्मा तुम्हारे द्रष्टा हैं। अश्विद्वय तुम्हें यहाँ स्थापित करें ॥५॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे ग्रैष्मावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा। सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा। सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा। सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा। सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥७॥

ज्येष्ठ आषाढ भी ग्रीष्मात्मक ही हैं। हे ऋतुरूप इष्टिकाद्वय ! तुम अग्नि के मध्य श्लेष रूप हो। तुम मेरी श्रेष्ठता को स्वर्ग और पृथिवी में कल्पित करो। जल, औषधि और समानकर्मा इष्टका मेरी श्रेष्ठता कल्पित करें। जैसे देवता इन्द्र के पास पहुँचते हैं वैसे ही द्यावा पृथिवी के मध्य

वर्तमान अन्य व्यक्तियों द्वारा स्थापित ग्रीष्म ऋतु की सम्पादिका इष्टकाऐं इस स्थान में स्थित हों। हे इष्टके ! तुम दिव्य गुण वाली अङ्गिरा के समान स्थिर होओ ॥६॥

हे इष्टके ! ऋतुओं और जलों से प्रीति करने वाली, अवस्था प्राप्त कराने वाले प्राणों के सहित, इन्द्रादि देवताओं का भजन करने वाली तुम्हें सर्व हितैषी अग्नि की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करते हैं। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं, जलों, वसुओं, प्राणों तथा सब देवताओं से प्रीति करने वाली तुम्हें विश्व का कल्याण करने वाले अग्नि के निमित्त ग्रहण करता हूँ। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं, जलों, रुद्रों, प्राणों और सब देवताओं से प्रीति करने वाली तुम्हें विश्व के हित-चिंतक अग्नि देवता की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ। तुम्हें अध्वर्यु अश्विद्वय इस द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं, जलों, आदित्यों, प्राणों और समस्त देवताओं से प्रीति करने वाली तुम्हें मैं विश्व का हित करने वाली अग्नि की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं, जलों, प्राणों और विश्वेदेवों से प्रीति करने वाली तुम्हें, संसार का हित करने वाली अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस द्वितीय चिति में स्थापित करें ॥७॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय ।

अप. पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥८॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिᳫंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती

छ द ऽ उक्षा वय. ककुप् छन्द ऽ ऋषभो वय सतोबृहती छन्द ॥९॥

अनड्वान् वय: पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्द: पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रि-वत्सो वय ऽ उष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्द. ॥१०॥

हे इष्टके ! तुम मेरे प्राण की रक्षा करो। हे इष्टके ! तुम मेरे अपान की रक्षा करो। हे इष्टके ! तुम मेरे व्यान की रक्षा करो। हे इष्टके ! तुम मेरे चक्षुओं की रक्षा करो। हे इष्टके ! तुम मेरे श्रोत्रों की रक्षा करो। हे इष्टके ! तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त होकर यह पृथिवी वृष्टि जल द्वारा सिंचित हो। हे इष्टके ! औषधियों को पुष्ट करो। हे इष्टके ! मनुष्यों की रक्षा करो। हे इष्टके ! चतुष्पाद (पशु) की रक्षा करो। हे इष्टके ! स्वर्ग से जल वृष्टि को प्रेरित करो ॥ ८ ॥

गायत्री रूप होकर प्रजापति ने वय द्वारा मूर्द्धा रूप ब्राह्मण की रचना की है। अनिरुक्त छन्द रूप से वय द्वारा प्रजापति ने क्षत्रिय की रचना की। जगत को स्तंभित करने वाले प्रजापति रूप ईश्वर ने छन्द रूप हो वैश्य को बनाया। परमेष्ठी विश्वकर्मा वय द्वारा छन्द रूप को प्राप्त हुए और उन्होंने शूद्र की उत्पत्ति की। एकपद नामक छन्द से प्रजापति ने अजा को ग्रहण किया, इससे अजा पशु उत्पन्न हुए। गायत्री छंद से मेष की उत्पत्ति की। पंक्ति छंद होकर प्रजापति ने किन्नर का ग्रहण किया। तब पुरुष पशु उत्पन्न हुए। विराट् छंद होकर व्याघ्र का ग्रहण कर प्रजापति ने व्याघ्र की उत्पत्ति की। जगती आदि छंद रूप होकर प्रजापति ने सिंह को उत्पन्न किया। निरुक्त छंदों द्वारा प्रजापति ने निरुक्त पशुओं (गर्दभ आदि) को उत्पन्न किया। ककुप् छंद से गमन करते हुए प्रजापति ने उक्षा को ग्रहण कर उक्षा जाति को उत्पन्न किया। बृहती छन्द से गमन करते हुए प्रजा-पति ने ऋषभ को ग्रहण किया। इससे भालू आदि की रचना हुई ॥ ६ ॥

पंक्ति छन्द होकर गमन करते हुए प्रजाप्रति ने बलीवर्द को वय द्वारा ग्रहण किया। जगती छन्द रूप से गमन करते हुए प्रजापति ने गौओं को उत्पन्न किया। त्रिष्टप् छन्द रूप से गमन करते हुए प्रजापति ने त्र्यवि जाति की उत्पत्ति की। विराट् छन्द होकर गमन करने वाले प्रजापति ने दित्यवाट् जाति को रचा। गायत्री छन्द के रूप में जाते हुए प्रजापति ने पंचावि जाति को उत्पन्न किया। उष्णिक छन्द के रूप में गमन करते हुए प्रजापति ने त्रिवत्सा पशु को उत्पन्न किया। अनुष्टुप् छन्द होकर विश्वकर्मा ने तुर्यवाट् जाति की रचना की। हे इष्टके ! पूर्व स्थापित इष्टकाओं द्वारा हिंसित न होती हुई तुम सम्पूर्ण छिद्रों को पूर्ण करती हुई अत्यंत दृढ़ता से स्थित होओ। इन्द्र, अग्नि और बृहस्पति तुम्हें इस श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करें। अन्न-सम्पादक जलों के पृथिवी पर गिरने से देवताओं के जन्म वाले संवत्सर में स्वर्ग, पृथिवी और अंतरिक्ष इस यज्ञ वाले सोम को परिपक्व करते हैं। जिन देवताओं की स्तुतियाँ समुद्र के समान व्यापक हैं, वे स्तुतियाँ महारथी, अन्नों के स्वामी और अनुष्ठानादि करने वाले यजमानों के रक्षक इन्द्र की भले प्रकार सेवा और वृद्धि करती हैं ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी ऽ अव्यथमानामिष्टकां दृ ँहतं युवम् ।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृ ँहान्तरिक्षं मा हि ँसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावा-पृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।

ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे वार्षिकावृतू ऽ अभि-कल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवताओ ! तुम अचल और अव्यथित रहते हुए इष्टका को दृढ़ करो । हे इष्टके ! तुम अपने ऊपरी भाग में द्यावापृथिवी और अंतरिक्ष को व्याप्त करने में समर्थ हो ॥ ११ ॥

हे स्वयमातृणे ! तुम अवकाश युक्त तथा विस्तृत हो । विश्वकर्मा तुम्हें अंतरिक्ष पर स्थापित करें । हे इष्टके ! तुम सब देहधारियों के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त, प्रतिष्ठा और आचरण के निमित्त अंतरिक्ष को धारण योग्य बनाओ । उस अंतरिक्ष को निरुपद्रव करो । वायु अपने कल्याण-कारी बल से तुम्हारी भले प्रकार रक्षा करें । तुम अपनी अधिष्ठात्री देवता की कृपा को प्राप्त करती हुई अंगिरा के समान अचल होओ ॥ १२ ॥

हे इष्टके ! तुम दिशाओं में विराजमान होती हुई, पूर्व में गायत्री रूप होओ । हे इष्टके ! तुम विभिन्न प्रकार से सुसज्जित हुई त्रिष्टुप् रूप से दक्षिण में स्थित होओ । हे इष्टके ! तुम भले प्रकार सुशोभित हुई जगती रूप से पश्चिम में स्थापित होओ । हे इष्टके ! तुम स्वयं सुशोभित होती हुई अनुष्टुप् रूप से उत्तर में स्थापित होओ । हे इष्टके ! तुम अत्यंत रक्षा वाली, पंक्ति रूप से ऊर्ध्व दिशा में अधीश्वरी होती हुई प्रतिष्ठित होओ ॥ १३ ॥

हे इष्टके ! तुम वायु रूप को विश्वकर्मा अंतरिक्ष के ऊपर स्थापित करें । तुम यजमान के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त सम्पूर्ण तेजों

को दो। वायु तुम्हारे अधिपति हैं, उनकी कृपा को प्राप्त हुई तुम अंगिरा के समान इस अग्नि चयन कर्म में स्थिर रूप से अवस्थित होओ ॥ १४ ॥

श्रावण भादों दोनों ही वर्षात्मक ऋतु हैं। यह ऋतु रूप इष्टकाऐं अग्नि के श्लेष रूप से कल्पित हुईं। एक रूप और एक कार्य में लगी हुईं तुम दोनों समान वाक्य होकर हमारी श्रेष्ठता कल्पित करो। द्यावा-पृथिवी, जल, औषधि भी हमारी श्रेष्ठता का विधान करें। जैसे सब देवता इन्द्र से मिल कर कार्य करते हैं, वैसे ही द्यावापृथिवी में स्थित समस्त इष्टकाऐं समान मन वाली होकर वर्षा ऋतु में इस यज्ञ स्थान में तुमसे मिलें और तुम इन्द्र की अनुकूलता से यहाँ दृढ़ता पूर्वक स्थापित होओ ॥ १५ ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे शारदावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा च्छन्दो ऽ अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द ऽ उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

आश्विन और कार्तिक यह दोनों शरदात्मक हैं। यह ऋतु रूप इष्टकाऐं अग्नि के श्लेष रूप हुईं। यह मुझ यजमान की श्रेष्ठता कल्पित करें। द्यावा-पृथिवी, जल, औषधि भी मेरी श्रेष्ठता कल्पित करें। जैसे सब देवता इन्द्र की सेवा करते हैं, वैसे ही सब इष्टकाऐं इस स्थान में समान मन वाली

होकर मिलें और उन प्रसिद्ध देवता द्वारा अंगिरा के समान दृढ़ रूप से स्थापित हों ॥ १६ ॥

हे इष्टके ! मेरी आयु की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरे प्राण की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरे अपान की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरे व्यान की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरे चक्षुओं की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरे श्रोत्रों की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरी वाणी को परिपूर्ण करो। हे इष्टके ! मेरे मन को पुष्ट करो। हे इष्टके ! मेरे आत्मा की रक्षा करो। हे इष्टके ! मेरे तेज की रक्षा करो ॥ १७ ॥

हे इष्टके ! तुम्हें इस लोक का मनन कर स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! अंतरिक्ष के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूं। हे इष्टके ! द्यु लोक के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूं। हे इष्टके ! अस्तीवय छन्द के मनन पूर्वक तुम्हें सादित करता हूं। हे इष्टके ! पंक्ति छन्द के मनन-पूर्वक तुम्हें सादित करता हूँ। हे इष्टके ! उष्णिक् छन्द के मनन-पूर्वक स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! बृहती छन्द के मनन से स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! अनुष्टुप् छन्द का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! विराट् छन्द के मनन द्वारा तुम्हें सादित करता हूं। हे इष्टके ! गायत्री छन्द के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूं। हे इष्टके ! त्रिष्टुप् छन्द को मनन करके तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! जगती छन्द को मनन करके तुम्हें स्थापित करता हूं ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्द. कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्द. ॥ १९ ॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

मैं पृथिवी देवता से संबंधित छन्द के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित

करता हूँ। अंतरिक्ष से सम्बन्धित छन्द के मनन पूर्वक मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। स्वर्गात्मक छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। वर्ष देवता के छन्द का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। नक्षत्र देवता के छन्द के मनन पूर्वक इष्टका की स्थापना करता हूँ। वाग्देवता के छन्द को मनन करता हुआ मैं इष्टका की स्थापना करता हूं। मन देवता के छन्द के मनन पूर्वक मैं इष्टका स्थापित करता हूं। कृषि देवता के छन्द का मनन करता हुआ मैं यह इष्टका स्थापित करता हूँ। हिरण्य देवता के छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। गौ देवता के छन्द से इष्टका स्थापित करता हूँ। अजा देवता के छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। अश्व देवता के छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ ॥ १९ ॥

अग्नि देवता के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। वायु देवता के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ। सूर्य देवता के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ। चन्द्रमा देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। वसुगण देवता का मनन कर इष्टका की स्थापना करता हूँ। रुद्रगण देवता का मनन कर इष्टका सादित करता हूँ। आदित्यगण देवता के मनन पूर्वक इष्टका सादित करता हूँ। मरुद्गण के मनन द्वारा इष्टका सादित करता हूँ। विश्वेदेवा के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। बृहस्पति के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। इन्द्र देवता के मननपूर्वक इष्टका की स्थापना करता हूँ। वरुण के मननपूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ ॥ २० ॥

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

हे वालखिल्य इष्टके! तुम मूर्धा के समान सर्वश्रेष्ठ हो। हे वालखिल्ये! तुम धारण करने वाली और स्थिर हो, अतः स्थिर रूप से इस स्थान को धारण करो। हे वालखिल्ये! तुम धारण करने वाली भूमि के समान

स्थिर हो इस स्थान को धारण करो। हे बालखिल्ये! आयु की वृद्धि के लिए तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे बालखिल्ये! तुम्हें तेज के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे बालखिल्ये! तुम्हें अन्न वृद्धि के लिए स्थापित करता हूँ। हे बालखिल्ये! तुम्हें कल्याण की वृद्धि के निमित्त स्थापित करता हूँ ॥२१॥

हे बालखिल्ये! तुम इस स्थान में विधिपूर्वक निवास करो। तुम स्वयं नियम में रहकर अन्य से भी नियम पालन कराने वाली हो, इस स्थान में रहो। तुम स्थिर पृथिवी के समान अविचल हो, नीचे रखी इष्टका को धारण करो। हे बालखिल्ये! अन्न प्राप्ति के निमित्त तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे बालखिल्ये! अन्न प्राप्ति के निमित्त तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे बालखिल्ये! धन की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे बालखिल्ये! धन की पुष्टि के निमित्त मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ।

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण ऽ एकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशः। गर्भाः पञ्चविꣳश ऽ ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳ विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥२३

हे इष्टके! त्रिवृत् स्तोम में आशु रूप से व्याप्त तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! पन्द्रह कलाओं द्वारा नित्य प्रति घटने बढ़ने वाले चन्द्रमा को मनन कर तुम्हें इस स्थान में स्थापित करता हूँ। सब प्रकार रक्षा करने वाले व्योम सप्तदश स्तोम रूप हैं, उन व्योम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। धारण करने वाला और स्वयं प्रतिष्ठित एकविंश स्तोम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। संवत्सर अष्टादश अवयवों वाला है, उसका मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। उन्नीस अवयवों वाले तपरूप स्तोम का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। बीस अवयवों वाला और सब प्राणियों को आवृत्त करने वाला अभीवर्त्त नामक विंश स्तोम का मनन कर

इष्टका स्थापित करता हूँ। महान् तेज का देने वाला तथा बाईस अवयवों से युक्त जो द्वाविंश स्तोम है, उस वर्चयुक्त देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। भले प्रकार पुष्टि प्रदान करने वाला तेईस अवयवों से युक्त जो त्रयोविंश स्तोम है, उस संभरण नामक देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। प्रजा का उत्पन्न करने वाला चौबीस अवयवों से युक्त जो चतुर्विंश स्तोम है, उस चतुर्विंश योनि देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। साम गर्भ रूप जो पच्चीसवाँ स्तोम है, उसका मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। जो त्रिणव स्तोम ओजस्वी और वज्र के समान महिमामय है, उसका मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। जो इकत्तीस अवयव वाला यज्ञ के लिए उपयोगी एकत्रिंश स्तोम है, उस क्रतु नामक स्तोम का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। जो तेंतीस अवयवों वाला, प्रतिष्ठा का कारण रूप अथवा सबमें व्याप्त होने वाला जो प्रतिष्ठा नामक स्तोम है, उसके मनन पूर्वक इष्टका सादन करता हूँ। चौंतीस अवयवों वाला जो स्तोम सूर्य लोक की प्राप्ति कराने वाला अथवा स्वयं सूर्य का स्थान रूप है, उस स्तोम का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। छत्तीस अवयवों वाला अथवा छत्तीसवाँ जो स्तोम है, वह सुख-काम्य एवं स्वर्ग प्राप्त कराने वाला है। उस षट्त्रिंश स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। अड़तालीस अवयवों वाला, साम के आवर्तनों से युक्त जो स्तोम है, उसमें सभी प्राणी अनेक-प्रकार से वर्तमान रहते हैं, उस विवर्त नामक स्तोम के मनन पूर्वक इष्टका सादन करता हूँ। त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश और एकविंश इन चार स्तोमों का समूह चतुष्टोम सबका धारक है। उस धर्त्र देवता का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ ॥ २३ ॥

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया ऽ आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः।
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रँ स्पृतं पञ्चदश स्तोमः।
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रँ स्पृतँ सप्तदश स्तोमः।
मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत ऽ एकविँशस्तोमः ॥ २४ ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्य चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विꣳश स्तोमः।
आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पञ्चविꣳश स्तोमः।
अदित्यै भागोऽसि पूष्ण ऽ आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमः।
देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥ २५॥

हे इष्टके! तुम अग्नि की भाग रूप हो, दीक्षा का तुम पर अधिकार है, इसलिए त्रिवृत स्तोम के द्वारा, तुमसे ब्राह्मणों की मृत्यु से रक्षा हुई, उस त्रिवृत स्तोम के मनन पूर्वक मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! तुम इन्द्र का भाग हो, तुम पर विष्णु का अधिकार है, तुमने पंचदश स्तोम के द्वारा क्षत्रियों की मृत्यु से रक्षा की थी, उस पंचदश स्तोम का मनन करता हुआ मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! जो देवता मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के ज्ञाता हैं, तुम उनका भाग हो, धाता का तुम पर आधिपत्य है, तुमने सप्तदश स्तोम के द्वारा वैश्यों की रक्षा की है, उस सप्तदश स्तोम के मनन-पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! तुम मित्र देवता का भाग हो, तुम पर वरुण देवता का अधिकार है। तुमने एकविंश स्तोम के द्वारा वर्षा-जल और वायु की रक्षा की है, उस एकविंश स्तोम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ॥ २४॥

हे इष्टके! तुम वसुओं का भाग हो। तुम पर रुद्रगण का अधिकार है। तुमने चतुर्विंश स्तोम के द्वारा पशुओं को मृत्यु मुख से बचाया है। उस चतुर्विंश स्तोम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! तुम आदित्यों का भाग हो। तुम पर मरुद्गण का अधिकार है। तुमने पंचविंश स्तोम के द्वारा गर्भ स्थित प्राणियों को मृत्यु-मुख से रक्षित किया है। उस पंचविंश स्तोम के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! तुम अदिति का भाग हो। तुम पर पूषा देवता का अधिकार है। तुमने त्रिणव स्तोम के द्वारा प्रजाओं के ओज की रक्षा की है। उस त्रिणव स्तोम के मनन पूर्वक तुम्हें

स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम सर्व प्रेरक सविता देव के भाग हो। तुम पर बृहस्पति का आधिपत्य है। तुमने चतुष्टोम स्तोम द्वारा सब मनुष्यों के विचरण योग्य दिशाओं को रक्षित किया है। उस चतुष्टोम स्तोम का मनन करता हुआ मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥ २५ ॥

यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳश स्तोमः। ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतꣳ स्पृतं त्रयस्त्रिꣳश स्तोमः ॥ २६ ॥

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे हैमन्तिकावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

एकयास्तुवत प्रजा ऽ अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्।
तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्।
पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्।
सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

हे इष्टके ! तुम शुक्ल पक्षीय तिथि के भाग हो। तुम पर कृष्णपक्ष की तिथि का अधिकार है। तुमने चत्वारिंश स्तोम द्वारा प्रजा की मृत्यु से रक्षा की है। उस चत्वारिंश स्तोम के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम ऋतुओं का भाग हो। तुम पर विश्वेदेवों का अधिकार है, तुमने त्रयस्त्रिंश स्तोम के द्वारा प्राणीमात्र को मृत्यु मुख से रक्षित किया है। उस त्रयस्त्रिंश स्तोम के मनन-पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥ २९ ॥

मार्गशीर्ष और पौष हेमंत ऋतु के अवयव हैं। यह अग्नि के अंतर में श्लेष रूप होते हैं। अग्नि चयन करते हुए मुझ यजमान की श्रेष्ठता को

द्यावापृथिवी कल्पित करे। जल और औषधि भी हमारी श्रेष्ठता कल्पित करें। द्यावापृथिवी के मध्य हेमंत ऋतु को सम्पादित करती हुई सभी अग्नियाँ समान मन वाली होकर इस कर्म की आश्रित हों, और इस इष्टका में मिलें। हे इष्टके! उस प्रसिद्ध देवता द्वारा तुम अंगिरा के समान दृढ़ता पूर्वक स्थापित होओ ॥ २७ ॥

प्रजापति ने एक वाणी से आत्मा का स्तव किया, जिससे यह सब अचेतन प्रजा उत्पन्न हुई और प्रजापति ही उनके अधिपति हुए। प्राण, उदान और व्यान के द्वारा स्तुति की, जिससे ब्रह्म की सृष्टि हुई और उस सृष्टि के अधिपति ब्रह्मणस्पति हुए। पाँच प्राणों के द्वारा स्तुति की, जिससे पंचभूतों की उत्पत्ति हुई, उन पंचभूतात्मक सृष्टि के अधिपति भूतनाथ महादेव हुए। श्रोत्र, नासिका, चक्षु, जिह्वा द्वारा स्तुति करने पर सप्तर्षि की उत्पत्ति हुई, उनके अधिपति धाता हुए ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत् ।
एकादशभिरस्तुवत ऽ ऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवा ऽ अधिपतय ऽ आसन् ।
त्रयोदशभिरस्तुवत मासा ऽ असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् ।
पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् ।
सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे ऽ अधिपत्नी ऽ आस्ताम् ।
एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् ।
त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् ।
पञ्चविꣳशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् ।
सप्तविꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा ऽ आदित्या ऽ अनुव्यायँस्त ऽ एवाधिपतय ऽ आसन् ॥ ३० ॥

नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् ।

एकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजा ऽ असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय ऽ आसन् ।
त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

नवद्वार शरीर के द्वारा स्तुति की, जिससे पितर, अग्नि और वायु की उत्पत्ति हुई, उनकी स्वामिनी अदिति हुई। दश प्राण और ग्यारहवें आत्मा द्वारा स्तुति की, जिससे वसंतादि ऋतुओं की उत्पत्ति हुई, उनके अधिपति ऋतुपालक देवता हुए। दश प्राण, दो पाद और एक आत्मा द्वारा स्तुति की, जिससे चैत्रादि वारह मास और एक अधिक मास वाले संवत्सर की सृष्टि हुई, उनका अधिपति संवत्सर हुआ। दोनों हाथ, दश अंगुलियाँ, दो भुजाएं और एक नाभि के ऊपर का भाग, इनके द्वारा स्तुति की, जिससे क्षत्रिय उत्पन्न हुए, उनके अधिपति इन्द्र हुए। दो पाँव, पावों की दश अंगुलियाँ, दो ऊरु, दो जानु और नाभि के निचले भाग द्वारा स्तुति की, जिससे ग्राम्य पशुओं की सृष्टि हुई और बृहस्पति उनके अधिपति हुए ॥ २६ ॥

हाथों की दश अंगुलियों और ऊपर नीचे के छिद्र रूप नौ प्राणों द्वारा स्तुति की, उससे शूद्र और आर्य जाति की उत्पत्ति हुई, उनकी स्वामिनी अहोरात्र हुई। हाथ और पाँव की वीस अंगुलियाँ और आत्मा सहित इन एक-विंशति से स्तुति की, उससे एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुए और उनके स्वामी वरुण हुए। हाथ-पाँव की वीस अंगुलियों, दो चरणों और एक आत्मा से स्तुति की इससे अजा आदि पशुओं की उत्पत्ति हुई, उन पशुओं के अधिपति पूषा हुए। वीस अंगुलियाँ, दो पाँव, दो हाथ एक आत्मा से स्तुति की, उससे वन के मृग आदि पशु उत्पन्न हुए, उनके अधिपति वायु हुए। वीस अंगुलियाँ, दो भुजा, दो ऊरु, दो प्रतिष्ठा, एक आत्मा से स्तुति की, उससे द्यावा-पृथिवी प्रकट हुए, वसुगण, रुद्रगण आदित्यगण इनके स्वामी हुए ॥ ३० ॥

वीस अंगुलियों और नवप्राण के छिद्रों सहित स्तुति की, इससे वन-

स्पतियों की उत्पत्ति हुई और उनके अधिपति सोम हुए। बीस अंगुलियों, दश इन्द्रियों और एक आत्मा से स्तुति की, उससे सम्पूर्ण प्राणियों की सृष्टि हुई, उस सृष्टि के स्वामी पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष हुए। बीस अंगुलियों, दश इन्द्रियों, दो पांवों और आत्मा से स्तुति की, उससे उत्पन्न हुए सब प्राणियों ने कल्याण की प्राप्ति की और परमेष्ठी प्रजापति उनके अधिपति हुए ॥ ३१ ॥

॥ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

(ऋषिः—परमेष्ठी, प्रियमेधा, मधुच्छन्दाः, वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः दम्पती, विद्वांसः, प्रजापतिः, वसवः, रुद्राः, आदित्याः, मरुतः, विश्वेदेवाः, वसन्तऋतुः, ग्रीष्मर्तुः, वर्षर्तुः, शरदृतुः, हेमन्तर्तुः, शिशिरर्तुः, विदुषी, इन्द्राग्नी, आपः, इन्द्रः, परमात्मा, विद्वान् ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्, कृतिः, अनुष्टुप्, जगती, बृहती, गायत्री, उष्णिक, पंक्तिः ।)

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधि नो ब्रूहि सुमना ऽ अहेडँस्तव स्याम शर्मंस्त्रिवरूथ ऽ उद्भौ ॥१॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयँ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥२॥

षोडशी स्तोम ऽ ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिँश स्तोमो वर्चो द्रविणम् ।
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे ऽ अभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! हमारे पूर्वोत्पन्न शत्रुओं को भले प्रकार नष्ट करो। अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उन्हें उत्पन्न होने से रोको। तुम श्रेष्ठ मन वाले होकर तथा क्रोधहीन रहते हुये हमको अभीष्ट वर दो। हे अग्ने !

तुम्हारे कल्याण के आश्रित मनुष्य सदोमण्डप, हविर्धान, आग्नीध्र इन तीनों स्थानों में यज्ञ करें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तुम बल द्वारा उत्पन्न हुए हो। हमारे शत्रुओं को सब ओर से नष्ट करो। भविष्य में उत्पन्न होनेवाले शत्रुओं को रोको। तुम क्रोध-रहित श्रेष्ठ अन्तःकरण से हमें अभीष्ट वर दो। मैं तुम्हारी कृपा से सब प्रकार के शत्रुओं से बलवान बनूँ ॥२॥

हे इष्टके ! तुम्हें षोडशी स्तोम के प्रभाव से स्थापित करता हूँ। इस स्थान में ओज और धन की प्राप्ति हो, दक्षिण दिशा की ओर से पाप का नाश हो। हे इष्टके ! चतुश्चत्वारिंश स्तोम से तुमको स्थापित करता हूँ। इस स्थान में तेज और धन की प्राप्ति हो, उत्तर दिशा की ओर से हमारी पाप से रक्षा हो। हे इष्टके ! तुम रक्षक नाम वाले पंचदश कला युक्त चन्द्रमा के समान अग्नि के पूर्ण करने वाली हो। ऐसी तुम्हारी संम्पूर्ण देवता स्तुति करें। सभी स्तोमपृष्ठ मन्त्रों के प्रभाव से होने हुए घृत से युक्त होती हुई तुम इस चतुर्थ चिति के ऊपर स्थित हो। हमको इस कर्म के फल रूप पुत्र और धन आदि दो। सब देवता तुम्हारीस्तुति करें और इसके फल रूप तुम हमें ऐश्वर्य दो ॥३॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द ऽ आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप् छन्दः काव्यं छन्दो ऽ अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः ॥४॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सँस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्द ऽ एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो ऽ अङ्काङ्कं छन्दः ॥ ५ ॥

हे इष्टके ! जिस पृथिवी पर सब प्राणी विचरण करते हैं, उस पृथिवी के मनन-पूर्वक तुमको स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! प्रभा मण्डल से व्याप्त अंतरिक्ष के मनन पूर्वक तुमको स्थापित करता हूँ। कल्याणकारी द्युलोक के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब ओर से व्याप्त दिशा को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। अपने रस से शरीर को पुष्ट करने वाले अन्न के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। प्रजापति के समान मन के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब संसार के व्याप्त करने वाले आदित्य के मनन-पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। नाड़ियों द्वारा देह को व्याप्त करने वाले वायु के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। समुद्र के समान गंभीर मन के मनन-पूर्वक तुम्हारी स्थापना करता हूँ। मुख से निकलने वाली वाणी का मनन कर तुम्हारी स्थापना करता हूँ। शरीर को ओज प्रदान करने वाले प्राण का मनन कर तुम्हारी स्थापना करता हूँ। पीत जल को तीन भाँति का कर देने वाले उदान का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। वेदत्रय का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। कुटिल चाल वाले जल के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। अविनाशी स्वर्ग का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। चरणन्यास वाले भूलोक का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। पाताल का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। आकाश में दीप्त होने वाली विद्युत के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ ॥ ४ ॥

शरीर के आच्छादक अन्न का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। शरीर को आच्छादित करने वाले अन्न के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब कर्मों को निवृत्त करने वाली रात्रि का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब कर्मों के प्रवर्त्तक दिवस के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। विस्तीर्ण द्युलोक का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। जिस पृथिवी पर रथादि गमन करते हैं, उसके मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। घोर शब्द करने वाले वायु के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। जहाँ विविध आकृति वाले भूत पिशाच आदि अपने कर्मों का फल भोगते हैं, उसके मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। भक्षण के योग्य अन्न के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता

हूँ। प्रकाश से सम्पन्न अग्नि का मनन करते हुए स्थापित करता हूँ। वैखरी वाणी के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। मध्यम वाणी को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। भूलोक को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। प्रभा मंडल को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। बाल्यादि अवस्था के करने वाले जठराग्नि के मननपूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। विविध ऐश्वर्य वाले स्वर्ग को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। जिस पृथिवी पर मनुष्य हर प्रकार की शोभा पाते हैं, उसके मननपूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। सूर्य की रश्मियों से व्याप्त अंतरिक्ष के मननपूर्वक तुम्हें सादन करता हूँ। यज्ञादि कर्मों से सिद्ध हुए ज्ञान रूपी सूर्य के मननपूर्वक तुम्हें सादन करता हूँ। गर्त और पाषाण से युक्त जल का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ॥ ५ ॥

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्म जि वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधाना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य ऽआदित्याञ्जिन्व ॥ ६ ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

हे इष्टके! तुम अपनी रश्मि रूप अन्न के द्वारा सत्य के निमित्त सत्य रूप वाणी को पुष्ट करो। हे इष्टके! देह में गति देने वाले अन्न के प्रभाव से, धर्म के निमित्त उपहित हुई तुम, धर्म को प्रवृद्ध करो। हे इष्टके! देह में गति देने वाले अन्न के बल से, स्वर्ग लोक के निमित्त उपहित हुई तुम स्वर्ग लोक को पुष्ट करो। हे इष्टके! जो अन्न बल को पुष्ट करने वाला है, उसके प्रभाव से उपहित हुई तुम अन्तरिक्ष को पुष्ट करो। हे इष्टके! सब इन्द्रियों को आश्रय देने वाले अन्न के बल से पृथिवी के निमित्त उपहित हुई तुम, पृथिवी लोक को पुष्ट करो। हे इष्टके! देह आदि को स्तंभित करने वाले

अन्न के प्रभाव से वृष्टि के निमित्त उपहित हुई तुम, वृष्टि जल को प्रेरित करो। हे इष्टके! देह में गमनागमन करने वाले अन्न के प्रभाव से रात्रि के निमित्त उपहित हुई तुम, रात्रि को पुष्ट करो। हे इष्टके! देहगत नाड़ियों में भ्रमणशील अन्न के प्रभाव से रात्रि के निमित्त उपहित हुई तुम रात्रि को पुष्ट करो। हे इष्टके! सब प्राणियों द्वारा कामना करने योग्य अन्न के बल से उपहित हुई तुम, वसुओं के साथ प्रीति करो। हे इष्टके! सुख की अनुभूति कराने वाले अन्न के प्रभाव से आदित्यों के निमित्त उपहित हुई तुम, आदित्यगण के साथ प्रीति करो ॥ ६ ॥

हे इष्टके! शरीर को बढ़ाने वाले अन्न के प्रभाव से धन की पुष्टि के निमित्त उपहित हुई तुम, धन के पोषण से प्रीति करो। सब इन्द्रियों में रमने वाले अन्न के प्रभाव से शाखों के लिए उपहित हुई तुम, शाखों की वृद्धि करो। हे इष्टके! प्रसिद्ध अन्न के बल से औषधियों के लिए उपहित हुई तुम औषधियों को पुष्ट करो। हे इष्टके! पृथिवी के श्रेष्ठ पदार्थ अन्न के बल से शरीरों के निमित्त उपहित हुई तुम, शरीरों को पुष्ट करो। हे इष्टके! शरीर के उपचय करने वाले अन्न के प्रभाव से अध्ययन के निमित्त उपहित हुई तुम अध्ययन में प्रीति करो। हे इष्टके! बल के करने वाले अन्न के प्रभाव से तेज के निमित्त उपहित हुई तुम, तेज की वृद्धि करो ॥ ७ ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा सक्रमोऽसि सक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा ऽ अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬश्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬ साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु

दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

हे इष्टके ! तुम जीवन को अस्तित्वमय कराने वाले अन्न के समान हो। मैं तुम्हें अन्न-लाभ के लिए स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में समर्थ करने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें अन्न के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम धन का प्रतिपादन करने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें सम्पत्ति लाभ के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम शरीर को तेजस्वी बनाने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें तेज के लिए स्थापित करता हूँ ॥ ८ ॥

हे इष्टके ! तुम कृषि, वृष्टि और बीज द्वारा उत्पन्न होने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें अन्न-लाभ के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! जो अन्न सब प्राणियों को कर्म में प्रवृत्त करने वाला है, तुम उस अन्न के समान हो। मैं तुम्हें कार्य में प्रवृत्ति के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! जो अन्न इन्द्रियों को अपने-अपने कर्म में लगाने वाला है, तुम उस अन्न के समान हो। मैं तुम्हें इसी उद्देश्य से स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! जो अन्न जीवन के साथ चलता है, तुम उसी अन्न के समान हो। मैं तुम्हें अन्न के लिए सादित करता हूँ। हे इष्टके ! जो अन्न भूख को मिटाने में समर्थ है, तुम उसी अन्न के समान हो। मैं तुम्हें अन्न-लाभ के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम प्रजनन-समर्थ अन्न के समान हो, अतः तुम्हें प्रजोत्पत्ति के निमित्त स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम जन्म को देने वाले अन्न के समान हो। मैं तुम्हें उत्क्रमार्थ स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम श्रेष्ठ गमन वाले अन्न के समान हो। मैं तुम्हें गमन के निमित्त स्थापित करता हूं। हे इष्टके ! अत्यन्त पालन करने वाले अन्न रस के लिए उपहित हुई तुम, अन्न-रस से प्रीति करो ॥ ९ ॥

हे इष्टके ! तुम पूर्व दिशा की स्वामिनी हो। तुम्हारे अधिपति आठों वसु हैं। अग्नि देवता तुम्हारे सम्पूर्ण विघ्नों का निवारण करने वाले हैं। त्रिवृत्त स्तोम तुम्हें पृथिवी में स्थापित करें। आज्य और उक्थ तुम्हें दृढ़ करें।

रथन्तर साम तुम्हें अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित करें। प्रथम उत्पन्न प्राण और देवगण तुम्हें स्वर्गलोक में विस्तृत करें और इष्टका का अभिमानी देवता भी तुम्हें बढ़ावें। इस प्रकार सभी देवता सुख रूप स्वर्ग में यजमान को पहुँचावें ॥ १० ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा ऽ अधिपतय ऽ इन्द्रो हेतीना प्रतिधर्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तम्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे सम्विदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥
सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा ऽ अधिपतयो वरुणो हेतीना प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपँ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे सम्विदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा ऽ अधिपतयः सोमो हेतीना प्रतिधर्त्तैकविँशस्त्वा, स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजँ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे सविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा ऽ अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिँशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याँ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते ऽ उक्थे ऽ अव्यथायै स्तभ्नीताँ शाकररैवते सामनी

प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥
अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेति पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

हे इष्टके ! तुम विराट् दक्षिण दिशा रूप हो। रुद्रगण तुम्हारे अधिपति हैं। इन्द्र विघ्नों के दूर करने वाले हैं। पंचदश स्तोम तुम्हें पृथिवी पर स्थापित करें। प्रउग नामक उक्थ तुम्हें दृढ़ करें, बृहत् साम तुम्हें अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित करें। प्रथम उत्पन्न देव तुम्हें दिव्यलोक में विस्तृत करें। सब देवता इस यजमान को कल्याण रूप स्वर्ग की प्राप्ति करावें ॥ ११ ॥

हे इष्टके ! तुम पश्चिम दिशा रूप हो। आदित्य तुम्हारे अधिपति हैं। वरुण तुम्हारे दुःखों के दूर करने वाले हैं। सप्तदश स्तोम तुम्हें पृथिवी में प्रतिष्ठित करें। मरुतात्मक उक्थ तुम्हें दृढ़ रूप से स्थापित करें। वैरूप साम तुम्हें अन्तरिक्ष में दृढ़ करें। प्रथम उत्पन्न देवगण तुम्हें दिव्यलोक में विस्तृत करें। वे देवता इस यजमान को कल्याण रूप स्वर्ग की प्राप्ति करावें ॥ १२ ॥

हे इष्टके ! तुम स्वयं राजमाना उत्तर दिशा हो। मरुद्गण तुम्हारे अधिपति हैं। सोम तुम्हारे विघ्नों को दूर करने वाले हैं। एकविंश स्तोम तुम्हें पृथिवी में स्थापित करें। निष्केवल्य उक्थ तुम्हें दृढ़ता के निमित्त प्रतिष्ठित करें। वैराज साम तुम्हें अन्तरिक्ष में स्थिर करें। सब प्राणियों से पहले उत्पन्न हुए सभी देवता तुम्हें स्वर्ग लोक में विस्तृत करें। वे सभी देवता इस यजमान को श्रेष्ठ कल्याण रूप स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराने वाले हों॥१३॥

हे इष्टके ! तुम ऊर्ध्व दिशा रूप अधीश्वरी हो। विश्वेदेवा तुम्हारे अधिपति हैं। बृहस्पति देवता तब विघ्नों को शान्त करने वाले हैं। त्रिणव-

अथर्वाङ्गिरा स्तोम तुम्हें पृथिवी में स्थापित करें। वैश्वदेव अग्निमारुत उक्थ तुम्हें दृढ़ता के निमित्त प्रतिष्ठित करें। शाक्वर और रैवत दोनों साम तुम्हें प्रतिष्ठा के लिये अन्तरिक्ष में स्थापित करें। सब प्राणियों से पूर्व उत्पन्न सभी देवता तुम्हें स्वर्गलोक में विस्तृत करें। वे सभी देवता इस यजमान को कल्याण रूप स्वर्ग की प्राप्ति करावें ॥१४॥

• पूर्व दिशा में प्रतिष्ठित यह इष्टका रूप अग्नि अपनी हिरण्यमय ज्वालाओं से युक्त रश्मि सम्पन्न हैं। उन अग्नि के रथ चालन में चतुर और रण कुशल वीर वसन्त ऋतु हैं। रूप, सौंदर्य, सौभाग्य आदि की खान तथा सत्य संकल्प आदि की स्थान रूप यह दिशा, उपदिशा अप्सरायें हैं। काटने के स्वभाव वाले व्याघ्रादि पशु ही इनके आयुध हैं। परस्पर हनन इसके शस्त्र हैं। इन सब परिचारकों के सहित अग्नि को हम नमस्कार करते हैं। वे सभी हमको सुख प्रदान-पूर्वक हमारी रक्षा करें। जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उन सबको हम इन अग्नि की दाढ़ों में डालते हैं ॥ १५ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाᳬसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नो ऽ वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म ॥१६॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नो ऽ वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१७॥

अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नो ऽ वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म ॥१८॥

अयमुपयर्वाग्वसुतस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽ
अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि
तमेषां जम्भे दध्मः ॥१९॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽ अयम् ।
अपा ँ रेता ँ सि जिन्वति ॥२०॥

दक्षिण दिशा में स्थापित यह इष्टका विश्वकर्मा हैं। उनका रथी, रथ में बैठकर शब्द करने वाला सेनापति और ग्राम-रक्षक ग्रीष्म ऋतु हैं। मेनका और सहजन्या इनकी दो अप्सरा हैं। राक्षसों के विभिन्न भेद इनके आयुध तथा घोर राक्षस इनके तीक्ष्ण शस्त्र हैं। इन सबके सहित विश्वकर्मा को हम नमस्कार करते हैं। वे सुख देते हुए हमारी रक्षा करें। जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, ऐसे शत्रुओं को हम उनकी दाढ़ों में डालते हैं ॥१६॥

पश्चिम दिशा में स्थापित यह इष्टका रूप, संसार को प्रकाशित करने वाले आदित्य हैं। उनके रथी और रणकुशल वीर सेनापति और ग्रामरक्षक वर्षा ऋतु हैं। प्रम्लोचन्ती और अनुम्लोचन्ती नामक दो अप्सराएं हैं। व्याघ्रादि इनके आयुध तथा सर्पादि तीक्ष्ण शस्त्र हैं। इन सबके सहित आदित्य को हम नमस्कार करते हैं। वे हमें सुखी करते हुए हमारी रक्षा करें। जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, ऐसे शत्रुओं को हम उनकी दाढ़ों में डालते हैं ॥१७॥

उत्तर दिशा में स्थापित यह इष्टका धन से साध्य यज्ञ है। उसका तीक्ष्ण पक्ष रूप आयुधों को बढ़ाने वाले और अरिष्टों का नाश करने वाले सेनापति और ग्राम-रक्षक शरद् ऋतु हैं। विश्वाची और घृताची दो अप्सराएं हैं। वे हमें सब प्रकार सुखी करें और हमारी रक्षा करें। जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, ऐसे शत्रुओं को हम यज्ञ रूप अग्नि की दाढ़ों में डालते हैं ॥१८॥

मध्य दिशा में स्थापित यह इष्टका पर्जन्य है। उसके विजेता वीर सेनापति और ग्राम-रक्षक हेमन्त ऋतु हैं। उर्वशी और पूर्वचिति नाम वाली दो अप्सराएं हैं। वज्र के समान घोर शब्द उनके आयुध और विद्युत तीक्ष्ण शस्त्र है। इन सबके सहित पर्जन्य को हम नमस्कार करते हैं। वे हमें सब प्रकार सुख दें और रक्षा करें। हम जिससे द्वेष करते हैं, तथा जो वैरी हमसे द्वेष करते हैं, ऐसे सब शत्रुओं को हम उनकी दाढ़ों में डालते हैं ॥ १६ ॥

यह अग्नि स्वर्ग की मूर्धा के समान प्रमुख हैं। जैसे बैल का कंधा ऊँचा होता है, वैसे ही अग्नि ने ऊँचा स्थान पाया है। यह संसार के कारण रूप तथा पृथिवी के रक्षक हैं। यह जलों के सारों को पुष्ट करने वाले हैं ॥ २० ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥२१॥
त्वमग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥२२॥
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥२३॥
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥२५॥

यह अग्नि हजारों और सैकड़ों अन्नों के स्वामी हैं। यह क्रान्तदर्शी और सब धनों में मूर्धा रूप हैं ॥२१॥

हे अग्ने ! अथर्वा ने तुम्हें जल के सकाश से मथा। सभी ऋत्विजों ने संसार में मूर्धा के समान प्रमुख मानकर तुम्हारा मंथन किया ॥२२॥

हे अग्ने ! जब तुम अपनी, हविधारण करने वाली ज्वाला रूप जिह्वा को प्रकट करते हो, तब तुम यज्ञ के और यज्ञ-फल रूप जल के नेता होते हो। तुम यहाँ कल्याण रूप अश्वों के सम्बन्ध को प्राप्त होकर सूर्य मंडल में स्थित सूर्य को धारण करते हो ॥२३॥

ज्ञान, सत्य, कर्मादि से सम्पन्न याज्ञिकों की समिधाओं द्वारा अग्नि उसी प्रकार वृद्धि वाले होते हैं। जिस प्रकार अपनी ओर आती हुई गौ को देखकर बछड़ा वृद्धि से युक्त होता है। जैसे उषा के आगमन पर मनुष्य चैतन्य बुद्धि-वाले होते हैं और उनके ज्ञान की किरणें स्वर्ग के सब-ओर फैलती हैं, अथवा जिस प्रकार पक्षी वृक्ष की शाखा से ऊपर उड़जाते हैं ॥२४॥

क्रान्तदर्शी, यज्ञ-योग्य और बलिष्ठ तथा सेचन समर्थ अग्नि की स्तुति वाले वाक्यों को हम उच्चारण करते हैं। वाणी में स्थिर पुरुष अन्न-वती स्तुति को आह्वानीय अग्नि को वैसे ही अर्पित करता है, जैसे आदित्य के निमित्त की हुई स्तुतियाँ अर्पित की जाती हुई स्वर्ग में विचरती हैं ॥२५॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो ऽ अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥२६॥
जनस्य गोपा ऽ अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥२७॥
त्वामग्ने ऽ अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२८॥
सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥२९॥
सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य ऽ आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥३० ॥

यह अग्नि यज्ञ में स्थित होता तथा सोमयागादि में स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हैं। अनुष्ठानों द्वारा इस स्थान में इनकी स्थापना की गई है।

यजमानों के हित के हित के लिए भृगुवंशी ऋषियों ने इन अद्‌भुत कर्म वाले, व्यापक शक्ति से सम्पन्न अग्नि को वनों में प्रदीप्त किया ॥२६॥

यह अग्नि यजमानों की रक्षा करने वाले, अपने कर्म में चैतन्य, अत्यन्त कुशल, मुख से घृत को ग्रहण करने वाले और पवित्र हैं। यह यज्ञादि कर्मों के सम्पादन करने के लिए ऋत्विजों द्वारा नित्य नवीन होते हुए प्रकट होते हैं। यह स्वर्ग को स्पर्श करने वाली अपनी महिती दीप्तियों से अत्यन्त प्रकाशमान होते हैं ॥२७॥

अनेक रूप से यज्ञादि कर्मों में विचरणशील हे अग्ने! तुम्हें अंगिरा वंशी ऋषियों ने, जल के गहन स्थान से और वनस्पतियों से खोज कर प्राप्त किया था। तुम महान् बल द्वारा मथे जाकर अरणियों से उत्पन्न होते हो। इसीलिए तुम बल के पुत्र कहे जाते हो ॥२८॥

हे सखा रूप ऋत्विजो ! अग्नि मनुष्यों के लिए वरिष्ठ, जल के पौत्र रूप और महान् बल वाले हैं। तुम उनके निमित्त श्रेष्ठ हवि रूप अन्न और स्तोत्रों का भले प्रकार सम्पादन करो ॥२९॥

हे अग्ने ! तुम सेंचन-समर्थ और सब के स्वामी हो। सभी यज्ञों के फलों को तुम सब प्रकार से यजमान को प्राप्त कराते हो तुम कर्म के निमित्त पृथिवी पर स्थित उत्तर वेदी में प्रदीप्त होते हो। हम यजमानों के निमित्त तुम उत्कृष्ट धनों को सब ओर से लाकर दो ॥३०॥

त्वा चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केश पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥३१॥
एना वो ऽ अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरति ँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥३२॥
विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।
स योजते ऽ अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ॥३३॥
स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देव ँ राधो जनानाम् ॥३४॥

अग्ने वाजस्य गोमतऽईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥३५॥

हे अग्ने ! तुम अद्भुत धन वाले और हवियों से प्रीति करने वाले हो। सब मनुष्यों में कर्मवान् यजमान और ऋत्विग्गण तुम्हें हवि वहन करने के निमित्त सदा आहूत करते हैं ॥३१॥

हे यजमानो ! हम तुम्हारे इस हवि रूप अन्न से जलों के पौत्र रूप, अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त सावधान अथवा कर्मों में प्रेरित करने वाले, कर्म करने में सदा तत्पर, यज्ञ को सम्पन्न करने वाले; देवताओं के दूत रूप अविनाशी अग्नि को स्तुतिपूर्वक आहूत करते है ॥३२॥

जो अग्नि अविनाशी और दूत के समान कार्य में रत रहते हैं, उन अग्नि का हम आह्वान करते हैं। वे अग्नि अपने रथ में क्रोध-रहित, यज्ञ के भाग पाने वाले अश्वों को योजित कर आह्वान के प्रति द्रुतगति से आगमन करते हैं ॥३३॥

ऋत्विजों से युक्त श्रेष्ठ कर्म वाले, यज्ञ में भले प्रकार आहूत किये गए अग्नि शीघ्रता से पहुँचते हैं। यजमानों के देदीप्यमान धन वाले और वसु आदि देवताओं वाले, श्रेष्ठ यज्ञ में आह्वान किये जाने पर वे अग्नि देवता द्रुतगति से जा पहुँचते हैं ॥३४॥

हे अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न होते हो। तुम गौओं से युक्त, ज्ञानवान् और अन्न के स्वामी हो। अतः हम सेवकों के लिए महान् धन प्रदान करो ॥३५॥

स ऽइधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥३६॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३७॥
भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः ।
भद्राऽ उत प्रशस्तयः ॥३८॥

भद्रा ऽ उत प्रशस्तयो भद्रं मन. कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
येना समत्सु सासहः ॥३९॥
येना समत्सु साहो ऽ व स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् ।
वनेमा ते ऽ अभिष्टिभि. ॥४०॥

हे अग्ने ! तुम अनेक सुख वाले, दीप्तिमान्, सबको वास देने वाले, क्रान्तदर्शी हो । तुम वेदवाणी से स्तुत्य और यज्ञ में सर्व प्रथम प्राप्त होने वाले हमारे लिए धन के समान तेजस्वी होओ ॥३६॥

हे अग्ने ! तुम विकराल दाढ़ वाले, दीप्तिमान् और स्वभाव से ही राक्षसों का हनन करने वाले हो । अतः तुम दिन के और उषा काल के सब पाप रूप राक्षसों को नष्ट करो ॥३७॥

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ ऐश्वर्य से सम्पन्न और ऋत्विजों द्वारा आहूत किए जाते हो । तुम हमारे लिए कल्याण देने वाले होओ । तुम्हारा दान हमारा मंगल करने वाला हो । यह यज्ञ हमारा मंगल करे । प्रशस्तियाँ भी कल्याण करें ॥३८॥

हे अग्ने ! तुम अपने जिस मन से रणक्षेत्र में स्थित शत्रुओं को मारते हो, उसी मन को हमारे पाप नाश करने के लिए कल्याणमय कार्य करो । तुम्हारी प्रशस्तियाँ भी कल्याण करने वाली हों ॥३९॥

हे अग्ने ! तुम जिस मन से युद्धस्थल में स्थित शत्रुओं की हिंसा करते हो, अपने उसी मन से अत्यन्त बल वाले शत्रु के धनुषों को प्रत्यंचा रहित करो और हम तुम्हारे दिए हुए ऐश्वर्य द्वारा सुख भोग करें ॥४०॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त ऽ आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन ऽ इष ँ स्तोतृभ्य ऽ आ भर ॥४१॥
सो ऽ अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनव ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः स ँ सुजातासः सूरय ऽ इष ँ स्तोतृभ्य ऽ आ भर ॥४२॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष ऽ आसनि ।
उतो न ऽ उत्पुपूर्या ऽ उक्थेषु शवसस्पत ऽ इष ँ स्तोतृभ्य ऽ. आ
भर ॥४३॥
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्र ँ हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ऽ ओहैः ॥४४॥
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥४५॥

जो अग्नि, उपकार करने वाले ऐश्वर्य रूप हैं, मैं उन अग्नि को जानता हूं। उसी अग्नि को प्रज्वलित हुआ जानकर गौऐं अपने-अपने गोष्ठ में आती हैं। द्रुतगामी अश्व अपने बल से वेगवान् होकर उस अग्नि को प्रज्वलित हुआ देखकर गमन करते हैं। हे अग्ने! स्तोता यजमानों के निमित्त सब ओर से अन्न लाओ ॥४१॥

वासदायक अग्नि ही यह अग्नि हैं। मैं उन्हीं की स्तुति करता हूँ। जिन अग्नि की गौऐं सेवा करतीं और अश्व भी जिन्हें प्राप्त करते हैं, उन अग्नि की मेधावी जन परिचर्या करते हैं। हे अग्ने! स्तोताओं के निमित्त सब ओर से अन्न लाकर दो ॥४२॥

यह अग्नि चन्द्रमा के समान धन देने वाले हैं। हे अग्ने! तुम अपने मुख में घृत पान के निमित्त दोनों दर्भी के आकार वाले हाथों का सेवन करते हो। तुम उक्थ वाले यज्ञों में हमें धनों से पूर्ण करो और हम स्तोताओं को श्रेष्ठ अन्न को लाकर प्रदान करो ॥४३॥

हे अग्ने! आज तुम्हारे उस यज्ञ को फलप्रापक स्तोमों से समृद्ध करते हैं। जैसे अनेक स्तुतियों द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अश्वों को प्रवृद्ध किया जाता है वैसे ही कल्याणमय यज्ञ, संकल्प को दृढ़ करते हैं ॥४४॥

हे अग्ने! जैसे सारथी रथ का निर्वाह करता है, वैसे ही अपने फल दान में समर्थ भले प्रकार से अनुष्ठित कल्याण रूप फल वाले हमारे यज्ञ का निर्वाह करो ॥४५॥

एभिर्नो ऽ अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना ऽ अनीकैः ॥४६॥
अग्निᳬ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुᳬ सूनुᳬ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऽ ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥४७॥
अग्ने त्वं नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमᳬ रयिन्दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४८॥
येन ऽ ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना ऽ अग्निᳬ स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं निदधे नाके ऽ अग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥४६॥
तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽ अधि रोचने दिवः ॥५०॥

हे अग्ने ! हमारे द्वारा पठित स्तोत्रों के द्वारा प्रसन्न मन वाले होकर हमारे अभिमुख होओ। जैसे सूर्य अपने मण्डल में उदित होकर संसार के सम्मुख आते हैं, वैसे स्तुतियों के प्राप्त होने पर तुम हमारे अभिमुख होओ ॥४६॥

जो अग्नि दिव्य गुण वाले, श्रेष्ठ यज्ञ से सम्पन्न, देवताओं के पास जाने वाली अपनी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारयुक्त होकर घृत-पान की इच्छा करते हैं, उन अग्नियों को मैं श्रेष्ठ वास देने वाले, मन्थन द्वारा बल के पुत्र, देवह्वाक और सब प्रकार के ज्ञान से सम्पन्न शास्त्र ज्ञाता विप्र के समान जानता हूँ ॥४७॥

हे अग्ने ! तुम निवास रूप और आह्वानीय रूप वाले तथा धन दान द्वारा कीर्तियुक्त हो। तुम हमारे अत्यन्त आत्मीय और रक्षक हो। तुम हमारा हित करने वाले, निर्मल स्वभाव वाले हमारे यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ। हे अग्ने तुम दीप्तिमान तथा सबको दीप्त करने वाले, गुणयुक्त हो।

हम सखाओं के निमित्त और सुख के निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ४८ ॥

जिस मन को एकाग्र करने वाले ऋषियों ने अग्नि को प्रदीप्त कर स्वर्ग-प्राप्ति वाला कर्म किया, उस मन की एकाग्रता रूप तप द्वारा मैं भी स्वर्ग प्राप्त कराने वाले अग्नि की स्थापना करता हूँ। उन अग्नि को विद्वज्जन यज्ञ को सिद्ध करने वाला बताते हैं ॥ ४९ ॥

हे ऋत्विजो! तृतीय स्वर्ग के ऊपर श्रेष्ठ कर्म रूप फल के आश्रय स्थान सूर्य मंडल में उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त करने की कामना करते हुए हम स्त्रियों, पुत्रों और बांधवों तथा सुवर्णादि धन सहित उन अग्नि की सेवा करते हैं। इसके द्वारा हम श्रेष्ठ स्वर्ग को प्राप्त करेंगे ॥ ५० ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य ऽ उप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥५२॥

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताँसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥

उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सँ सृजेथामयं च।
अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥५४॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥

यह अग्नि श्रेष्ठ पुरुषों के पालन करने वाले, संसार के रचने वाले, सदा सावधान, पृथिवी की पीठ पर स्थापित, दीप्तिमान् और चयन के मध्य स्थान में स्थित होने वाले हैं। जो शत्रु संग्राम की इच्छा करते हुए हमें मारना चाहें, तुम उन्हें अपने चरणों द्वारा रौंद डालो ॥ ५१ ॥

यह अग्नि अत्यन्त धीर, हवि ग्रहण करने वाले, सहस्रों इष्टकाओं से युक्त हैं। यह अनुष्ठान कर्म में आलस्य न करते हुए शीघ्र प्रदीप्त हों और तीनों लोकों के मध्य में तेजस्वी स्थान को प्राप्त हो। हम इनकी कृपा से स्वर्ग-लाभ करें ॥ ५२ ॥

हे ऋषियो! अग्नि के समीप आओ और इन्हें भले प्रकार प्रदीप्त करो। हे अग्ने! तुम हमारे लिए देवयान मार्ग को सिद्ध करो। इस यज्ञ को ऋषियों ने वाणी और मन को तरुणता देते हुए ही विस्तृत किया है ॥५३॥

हे अग्ने! तुम सावधान एवं जागृत होओ और इस कर्म में यजमान से सुसंगति करो। तुम्हारी कृपा से इस यजमान का अभीष्ट पूर्ण हो। हे विश्वेदेवो! यह यजमान देवताओं के साथ निवास करने योग्य स्वर्ग में चिर-काल तक रहे ॥ ५४ ॥

हे अग्ने! तुम अपने जिस पराक्रम से सहस्र दक्षिणा वाले और सर्व-स्व दक्षिणा वाले यज्ञों को प्राप्त करते हो, उसी पराक्रम से हमारे इस यज्ञ को भी प्राप्त करो। यज्ञ के स्वर्ग में पहुँचने के कारण हम भी वहाँ जा सकेंगे ॥ ५५ ॥

अयं ते,योनिर्ऋत्वियो यतो जातो ऽ अरोचथा ।
त जानन्नग्न ऽ आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ ५६ ॥

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ऽ अग्नेरन्त श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावा-पृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधय. कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रता ।

ये ऽ अग्नय. समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे शैशिरावृतूऽअभिकल्प-माना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।

सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।

इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥

ता ऽ अस्य सूददोहसः सोमँ श्रीणन्ति पृश्नयः ।

जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥

हे अग्ने ! यह तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है। जिस ऋतुकाल वाले गार्हपत्य से उत्पन्न हुए तुम कर्म के समय प्रज्वलित होते हो, उस गार्हपत्य को जानकर दक्षिण कुण्ड में प्रतिष्ठित होओ और यज्ञानुष्ठान आदि के लिए तुम हमारे धन की सब प्रकार वृद्धि करो ॥ ५६ ॥

माघ, फाल्गुन, शिशिर ऋतु के अवयव हैं। यह अग्नि के अंतर में श्लेष रूप हैं। मुझ यजमान की श्रेष्ठता के लिए द्यावापृथिवी कल्पना करें। जल और औषधि भी हमारी श्रेष्ठता कल्पित करें। द्यावा पृथिवी में विद्यमान अन्य यजमानों द्वारा चयन की गई इष्टकाएँ भी शिशिर ऋतु के कर्म का सम्पादन करती हुई इस कर्म को आश्रिता हों। हे इष्टके ! तुम उस प्रसिद्ध देवता के द्वारा अंगिरा के समान दृढ़ रूप से स्थिर होओ ॥ ५७ ॥

हे इष्टके ! तुम वायु रूप तथा दीप्तिमती हो। तुम्हें विश्वकर्मा दिव्यलोक के ऊपर स्थापित करें। तुम्हारे अधिपति सूर्य हैं। यजमान के सब प्राण, अपान और व्यान के निमित्त ज्योति दो। तुम वायु देवता के प्रभाव से अंगिरा के समान इस कर्म में दृढ़ होओ ॥ ५८ ॥

हे इष्टके ! तुम पूर्व इष्टकाओं द्वारा अनाक्रान्त होती हुई चयन स्थान को पूर्ण करती हुई, अवकाश को भर दो और दृढ़ रूप से स्थिर होओ। तुम्हें इन्द्र, अग्नि और बृहस्पति ने इस स्थान में स्थापित किया है ॥ ५९ ॥

स्वर्ग से पतित होने वाले, अन्न रूप व्रीहि आदि धान के सम्पादक वे प्रख्यात जल, देवताओं के जन्म वाले संवत्सर में, तीनों लोकों में सोम को भले प्रकार परिपक्व करते हैं ॥ ६० ॥

इन्द्र विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचस गिर ।
रथीतमꣳ रथीना वाजानाꣳ सत्पति पतिम् ॥६१॥
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा मह संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो ऽ अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजन कृष्णमस्ति ॥६२॥
आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाꣳ समुद्रस्य हृदये ।
रश्मीवती भास्वतीमा या द्या भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३॥
परमेष्ठीत्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वती प्रथस्वती दिवयच्छ दिवदृꣳह दिव मा हिꣳसी । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥
सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

सम्पूर्ण वाणियाँ समुद्र के समान व्यापक, सब रथियों में महारथी, अन्नों के स्वामी और अपने धर्म में स्थित रहने वाले प्राणियों के पालनकर्त्ता इन्द्र को बढ़ाती हैं ॥ ६१ ॥

जब महिमामयी काष्ठ रूप अरणियों से अग्नि उत्पन्न होते हैं, तब जैसे अश्व भूख लगने पर घास के लिए शब्द करता है, वैसे ही अग्नि शब्द करते हैं। फिर उन्हें प्रज्वलित करने में सहायक वायु उनकी ज्वालाओं को वहन करते हैं। हे अग्ने! उस समय तुम्हारा गमन पथ कृष्ण वर्ण वाला होता है ॥ ६२ ॥

हे स्वयमातृणे! ससार के पालक, वृष्टिदाता होने से समुद्र रूप, आयु की वृद्धि करने वाले आदित्य के हृदय स्थान में तुम अनेक रश्मियों वाली प्रकाशमाना को स्थापित करता हूँ। तुम स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों को प्रकाश से पूर्ण करने वाली हो ॥ ६३ ॥

हे स्वयमातृणे! विश्वकर्मा तुम्हें स्वर्ग की पीठ पर स्थापित करें।

तुम सब प्राणियों के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त स्वर्ग लोक को धारण-योग्य करो। उसे हिंसित मत करो। सूर्य देवता तुम्हारी सब प्रकार रक्षा करें। अपने अधिष्ठात्री देव की कृपा पाकर तुम अङ्गिरा के समान दृढ रूप से स्थित होओ ॥ ६४ ॥

हे अग्ने! तुम सहस्र इष्टकाओं के समान हो। हे अग्ने! तुम सहस्र इष्टकाओं के प्रतिनिधि रूप हो। हे अग्ने! तुम सहस्र इष्टकाओं के लिए तुला के समान हो। हे अग्ने! तुम सहस्र इष्टकाओं के लिए उपयुक्त हो। मैं अनन्त फल की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें प्रेरित करता हूँ ॥ ६५ ॥

॥ षोडशोऽध्यायः ॥

ऋषिः—परमेष्ठी वा कुत्सः, परमेष्ठी, बृहस्पतिः, प्रजापतिः, कुत्सः, परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः।

देवता—रुद्राः, एकरुद्रः, बहुरुद्राः।

छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्तिः, उष्णिक्, जगती, धृतिः, अष्टिः, शक्वरी, त्रिष्टुप्।

नमस्ते रुद्र मन्यव ऽ उतो त ऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥२॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥३॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना ऽ असत् ॥४॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।

अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥५॥

हे रुद्र ! तुम्हारे क्रोध को नमस्कार। तुम्हारे बाणों को नमस्कार, तुम्हारे बाहुओं को नमस्कार ॥ १ ॥

हे रुद्र ! 'तुम पर्वत पर' रहने वाले हो। तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप सौम्य है और पाप के फल को न देकर, पुण्यफल ही देता है, अपने उस मङ्गलमय देह से हमारी ओर देखो ॥ २ ॥

हे रुद्र ! तुम पर्वत पर था मेघों के अन्तर स्थित होते हो। तुम सब प्राणियों के रक्षक हो। अपने जिस बाण को प्रलय के निमित्त हाथ में ग्रहण करते हो, उस बाण को विश्व का कल्याण करने वाला करो। तुम हमारे पुरुषों और पशुओं को हिंसित मत करो ॥ ३ ॥

हे कैलाशपते ! मंगलमय स्तुति रूप वाणी से तुम्हें प्राप्त होने के लिए प्रार्थना करते हैं। सभी संसार जैसे हमारे लिए आरोग्यप्रद और श्रेष्ठ मन वाला हो सके, वैसा करो ॥ ४ ॥

अधिक उपदेशकारी, सब देवताओं में प्रथम पूज्य, देवताओं के हितैषी, स्मरण से ही सब रोगों को दूर करने वाले चिकित्सक के समान, रुद्र हमारे कार्यों का अधिकता से वर्णन करें और सब सर्पादि को नष्ट कर अधोगमन वाले राक्षस आदि को हमसे दूर भगावें ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रो ऽ अरुण ऽ उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनᳬ रुद्रा ऽ अभितो दिक्षु श्रिता. सहस्रशोऽवैषाᳬ हेडऽईमहे ॥६
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा ऽ अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥७॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये ऽ अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकर नमः ॥८॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त ऽ इषवः ऽ परा ता भगवो वप ॥९॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो वाणवाँ ऽ उत ।
अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

यह रुद्र सूर्य रूप में प्रत्यक्ष, उदय काल में अत्यन्त लाल और अस्त-काल में अरुण वर्ण वाले हैं। यह मध्याह्न काल में पिंगल वर्ण के रहते हैं। उदय-काल में यह प्राणियों के कर्मों का विस्तार करते हैं। इनके सहस्रों अंश रूप रश्मियाँ, इनके सब ओर दिशाओं में स्थित हैं। हम इनके क्रोध को शान्त करने के लिए यत्नशील रहते हैं ॥ ६ ॥

इन रुद्र की ग्रीवा विष धारण से नीली हो गई थी। यह आदित्य रूप से उदय-अस्त करते हैं। इनके दर्शन वेदोक्त-कर्म से हीन गोप तथा जल ले जाने वाली महिलायें (पनिहारी) भी करती हैं। वे रुद्र, दर्शन देने के लिए आते ही, वे हमारा कल्याण करें ॥ ७ ॥

नीले कण्ठ वाले, सहस्र नेत्र वाले, सेंचन समर्थ पर्जन्य रूप रुद्र के निमित्त नमस्कार! रुद्र के विशिष्ट अनुचरों को भी नमस्कार हो ॥ ८ ॥

हे भगवन्! धनुष की दोनों कोटियों में स्थित प्रत्यञ्चा को उतारलो और अपने हाथ में लिए हुए बाणों का भी त्याग करो ॥ ९ ॥

इन जटाधारी रुद्र का धनुष प्रत्यञ्चा रहित हो जाय और तरकस फल वाले बाणों से खाली हो। इनके जो बाण हैं, वे दिखाई न पड़ें। इनके खड्ग रखने का स्थान भी खाली हो। हमारे लिए रुद्र हथियारों को नितान्त त्याग दें ॥ १० ॥

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ॥११॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य ऽ इषुधिस्तवारे ऽ अस्मन्निधेहि तम् ॥१२॥
अवतत्य धनुष्ट्व ँ सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३॥
नमस्त ऽ आयुधायानातताय धृष्णवे ।

उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्या तव धन्वने ॥१४॥
मा नो महान्तमुत मा नोऽ अर्भकं मा नऽ उक्षन्तमुत मा नऽ उक्षितम् ।
मा नो वधी पितर मोत मातर मा न प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिष ॥१५

हे सिंचनशील रुद्र ! तुम्हारे हाथों में जो धनुष और बाण हैं, उन्हें उपद्रव रहित कर सब ओर से हमारा पालन करो ॥१७॥

हे रुद्र ! तुम्हारे धनुष से सम्बन्धित बाण हमें सब ओर से त्याग दें । तुम अपने तरकसों को हमसे दूर ही रखो ॥१८॥

हे सहस्र नेत्र वाले रुद्र ! तुम्हारे पास सैकड़ों तरकश हैं । तुम अपने धनुष को प्रत्य चा रहित कर बाणों के फलों को भी निकाल दो । इस प्रकार हमारे लिए कल्याणकारी और श्रेष्ठ मन वाले होओ ॥१३॥

हे रुद्र ! तुम्हारे धनुष पर चढ़े बाण को नमस्कार है । तुम्हारे दोनों बाहुओं को और शत्रुओं को मारने में कुशल धनुष को भी नमस्कार है ॥१४॥

हे रुद्र ! हमारे पिता आदि बड़ों को मत मारो । हमारे छोटों को भी मत मारो । हमारे बालकों और युवकों को हिंसित न करो । हमारे गर्भस्थ शिशु को, हमारी माता को हमारे प्रिय शरीर को भी हिंसित मत करो ॥ १५ ॥

मा नस्तोके तनये मा न ऽ आयुषि मा नो गोषु मा नो ऽ अश्वेषु रीरिष ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्त सदमित् त्वा हवामहे।१६॥
नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशा च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्य पशूना पतये नमो नम शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीना पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टाना पतये नम ॥१७॥
नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नाना पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगता पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणा पतये नमो नम सूतायाहन्त्यै वनाना पतये नम ॥ १८ ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिव-
स्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणाँ पतये
नमो नमऽउच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥
नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय
निव्याधिन ऽआव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय
स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः॥२०॥

हे रुद्र ! हमारे पुत्र और पौत्र को हिंसित न करो । हमारी आयु को नष्ट करो । हमारी गौओं पर, घोड़ों पर प्रहार न करो । हमारे वीरों को मत मारो । क्योंकि हम हविरन्न से युक्त होकर तुम्हारे यज्ञ के लिए निरन्तर आह्वान करते रहते हैं ॥ १६ ॥

हिरण्यमय बाहुओं वाले सेनानायक रुद्र के लिए नमस्कार है। दिशाओं के स्वामी रुद्र को नमस्कार है। हरे बालों वाले वृक्ष रूप वल्कल धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार है। पशुओं के पालक रुद्र को नमस्कार है। तेजस्वी और शिशुतृण के समान पीत वर्ण वाले रुद्र को नमस्कार है। कल्याण के निमित्त उपवीत को धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार है। जरा-रहित रुद्र को नमस्कार हैं। गुणवान् मनुष्यों के स्वामी भगवान् रुद्र के लिए नमस्कार है ॥ १७ ॥

वृषभ पर बैठने वाले और शत्रुओं के लिए व्याधि रूप रुद्र को नमस्कार है। अन्नों के स्वामी रुद्र को नमस्कार है। संसार के लिए आयुध रूप अर्थात् संसार पर शासन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। संसार के पालनकर्त्ता रुद्र को नमस्कार है। उद्यतायुध रुद्र को नमस्कार है। देहों की रक्षा करने वाले रुद्र को नमस्कार है। पाप से रक्षा करने वाले, श्रेष्ठ कर्म वालों को न मारने वाले, सारथि रूप रुद्र को नमस्कार है। वनों के पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है ॥ १८ ॥

लोहित वर्ण वाले, विश्वकर्मा रूप वाले रुद्र को नमस्कार है। वृक्षों के पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। भूमण्डल को विस्तृत करने वाले

रुद्र को नमस्कार है। औषधियों को पुष्ट करने वाले रुद्र को नमस्कार है। श्रेष्ठ मन्त्र दाता, व्यापार कुशल रुद्र को नमस्कार है। जङ्गल के गुल्म, लता, वीरुध आदि के पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। संग्राम में शत्रुओं को रुलाने वाले और घोर शब्द करने वाले रुद्र को नमस्कार है। पंक्ति बद्ध सेनाओं के पालक अथवा (एक रथ, एक हाथी, तीन अश्व और पाँच पैदल की सैनिक टुकडी को पत्ति कहते हैं) पत्तियों के रक्षक रुद्र को नमस्कार है ॥१९॥

जो रुद्र हमारी रक्षा के लिए कान तक धनुष को खींचते हैं, उन रुद्र को नमस्कार है। शरणागतों के रक्षक रुद्र को नमस्कार है। शत्रुओं को तिरस्कार करने वाले और शत्रुओं की अत्यन्त हिंसा करने वाले रुद्र को नमस्कार है। वीर सेनाओं के अधिपति और पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। उपद्रवकारी दुष्टों पर तलवार चलाने वाले रुद्र को नमस्कार है। गुप्त धन का हरण करने वाले तथा सज्जनों के पालक रुद्र को नमस्कार है। अपहरण करने की कामना से घूमने वाले चोरों के नियन्ता रुद्र को नमस्कार है। वनों के पालक रुद्र को नमस्कार है ॥ २० ॥

नमो वंचते परिवचते स्तायूना पतये नमो नमो निषङ्गिण ऽ इषु-धिमते तस्कराणा पतये नमो नम सृकायिभ्यो जिघा ७ सद्भ्यो मुष्णता पतये नमो नमो ऽसिमद्भ्यो नक्त चरद्भ्यो विकृन्ताना पतये नमः ॥२१॥

नम ऽउष्णीषिणे गिरिचराय कुलु चाना पतये नमो नम ऽ इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम ऽ आतन्वानेभ्य प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम ऽ आयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वोनम. ॥२२॥

नमो विसृजद्भ्यो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमो नम. स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नम· शयानेभ्य ऽ आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नम. ॥२३॥

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमऽआव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नमऽउगणाभ्यस्तृ ँ हतीभ्यश्च वो नमः ॥२४॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥२५॥

वंचकों और परिवंचकों को देखने वाले साक्षी रूप रुद्र को नमस्कार है। गुप्त चोरों के नियन्ता रुद्र को नमस्कार है। उपद्रवकारियों के रोकने वाले रुद्र को नमस्कार है। तस्करों पर नियन्त्रण करने वाले रुद्र को नमस्कार है। वज्रयुक्त और वधिकों के जानने वाले रुद्र को नमस्कार है। खड्ग हाथ में लेकर रात्रि में घूमने वाले दस्युओं के शासक रुद्र को नमस्कार है। परधनहरणकर्त्ता दस्युओं के शासक रुद्र को नमस्कार है ॥ २१ ॥

पगड़ी धारण कर गाँवों में घूमने वाले सभ्य पुरुषों और जङ्गल में घूमने वाले जङ्गली मनुष्यों के हृदय में वास करने वाले रुद्र को नमस्कार हैं। छल कौशल द्वारा दूसरों की सम्पत्ति हरण करने वालों के शासक रुद्र को नमस्कार है। पापियों को भयभीत करने के लिए धनुष बाण धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार है। दमन करने के लिए धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाले रुद्र को नमस्कार है। धनुष पर बाण चढ़ाने वाले रुद्र ! तुम्हें नमस्कार है। दमन करने के लिए धनुष को खींचने वाले रुद्र को नमस्कार हैं। बाण निक्षेप करने वाले हे रुद्र ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है ॥ २२ ॥

पापियों को दमन के लिए बाण चलाने वाले रुद्र को नमस्कार है। शत्रुओं को बेधने वाले रुद्र को नमस्कार है। शयन करने वाले स्वप्नरत मनुष्यों के अन्तर में वास करने वाले रुद्र को नमस्कार है। जागृत अवस्था वाले प्राणियों में रहने वाले रुद्र को नमस्कार है। निद्रावस्था

में अन्तर स्थित रुद्र को नमस्कार है । बैठे हुए प्राणियों में वास करने वाले रुद्र को नमस्कार है । वेगवान् गति वालों में स्थित तुम्हें नमस्कार है ॥२३॥

सभा रूप रुद्र को नमस्कार है । सभ पति रूप रुद्र को नमस्कार है । अश्वों के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार है । अश्वों के स्वामी रुद्र को नमस्कार है । देव-सेनाओं में स्थित रुद्र को नमस्कार है । श्रेष्ठ भृत्यों वाली सेना में स्थित रुद्र को नमस्कार है । समाम में स्थित होकर प्रहार करने वाले रुद्र को नमस्कार है ॥ २४ ॥

देवताओं के अनुचर गणों को नमस्कार, गणो के अधिपति को नमस्कार, विशिष्ट जाति-समूहो को नमस्कार, समूहों के अधिपति को नमस्कार, बुद्धिमानों और विषयियों को नमस्कार, बुद्धिमानो के पालक को नमस्कार, विविध रूप वालों को नमस्कार और विश्व रूप रुद्र को नमस्कार ॥ २५ ॥

नम सेनाभ्य सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो ऽ अरथेभ्यश्च वो नमो नम क्षत्तृभ्य सग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो ऽ अर्भके-भ्यश्च वो नम ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नम कुलालेभ्य कर्म्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्य पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नम श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नम ॥ २७ ॥

नम श्वभ्य श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नम शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८॥

नम कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नम सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥२९॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्रयाय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

सेना रूप को नमस्कार, सेनापति रूप को नमस्कार, प्रशसित रथी को नमस्कार. रथ हीन को नमस्कार, रथ स्वामी के अन्तर में वास करने वाले को

नमस्कार, सारथियों में स्थित रहने वाले को नमस्कार, महान् ऐश्वर्य से युक्त और पूजनीय को नमस्कार तथा प्राणादि रूप से सूक्ष्म तुम्हें नमस्कार है ॥२६॥

शिल्प विद्या के ज्ञाता को नमस्कार, रथ निर्माणकारी तक्षा में स्थित रुद्र को नमस्कार, मृत्तिका के पात्रादि बनाने वाले कुम्हार रूप को नमस्कार, लौह-शस्त्रादि बनाने वाले लोहार रूप को नमस्कार, भीलादि के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार, पक्षियों को मारने वाली जातियों के अन्तर में वास करने वाले को नमस्कार, श्वानों के कण्ठ में रस्सी बाँधकर ले जाने वालों के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार, व्याधों के अन्तर स्थित रुद्र को नमस्कार ॥ २७ ॥

कुक्कुरों के अन्तरवासी को नमस्कार, कुक्कुर-स्वामी किरातों के अन्तर में वास करने वाले को नमस्कार, जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है, उनको नमस्कार, दुःख-नाशक देव को नमस्कार पाप-नाशक रुद्र को नमस्कार, नील कण्ठ वाले को नमस्कार, मेघ सहित आकाश में स्थित रुद्र को नमस्कार ॥ २८ ॥

जटाजूट धारी रुद्र को नमस्कार, मुण्डित केश वाले को नमस्कार, सहस्राक्ष रुद्र को नमस्कार, धनुर्धारी रुद्र को नमस्कार, पर्वत पर शयन करने वाले रुद्र को नमस्कार. सब प्राणियों के हृदयों में वास करने वाले विष्णु रूप रुद्र को नमस्कार. वसुओं में व्याप्त रुद्र को नमस्कार, यज्ञ में या सूर्य मंडल में स्थित देव को नमस्कार, मेघ रूप से तृप्त करने वाले और बाण के धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार ॥ २९ ॥

अल्पदेह वाले को नमस्कार, वामन रूप धारी को नमस्कार, प्रौढाङ्ग वाले रुद्र को नमस्कार, वृद्धाङ्ग वाले को नमस्कार, विद्या-विनय आदि से पांडित्य पूर्ण व्यवहार करने वाले तरुण को नमस्कार, सब में अग्रगण्य पुरुष को नमस्कार और सब में प्रथम तथा प्रमुख के लिए नमस्कार ॥ ३० ॥

नम ऽ आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऽ ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥३१॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्य-

माय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥३२॥
नमः सोभ्याय च प्रतिसर्य्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च
नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम ऽ उर्वर्याय च खल्याय च ॥३३॥
नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम ऽ
आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥
नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय
च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ ३५ ॥

विश्व व्यापक को नमस्कार, गतिशील के लिए तथा सर्वत्र प्राप्त होने वाले को नमस्कार, वेगवाली वस्तुओं और जल रूप से प्रवाहमान आत्मा रूप को नमस्कार, जल तरंग में होने वाले और स्थिर जलों में विद्यमान को नमस्कार, नदी में और द्वीप में भी वर्तमान परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है ॥ ३१ ॥

ज्येष्ठ रूप वाले और कनिष्ठ रूप वाले को नमस्कार, विश्व की रचना के आरम्भ में हिरण्यगर्भ रूप से उत्पन्न और प्रलय काल में कालाग्नि रूप से उत्पन्न होने वाले को नमस्कार, सृष्टि नाश के पश्चात् सन्तान रूप से होने वाले को नमस्कार, अप्रगल्भ अबोध रूप के लिए नमस्कार, पशु आदि के अन्तर में विद्यमान तथा वृक्षादि के मूल में वर्तमान देव को नमस्कार ॥ ३२ ॥

मनुष्य लोक में होने वाले प्राणियों में वर्तमान को नमस्कार, मंगल कार्यों में कल्याण रूप से वर्तमान को नमस्कार, पापियों को दंड देने वाले यम रूप को नमस्कार, परलोक वासी प्राणी के मुख में विद्यमान देवता को नमस्कार, यश प्रचार के कारण रूप को नमस्कार, प्राणियों को जन्ममरण के बन्धन से छुड़ाने वाले को नमस्कार, धान्यादि अन्नों में विद्यमान को और खली आदि में स्थित रहने वाले को भी नमस्कार है ॥ ३३ ॥

वन के वृक्षादि में विद्यमान को और तृणवल्ली आदि में वर्तमान देव को नमस्कार, ध्वनि में वर्तमान को नमस्कार, प्रतिध्वनि में विद्यमान देवता को नमस्कार, सेना की पंक्ति में स्थित को नमस्कार, शीघ्र गमनशील रथों

की पंक्ति में विद्यमान को नमस्कार, वीर-पुरुषों और शत्रु के हृदय को विदीर्ण करने वाले शस्त्रास्त्रों में विद्यमान ईश्वर को नमस्कार ॥ ३४ ॥

शिरस्त्राण धारण करने वाले को नमस्कार, कवचादि धारण करने वाले को नमस्कार, रथ के भीतर या हाथी के हौदे में विद्यमान को नमस्कार, प्रसिद्धि को नमस्कार, प्रसिद्ध सेनाओं के स्वामी को नमस्कार, रणभेरी में विद्यमान और दण्डादि में विद्यमान देवता को नमस्कार ॥ ३५ ॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥३६॥
नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥३७॥
नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥
नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥३९॥
नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम ऽ उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

अपने पक्ष के वीरों की रक्षा करने वाले को नमस्कार, विचारशील विद्वान् को नमस्कार, खड्ग धारण करने वाले को नमस्कार, तरकसधारी को नमस्कार, तीक्ष्ण बाणों वाले को नमस्कार, आयुध धारण करने वाले को नमस्कार, त्रिशूल आदि के धारण करने वाले को नमस्कार, धनुष चलाने में कुशल के लिए नमस्कार ॥ ३६ ॥

ग्राम के क्षुद्र मार्ग में स्थित को नमस्कार, राजमार्ग में स्थित को नमस्कार, दुर्गम मार्ग में स्थित को नमस्कार, पर्वत के निम्न भाग में स्थित को नमस्कार, नहरादि के मार्ग में स्थित को नमस्कार, सरोवर में और जल

में स्थित को नमस्कार, अल्प सरोवर पोखर आदि में स्थित को नमस्कार ॥३७

कूप में स्थित को नमस्कार, गर्त में स्थित को नमस्कार, अत्यन्त प्रकाश में और घोर अन्धकार में स्थित को नमस्कार, धूप में स्थित को नमस्कार, मेघ में स्थित को नमस्कार, वृष्टि धारा में स्थित को नमस्कार और वृष्टि के रोकने में स्थित होने वाले को भी नमस्कार ॥ ३८ ॥

वायु के प्रवाह में स्थित को नमस्कार, प्रलय रूप पवन में स्थित को नमस्कार, वास्तु कला में स्थित को तथा वास्तुग्रह के पालनकर्त्ता को नमस्कार, चन्द्रमा में स्थित देव को नमस्कार, दुःख नाशक रुद्र को नमस्कार, सायकालीन सूर्य रूप में विद्यमान को नमस्कार, प्रातः कालीन सूर्य को नमस्कार ॥ ३९ ॥

कल्याणमयी वेद वाणी को नमस्कार, प्राणियों के पालक रुद्र को नमस्कार, शत्रुओं के हिंसक उग्र को नमस्कार, भीम रूप वाले को नमस्कार, शत्रु को सामने से मारने वाले को नमस्कार, शत्रु को दूर से मारने वाले को नमस्कार, प्रलयकारी रुद्र को नमस्कार, अत्यन्त हनन शील को नमस्कार हरित केश वाले को नमस्कार, वृक्षरूप वाले को नमस्कार, ससार सागर से पार लगाने वाले परमपिता को नमस्कार ॥ ४० ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किᳬशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमऽ इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥४३॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाᳬसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽ ऊर्व्याय च सूर्म्याय च ॥४५॥

इस लोक में सुख देने वाले को, पारलौकिक कल्याण के दाता को, लौकिक सुख करने वाले, कल्याण रूप रुद्र के निमित्त और भक्तों का कल्याण करने, पाप-दूर करने वाले के निमित्त हमारा नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

समुद्र के पार विद्यमान, समुद्र के इस तट पर विद्यमान जहाज आदि रूप से समुद्र के मध्य में विद्यमान, नौका में विद्यमान, तीर्थादि में विद्यमान, जल के किनारे पर विद्यमान; कुशादि में विद्यमान और समुद्र के फेन आदि में विद्यमान देवता को नमस्कार है ॥ ४२ ॥

नदी की रेत आदि में विद्यमान, नदी के प्रवाह में वर्तमान, नदी के भीतर वृक्ष कंकरादि में विद्यमान, स्थिर जल में विद्यमान, जटाजूट युक्त रुद्र को नमस्कार है। शरीर में अन्तर्यामी रूप से स्थित, तृणादि से रहित ऊसर भूखण्ड में वर्तमान और छोटे जल प्रवाहों में स्थित को नमस्कार है ॥४३॥

गौओं के चरने के स्थान में विद्यमान, गोष्ठ में विद्यमान, शय्या में विद्यमान, गृहों में विद्यमान, हृदय में आत्मा-रूप से स्थित, दुर्गम पथ में स्थित और पर्वत-कन्दरा या गहन जल में विद्यमान देव को नमस्कार है ॥ ४४ ॥

शुष्क काष्ठादि में वर्तमान, हरे पत्रादि में स्थित, पृथिवी की रज में स्थित, पुष्पों की सुगंधि में स्थित, लोप स्थानों में स्थित, तृणादि में स्थित, उर्वरा भूमि में स्थित और प्रलय काल में काल रूप अग्नि में स्थित रुद्र को नमस्कार है ॥ ४५ ॥

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम ऽ उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम ऽ आखिदते च प्रखिदते च नम ऽ इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाँ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम ऽ आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

द्रापे ऽ अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत् ॥४७॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरम् ॥४८॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ ४६ ॥
परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥

पर्णों में विद्यमान, गिरे हुए पत्तों में विद्यमान, पत्तों में उत्पन्न कीटादि में विद्यमान, उत्पन्न करने के उद्यम वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले, अकर्म वालों को दुःख देने वाले, त्रिविध ताप के उत्पत्तिकर्त्ता, वाय्वादि के उत्पन्न करने वाले, धनुषादि का निर्माण करने वाले हे रुद्र ! तुम्हें नमस्कार है। जो देवताओं के हृदय रूप अग्नि, वायु और सूर्य रूप से वर्षा आदि के द्वारा संसार का पालन करते हैं, ऐसे उन रुद्र को नमस्कार है। जो अग्नि, वायु और सूर्य रूप से देवताओं के हृदय के समान है, जो पापात्मा और धर्मात्माओं को पृथक् पृथक् करते हैं, उन देवता को नमस्कार है। त्रिविध पापों को दूर करने वाले अग्नि, वायु और सूर्य देवताओं को नमस्कार है। सृष्टि के आरंभ में अनेक रूपों में उत्पन्न रुद्र को नमस्कार है ॥ ४६ ॥

हे रुद्र ! तुम पापियों की दुर्गति करने वाले, सोम के पुष्ट करने वाले, सहाय शून्य, नील लोहित वर्ण वाले हो। पशुओं को भय मत दो। प्रजाओं और पशुओं को हिंसित न करो। हमारे पुत्रादि को और पशुओं को रोगी मत बनाओ। सब का कल्याण करो ॥ ४७ ॥

पुत्रादि मनुष्यों और गवादि पशुओं में जैसे कल्याण की प्राप्ति हो और इस ग्राम के मनुष्य उपद्रवों से रहित हों, उसी प्रकार हम अपनी श्रेष्ठ मतियों को जटाधारी रुद्र के निमित्त अर्पित करते हैं ॥ ४८ ॥

हे रुद्र ! जो तुम्हारी कल्याण करने वाली औषधि रूप शक्ति है, तुम अपनी उस शक्ति से हमारे जीवन को सुखमय करो ॥ ४६ ॥

रुद्र के सभी आयुध हमें छोड़ दें, क्रोध करने के स्वभाव वाली कुमति

हमारा त्याग करे। हे इच्छित फल देने वाले रुद्र ! हविरन्न वाले यजमानों के भयों को दूर करने को अपने धनुषों को प्रत्यंचा-हीन करो और हमारे पुत्र-पौत्रादि को सुख प्रदान करो ॥ ५० ॥

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष ऽ आयुधं निधाय कृत्तिं वसान ऽ आ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि ॥ ५१ ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते ऽ अस्तु भगवः ।
यास्ते सहस्रँ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥ ५२ ॥
सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा ऽ अधि भूम्याम् ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥
अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा ऽ अधि ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

हे शिव ! तुम अत्यंत कल्याण के करने वाले हो। तुम हमारे निमित्त शान्त और श्रेष्ठ मन वाले होओ। हमसे दूर स्थित ऊँचे वृक्ष पर तुम अपने त्रिशूल को रख कर, मृग चर्म को धारण करते हुए आओ। तुम अपने धनुष को धारण किए चले आओ ॥ ५१ ॥

हे भगवन् ! तुम अनेक उपद्रवों के दूर करने वाले हो। तुम्हारे लिए नमस्कार हो। तुम्हारे जो सहस्रों आयुध हैं, वे सभी हमसे अन्यत्र, उपद्रव करने वाले दुष्टों पर पड़ें ॥ ५२ ॥

हे भगवन् ! तुम्हारी भुजाओं में सहस्रों प्रकार के खड्ग आदि आयुध हैं, तुम उन आयुधों के मुख को हमसे पीछे फेर लो ॥ ५३ ॥

जो असंख्य और सहस्रों रुद्र पृथिवी पर वास करते हैं, उनके धनुष हमसे सहस्र योजन दूर रहें ॥ ५४ ॥

इस अंतरिक्ष के आश्रय में जो रुद्र स्थित हैं, उनके सभी धनुषों को हम मंत्र के बल से प्रत्यंचा हीन कर अपने से सहस्र योजन दूर डालते हैं ॥ ५५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवᳬ रुद्रा ऽ उपश्रिताः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा ऽ अधः क्षमाचराः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५७ ॥
ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५८ ॥
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५९ ॥
ये पथां पथिरक्षय ऽ ऐलबृदा ऽ आयुर्युधः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६० ॥

नीले कंठ वाले, उज्वल कंठ वाले जितने रुद्र स्वर्ग में आश्रित हैं, उनके सभी धनुषों को हम अपने से सहस्र योजन दूर करते हैं ॥ ५६ ॥

नीलीग्रीवा और श्वेत कंठ वाले शर्व नामक रुद्र अधो लोक में स्थित हैं, उनके सब धनुषों को हम अपने से सहस्र योजन दूर डालते हैं ॥ ५७ ॥

जो नीली ग्रीवा और हरे वर्ण तथा लोहित वर्ण वाले, वृक्षादि में वर्तमान रुद्र हैं उनके सभी धनुष हमसे सहस्र योजन दूर हमारे मंत्र के बल से जाकर गिरें ॥ ५८ ॥

जो सभी भूतों के अधिपति और शिखा हीन, मुँडे हुए शिर तथा जटा जूट वाले हैं, उन रुद्र के सब आयुध हमारे मंत्र के बल से सहस्र योजन दूर जाकर गिरें ॥ ५९ ॥

श्रेष्ठ मार्गों के स्वामी, उत्तम मार्गों की रक्षा करने वाले, अन्न के

धारण करने वाले, जीवन पर्यन्त संग्राम में रत रुद्रों के सब धनुषों को हम सहस्र योजन दूर डालते हैं ॥ ६० ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

य ऽ एतावन्तश्च भूयाᳬसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात ऽ इषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६५ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

जो रुद्र हाथ में ढाल और तलवार धारण किये तीर्थों में विचरण करते हैं, उनके सब धनुषों को हम सहस्र योजन दूर डालते हैं ॥ ६१ ॥

अन्न सेवन करने में जो रुद्र प्राणियों को अधिक ताड़ना देते हैं, तथा पात्रों में स्थित जल, दूध आदि पीते हुए मनुष्यों को रोगादि से ग्रस्त करते हैं, हम उनके सभी के धनुषों को सहस्र योजन दूर डालते हैं ॥६२॥

जो रुद्र इन दिशाओं में या इनसे भी अधिक दिशाओं में आश्रित हैं, उनके सभी धनुषों को हम मन्त्र-बल के द्वारा सहस्र योजन दूर डालते हैं ॥६३॥

जो रुद्र स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके बाण वृष्टि रूप हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है। पूर्व दिशा में हाथ जोड़कर, दक्षिण में हाथ जोड़कर, पश्चिम में हाथ जोड़कर, उत्तर में और ऊर्ध्व दिशाओं में हाथ जोड़कर मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। वे रुद्र हमारे रक्षक हों और हमारा सदा कल्याण करें। जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उसे इन रुद्रों की दाढ़ में डालते हैं ॥६४॥

जो रुद्र अन्तरिक्ष में वास करते हैं, जिनके बाण पवन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व दिशाओं में वास करते हैं मैं उन्हें हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हूँ। वे रुद्र हमारी रक्षा करते हुए कल्याण करो। हम जिससे द्वेष करते हैं, ऐसे शत्रुओं को हम रुद्र की दाढ़ों में डालते हैं ॥६५॥

जो रुद्र पृथिवी पर विद्यमान हैं, जिनके बाण अन्न हैं, जो अन्न के मिथ्या आहार विहार द्वारा रोगोत्पत्ति कर मारते हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व दिशाओं में हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। वे रुद्र हमारे लिए रक्षक और कल्याणकारी हों। हम जिससे द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, ऐसे सब शत्रुओं को हम रुद्र की दाढ़ों में डालते हैं ॥६६॥

॥ सप्तदशोऽध्यायः ॥

ऋषि—मेधातिथिः, वसुयुः, भारद्वाज, लोपामुद्रा, भुवनपुत्रो, विश्वकर्मा, अप्रतिरथः, विश्वावसुः, मधुच्छन्दाः सुवजेता, विधृति, कुत्सः, कण्वः, गृत्समदः, वसिष्ठः, परमेष्ठी, सप्त ऋषयः, वामदेवः।

देवता—मरुतः, अग्निः, प्राण, विश्वकर्मा, इन्द्रः, इषुः, योद्धा, इन्द्र-

बृहस्पत्यादयः, सोमवरुणदेवाः, दिग्, यज्ञः, आदित्याः, इन्द्राग्नी, सविता, चातुर्मास्या मरुतः, यज्ञ पुरुषः ।

छन्दः—शक्वरी, कृतिः, पंक्तिः, गायत्री, त्रिष्टुप्, बृहती, जगती अनुष्टुप् उष्णिक् ।

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ऽ ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो ऽ अधि सम्भृतं पयः ।

तां न ऽ इषमूर्जं धत्त मरुतः स ᳪ रराणा ऽ अश्मँस्ते क्षुन् मयि त ऽ ऊर्ग्य द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१॥

इमा मे ऽ अग्न ऽ इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे ऽ अग्न ऽ इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥२॥

ऋतव स्थ ऽ ऋतावृध ऽ ऋतुष्ठा स्थ ऽ ऋतावृधः ।
घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा ऽ अक्षीयमाणाः ॥३॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि ।
पावको ऽ अस्मभ्य ᳪ शिवो भव ॥४॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि ।
पावको ऽ अस्मभ्य ᳪ शिवो भव ॥५॥

हे मरुद्गण ! तुम प्रसिद्ध दाता हो। तुम विंध्याचल आदि पर्वतों में आश्रित, बल के कारण रूप हो। जलों से, और गौओं से सम्पादित श्रेष्ठ दूध अन्न को और रस को भी हमारे लिए धारण करो। हे सर्वभक्षी अग्ने ! तुम अत्यन्त हवि भोगने वाले होओ। हे प्रस्तर ! तुम सार भाग से मेरे लिए स्थिर हो। हे अग्ने ! तुम्हारा क्रोध उस मनुष्य के पास पहुँचे जिससे हम द्वेष करते हैं ॥१॥

हे अग्ने ! पाँच चिति में स्थापित जो यह इष्टका हैं वे तुम्हारी कृपा से मुझे अभीष्ट फल देने वाली गौ के समान हों । यह इष्टका परार्द्ध संख्यक हैं। यह मेरे लिए इस लोक में और परलोक में भी कामदुघा गौ के समान दोहनशील हों ॥ २ ॥

हे इष्टके ! तुम सत्य की वृद्धि करने वाली ऋतु रूप हो। तुम घृत और मधु को सींचने वाली, विशेष प्रकार से सुशोभित, अभीष्टों के पूर्ण करने वाली और अक्षुण्ण हो, मेरी सब इच्छाऐं पूर्ण करो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! जल शैवाल द्वारा तुम्हें सब ओर से लपेटता हूँ। तुम हमारे लिए शोधक और कल्याण करने वाले होओ ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! वर्ष के जरायु के समान उत्पत्ति स्थान शैवाल द्वारा तुम्हें सब ओर से लपेटता हूँ । तुम हमें शुद्ध करने वाले और मंगलकारी होओ ॥ ५ ॥

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा ।
अग्नेपित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णँ शिवं कृधि ॥ ६ ॥
अपामिदं न्ययनँ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याँस्ते ऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यँ शिवो भव ॥७॥
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँऽ इहावह ।
उप यज्ञँ हविश्च नः ॥ ९ ॥
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच ऽ उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण ऽ आ यो घृणे न ततृषाणो ऽ अजरः ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तुम पृथिवी पर आकर बेंत की शाखा का आश्रय करो।

सब नदियों में शिवाल का आश्रय लो। तुम जलों के तेज हो और हे मंडूकि! तुम भी जलों की तेज के समान हो, अतः जलों के साथ यहाँ आओ। हमारे इस चयन रूप यज्ञ को अग्नि के समान तेजस्वी और फल देने वाला बनाओ॥ ६॥

इस चिति में स्थित अग्नि का स्थान जलों के घर रूप समुद्र में है। हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालाएं हमसे भिन्न व्यक्तियों को संतप्त करें। तुम हमारे निमित्त शोधनकारी और सब प्रकार कल्याणकारी होओ॥७॥

हे पावक! हे दिव्य गुण वाले अग्निदेव! तुम दीप्तिमती ज्वालाओं के समूह रूप हो अतः आनन्द स्वरूप जिह्वा वाले होकर देवताओं का आह्वान एवं यजन करो॥ ८॥

हे पावक! हे दिव्य गुण सम्पन्न अग्ने! हमारे इस यज्ञ में देवताओं को आहूत करो और हमारी हवियों के निकट उन्हें प्राप्त कराओ॥९॥

जो पवित्र करने वाले अग्नि दृढ़ चयन वाली सामर्थ्य से भूमंडल पर सशोभित होते हैं, जैसे उषाकाल अपने प्रकाश से शोभा प्रदान करता है, वैसे ही पूर्णाहुति पान की कामना वाले अग्नि अजर, गतिवान् अश्व से कार्य लेने वाले और शत्रु-हन्ता के समान होते हुए अपने तेज से शोभा प्रदान करते हैं। उन्हीं अग्नि को प्रदीप्त किया जाता है॥ १०॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽ अस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यꣳ शिवो भव॥११॥
नृपदे वेडप्सुषदे वेड् वर्हिषदे वेड वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट्॥१२॥
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते।
अहुतादो हविषो यज्ञे ऽ अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य॥१३॥
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरऽएतारो ऽ अस्य।
येभ्यो न ऽऋते पवते धाम किंचन न ते दिवो न पृथिव्या ऽ अधि स्नुषु॥ १४॥
प्राणदा ऽ अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः।

अन्यांस्ते ऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यँ शिवो भव ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! सब रसों को खींचने वाली तुम्हारी ज्वालाओं को नमस्कार है। तुम्हारे तेज को नमस्कार है। तुम्हारी ज्वालाएं हमसे अन्यत्र जाकर दूसरे व्यक्तियों को संतप्त करें। तुम हमारे लिए पवित्र करने वाले तथा कल्याण करने वाले होओ ॥ ११ ॥

यह अग्नि जठराग्नि रूप से मनुष्यों में विद्यमान हैं। उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। यह अग्नि समुद्र में वडवानल रूप से विद्यमान हैं। उनकी प्रसन्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जो अग्नि वर्हि आदि औषधियों में विद्यमान हैं, उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जो अग्नि वृक्षों में दावानल रूप से स्थित हैं, उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जो अग्नि स्वर्ग में स्थित सूर्य के रूप में प्रख्यात हैं, उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १२ ॥

जो देवता स्वाहाकार किये बिना ही अन्न भक्षण करते हैं, वे प्राण-रूप देवता इस यज्ञ में मधु घृत युक्त हविर्भाग को बिना स्वाहाकार के स्वयं ही पान करलें। वे देवता यज्ञ योग्य देवताओं के मध्य में दीप्ति युक्त हैं और संवत्सर में होने वाले यज्ञ भाग की कामना करते रहते हैं ॥ १३ ॥

जिन प्राणादि देवताओं ने इन्द्रादि देवताओं में प्रधान देवत्व प्राप्त किया है, जो प्राण आत्माग्नि के आगे चलते हैं, जिन प्राणों के बिना कोई शरीर सचेष्ट नहीं रहता, वे प्राण न स्वर्ग में हैं और न पृथिवी में ही हैं, किन्तु प्रत्येक इन्द्रिय में विद्यमान हैं ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! तुम प्राणापान के देने वाले, बल देने वाले, धन देने वाले और शुद्ध करने वाले, कल्याणकारी हो। तुम्हारे ज्वाला रूप आयुध हमसे भिन्न व्यक्तियों को सतप्त करें ॥ १५ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्व न्यत्रिणम् ।
अग्निनो वनते रयिम् ॥ १६ ॥

य ऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स ऽ आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ ऽ आविवेश ॥१७॥
कि ँ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१८॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव ऽ एकः ॥१९॥
कि ँ स्विद्वनं क ऽ उ स वृक्ष ऽ आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ २० ॥

यह अग्नि तीक्ष्ण तेज के द्वारा यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसादि को दूर भगावें । यही अग्नि हमको धन प्रदान करने वाले हैं ॥ १६ ॥

जो सर्वद्रष्टा, होता हम सब प्राणियों के पालन करने वाले और सब लोकों के प्राणियों का संहार करने वाले होकर स्वयं स्थित रहते हैं, वह परमेश्वर प्रथम एक रूप को धारण कर फिर अनेक रूप धारण की इच्छा कर माया के विकार वाले देहों में प्रविष्ट हो गए ॥ १७ ॥

द्यावापृथिवी के निर्माण करते हुए वे परमेश्वर किस आश्रय पर टिके थे ? मृत्तिका के समान घट आदि बनाने का पदार्थ क्या था ? जिससे विश्वकर्मा परमेश्वर ने इस विस्तीर्ण पृथिवी और स्वर्ग की रचना कर अपने बल से इसे आच्छादित किया और स्वयं सर्वत्र स्थित हैं ॥ १८ ॥

सब ओर देखने वाले, सब ओर मुख वाले, सब ओर भुजा और चरण वाले एक अद्वितीय परमात्मा ने द्यावापृथिवी को अधिष्ठान हीन होकर प्रकट किया । वे अपनी भुजाओं से अनित्य पंचभूतों से संयोग को प्राप्त होते हुए, बिना उपादान साधन के ही विश्व की रचना करते हैं ॥ १६ ॥

वह वन किस प्रकार का था ? वह वृक्ष कौन-सा था ? जिस वन और वृक्ष के द्वारा विश्वकर्मा ने द्यावापृथिवी को अलंकृत किया । हे विद्वानो ! सब भुवनों को धारण करने वाले विश्वकर्मा ने जो स्थान निश्चित किया उस पर मन पूर्वक विचार करो । उस प्रसिद्ध की बात पूछो मत ॥ २० ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधाव. स्वयं यजस्व तन्वं वृधान. ॥२१॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये ऽ अभित सपत्ना ऽ इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥२२॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे ऽ अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विश समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥२४॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने ऽ अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता ऽ अददृहन्त पूर्व ऽ आदिद् द्यावापृथिवी ऽ अप्रथेताम् ॥२५॥

हे विश्वकर्मन् ! तुम स्वधा वाले हवि से युक्त हो। तुम्हारे जो श्रेष्ठ, निकृष्ट और मध्यम श्रेणी के धाम हैं, उन्हें मित्र रूप यजमानों को सब प्रकार प्रदान करो और यजमान प्रदत्त हवि के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हुए तुम स्वयं ही यजन करो। तुम्हारा यजन करने में कोई मनुष्य समर्थ नहीं है, इसलिए तुम्हीं इस यजमान को हवि-प्रदान की शिक्षा दो ॥ २१ ॥

हे विश्वकर्मन् ! मेरे द्वारा प्रदत्त हविरन्न से प्रसन्न हुए तुम मेरे यज्ञ में पृथिवी के प्राणियों और स्वर्ग के प्राणियों को मेरे अनुकूल कर यज्ञ करो। तुम्हारे प्रभाव से हमारे शत्रु मोह आदि को प्राप्त होकर नष्ट हों। हमारे यज्ञ में इन्द्र हमें आत्म ज्ञान का उपदेश करें ॥ २२ ॥

हम आज महाव्रती, वाचस्पति, मन के समान वेग वाले सृष्टि की रचना करने वाले परमेश्वर का आह्वान करते हैं, वे श्रेष्ठ कर्म वाले और विश्व का कल्याण करने वाले हमारी आहुतियों को रक्षा के लिए प्रीति-पूर्वक स्वीकार करें ॥ २३ ॥

हे विश्वकर्मन् ! हवि द्वारा प्रवृद्ध होने वाले तुमने इन्द्र को अहिंसित और संसार का रक्षक बनाया। इन इन्द्र का पूर्व कालीन ऋषियों ने जिस

प्रकार आह्वान किया था, उसी प्रकार अब भी सब नमस्कार आदि करते हुए उन्हें आहूत करते हैं। हे परमेश्वर! तुम्हारे सामर्थ्य से ही वह इतने प्रभावशाली हुए हैं ॥ २४ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जब द्यावा पृथिवी के अन्तर्देशों को सुदृढ़ किया तब इन द्यावा पृथिवी का विस्तार हुआ। तब सब इन्द्रियों के पालक मन के द्वारा ईश्वर ने इन द्यावा पृथिवी को दृढ़ कर घृत को उत्पन्न किया ॥२५॥

विश्वकर्म्मा विमना ऽ आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर ऽ एकमाहुः ॥२६॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा ऽ एक ऽ एव तँ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥२७॥
त ऽ आयजन्त द्रविणँ समस्मा ऽ ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥२८॥
परो दिवा पर ऽ एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्य्यदस्ति ।
कँ स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र ऽ आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥२९॥
तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३०॥

जिस लोक में सप्तर्षियों को विश्वकर्मा से मिला हुआ बताते हैं, जिनका श्रेष्ठ मन सब कर्मों के जानने वाला और सबका धारण पोषण करने वाला है, वही परमपिता सबको सम्यक् देखने वाला है। उस लोक की इच्छित वस्तु (हविरन्न) से हर्षित होकर सब पुष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

जो विश्वकर्मा हमें उत्पन्न करने वाले और पालनकर्त्ता हैं, वही सबके धारण करने वाले हैं। वे सब स्थान के प्राणियों को जानते हैं। वही एक होकर, देवताओं के अनेक नाम रखते हैं। सभी लोक प्रलय-काल में उनकी एकात्मता को प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

विश्वकर्मा के रचे हुए प्राचीन कालीन ऋषियों ने इन प्राणियों के

लिए जल रूप रस को तथा कामनाओं को भले प्रकार देते हुए अंतरिक्ष में स्थित होकर प्राणियों की रचना की ॥ २८ ॥

हृदय में जो ईश्वरीय तत्व विद्यमान हैं, वह स्वर्ग से भी दूर है। वह इस पृथिवी से, देवताओं से और असुरों से भी दूर हैं। जलों ने प्रथम किसके गर्भ को धारण किया अथवा उसने पहले जल की रचना की, वह गर्भ कैसा था? जहाँ सृष्टि के आदि कालीन ऋषि संसार को देखते हुए देवत्व को प्राप्त होगये ॥ २९ ॥

जलों ने प्रथम उसी को गर्भ में धारण किया, जिस गर्भ में सब देवता एकत्र होते हैं, उस गर्भ का आधार क्या है? उन अजन्मा परमात्मा के नाभि में सभी प्राणी स्थित हुए आश्रित होते हैं ॥ ३० ॥

न तं विदाथ य ऽ इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप ऽ उक्थशासश्चरन्ति ॥३१॥
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव ऽ आदिद् गन्धर्वो ऽ अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥३२॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष ऽ एकवीरः शतꣳ सेना ऽ अजयत्साकमिन्द्रः ॥३३॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३४॥
स ऽ इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध ऽ इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥

जिन परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण संसार की रचना की है, वे अहङ्कार आदि से युक्त प्राणियों के अन्तर में वास करते हैं। वे अहङ्कार से परे ही जाने जाते हैं। तुम उसे अज्ञान के कारण नहीं जानते। क्योंकि असत कल्पना से व्याप्त हुए, अग्निजारक पुरुष परलोक के भोगों की कामना करते हुए सकाम यज्ञों में लगते हैं ॥ ३१ ॥

ब्रह्माण्ड में प्रथम सत्यलोक वासी देव आविर्भूत हुए। द्वितीय सृष्टि में पृथिवी को धारण करने वाला अग्नि या गन्धर्व प्रकट हुए। तृतीय सृष्टि रूप औषधियों को उत्पन्न करने वाला पिता पर्जन्य हुआ। उस पर्जन्य ने उत्पन्न होते ही जलों को, गर्भ को, धारण किया ॥ ३२ ॥

शीघ्र गमन करने वाले, वज्र को तीक्ष्ण करने वाले, सेचन समर्थ, भय उत्पन्न करने वाले, शत्रु हिंसक, मनुष्यों को क्षुभित करने वाले, गर्जनशील, निरन्तर सावधान और अद्वितीय वीर इन्द्र एक साथ ही सौ-सौ सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥

हे संग्रामोद्यत पुरुषो! धर्षक, शब्दवान्, युद्ध में डटने वाले, बाण धारण करने वाले, विजयशील, अजेय और काम्य वर्षी इन्द्र के बल से तुम उस शत्रु की सेना पर विजय पाओ। उन शत्रुओं को अपने वश में करते हुए मार डालो ॥ ३४ ॥

वह इन्द्र शत्रुओं को वशीभूत करने वाले, बाणधारी, रणक्षेत्र में डटने वाले और शत्रुओं से संग्राम करने वाले हैं। वही इन्द्र यजमानों के यज्ञ में सोम-पान करने वाले हैं। वे श्रेष्ठ धनुष वाले, बाहु-बल से युक्त इन्द्र शत्रुओं की ओर बाणों सहित गमन करते हैं। वे इन्द्र हमारे रक्षक हों ॥३५॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ ऽ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान ऽ उग्रः ।
अभिवीरो ऽ अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥३७॥
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽअनु सꣳरभध्वम् ॥३८॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३९॥
इन्द्र ऽ आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर ऽ एतु सोमः ।
देवसेनानामभिञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥४०॥

हे बृहस्पते ! तुम राक्षसों के दूर करने वाले हो । तुम रथ के द्वारा सब ओर गमन करते हुए शत्रुओं को पीडित करो और शत्रु सेनाओं को अत्यंत पीड़ित करते हुए हिंसाकारियों को संग्राम में जीतते हुए हमारे रथों की रक्षा करो ॥ ३६ ॥

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के बल को जानते हो । तुम अत्यंत वीर, अन्नवान्, उग्र, वीरों से सम्पन्न, उपासकों वाले, बल के द्वारा उत्पन्न, स्तुतियों के ज्ञाता और शत्रुओं के तिरस्कारकर्त्ता हो । तुम अपने जलशील रथ पर चढ़ो ॥ ३७ ॥

हे समान जन्म वाले देवताओ ! राक्षस कुल का नाश करने वाले, वज्रधारी, युद्ध विजेता ओज से शत्रुओं का हनन करने वाले इन्द्र को वीर कर्म में उत्साहित करो । इन वेगवान् इन्द्र के पश्चात् तुम भी वेगवान् होओ ॥ ३८ ॥

शत्रुओं पर दया न करने वाले, पराक्रमी, सैकड़ों कर्म करने वाले, अजेय, शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, जिनसे कोई संग्राम नहीं कर सकता, ऐसे इन्द्र राक्षसों को एक साथ ही तिरस्कृत करते हुए हमारी सेना की रक्षा करें ॥ ३६ ॥

बृहस्पति और इन्द्र इन शत्रुओं को मर्दित करने वाली विजयशील, देव सेनाओं के पालनकर्त्ता हैं । यज्ञ पुरुष, सोम, दक्षिणा उनके आगे गमन करें । मरुद्गण सेना के आगे चलें ॥ ४० ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ ऽ आदित्याना मरुता शर्द्ध ऽ उग्रम् ।
महामनसा भुवनच्यवाना घोषो देवाना जयतामुदस्थात् ॥ ४१ ॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वना मामकाना मनासि ।
उद्वृत्रहन् वाजिना वाजिनान्युद्रथाना जयता यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥
अस्माकमिन्द्र समृतेषु ध्वजेष्वस्माक या ऽ इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माक वीरा ऽ उत्तरे भवन्त्वस्माँ२ ऽ उ देवा ऽ अवता हवेषु ॥४३॥
अमीषा चित्त प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।

अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसँशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥ ४५ ॥

युद्ध में स्थिर मन वाले, लोकों को नष्ट करने की सामर्थ्य वाले, विजयशील आदित्यगण, मरुद्गण, अभीष्टवर्षी इन्द्र और राजा वरुण का श्रेष्ठ बल देवताओं को सेना का जय-घोष कराने वाला है ॥ ४१ ॥

हे इन्द्र ! अपने आयुधों को भले प्रकार तीक्ष्ण करो। हमारे पुरुषों के मन को प्रफुल्लित करो। अश्वों को शीघ्र गमन वाला करो। हे इन्द्र! विजयशील रथों के शब्द को सब ओर फैलाओ ॥ ४२ ॥

युद्ध पताकाओं के मिलने के समय इन्द्र हमारे रक्षक हों। हमारे जो बाण हैं, वे शत्रु सेना को तिरस्कृत कर विजय प्राप्त करें। हमारे वीर शत्रुओं के वीरों से श्रेष्ठ हों। देवगण युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥ ४३ ॥

हे व्याधि ! तू शत्रुओं की सेनाओं को कष्ट देने वाली और उनके चित्त को मोह लेने वाली है। तू उनके शरीरों को साथ लेती हुई हमसे अन्यत्र चली जा ! तू सब ओर से शत्रुओं के हृदयों को शोक-संतप्त कर। हमारे शत्रु प्रगाढ़ अंधकार में फँसें ॥ ४४ ॥

हे बाण रूप ब्रह्मास्त्र ! तुम मंत्रों द्वारा तीक्ष्ण किये हुए हो। हमारे द्वारा छोड़े जाने पर तुम शत्रु सेनाओं पर एक साथ गिरो और उनके शरीरों में घुस कर किसी को भी जीवित मत रहने दो ॥ ४५ ॥

प्रेता जयता नर ऽ इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ ४६ ॥
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ऽ ओजसा स्पर्द्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी ऽ अन्यो ऽ अन्यन्न जानन् ॥ ४७ ॥
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव ।
तन्न ऽ इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु॥४८॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्त त्वानु देवा मदन्तु ।। ४९ ।।
उदेनमुत्तरा नयाग्ने घृतेनाहुत ।
रायस्पोषेण सꣳ सृज प्रजया च बहु कृधि ।।५०।।

हे पुरुषो ! शत्रु-सेनाओं पर शीघ्रता पूर्वक टूट पड़ो। तुमको अवश्य विजय प्राप्त होगी। इन्द्र तुम्हें विजय-सुख को प्राप्त करावें। तुम्हारी भुजाऐं अत्यन्त पराक्रम वाली हों, जिससे कोई भी शत्रु तुम्हें तिरस्कृत न कर पावे ॥ ४६ ॥

हे मरुद्‌गण! यह जो शत्रु-सेना अपने ओज में भरी हुई हमारे सामने आती है, उस सेना को अंधकार से ढक कर कर्म से निवृत्त करो, जिससे यह एक दूसरे को न पहिचान कर परस्पर शस्त्रास्त्र प्रयोग करते हुए ही नष्ट हो जाँय ॥ ४७ ॥

जैसे लट्टरियों वाले शिशु इधर उधर घूमते हैं वैसे ही वीरों द्वारा छोड़े गए बाण रणभूमि में इधर उधर गिरते हैं। उस संग्राम में बृहस्पति, देवमाता अदिति और इन्द्र हमारा कल्याण करें। वे सब शत्रुओं को नष्ट करने वाला सुख हमें प्रदान करें ॥ ४८ ॥

हे यजमान ! मैं तुम्हारे मर्म स्थान को कवच से ढकता हूँ। राजा सोम तुम्हें मृत्यु से निवारण करने वाले वर्म से ढकें और वरुण तुम्हारे कवच को वरिष्ठ बनावें। अन्य सब देवता तुम्हारी विजय से सहमत हों ॥४९॥

हे अग्ने ! तुम घृत से सब प्रकार तृप्त किये गए हो। इस यजमान को श्रेष्ठता प्राप्त कराओ। इसे धन की पुष्टि प्राप्त कराओ। इसे पुत्र पौत्रादि वाला करो ॥ ५० ॥

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी ।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा ऽ असत् ।।५१।।
यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम् ।
तस्मै देवा ऽ अधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ।।५२।।

उदु त्वा विश्वे देवा ऽ अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वँ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे ऽ अधि यज्ञो ऽ अस्थात् ॥५४॥

समिद्धे ऽ अग्नावधि मामहान ऽ उक्थपत्र ऽ ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्म्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥५५॥

हे इन्द्र ! इस यजमान को महान् ऐश्वर्य-लाभ हो। यह अपने समान जन्म वालों पर शासन करे। इस यजमान को तेजस्वी करो। यह देवताओं का भाग देने में हर प्रकार समर्थ हो ॥ ५१ ॥

हे अग्ने ! हम जिस यजमान के घर में हवि तैयार करते हैं, तुम उस यजमान की वृद्धि करो। सभी देवता उस यजमान को श्रेष्ठ कहें। यह यजमान यज्ञादि कर्मों का सदा पालन करे ॥ ५२ ॥

हे अग्ने ! विश्वेदेवा तुम्हें अपनी श्रेष्ठ बुद्धियों द्वारा ऊँचा धारण करें। तुम महान् धन वाले अपनी दीप्ति से ऊँचे उठ कर हमारे लिए कल्याणकारी होओ ॥ ५३ ॥

इन्द्र, यम, वरुण, सोम और ब्रह्मा से संबंधित पाँचों दिशाऐं हमारी कुबुद्धि को, अमति को नष्ट करती हुई यज्ञ-पालक यजमान को धन की पुष्टि में स्थापित करें और हमारे यज्ञ की रक्षा करें। हमारा यह यज्ञ धन पुष्टि से अत्यधिक समृद्ध हो ॥ ५४ ॥

जब देवता तप्त घर्म को ग्रहण कर यज्ञ करते और हवि रूप अन्न से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, तब स्तुति के योग्य उक्थों से सम्पन्न यज्ञ धारण किया जाता है। देवताओं को भले प्रकार पूजने वाला यजमान अग्नि के प्रदीप्त होने पर तेज से संयुक्त होता है ॥ ५५ ॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः ।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो ऽ अध्वर्य्यन्तो ऽ अस्थुः ॥५६॥

वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ।
ततो वाका ऽ आशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७॥
सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ ऽ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥५८॥
विमान ऽ एष दिवो मध्य ऽ आस्त ऽ आपप्रिवान्रोदसी ऽ अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥५९॥
उक्षा समुद्रो ऽ अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥६०॥

देवताओं की सेवा करने वाला, श्रेष्ठ अंतःकरण वाला, सैकड़ों प्रकार के दुग्धादि पदार्थों का आश्रय रूप यज्ञ, देवताओं का हित करने वाला और धारणकर्त्ता होकर हमारे हव्य को सेवन करने वाले अग्नि के लिए अनुष्ठित होता है। ऋत्विज इस यज्ञाग्नि को ग्रहण कर यज्ञ में आते हैं और देवताओं का यजन करने की कामना से बैठते हैं ॥ ५६ ॥

जिस काल में चतुर्थ यज्ञ देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनुष्ठित होता है, उस समय संस्कारित हवि यज्ञ के लिए प्राप्त होता है, तब यज्ञ में उठे हुए आशीर्वचन हमसे सुसंगत हों ॥ ५७ ॥

सूर्य की रश्मियाँ, हरित वर्ण वाली, सब प्राणियों को अपने-अपने कर्मों में प्रेरित करने वाली प्राची मे आविर्भूत होती हैं। इन्द्रियों का पालन करने वाला विद्वान् और सब का पोषण करने वाला सूर्य महा ज्योति से युक्त होकर सब लोकों को देखता और उदय-अस्त रूप से गमन करता है ॥५८॥

संसार की रचना में समर्थ यह सूर्य स्वर्ग के मध्य में स्थित हैं। यह अपने तेज से स्वर्ग, पृथिवी और अंतरिक्ष तीनों लोकों को परिपूर्ण करते हैं। ये स्तुति को प्राप्त होकर वेदी और स्रुव को देखते हुए इहलोक, परलोक और मध्यलोक स्थित प्राणियों की कामनाओं को भी देखते हैं ॥ ५९ ॥

जो देवता वर्षा से सींचता, ओस से क्लेदन करता, अरुण वर्ण वाला व्यापक, श्रेष्ठ गमन, स्वर्ग के मध्य में स्थित, अनेक रश्मियों वाला पूर्व दिशा

में उदित होता है, वह स्वर्ग के स्थान में प्रवेश करता है। वह आकाश में चढ़कर तीनों लोकों की सब ओर-से रक्षा करता है ॥६०॥

इन्द्रं विश्वा ऽ अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतम ꣳ रथीनां वाजानां ꣳ सत्पतिं पतिम् ॥६१॥

देवहूर्यज्ञ ऽ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ ऽ आ च वक्षत्।
यक्षदग्निर्देवो देवाँ ऽ आ च वक्षत् ॥६२॥

वाजस्य मा प्रसव ऽ उद्ग्राभेणोदग्रभीत्।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ ऽ अकः ॥६३॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा ऽ अवीवृधन्।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥६४॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्य ꣳ हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठ ꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥६५॥

समुद्र के समान व्यापक स्तुतियाँ सब रथियों में रथी, सबके स्वामी और सत्य-धर्म के पालक इन्द्र को भले प्रकार बढ़ाते हैं ॥६१॥

देवाह्वाता यज्ञ रूप अग्नि देवताओं के लिए हवि-वहन करें। सब सुखों का आह्वान करने वाला यज्ञ देवताओं के लिए हव्य पहुँचावें। अग्नि सब देवताओं का आह्वान करें ॥६२॥

हे इन्द्र ! अन्न के प्रादुर्भाव रूप-दान से मुझे अनुग्रहीत करो और मेरे शत्रुओं को दान-याचक और अधोगति को प्राप्त हुआ बनाओ ॥६३॥

हे देवगण ! हमारे लिए उत्कृष्टता और शत्रुओं को निकृष्टता दो। इन्द्र और अग्नि मेरे शत्रुओं को असमान गति देते हुए विनष्ट करें ॥६४॥

हे ऋत्विजो ! उखा पात्र में स्थित अग्नि को हाथों में धारण कर चिति रूप अग्नि के साथ स्वर्ग पर चढ़ो और अन्तरिक्ष के ऊपर स्वर्ग में जाकर देवताओं के साथ निवास करो ॥६५॥

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो ऽ अग्निर्भवेह ।
विश्वा ऽ आशा दीद्यानो विभाह्यूर्ज नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥६६॥

पृथिव्या ऽ अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥६७॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त ऽ आ द्या ᳪ रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधार ᳪ सुविद्वाᳪ सो वितेनिरे ॥६८॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेक ᳪ समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा ऽ अग्निं धारयन्
द्रविणोदाः ॥७०॥

हे उखा-स्थित अग्ने ! तुम मेधावी हो, पूर्व दिशा के लक्ष्य पर गमन करो। तुम चिति रूप अग्नि के आगे स्थित हो। तुम सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए हमारे पुत्रादि तथा पशुओं में बल की स्थापना करो ॥ ६६ ॥

मैं पृथिवी से उठकर अन्तरिक्ष में चढ़ा हूँ। अन्तरिक्ष से उठकर स्वर्ग पर चढ़ा हूँ। स्वर्ग के कल्याणमय पृष्ठ देश पर स्थित ज्योतिर्मण्डल को मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥६७॥

जो विद्वान् सम्पूर्ण विश्व के धारण करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त शोकों से शून्य स्वर्ग में गमन करते हुए सुखी होते हैं ॥ ६८ ॥

हे अग्ने ! तुम यजमानों के मध्य प्रमुख हो। देवताओं के और मनुष्यों के भी नेत्र रूप हो। अतः तुम आगे गमन करते हो। यज्ञ की कामना वाले भृगुवंशियों से प्रीति करने वाले यजमान सुखपूर्वक स्वर्गलोक को प्राप्त करें ॥६९॥

उखे ! समान मन वाले और परस्पर सुसंगत रात्रि और दिन एक एक शिशु रूप अग्नि को यज्ञादि कर्मों द्वारा तृप्त करते हैं, उस प्रकार दिन रात्रि रूपी दण्ड (शलाका) से उखा को ग्रहण करता हूँ। स्वर्ग और पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष में उठाई गई उखा अत्यन्त सुशोभित होती है। यज्ञ के फल रूप धन के देने वाले देवगण ने अग्नि को धारण किया ॥७०॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ।
त्व ँ साहस्रस्य राय ऽ ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥
सुपर्णो ऽ सि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश ऽ उद्दृ ँ ह ॥७२॥
आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थे ऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥७३॥
ता ँ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीना ँ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥७४॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवी ँ षि जुहुरे समिद्धे ॥७५॥

हे सहस्र चक्षु वाले अग्ने ! तुम अनन्त प्राण वाले हो। तुम्हारे सहस्रों व्यान हैं। तुम हजारों सम्पत्तियों के अधिकारी हो। हम तुम्हें हविरन्न देते हैं। यह आहुति स्वाहुत हो ॥७१॥

हे अग्ने ! तुम सुपर्ण पक्षी के आकार वाले एवं गरुड़ के समान हो। अतः पृथिवी पर स्थित हो और अपने तेज से अन्तरिक्ष को पूर्ण करो। अपने सामर्थ्य से स्वर्ग को ऊँचा स्थिर करो और अपने तेज से, दिशाओं को सुदृढ़ करो ॥७२॥

हे अग्ने ! तुम आहूत होकर पूर्व दिशा में अपने समीचीन स्थान में स्थित हो। हे विश्वेदेवो ! तुम और यह यजमान इस अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान में अग्नि के साथ स्थित होओ ॥७३॥

सविता देवता वाली, वरणीय, अद्भुत तथा सब प्राणियों का हित करने वाली श्रेष्ठ मति को मैं ग्रहण करता हूँ। कण्वगोत्री ऋषि ने इस सविता देवता की वाणी रूपिणी पयस्विनी गौ का दोहन किया ॥७४॥

हे अग्ने ! तुम्हारे श्रेष्ठ जन्म वाले स्वर्ग में हम हवि का विधान करते हैं। उससे नीचे अन्तरिक्ष में स्थित तुम्हारे विद्युत रूप के निमित्त स्तोम पाठ युक्त हवि का विधान करते हैं। तुम जिस इष्टका चिति रूप स्थान से उदारित हुए हो, उस स्थान को मैं पूजता हूँ। फिर तुम्हारे प्रदीप्त होने पर ऋत्विग्गण तुम्हारे निमित्त यजन करते हैं ॥७५॥

प्रेद्धो ऽ अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वा ँ शश्वन्त ऽ उपयन्ति वाजाः ॥७६॥

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्र ँ हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ऽ ओहैः ॥७७॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा ऽ इहागमन्वीतिहोत्रा ऽ ऋतावृधः ।
पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्य ँ हविः ॥ ७८ ॥

सप्त ते ऽ अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऽ ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ।७९।

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च ।
शुक्रश्च ऽ ऋतपाश्चात्य ँ हाः ॥८०॥

हे युवकतम अग्ने ! अखंड समिधाओं से प्रज्वलित और ज्वाला द्वारा अति प्रदीप्त हुए तुम भले प्रकार प्रवृद्ध होओ। हम तुम्हारे लिए हवि रूप अन्न देते हैं ॥७६॥

हे अग्ने ! जैसे अश्वमेध के अश्वों को ब्राह्मण समृद्ध करते हैं, जैसे

यजमान कल्याणकारी यज्ञ-संकल्प को समृद्ध करते हैं, वैसे ही तुम्हारे इस यज्ञ में फल प्रापक स्तुतियों से हम तुम्हें सब प्रकार समृद्ध करते हैं।

मैं मन पूर्वक, घृताहुति द्वारा इस चिति में स्थित अग्नि को प्रसन्न करता हूँ। इस यज्ञ में आहुतियों की कामना वाले, यज्ञ के बढ़ाने वाले, स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले देवता आगमन करें। मैं उन विश्व-नियन्ता ईश्वर के निमित्त श्रेष्ठ हवि प्रदान करता हूँ ॥७८॥

हे अग्ने! तुम्हारी सात समिधाएं हैं, सात जिह्वा हैं, सात द्रष्टा ऋषि हैं, सात छन्द हैं, सात होता, सात अग्निष्टोम आदि से तुम्हारा यज्ञ करते हैं। सात चिति तुम्हारे उत्पत्ति स्थान हैं, उन्हें घृत से पूर्ण करो। यह आहुति स्वाहुत हो ॥७९॥

श्रेष्ठ ज्योति वाले, तेजस्वी, सत्यवान, यज्ञ की रक्षा करने वाले और पाप-रहित मरुद्गण हमारे यज्ञ में आगमन करें। उनकी प्रीति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥८०॥

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च।
मितश्च संमितश्च सभराः ॥८१॥
ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च।
धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥८२॥
ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।
अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः ॥८३॥
ईदृक्षास ऽ एतादृक्षास ऽ ऊषुणः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास ऽ एतन।
मितासश्च सम्मितासो नो ऽ अद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽअस्मिन् ॥८४॥
स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥८५॥

इस पुरोडास को ग्रहण कर देखने वाले तथा अन्य पुरोडास के भी देखने वाले, समानदर्शी और प्रतिदर्शी, समान मन वाले, समान धारक चतुर्दश मरुद्गण इस में आगमन करें। उनकी प्रसन्नता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥८१॥

सत्य रूप, सत्य में स्थित, दृढ़, धारणकर्त्ता, धर्त्ता, विधर्त्ता और अनेक प्रकार से धारण करने वाले एकविंश मरुद्गण हमारे इस यज्ञानुष्ठान में आगमन करें। उनकी प्रसन्नता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ८२ ॥

सत्य के विजेता, यथार्थ कर्म को वशीभूत करने वाले, शत्रु सेनाओं के विजेता, श्रेष्ठ सेनाओं वाले, समीप वालों के मित्र और शत्रु से दूर रहने वाले, गणरूप अट्ठाइस मरुद्गण हमारे अनुष्ठान में आगमन करें। उनकी प्रसन्नता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ॥८३॥

हे मरुद्गण! तुम सब लक्षणों के देखने वाले, समानदर्शी, प्रमाण-युक्त, सुसंगत, समान आभरण वाले, पैंतीस मरुद्गण आज हमारे इस यज्ञा-नुष्ठान में आगमन करें। यह आहुति उनकी प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो ॥८४॥

स्वयं तप, पुरोडाशादि का सेवन करने वाले, शत्रु संतापक, गृह-धर्म वाले, क्रीडा करने वाले, समर्थ और विजयशील बयालीस मरुद्गण आज हमारे इस यज्ञ में आगमन करें। उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ॥८५॥

इन्द्र दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो ऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतो ऽ-
नुवर्त्मानो ऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥८६॥
इमᳪ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियᳪ सदनमाविशस्व ॥८७॥
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥८८॥
समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ ऽ उदारदुपाᳪ शुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥८९॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गो ऽवमीद् गौर ऽएतत् ॥९०॥

जैसे मरुद्गण रूपी देव-सेना इन्द्र की प्रजा और अनुगामिनी हुई, वैसे ही देवता और मनुष्य रूपी सब प्रजा इस यजमान की अनुगामिनी हों ॥८६॥

हे अग्ने ! पृथिवी के मध्य में स्थित इस रसवान् और घृतधारा युक्त स्रुक का पान करो । तुम सब ओर गमनशील हो, इस मधुर घृत वाले स्रुक रूप कूप को प्रसन्नता से सेचन करो और चयन-याग वाले इस गृह में प्रविष्ट होओ ॥८७॥

यह घृत इन अग्नि का उत्पत्ति स्थान है, घृत ही इन्हें तीक्ष्ण करने वाला है, अग्नि इस घृत के ही आश्रित हैं, अतः मैं इसे अग्नि के मुख में घृत सींचने की इच्छा करता हूँ । हे अध्वर्यो ! हवि-संस्कार के पश्चात् अग्नि का आह्वान करो और जब यह तृप्त होजाँय तब इनसे हवियों को देवताओं के पास पहुँचाने का निवेदन करो ॥८८॥

माधुर्यमयी तरंगें घृत रूप समुद्र से उठकर प्राणभूत अग्नि से मिल कर अविनाशी रूप को प्राप्त होती हैं । उस घृत का गुप्त नाम देवताओं की जिह्वा है और वह घृत अमृत की नाभि है ॥ ८९॥

हम इस यज्ञ में घृत के नाम का उच्चारण करते हैं । हम अन्न से यज्ञ को धारण करते हैं । यज्ञ में ब्रह्मा विद्वान् इस स्तुति हुए घृत के नाम को सुनें । यह चार शृङ्ग वाला घृत यज्ञ के फल को प्रकट करने वाला है ॥९०॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो ऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो ऽअस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ऽआविवेश ॥९१॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र ऽएकꣳ सूर्य ऽएकञ्जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः ॥९२॥

एता ऽ अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा ऽ अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य ऽ आसाम् ॥९३॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते ऽ अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा ऽ इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥९४॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा ऽ अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ।९५।

इस फलदायक यज्ञ के ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु यह चार शृंग हैं, ऋक्, यजु और साम यह तीन पाद हैं, हविर्धान और प्रवर्ग्य दो शिर हैं। यह यज्ञ देवता सात छन्द रूप हाथों वाला, सवन रूप तीन स्थानों में बँधा हुआ, कामनाओं का वर्षक, शब्दवान्, पूज्य एवं दिव्य रूप वाला होकर इस मनुष्य लोक को व्याप्त करता हुआ स्थित है ॥९१॥

तीनों लोकों में स्थित असुरों द्वारा छिपाए हुए यज्ञ फल रूप घृत को देवताओं ने गौओं में अनुमान किया, तब उसके एक भाग को इन्द्र ने और दूसरे भाग को सूर्य ने प्रकट किया। उसके एक भाग को यज्ञ को सिद्ध करने-वाले अग्नि से स्वधा रूप अन्न के रूप में ब्राह्मणों ने प्राप्त किया ॥९२॥

हृदय रूपी समुद्र से सैकड़ों गति वाली यह वाणियाँ निकलतीहैं और घृत-धारा के समान अविच्छिन्न रहती हुई शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं होतीं। मैं इन वाणियों के मध्य में ज्योतिर्मान अग्नि को सब ओर से देखता हूँ ॥९३॥

शरीरस्थ मन से पवित्र हुई वाणियाँ नदियों के समान प्रवाह सहित भले प्रकार प्रवृत्त होती हैं और अग्नि की स्तुति करती हैं। इस घृत की तरंगें स्रुक से निकल कर अग्नि की ओर इस प्रकार दौड़ती हैं,जैसे व्याध के भय से मृग दौड़ते हैं ॥९४॥

घृत की महती धाराएं स्रुव से ऐसे गिरती हैं, जैसे शीघ्र वेग वाली नदी की वायु के योग से उठने वाली तरंगें निम्न प्रदेश में

श्रम से निकले पसीनों के द्वारा पृथिवी को सींचता है ॥६५॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्युः स्मयमानासो ऽ अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥९६॥

कन्या ऽ इव वहतुमेतवा ऽ उ ऽ अञ्ज्यञ्जाना ऽ अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा ऽ अभि तत्पवन्ते ॥९७॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥९८॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य ऽ आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऽ ऊर्मिम् ॥९९॥

घृत की धाराऐं अग्नि में गिरकर समिधाओं को व्याप्त करती हुई अग्नि में सुसंगत होती हैं। वे जातवेदा अग्नि उन घृत धाराओं की बारम्बार इच्छा करते हैं ॥९६॥

जिस भूमि में सोम का अभिषव किया जाता है और जहाँ यज्ञ होता है, घृत की धाराओं को वहीं जाती हुई देखता हूँ। वहाँ यह अग्नि में गिरती हुई उन्हें प्रसन्न करती हैं ॥९७॥

हे देवताओ ! इस श्रेष्ठ स्तुतियों और घृत वाले यज्ञ में आओ। यह मधुमयी घृत धाराऐं गिर रही हैं। तुम हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग लोक में ले जाओ। तुम हमें अनेक प्रकार के धन वाले कल्याण में स्थापित करो ॥९८॥

हे अग्ने। जो परम देवता समुद्र में, हृदय में और आयु में वर्तमान हैं, वे तुम सब प्राणियों के आश्रय रूप हो। घृत की जो तरंगें पणियों से संग्राम करने पर जलों के मुख में लाई गईं उन रसयुक्त तरङ्गों को मैं भक्षण करूँ ॥९९॥

॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

ऋषि—देवा, शुनःशेपः, गालव, विश्वकर्मा, देवश्रवदेववातौ, विश्वामित्रः, इन्द्र-इन्द्र, विश्वामित्रौ, शासः, जयः, कुत्सः, भरद्वाजः, उत्कीलः, उशनाः।

देवता—अग्निः, प्रजापतिः, आत्मा, श्रीमदात्मा, धान्यदात्मा, रत्नधनधनवानात्मा, अन्यादियुक्तात्मा, धनादियुक्तात्मा, अन्यादिविद्याविदात्मा, मित्रैश्वर्यसहितात्मा, राजैश्वर्यादियुक्तात्मा, पदार्थविदात्मा, यज्ञानुष्ठानात्मा, यज्ञांगवानात्मा, यज्ञवानात्मा, कालविद्याविदात्मा, विषमांकगणितविद्याविदात्मा, समांकगणितविद्याविदात्मा, पशुविद्याविदात्मा, पशुपालनविद्याविदात्मा, संग्रामादिविदात्मा, राज्यवानात्मा, विश्वेदेवाः; अन्नवान् विद्वान्; अन्नपतिः; रसविद्याविद्विद्वान्; सम्राड् राजा; ऋतुविद्याविद्विद्वान्; सूर्यः; चन्द्रमाः; वायुः; यज्ञः, विश्वकर्मा, बृहस्पतिः, इन्दुः, इन्द्रः, विश्वकर्माग्निर्वा।

छन्दः—शक्वरी, जगती, अष्टिः, पंक्तिः धृतिः, बृहती; त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; उष्णिक् गायत्री।

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मऽ आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

ओजश्च मे सहश्च मऽ आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि

च मे परूᳪषि च मे शरीराणि च मऽ आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥

ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

'इस यज्ञ के फलस्वरूप देवगण मुझे अन्न दें। पवित्रता, अन्न-दान की अनुज्ञा, अन्न विषयक उत्सुकता, ध्यान, संकल्प, स्तोत्र, वेदादि के सुनने की शक्ति, प्रकाश और स्वर्ग लोक की प्राप्ति करावें ॥१॥

मुझे इस यज्ञ के फल से प्राण, अपान, व्यान, मानस, संकल्प, वाह्य ज्ञान, वाणी-सामर्थ्य, मन, चक्षु, श्रोत्र, ज्ञानेन्द्रिय और बल की प्राप्ति हो ॥२॥

इस यज्ञ के फल स्वरूप, मुझे ओज, बल, आत्म ज्ञान, शरीर पुष्टि, कल्याण कवच, अंगों की दृढ़ता, अस्थि आदि की दृढ़ता, अंगुलि आदि की दृढ़ता, आरोग्यता, प्रवृद्धता और आयु की प्राप्ति हो ॥३॥

इस यज्ञ के फलस्वरूप मुझे श्रेष्ठता, स्वामित्व, वाह्यकोप, आंतरिक कोप, अपरिमेयत्व, मधुर जल, विजय-बल, महिमा, वरिष्ठता, दीर्घजीवन, वंश परम्परा, अत्यधिक धन-धान्य और विद्यादि गुण उत्कृष्टता से प्राप्त हों ॥ ४ ॥

यज्ञ-फल के रूप में मुझे सत्य, श्रद्धा, धन, स्थावर, जङ्गमयुक्त जगत, महत्ता, क्रीड़ा, मोद, अपत्यादि, ऋचाएं और ऋचाओं के पाठ द्वारा शुभ भविष्य की प्राप्ति हो ॥५॥

ऋत च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म ऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

मुझे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल रूप में स्वर्ग-प्राप्ति, रोगाभाव, व्याधियों का अभाव, औषधि, दीर्घ आयु, शत्रुओं का अभाव, अभय, आनन्द, सुख शैय्या, श्रेष्ठ प्रभात और यज्ञ, दान आदि कर्मों से युक्त कल्याणकारी दिवस देवताओं की कृपा से प्राप्त हों ॥ ६ ॥

यज्ञ फल के रूप में मुझे नियंत्रण-क्षमता, प्रजा पालन सामर्थ्य, धन-रक्षा-सामर्थ्य, धैर्य, सब की अनुकूलता, सत्कार, शास्त्र-ज्ञान, विज्ञान-बल, जप यादि का सामर्थ्य, कृषि आदि के लिए उपयुक्त साधन, अनावृष्टि का अभाव, धन-धान्यादि की प्राप्ति हो ॥ ७ ॥

-मुझे इस लोक का सुख प्राप्त हो। परलोक का सुख भी मिले प्रसन्नता देने वाले पदार्थ मेरे अनुकूल हों । इन्द्रिय सम्बन्धी सब सुखों के

उपभोग करूँ। मेरा मन स्वस्थ रहे। मैं सौभाग्यशाली रहकर धन प्राप्त करूँ। मुझे श्रेष्ठ निवास वाला घर और यश यज्ञ के फल स्वरूप प्राप्त हो ॥ ८ ॥

यज्ञ-फल के रूप में मुझे अन्न, दूध, घृत, मधु आदि की प्राप्ति हो। मैं अपने बांधवों के साथ बैठकर भोजन करने वाला होऊँ। मैं प्रिय-सत्य वाणी का प्रयोक्ता होता हुआ, कृषि-कर्म की अनुकूलता प्राप्त करूँ। मैं विजयशील होकर शत्रु जेता बनूँ ॥ ९ ॥

यज्ञ-फल के रूप में मुझे सुवर्ण-मुक्तादि युक्त धनों की पुष्टि प्राप्त हो। मेरा शरीर पुष्ट हो। मैं ऐश्वर्य और प्रभुता को प्राप्त होता हुआ अपत्यवान्, धनवान् और गज, अश्व, गौ आदि वाला बनूँ। मेरे लिए सब प्रकार के अन्न आदि की प्राप्ति होती रहे ॥ १० ॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च मऽऋद्धं च मऽऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥
व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥
अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहश्च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥
अग्निश्च मऽआपश्च मे वीरुधश्च मऽओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशवऽआरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे भूतञ्च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१४॥
वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मऽएमश्च मऽइत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

यज्ञ के फल से और देवताओं की कृपा से मैं सब प्रकार के धनों का स्वामी होऊँ। मैं खेत आदि से युक्त भूमि को प्राप्त करूँ। मेरे यज्ञादि कर्म समृद्ध हों। अपने कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ रहूं। मैं सभी कठिनता साध्य कार्यों में सफलता प्राप्त करूँ ॥ ११ ॥

यज्ञ के फल से मैं व्रीहि धान्य, जौ, उरद, तिल, मूँग, चना, कांगनी, चावल, समा, नीवार, गेहूँ और मसूर आदि अन्नों को प्राप्त करूँ ॥१२॥

यज्ञ के फल से देवगण मुझे पाषाण, श्रेष्ठ मिट्टी, छोटे बड़े पर्वत, रेत, वनस्पति, सुवर्ण, लोहा, ताम्र, सीसा, रांग आदि की प्राप्ति करावें ॥१३॥

यज्ञ के फल से देवगण मुझे पार्थिव अग्नि की अनुकूलता, अन्तरिक्ष के जलों की अनुकूलता, गुल्म-तृण औषधि आदि की अनुकूलता को प्राप्त करावें। ग्राम्य पशु, जङ्गली पशु, विविध प्रकार के धन और पुत्रादि से मैं सब प्रकार सुखी होऊँ ॥ १४ ॥

यज्ञ के फल से देवगण मुझे गवादि धन, गृह सम्पत्ति, विविध कर्म और यज्ञादि का बल, प्राप्तव्य धन, इच्छित पदार्थ प्राप्त करावें। मेरी सभी कामनाएं देवताओं की कृपा से पूर्ण हों ॥ १५ ॥

अग्निश्च म ऽ इन्द्रश्च मे सोमश्च म ऽ इन्द्रश्च मे सविता च म ऽ इन्द्रश्च मे सरस्वती च म ऽ इन्द्रश्च मे पूषा च म ऽ इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

मित्रश्च म ऽ इन्द्रश्च मे वरुणश्च म ऽ इन्द्रश्च मे धाता च म ऽ इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म ऽ इन्द्रश्च मे मरुतश्च म ऽ इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा ऽ इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पृथिवी च म ऽ इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म ऽ इन्द्रश्च मे द्यौश्च म ऽ इन्द्रश्च मे समाश्च म ऽ इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म ऽ इन्द्रश्च मे दिशश्च म ऽ इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म ऽ उपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऽ ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म ऽ आश्विनश्च मे

प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥
आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऽ ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्
॥ २० ॥

यज्ञ के फल से मुझे अग्नि की अनुकूलता, इन्द्र की अनुकूलता सोम की अनुकूलता, सविता की अनुकूलता प्राप्त हो । सरस्वती, पूषा, बृहस्पति भी मेरे अनुकूल रहें ॥ १६ ॥

यज्ञ के फल से मैं मित्र देवता को अपने अनुकूल पाऊँ । इन्द्र और वरुण मेरे अनुकूल हों । धाता, त्वष्टादेव, मरुद्गण, विश्वेदेवा भी मेरे अनुकूल हों ॥ १७ ॥

यज्ञ के फल स्वरूप पृथिवी मेरे अनुकूल हो । इन्द्र मेरे अनुकूल हों । अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक भी मेरे अनुकूल हों वर्षा के अधिष्ठात्री देवता, नक्षत्र, दिशाएं आदि सब मेरे अनुकूल हों ॥ १८ ॥

यज्ञ के फल-स्वरूप अंशुग्रह, रश्मिग्रह, अदाभ्य ग्रह, निग्राह्य ग्रह, उपांशु ग्रह, अन्तर्याम ग्रह, ऐन्द्रवायव ग्रह, मैत्रावरुणग्रह, आश्विन ग्रह. प्रति प्रस्थान ग्रह, शुक्र ग्रह और मन्थी ग्रह सभी मेरे अनुकूल हों ॥१९॥

यज्ञ के फल-रूप आग्रयण ग्रह, वैश्वदेव ग्रह, ध्रुवग्रह. वैश्वानर ग्रह, ऐन्द्राग्न ग्रह, महावैश्वदेव ग्रह, मरुत्वतीय ग्रह, निष्केवल्य ग्रह, सावित्रग्रह, सारस्वतग्रह, पात्नीवतग्रह, हारियोजन ग्रह, यह सभी मेरे अनुकूल हों ॥२०॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म ऽ आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥
अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

व्रतं च म ऽ ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऽ ऊर्व-ष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽ एकादश च म ऽ एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽ एकविꣳशतिश्च म ऽ एकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च म ऽ एकत्रिꣳशच्च म ऽ एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

यज्ञ के फल स्वरूप जुहू, चमस, वायव्य पात्र, द्रोणकलश, ग्रावा, अभिषवण फलक, पूतभृत, आधवनीय, वेदी, कुशा, अवभृथ स्नान और शम्युवाक पात्र मुझे प्राप्त हों ॥ २१ ॥

यज्ञ के फल स्वरूप अग्नि, प्रवर्ग्य, यज्ञ, चरु सत्र, अश्वमेध, पृथिवी, दिति, अदिति, स्वर्ग, विराट् पुरुष के अंगुलि आदि अवयव, शक्तियाँ, दिशाऐं आदि सब मेरे अनुकूल हों ॥ २२ ॥

यज्ञ के फल स्वरूप व्रत, ऋतु, तप, संवत्सर, अहोरात्र, उर्वष्ठी, वृहद्रथन्तर साम इन सबको देवगण मेरे अनुकूल करें ॥ २३ ॥

यज्ञ के फल-स्वरूप एक संख्यक स्तोम, तीन संख्यक स्तोम, पाँच

संख्यक स्तोम, सप्त संख्यक स्तोम, नौ संख्यक, ग्यारह संख्यक, तेरह संख्यक, पन्द्रह संख्यक, सत्तरह संख्यक, उन्नीस संख्यक, इक्कीस संख्यक, तेईस संख्यक, पच्चीस संख्यक, सत्ताईस संख्यक, उन्तीस संख्यक, इकत्तीस संख्यक और तेतीस संख्यक स्तोम मुझे प्राप्त हों ॥ २४ ॥

यज्ञ के द्वारा मुझे चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अट्ठाइस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चवालीस, अड़तालीस स्तोम प्राप्त हों ॥ २५ ॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म ऽ उक्षा च मे वशा च म ऽ ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२७॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन ऽ आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ।
इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऽ ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२८॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
स्तोमश्च यजुश्च ऽ ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च ।
स्वर्देवा ऽ अगन्मामृता ऽ अभूम प्रजापतेः प्रजा ऽ अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म्म साविषत् ॥ ३० ॥

यज्ञ के फल स्वरूप बछड़ा, बछिया, बैल, गौ आदि की मुझे प्राप्ति हो ॥ २६ ॥

यज्ञ के फल स्वरूप चार वर्ष का बैल, गौ, बंध्या गौ, गर्भघातिनी गौ, गाड़ा वहन करने वाला बैल, नवप्रसूता गौ आदि सब मुझे प्राप्त हों ॥ २७ ॥

अधिक अन्न के उत्पादन करने वाले चैत मास को स्वाहुत हो। जल क्रीड़ादि रूप वैशाख मास के निमित्त स्वाहुत हो। जल क्रीड़ा कारक ज्येष्ठ मास के निमित्त स्वाहुत हो। यज्ञ रूप आषाढ़ के निमित्त स्वाहुत हो। यात्रा निषेधक श्रावण के लिए स्वाहुत हो। ताप करने वाले भादों के निमित्त स्वाहुत हो। मोह उत्पन्न करने वाले आश्विन के निमित्त स्वाहुत हो। पाप नाशक कार्तिक के निमित्त स्वाहुत हो। विष्णु रूप मार्गशीर्ष के निमित्त स्वाहुत हो। जठराग्नि दीप्त करने वाले पौष मास के निमित्त स्वाहुत हो। माघ मास के निमित्त स्वाहुत हो। पालनकर्त्ता फाल्गुन मास के लिए स्वाहुत हो। बारहों महीनों के अधिष्ठात्री प्रजापति देवता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो, हे प्रजापति अग्ने! यह तुम्हारा राज्य है। तुम अग्निष्टोम आदि मंत्रों में सत्र के नियंता तथा इस सत्ता रूप यजमान के नियामक हो। मैं तुम्हें मधुधारा से सींच कर वृष्टि के निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ ॥ २८ ॥

इस यज्ञ के फल से आयु वृद्धि हो, यज्ञ के प्रसाद से हमारे प्राण रोग-रहित हों। यज्ञ के प्रभाव से हमारे चक्षु ज्योति वाले हों। हमारे कान और वाणी उत्कर्षता को प्राप्त करें। यज्ञ के प्रभाव से हमारा मन स्वस्थ हो। यज्ञ के फल स्वरूप हमारी आत्मा आनंदित हो। यज्ञ की कृपा से हम शास्त्रों से प्रीति करें। यज्ञ के प्रभावसे हमें परम ज्योति रूप ईश्वर की प्राप्ति हो। यज्ञ के कारण हम स्वर्ग को पावें तथा स्वर्ग-पृष्ठ पर पहुँच कर सुखी हों। यज्ञ के

प्रभाव से ही मैं महायज्ञ कर सकूँ। स्तोम, यजुः, ऋक्, साम, वृहत् साम और रथन्तर साम भी यज्ञ के प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त हों। इस यज्ञ के फल से हम देवत्व लाभ कर स्वर्ग में पहुँचें और मरण-धर्म से हीन होकर प्रजापति की प्रजा हों। उक्त सब देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती है, वे इसे ग्रहण करें ॥ २९ ॥

अन्न की अनुज्ञा में वर्तमान हम जिस अखण्डिता पृथिवी को वेद-वाणी द्वारा अनुकूल करते हैं, उस पृथिवी में यह समस्त संसार प्रविष्ट है। सब के प्रेरक सविता देव इस पृथिवी में हमारी दृढ़ स्थिति की प्रेरणा करें ॥ ३० ॥

विश्वे ऽ अद्य मरुतो विश्व ऽ ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा ऽ अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽ अस्मे ॥३१॥
वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः ।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥३२॥
वाजो नो ऽ अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऽ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥३३॥
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा ऽ आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥३४॥
सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः ।
सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥३५॥

हमारे इस यज्ञमें आज सभी मरुद्गण आगमन करें। सभी गणदेवता, रुद्र और आदित्य भी आवें। विश्वेदेवा भी हमारी हवियों के ग्रहण करने को आवें। सभी अग्नियाँ प्रदीप्त हों और हमें समस्त धनों की प्राप्ति हो ॥३१॥

हमारा अन्न सप्त दिशा और चार महान् लोकों को पूर्ण करे। इस यज्ञ में धन का विभाग किया जाने पर अन्न सभी देवताओं के सहित हमारा पालन करे ॥ ३२॥

अन्न का अधिष्ठात्री देवता हमें आज दान की प्रेरणा दे। ऋतुओं के

सहित अन्न सब देवताओं की यज्ञ स्थान में कामना करे। अन्न ही मुझे पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न करे और मैं अन्न के द्वारा समृद्ध होकर सब दिशाओं को वश करने में समर्थ हो सकूँ ॥ ३३ ॥

अन्न हमारे आगे तथा हमारे घरों में स्थित हो। यह अन्न देवताओं को हवि के द्वारा तृप्त करता है, अतः यही अन्न मुझे पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न करे और मैं अन्न के द्वारा पुष्ट होकर सब दिशाओं को वशीभूत करने वाला सामर्थ्य पाऊँ ॥३४॥

हे अग्ने ! इस पार्थिव रस से अपने आत्मा को मैं सुसंगत करता हूँ। तथा जलों से और औषधियों से भी मैं अपने आत्मा को सुसंगत करता हूँ। मैं औषधि और जल से सिंचित होकर अन्न का भजन करता हूँ ॥३५॥

पयः पृथिव्यां पय ऽ ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥३७॥
ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥
संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस ऽ आयुवो नाम ।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३९॥
सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४०॥

हे अग्ने ! तुम इस पृथिवी में रस को धारण करो, औषधियों में रस की स्थापना करो, स्वर्ग में और अंतरिक्ष में भी रस को स्थापित करो। मेरे लिए दिशा, प्रदिशा आदि सभी रस देने वाली हों ॥३६॥

सविता देवता की प्रेरणा से, अश्विद्वय की बाहुओं से, पूषा देवता के

हाथों से और सरस्वती सम्बन्धी वाणी के नियंता प्रजापति के नियम में वर्तमान रहता हुआ मैं, अग्नि के साम्राज्य द्वारा हे यजमान ! तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ ॥३७॥

सत्य से बली, सत्य रूप धाम वाले, पृथिवी के धारण करने वाले गंधर्व नामक अग्नि देवता इस ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति उनकी प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। सब जीवों को मुदित करने वाली मुद नाम्नी औषधियाँ उस गंधर्व नामक अग्नि की अप्सराऐं हैं। वे औषधियाँ हमारी रक्षा करें। यह आहुति उन औषधियों की प्रीति के लिए स्वाहुत हो ॥३८॥

दिन और रात्रि को मिलाने वाले सूर्य रूप गन्धर्व की सभी साम स्तुति करते हैं। वे सूर्य हमारी ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति सूर्य की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। परस्पर सुसंगत होने वाली आयुव नाम्नी मरीचि रश्मियाँ उन सूर्य की अप्सराऐं हैं, वे हमारी रक्षा करें। उनकी प्रसन्नता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥३९॥

यज्ञ के द्वारा सुख देने वाले, सूर्य की रश्मियों से आभावान् चन्द्रमा नामक गन्धर्व हमारी इस ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति उन चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। उन चन्द्रमा के श्रेष्ठ कान्ति वाले भेकुरि नामक नक्षत्र अप्सराऐं हैं, वे हमारी रक्षा करें। उन नक्षत्रों की प्रीति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥४०॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो ऽ अप्सरस ऽ ऊर्जो नाम।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा ऽ अप्सरस स्तावा नाम।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऽ ऋक्सामान्यप्सरस ऽ एष्टयो नाम।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त ऽ उपरि गृहा यस्य वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥४४॥
समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥४५॥

जो वायु शीघ्रगामी सर्वत्र व्याप्त और भूमिधारी हैं, वह वायु नामक गन्धर्व हमारी ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति उन वायु देवता की प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो। प्राणियों के प्राण रूप रस नामक जल इन वायु की अप्सराएँ हैं, वे जल हमारी रक्षा करें। यह आहुति उनकी प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो ॥ ४१ ॥

स्वर्ग में गमनशील और प्राणियों का पालन करने वाला यज्ञ नामक गंधर्व हमारी ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति उन यज्ञ देवता की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो। यज्ञ और यजमान को स्तुति कराने के कारण स्तावा नाम्नी दक्षिणा, यज्ञ की अप्सराएँ हैं, वह हमारी रक्षा करें। यह आहुति दक्षिणा की प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो ॥ ४२ ॥

प्रजा का पालन करने वाला मन रूप गन्धर्व इस ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति मन की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो। अभीष्ट फल देने वाली एष्टि नाम की ऋक् और साम की ऋचाएँ मन की अप्सरा हैं, वे हमारी रक्षा करें। यह आहुति उनके लिए स्वाहुत हो ॥४३

हे प्रजापते ! तुम विश्व का पालन करने वाले हो, तुम स्वर्ग लोक में निवास करते हो। तुम हमारी इस ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों को महान् सुख प्रदान करो। यह आहुति प्रजापति की प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो ॥४४

हे वायो ! तुम समुद्र रूप अगाध जलों से आर्द्र रहनेवाले, नभ मंडल के निवासी, पृथिवी को वर्षा आदि के द्वारा आर्द्र करने वाले, इस लोक का और परलोक का सुख प्राप्त कराने वाले हो। तुम हमारे अभिमुख होकर अपने सहनशील प्रकाश को करो, जिससे हम दोनों लोकों का सुख प्राप्त कर सकें।

हे वायो ! तुम अंतरिक्ष में विचरणशील शुक्र ज्योति सम्पन्न मरुद्गण हो। तुम हमारे अभिमुख होकर अपना वहनात्मक प्रकाश करो, जिससे हम इहलौकिक और पारलौकिक सुख को पा सकें। हे वायो ! तुम अन्नों के उत्पन्न करने वाले इहलोक और परलोक का सुख देने वाले हो, अतः मेरे अभिमुख होकर दोनों लोकों का सुख प्राप्त कराने को अपना वहनशील प्रकाश प्रकट करो ॥ ४५ ॥

यास्ते ऽ अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो ऽ अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ ४६ ॥
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥
रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचᳬ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ४८ ॥
तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशᳬस मा न ऽ आयु प्रमोषीः ॥४९॥
स्वर्ण घर्मः स्वाहा । स्वर्णार्कः स्वाहा । स्वर्ण शुक्रः स्वाहा ।
स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा । स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥ ५० ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी जो दीप्ति सूर्य मंडल में विद्यमान रश्मियों द्वारा स्वर्ग को प्रकाशित करती हैं, अपनी उन समस्त रश्मियों से इस समय हमारी शोभा के लिए हमारे पुत्र पौत्रादि को यशस्वी तथा ख्याति योग्य करो ॥४६॥

हे इन्द्राग्ने ! हे बृहस्पते, हे देवताओ ! तुम्हारा जो तेज सूर्य मंडल में विद्यमान है और जो तेज गौओं और अश्वों में रमा हुआ है, तुम उन सभी तेजों से तेजस्वी होकर हमारे लिए भी तेज धारण करो ॥४७॥

हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों को तेजस्वी करो हमारे क्षत्रियों को तेजस्वी बनाओ, हमारे वैश्यों को तेजस्वी करो, हमारे शूद्रों में भी कान्ति स्थापित करो। मुझमें कान्तियों से भी बढ़कर कान्ति की स्थापना करो ॥ ४८॥

वेद मंत्रों द्वारा वंदित हे वरुण ! हविर्दान करने वाला यजमान दान के पश्चात् जो कुछ कामना करता है उस यजमान के अभीष्ट के लिए वेद-त्रय रूप वाणी के द्वारा स्तुति करता हुआ मैं ब्राह्मण तुमसे याचना करता हूँ। तुम इस स्थान में क्रोध रहित रहते हुए मेरे अभिप्राय को जानो और हमारी आयु को क्षीण न करो। हम किसी प्रकार क्षीणता को प्राप्त न हों ॥४६॥

दिवस के करने वाले आदित्य देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। सूर्य के समान ही यह अग्नि है, मैं इसे सूर्य में स्थापित करता हूँ। यह आहुति सूर्य देवता की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो। उज्ज्वल वर्ण के तेज से आदित्य की प्रीति के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। यह अग्नि स्वर्ग के समान है, मैं इस अग्नि को स्वर्ग रूप ज्योति में स्थापित करता हूँ। यह आहुति स्वर्ग रूप अग्नि के निमित्त स्वाहुत हो। सब देवताओं के रूप के समान तेजस्वी सूर्य हैं, मैं उन्हें श्रेष्ठ करता हुआ आहुति देता हूँ। उन सूर्य के निमित्त यह प्रदत्त आहुति स्वाहुत हो ॥५०॥

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणाऽ अधि नाकमुत्तमम् ॥५१
इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने ।
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽ ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५२
इन्दुर्दक्षः श्येन ऽ ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽ आ निषत्तो नमस्ते ऽ अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥५३॥
दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् ।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥ ५४ ॥
विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो-दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

स्वर्ग में उत्पन्न, श्रेष्ठ गति वाले, धूम के द्वारा महद् अग्नि को मैं

घृत से और बल से सुसम्पन्न करता हूँ। हम इसके द्वारा आदित्य के लोक को जाँय और फिर उसके भी ऊपर चढ़ते हुए दुःखों से शून्य नाक लोक को प्राप्त हों ॥ ५१ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारे यह दोनों पंख जरा रहित और उड़नशील हैं। अपने इन पंखों के द्वारा तुम राक्षसों को नष्ट करते हो। उन पंखों के द्वारा ही हम भी पुण्यात्माओं के उस लोक को प्राप्त हों, जिस लोक में हमारे पूर्व पुरुष ऋषिगण जा चुके हैं ॥ ५२ ॥

हे अग्ने ! तुम चन्द्रमा के समान आह्लादक, चतुर, श्येन के समान वेगवान्, सत्य रूप यज्ञ से सम्पन्न, जठराग्नि रूप से शरीरों को पुष्ट करने वाले, अपनी महिमा से महान्, अटल और ब्रह्मा के पद पर स्थित हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मुझे किसी प्रकार पीड़ित न करो ॥५३॥

हे अग्ने ! तुम स्वर्ग के मस्तक के समान तथा पृथिवी के नाभि रूप हो। तुम जलों और औषधियों के सार हो। विश्व के समस्त प्राणियों के जीवन और सबके आश्रयदाता हो। तुम सर्वत्र व्याप्त रहने वाले, स्वर्ग के मार्ग रूप हो। मैं तुम्हें बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ ५४ ॥

हे सूर्यात्मक अग्ने ! तुम सुषुम्ना नाड़ी में व्याप्त और सब प्राणियों के मूर्धा रूप से स्थित हो। तुम्हारा हृदय अन्तरिक्ष में और आयु जलों में है। तुम स्वर्ग से, मेघ से, अन्तरिक्ष से और पृथिवी के सकाश से, जहाँ कहीं जल हो, वहीं से लाकर श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो। मेघ को चीर कर जल प्रदान करते हुए तुम हमारी रक्षा करो ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः ।
तस्य न ऽ इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥ ५६ ॥
इष्टो ऽ अग्निराहुतः पिपर्त्तु न ऽ इष्टँ हविः ।
स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥
यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा ।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऽ ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥५८॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधि जातवेदा ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽ अत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥५६॥
एत जानाथ परमे व्योमन् देवा सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥

हे धन ! तुम हमारे इस यजमान के कामना रूप हो । हम से प्रीति रखने वाले इस यजमान के घर में आगमन करो । इच्छित फल का देने वाला यह यज्ञ भृगुओं और वसुओं द्वारा भले प्रकार सम्पादित हुआ है ॥५६॥

यज्ञ के करने वाले प्रिय अग्नि हवि द्वारा तृप्ति को प्राप्त होकर हमारे अभीष्ट को पूर्ण करें । यह स्वयं गमनशील हवि देवताओं के निमित्त गमन करें ॥ ५७ ॥

हे ऋत्विजो ! उस प्रजापति के कर्म का सम्पादन करते हुए तुम पुण्यात्माओं के धाम को प्राप्त होओ । यह सामग्री से सम्पन्न यज्ञ प्रजापति के निमित्त मन और बुद्धि के द्वारा तथा नेत्रादि इन्द्रियों के सहयोग से निर्मित हुआ है । अत जिस लोक में प्राचीन ऋषि गए हैं, उसी लोक में जाओ ॥ ५८ ॥

हे स्वर्ग ! जातवेदा अग्नि ने जिस यजमान को सुखमय यज्ञ का फल प्रदान किया है, उस यजमान को मैं तुम्हें सौंपता हूँ । हे देवगण ! यज्ञ की समाप्ति पर यजमान तुम्हारे पास आवेगा, विस्तृत स्वर्ग में आए हुए उस यजमान को तुम भले प्रकार जानो ॥ ५९ ॥

हे देवगण ! श्रेष्ठ स्वर्ग धाम में तुम निवास करते हो । इस यजमान को तुम जानो और इसके रूप को भी जानो । जब यह देवयान मार्ग से आगमन करे तब तुम इसके यज्ञ के फल रूप इसे प्रकाशित करो ॥६०॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे ऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥६१॥
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा ।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥
यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥
यत्र धारा ऽ अनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

हे अग्ने ! तुम सावधान होओ। चैतन्य होकर इस अभीष्ट पूर्ति वाले कर्म में यजमान से सुसंगत होओ। हे विश्वेदेवो ! तुम्हारे निमित्त कर्म करने वाला यह यजमान देवताओं के साथ रहने योग्य होता हुआ श्रेष्ठ स्वर्ग में चिरकाल तक रहे ॥ ६१ ॥

हे अग्ने ! तुम जिस बल के द्वारा सहस्र दक्षिणा वाले यज्ञ को प्राप्त करते हो और जिस बल से सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ को प्राप्त करते हो, उसी बल के द्वारा हमारे इस यज्ञ को देवताओं की ओर स्वर्ग में गमन कराओ ॥ ६२ ॥

हे अग्ने ! हमारे स्रुक की आधार दर्भमुष्टि, जुहू, वेदी, कुशा और ऋचादि से युक्त इस यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाने के लिए स्वर्ग लोक में ले जाओ ॥ ६३ ॥

हे विश्वकर्मात्मक अग्नि ! हमारे उस दान को स्वर्ग लोक में ले जाकर देवताओं में स्थापित करो। वह दान दीन दुखियों को जमाता, पुत्री, भगिनी आदि को धन देना, ब्राह्मण भोजन, कूप, बावड़ी आदि का निर्माण तथा यज्ञ में दी हुई दक्षिणा है ॥ ६४ ॥

यह विश्वकर्मात्मक अग्नि हमें स्वर्ग में, देवताओं के मध्य में स्थापित करें। जहाँ मधु की, घृत की और दूध, दही आदि की कभी भी क्षीण न होने वाली धाराऐं स्थित हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म ऽ आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥६६॥

ऋचो नामास्मि यजूँषि नामास्मि सामानि नामास्मि ।
ये ऽ अग्नयः पाञ्चजन्या ऽ अस्यां पृथिव्यामधि ।
तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ ६७ ॥
वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वावर्त्तयामसि ॥ ६८ ॥
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥
वि न ऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो ऽ अस्माँ ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥

जातवेदा, अर्चन के योग्य, यज्ञ रूप, तीन वेदों के लक्षण वाला जल का निर्माता, अविनाशी अग्नि जन्म से ही घृत के हवन करने वाले को देखने वाले हैं। अग्नि रूप मेरे नेत्र घृत हैं, मेरे मुख में हवि रूप अन्न है। मैं आदित्य रूप हूँ और पुरोडाश भी मैं ही हूँ ॥ ६ ॥

मैं ऋग्वेद नामक अग्नि हूं। मैं यजुर्वेद नामक अग्नि हूँ। मैं सामवेद नाम वाला अग्नि हूँ। इस पृथिवी पर मनुष्यों के हितकारी जो अग्नि हैं, हे चिति रूप अग्ने! उन अग्नियों में तुम श्रेष्ठ हो। तुम हमारे दीर्घ जीवन का आदेश दो ॥ ६७ ॥

हे इन्द्र! वृत्र हन्ता और शत्रुओं के हराने में समर्थ तुम्हारा हम बारम्बार आह्वान करते हैं ॥ ६८ ॥

हे इन्द्र! तुम अनेक बार आहूत किये गए हो। पाप में रहने वाला जो शत्रु दुर्वचन कहे, उसे हाथों से रहित करके पीस डालो। हे इन्द्र! वृद्धि को प्राप्त होते हुए देव-हिंसक वृत्र को गतिहीन करके मार डालो ॥६९॥

हे इन्द्र! युद्ध में हमारे शत्रुओं का पराभव करो। युद्ध की इच्छा करके सैन्य एकत्र करने वाले शत्रुओं को नीचा दिखाओ। जो शत्रु हमें क्लेश देना चाहें, *उन्हें घोर अन्धकार रूप नरक की प्राप्ति कराओ* ॥७०॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽ आजगन्था परस्याः ।

सृकॅ सॅशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व
॥ ७१ ॥
वैश्वानरो न ऽ ऊतय ऽ आ प्र यातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो ऽ अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ऽ ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो ऽ अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥७३
अश्याम तं काममग्ने तवोती ऽ अश्याम रयिॅ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७४॥
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो ऽ अग्ने ॥७५॥
धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥७६॥
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

हे इन्द्र ! तुम विकराल हो । तुम्हारी गति वक्र है। पर्वत की गुफा में शयन करने वाले सिंह के समान अत्यन्त दूर के स्थानों से आकर शत्रु के देह में प्रविष्ट होने वाले, तीक्ष्ण वज्र से शत्रुओं को ताड़ित करो। इस प्रकार रणक्षेत्र को विशेष कर प्रेरित करो॥ ७१ ॥

सब प्राणियों का हित करने वाले अग्नि हमारी श्रेष्ठ स्तुतियों को सुनें और हमारी रक्षा करने को दूर देश से भी आगमन करें ॥ ७२ ॥

सब प्राणियों का हित करने वाले अग्नि को स्वर्ग के पृष्ठ में स्थापित आदित्य की बात पूछी गई है । अन्तरिक्ष में जल की कामना वाले से भी इनके सम्बन्ध में पूछा गया। जो समस्त औषधियों में प्रवेश करते हैं, उनके सम्बन्ध में पूछा गया कि यह कौन हैं? जो अग्नि अपने ताप से और प्रकाश के द्वारा सब प्राणियों का हित करते हैं, वह अध्वर्यु द्वारा बलपूर्वक मथे

जाने पर मनुष्यों द्वारा पूछा गया कि अरणी से निकाला जाने वाला यह कौन है ? यह अग्नि दिन, रात्रि और भय आदि से हमें हर प्रकार बचावें ॥ ७३ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा द्वारा हम उस अभीष्ट को पावें । तुम्हारी कृपा से हम श्रेष्ठ पुत्रादि तथा धन से सम्पन्न हों । हम तुम्हारी कृपा से अन्न की प्राप्ति करें । हे जरा रहित अग्ने ! हम तुम्हारे कभी भी क्षीण न होने वाले यश से स्थापित हों ॥ ७४ ॥

हे अग्ने ! हम खुली हुई मुट्ठी से दान देते हुए तुम्हारे समीप जाकर नमस्कार करते हुए आज यज्ञानुष्ठान में तत्पर हैं । हम एकाग्र मन से देवताओं का मनन करने वाले उपासक तुम्हारे निमित्त अभीष्ट हव्य प्रदान करते हैं । हे अग्ने ! तुम देवताओं को तृप्त करो ॥७५॥

लोकों को व्याप्त करने वाले देवता, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, बृहस्पति और श्रेष्ठ बुद्धि वाले विश्वेदेवा हमारे इस यज्ञ को उत्कृष्ट धाम स्वर्ग में स्थापित करें ॥७६॥

हे तरुणतम अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियाँ सुनो । हविदाता यजमान के सब पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब की रक्षा करो । इसके सब मनुष्यों की रक्षा करो ॥७७॥

॥ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—प्रजापतिः; भरद्वाजः; आभूतिः; हैमवर्चि.; प्रजापतिः; वैखानसः; शङ्खः ।

देवता—सोमः; इन्द्रः; अग्निः; विद्वांस, यज्ञः; अतिथ्यादयो लिङ्गोक्ताः; गृहपतिः; यजमानः; विद्वान्; इडा, पितरः, सरस्वती; पवित्रकर्त्ता; सविता; विश्वेदेवाः; श्रीः; अङ्गिरस; प्रजापतिः; वरुणः, अश्विनौ; आत्मा ।

छन्द—शक्वरी; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; गायत्री जगती; पंक्तिः, उष्णिक् अष्टिः ।

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन ।
मधुमतीं मधुमता सृजामि स ँ सोमेन ।
सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्तस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । १॥
परीतो षिञ्चता सुत ँ सोमो य ऽ उत्तम ँ हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥
वायो पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो ऽ अतिद्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥
पुनाति ते परिस्रुत ँ सोम ँ सूर्य्यस्य दुहिता ।
वारेण शाश्वता तना ॥४॥
ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज ऽ इन्द्रिय ँ सुरया सोमः सुत ऽ आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥५॥

हे सोम! तुम अत्यन्त स्वादिष्ट और तीक्ष्ण हो। तुम अमृत के समान शीघ्र गुण वाले और मधुर रस से पूर्ण हो। मैं तुम्हें अत्यन्त स्वादिष्ट करने के लिए अमृत के समान गुण वाले और मधुर सोम रस के साथ मिश्रित करता हूँ। हे सोमरस युक्त अन्न! तुम सोमरस ही हो। तुम अश्विद्वय के निमित्त परिपक्व किये गए हो। तुम सरस्वती के निमित्त परिपंक्व किये गए हो, तुम भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र देवता के निमित्त परिपक्व हुए हो ॥१॥

हे ऋत्विजो! श्रेष्ठ हविर्लक्षण युक्त जो सोम है अथवा जो सोम

यजमान का हितैषी होकर उसके निमित्त सुख धारण करता है, जलों के मध्य स्थित रहने वाले जिस सोम को अध्वर्युगण प्रस्तर द्वारा अभिषुत करते हैं, उस संस्कृत सोम को गौ के लाए हुए इस दूध से सिंचित करो ॥२॥

यह नीचे की ओर शीघ्रतापूर्वक जाता हुआ सोम वायु की पवित्रता से पवित्र होकर इन्द्र का श्रेष्ठ मित्र होता है। मुख की ओर से अत्यन्त वेग से निकलता हुआ सोम वायु के द्वारा पवित्र होता हुआ इन्द्र का मित्र बनता है। हे सोम तुम इन्द्र के लिए अत्यन्त प्रिय हो ॥३॥

हे यजमान! सूर्य की पुत्री श्रद्धा तुम्हारे इस निष्पन्न सोम को शाश्वत धन के कारण पवित्र करती है।

हे सोम! तुम दिव्य गुण वाले हो अतः अपने सारभूत रस से देवताओं को तृप्त करो। श्रेष्ठ रसरूप अन्न को यजमान के लिए प्रदान करो। अभिषुत हुए यह सोम ब्राह्मण क्षत्रिय जातियों के तेज और सामर्थ्य को प्रकट करते हुए अपने तीव्र गुण वाले रस से हर्ष प्रदान करते है ॥५॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यव चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये वर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽ एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥६॥

नाना हि वां देवहितᳪ सदस्कृतं मा सᳪ सृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम ऽ एष मा मा हिᳪसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥७॥

उपायमगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम्।
एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥८॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयिधेहि ॥९॥

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणं ऀसिऀहऀसेमं पात्वऀहसः ॥१०॥

हे सोम ! इस लोक में जैसे बहुत अन्न वाला कृषक सम्पूर्ण जौ को ग्रहण करने के लिए शीघ्र ही काटकर पृथक् करते हैं, वैसे ही तुम इस यजमान के लिए इससे सम्बधित भोज्य पदार्थों का सम्पादन करो। यह यजमान कुश पर बैठकर हविरूप अन्न के सहित वाणी रूप स्तुति के द्वारा यज्ञ करते हैं। हे पयोग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गए हो, मैं तुम्हें अश्विद्वय की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे पयोग्रह !! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें तेज की प्राप्ति के लिए इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे पयोग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत को मैं सरस्वती की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे पयोग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें ओज की कामना से इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे पयोग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें इन्द्र देवता की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे पयोग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें बल प्राप्ति की इच्छा से इस स्थान में स्थापित करता हूँ ॥ ६ ॥

हे सुरा, सोम ! जिस कारण तुम दोनों की प्रकृति पृथक्-पृथक् की गई है, उस कारण तुम इस यज्ञ स्थान वेदी में भी पृथक्-पृथक् रहो। हे सुरा रूप रस ! तुम बल करने के कारण देवताओं द्वारा स्वीकार करने योग्य हो। यह सोम तुमसे भिन्न गुण वाला है, इसलिए वेदी में प्रविष्ट होते हुये इस सोम को हिंसित मत करो ॥७॥

हे प्रथम सुराग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत तेजस्वरूप हो। मैं तुम्हें अश्विद्वय की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे सुराग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मोद की कामना करता हुआ मैं तुम्हें इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे द्वितीय सुराग्रह ! तुम ओज रूप हो, मैं तुम्हें सरस्वती की प्रसन्नता के निमित्त उपयाम पात्र में ग्रहण करता हूँ। हे द्वितीय सुराग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें आनन्द की कामना से यहाँ स्थापित करता हूँ। हे तृतीय सुराग्रह ! मैं तुम्हें बल के निमित्त और इन्द्र की प्रसन्नता के

लिए उपयाम पात्र में ग्रहण करता हूँ। हे तृतीय सुराग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, महत्ता की कामना से मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥८॥

हे दुग्ध ! तुम तेज वर्द्धक हो, अतः मुझे तेज प्रदान करो। हे दुग्ध ! तुम वीर्य वर्द्धक हो, मुझे वीर्य प्रदान करो। हे दुग्ध तुम बलवर्द्धक हो। मुझे बल प्रदान करो। हे सुरारस ! तुम ओज के बढ़ाने वाले हो, अतः मुझे ओज प्रदान करो। हे सुरारस ! तुम क्रोध के बढ़ाने वाले हो, अतः शत्रुओं के निमित्त मुझे क्रोध दो। हे सुरारस ! तुम बल के बढ़ाने वाले हो, मुझे बल प्रदान करो ॥९॥

जो विषूचिका रोग व्याघ्रों और भेड़ियों की रक्षा करता है तथा श्येन पक्षी और सिंह की रक्षा करता है, वह विषूचिका रोग इस यजमान की भी रक्षा करे। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सिंह, भेड़िये आदि को विषूचिका रोग नहीं होता, उसी प्रकार इस यजमान को भी न हो॥१०॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।
एतत्तदग्ने ऽअनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया।
सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥११॥

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥१२॥

दीक्षायै रूपँ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि।
क्रयस्य रूपँ सोमस्य लाजाः सोमाँशवो मधु ॥१३॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥१४॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रँ सरस्वत्या ॥१५॥

हे अग्ने ! बालकपन में माता का दूध पीते हुए मैंने अपनी माता को

पैरों से ताड़ित किया था, अतः मैं अब तुम्हारी साक्षी में तीनों ऋणों से उऋण होता हूँ। मैंने अपने जानते हुए में माता पिता को कभी कोई कष्ट नहीं दिया। हे पयोग्रह! तुम संयोग में स्वयं समर्थ हो, अतः मुझे कल्याण से युक्त करो। हे सुराग्रह! तुम वियोग करने में स्वयं समर्थ हो, अतः मुझे पापों से वियुक्त करो ॥११॥

देवताओं ने इन्द्र के औषधि रूप सौत्रामणि यज्ञ को विस्तृत किया। भिषक् रूप अश्विद्वय ने और सरस्वती ने तीन वेदों वाली वाणी से इन्द्र में ओज-बल की स्थापना की ॥१२॥

नवोत्पन्न व्रीहि इस यज्ञ की दीक्षा के लिए होते हैं। नवीन जौ, प्रायणीय इष्टका रूप खीलें क्रीत सोम का रूप है। मधु और यह खीलें सोम के अंश के समान हैं ॥१४॥

व्रीहि आदिका मिश्रित चूर्णसर्जत्वक् आदि वस्तुऐं आतिथ्य रूप हैं। तीन रात्रि तक रखा गया अभिषुत सोमरस सुरा रूप होकर उपसद नाम वाला होता हुआ इष्टका रूप होता है ॥१४॥

इन्द्र से सम्बन्धित औषधि सरस्वती और अश्विद्वय द्वारा दोहन किया गया दूध और अभिषुत औषधि रस तीन दिन तक सुरा के साथ इन्द्र के निमित्त सींचा जाता है। वह क्रय किये हुए सोम का रूप है। वह सुरा रूप से खींचा जाने पर अश्विद्वय, सरस्वती और इन्द्र के निमित्त विभिन्न प्रकार से बनाया जाता है ॥१५॥

आसन्दी रूपँ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी।
अन्तरऽ उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥१६॥
वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्।
यूपेन यूपऽ आप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना ॥१७॥
हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती।
इन्द्रायैन्द्रँ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥१८॥
प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।

प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥१६॥
पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीᳬष्या ।
छदोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥२०॥

आसन्दी यजमान के अभिषेक के लिए राजासन का रूप है। सुरा रखने का पात्र वेदी के समान है, दोनों का मध्य भाग उत्तरवेदी के समान है, सुरा को पवित्र करने वाली चालिनी इन्द्र के लिए औषधि के समान है ॥१६॥

वेदी से सोम की भले प्रकार प्राप्त होती है। कुशा से सोम सम्बन्धी कुशा प्राप्त होती है। इन्द्रिय से सोमात्मक इन्द्रिय और यूप से सोमात्मक यूप प्राप्त होता है। अग्नि द्वारा प्रकट हुई अग्नि की प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

जो अश्विनीकुमार इस यज्ञ में हैं, उनकी अनुकूलता से सोम सम्बन्धी हविर्धान की प्राप्ति होती है। सरस्वती की अनुकूलता से सोम सम्बन्धी आग्नीध्र प्राप्त होता है। इन्द्र के लिए, उनके अनुकूल सभा स्थान और पत्नी शाला स्थान गार्हपत्य रूप से मानना चाहिए ॥ १८ ॥

प्रैष नामक मन्त्रों के द्वारा प्रैषों को प्राप्त करता है, प्रयाज मन्त्रों से प्रयाजों को प्राप्त करता है, अनुयाजों से अनुयाजों को, वषट्कारों से वषट्कारों को और आहुतियों से आहुतियों को प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

पशुओं द्वारा पशुओं को, पुराडाशों से हवियों को, छन्दों से छन्दों को, सामधेनियों से सामधेनियों को, याज्यों से याज्यों को और वषट्कारों से वषट्कारों को प्राप्त करता है ॥ २० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवाप पयो दधि ।
सोमस्य रूपᳬ हविष ऽ आमिक्षा वाजिनं मधु ॥ २१ ॥
धानानाᳬ रूप कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
सक्तूनाᳬ रूपं वदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥
पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूप कर्कन्धूनि ।
सोमस्य रूपं वाजिनᳬ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो ऽ अनुरूपः ।
यजेति धाय्यारूपं प्रागाथा ये यजामहाः ॥ २४ ॥
अर्धऽऋचै रुक्थानाᳪ रूपं पदै राप्नोति निविद. ।
प्रणवै शस्त्राणाᳪ रूपं पयसा सोम ऽ आप्यते ॥ २५ ॥

धान्य, उदसंथ, सत्तू, हविषपंक्ति, दूध, दही, सोम का रूप है। उष्ण दुग्ध में दही डालने से उसका घन भाग मधु और अन्न हवि का रूप है ॥ २१ ॥

मधु वदरी फल धान्यों के समान है, गेहूँ हविष् पंक्ति के समान है, सम्पूर्ण वदरीफल सत्तुओं के समान है और जौ करम्भे के समान है ॥ २२ ॥

जौ दूध के समान, स्थूल वदरीफल दही के समान, अन्न सोम के समान और दधि मिश्रित उष्णदुग्ध सोम के पक्व चरु के समान हैं ॥ २३ ॥

आश्रावय स्तोत्र रूप है, प्रत्याश्राव अनुवाक का रूप है, 'यजन करो' यह शब्द धाय्या का रूप है, 'येयंजामहे' यह शब्द प्रगाथा का रूप है ॥२३॥

अर्द्ध ऋचाओं से उक्थ नामक शस्त्रों का रूप पाया जाता है, पदों से न्यूङ्खों की प्राप्ति होती है, प्रणवों द्वारा शस्त्रों का रूप और दूध से सोम का रूप पाया जाता है ॥ २५ ॥

अश्विभ्यां प्रातः सवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् ।
वैश्वदेवᳪ सरस्वत्या तृतीयमाप्तᳪ सवनम् ॥ २६ ॥
वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभि स्थालीराप्नोति ॥२७॥
यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथ ऽ आप्यते ॥२८॥
इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः ।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सᳪस्थाम् ॥२९॥
व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥३०॥

अश्विद्वय के द्वारा प्रातः सवन की प्राप्ति होती है, इन्द्र के द्वारा इन्द्रात्मक माध्यन्दिन सवन की प्राप्ति होती है और सरस्वती के द्वारा विश्वेदेवों से सम्बन्धित तृतीय सवन की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥

वायव्य सोम पात्रों द्वारा वायव्य पात्रों को प्राप्ति होती है। वेतस पात्र द्वारा द्रोण कलश को, आह्वानीय अग्नि के ऊपर शिक्य में स्थित शत छिद्र वाली द्वितीय सराधानी पात्र द्वारा आधवनीय को, सोम का अभिषव होने पर प्राप्त होता है। स्थालियों से स्थालियों को प्राप्त होता है ॥२७॥

यजुमन्त्रों से ग्रह और ग्रह से स्तोम प्राप्त होते हैं। स्तोम से अनेक रूप वाली स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। छन्दों के द्वारा उक्थ और कही जाने योग्य स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। साम के द्वारा साम गान और अवभृथों द्वारा अवभृथ स्नान प्राप्त होता है ॥२८॥

अन्नों से भक्ष्य पदार्थों की प्राप्ति होती है। सूक्तों द्वारा सूक्तों को, आशीर्वचनों द्वारा आशिष को, शंयु नाम से शयु को, पत्नी संयाज से पत्नी संयाजा को, समष्टि से समष्टि यजु को और स्थिति से मस्था को प्राप्त होता है ॥२६॥

हुत शेष-भक्षण पूर्वक चार रात्रि के व्रत से दीक्षा को प्राप्त होता है। दीक्षा से दक्षिणा को और दक्षिणा से श्रद्धा को प्राप्त होता है तथा श्रद्धा से सत्य को प्राप्त होता है ॥३७॥

एतावद्रूप यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम्।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥३१॥
सुरावन्तं वर्हिषद ७ सुवीर यज्ञ ७ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः।
दधानाः सोम दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमाना स्वर्का. ॥३२॥
यस्ते रस. सम्भृत ऽ ओषधीषु सोमस्य शुष्म. सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमान मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥
यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यम नोदिन्द्रियाय ।

इमं त ँ शुक्रं मधुमन्तमिदु ँ सोम ँ राजानमिह भक्षयामि ।३४।
यदत्र रिप्त ँ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो ऽ अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोम ँ राजानमिह भक्षयामि ॥३५॥

देवताओं और ब्रह्मा द्वारा किये गये सोम याग का इतना ही रूप है। इस सौत्रामणि यज्ञ में सुरा और सोम के अभिषुत होने पर इसका रूप पूर्ण सोम याग होता है ॥३१॥

नमस्कारों द्वारा स्वर्ग में स्थित देवताओं में सोम को धारण करते हुए, महान् ऋत्विज कुशा के आसन पर विराजमान देवताओं से युक्त सुरा-रस वाले सौत्रामणि नामक यज्ञ की वृद्धि करते हैं। ऐसे इस यज्ञ में हम श्रेष्ठ अन्न से सम्पन्न इन्द्र का यजन करते हुए आनन्द को प्राप्त हों ॥३२॥

हे सुरारस ! तुम्हारा जो सार औषधियों में एकत्र किया गया है तथा सुरा के सहित अभिषुत सोम का जो बल है, उस मद प्रदान करने वाले रस रूप सार से यजमान को, सरस्वती को, अश्विद्वय को और अग्नि को तृप्त करो ॥३३॥

अश्विद्वय असुर-पुत्र नमुचि के सकाश से जिस सोम को लाए, सरस्वती ने जिसे इन्द्र के बल-वीर्य के निमित्त औषधि रूप से अभिषुत किया, उस उज्वल मधुर रस वाले, महान् ऐश्वर्य सम्पन्न सुसंस्कृत राजा सोम का इस सोम याग में भक्षण करता हूँ ॥३४॥

रसयुक्त और भले प्रकार निष्पन्न सोम का जो अंश इस सुरारस में विद्यमान है, जिसे कर्मों द्वारा शोधित होने पर इन्द्र ने पान किया उस श्रेष्ठ सोम रस को मैं भी इस यज्ञ में श्रेष्ठ मन से पान करता हूँ ॥३५॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।
अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्।३६।
पुनंतु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पवित्रेण शतायुषा।
पुनंतु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः ।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥३७॥

अग्न ऽ आयू ँषि पवस ऽ आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३८॥
पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३९॥
पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ ऽ रनु ॥ ४० ॥

अन्न के प्रति गमन करते हुए पितरों के निमित्त स्वधा नामक अन्न प्राप्त हो। स्वधा के प्रति गमन करने वाले पितामह को स्वधा नामक अन्न प्राप्त हो। स्वधा के प्रति गमन करने वाले प्रपितामह को स्वधा संज्ञक अन्न प्राप्त हो। पितरों ने आहार भक्षण किया। पितर तृप्त होगए। पितर अत्यन्त तृप्त होकर हमें अभीष्ट प्रदान करते हैं। हे पितरो! आचमन आदि के द्वारा शुद्ध होओ ॥३६॥

सौम्यमूर्ति पितर पूर्ण आयु वाले गौ अश्वादि के बालों से निर्मित छन्ने से मुझे शुद्ध करें। पितामह मुझे पवित्र करें। प्रपितामह मुझे पवित्र करें। शतायु वाले पवित्र से पितामह मुझे पवित्र करें। प्रपितामह मुझे पवित्र करें। इस प्रकार पितरों के द्वारा पवित्र किया मैं अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त करूँ ॥३७॥

हे अग्ने! तुम स्वयं ही आयु प्राप्त कराने वाले कर्मों को करते हो, अतः हमें व्रीहि आदि धान्य रस प्रदान करो। दूर रहने वाले दुष्ट श्वानों के समान पापियों के कर्म में विघ्न उपस्थित करो ॥३८॥

देवताओं के अनुगामी पुरुष मुझे पवित्र करें। मन से सुसंगत बुद्धि मुझे पवित्र करें। हे अग्ने! तुम भी मुझे पवित्र करो ॥३९॥

हे अग्ने! तुम तेजस्वी हो, अपने पवित्र तेज के द्वारा मुझे पवित्र करो। हमारे यज्ञ को देखते हुए, अपने कर्म के द्वारा पवित्र करो ॥४०॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥४१॥

पवमानः सो ऽद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥४२॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
माँ पुनीहि विश्वतः ॥४३॥
वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्वयस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वय ँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४४॥
ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वाला में जो ब्रह्मरूप पवित्र तेज विस्तृत है, उसके द्वारा मुझे पवित्र करो ॥४१॥

जो देवता कर्माकर्म के ज्ञाता, सर्वज्ञ एवं पवित्र हैं, वह वायु रूप देवता हमको पवित्र करने में समर्थ हैं। वह मुझे आज अपने प्रभाव से पवित्र करें ॥४२॥

हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! तुम दोनों प्रकार से पवित्र पवित्रे द्वारा और अनुज्ञापूर्वक मुझे सब ओर से पवित्र करो ॥४३॥

यह वाणी सम्पूर्ण देवताओं का हित करने वाली एवं पवित्रता प्रद होती हुई वर्तमान है। यह अनेकों देहधारी इस वाणी की कामना करते हैं। इसकी अनुकूलता से यज्ञ स्थानों में आनन्दित हुए हम श्रेष्ठ धनों के स्वामी हों ॥४४॥

जो समान मर्यादा वाले, समान मन वाले हमारे पितर लोक में निवास करते हैं, उन पितरों के लोक में स्वधा रूप अन्न और नमस्कार प्राप्त हो। यह यज्ञ देवताओं के तृप्त करने में समर्थ हो ॥४५॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषा ँ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शत ँ समाः ॥४६॥
द्वे सृती ऽअशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।

ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥
इदं हविः प्रजननं मे ऽ अस्तु दशवीरं सर्वगणं स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो ऽ अस्मासु धत्त ॥४८॥
उदीरतामवर ऽ उत्परास ऽ उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ऽ ईयुरवृका ऽ ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४९॥
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा ऽ अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५०॥

जो प्राणियों में समानदर्शी, समान मन वाले, मेरे सपिंड प्राणी हैं, उनकी लक्ष्मी इस पृथिवी लोक में सौ वर्ष तक मेरे आश्रय में निवास करे ॥४६॥

श्रुति के द्वारा मरणधर्मा मनुष्य के देवताओं के गमन योग्य तथा पितरों के गमन योग्य दो मार्गों को सुना है। स्वर्ग और पृथिवी के मध्य में विद्यमान यह क्रियावान् संसार उन देवयान और पितृयान मार्गों के द्वारा प्राप्त होता है ॥४७॥

यह हवि प्रजा को उत्पन्न करने वाली है। पांच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियों की वृद्धि करने वाली है तथा सब अङ्गों की पुष्टि के देने वाली है। आत्मा को प्रसन्न करने वाली, प्रजा की वृद्धि करने वाली, पशुओं के बढ़ाने वाली, लोक में प्रतिष्ठा और सुख के देने वाली, अभयदायिका है। यह मेरे लिए कल्याण करने वाली हो। हे अग्ने! मेरी प्रजा की वृद्धि करो। हमारे निमित्त ब्रीहि आदि अन्न, दुग्ध बल धारण करें ॥४८॥

इहलोक और परलोक में स्थित पितर और मध्यलोक में स्थित सोमभागी पितर, ऊर्ध्वलोकों को प्राप्त हों। जो पितर प्राण रूप को प्राप्त हैं, वे शत्रु रहित होने के कारण उदासीन, सत्यज्ञाना पितर आह्वानों में हमारे रक्षक हों ॥४९॥

नवीन स्तुति वाले, सोम-सम्पादक आँगिरस, अथर्वा-वंशी और

भृगुवंशी हमारे पितर जो यज्ञों में पूजनीय हैं, उनकी श्रेष्ठ बुद्धि में तथा कल्याण करने वाले मनमें हम स्थित हों ॥५०॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥५१॥
त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न ऽ इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥५२॥
त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीꣳ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३॥
त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी ऽ आ ततन्थ ।
तस्मै त ऽ इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥
बर्हिषदः पितर ऽ ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त ऽ आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥५५॥

जो सोम रूप.द्रक वसिष्ठ वंशी ऋषि हमारे पूर्व पितर हैं, उन्होंने सोम-पान के निमित्त देवताओं का आह्वान किया था। वे इस समय सोम-पान के लिए बुलाए गए हैं। सोम की कामना वाले उन सब पितरों के सहित प्रसन्नता को प्राप्त हुए यम हमारी हवियों को इच्छा के अनुसार सेवन करें ॥ ५१ ॥

हे सोम ! तुम अत्यन्त दीप्त हो। तुम अपनी बुद्धि के द्वारा अकुटिल देवयान मार्ग के प्राप्त कराने वाले हो। हे सोम ! हमारे पितरों ने तुम्हारे आश्रय के द्वारा देवताओं के श्रेष्ठ अनुष्ठान रूप यज्ञ के फल को पाया है ॥५२॥

हे शोधक सोम ! हमारे पितरों ने तुम्हारे यज्ञादि कर्म को किया अतः तुम इस कर्म में लग कर उपद्रव करने वालों को यहाँ से दूर भगाओ। तुम हमको वीर पुरुषों और अश्वों के द्वारा सब प्रकार का धन दो ॥ ५३ ॥

हे सोम ! पितरों के साथ बात करते हुए तुमने स्वर्ग और पृथिवी क विस्तार किया है। हे सोम ! हम तुम्हारे निमित्त हवि का विधान करते हैं हम धनों के स्वामी हों ॥ ५४ ॥

हे पितरो ! तुम कुश के आसन पर विराजमान होते हो। तुम हमारी रक्षा के निमित्त अपनी कल्याणमयी मति के सहित यहाँ आगमन करो। तुम्हारी इन हवियों को हमने शोधित किया है, अतः तुम इनका सेवन करो। फिर इस सुख देने वाले अन्न के द्वारा तृप्त होकर तुम हमारे लिए हर प्रकार का सुख, अभय, पाप से मुक्ति आदि कर्मों को करो ॥ ५५ ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ २ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त ऽ इहागमिष्ठाः ॥ ५६ ॥
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त ऽ आ गमन्तु त ऽ इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥
आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५८॥
अग्निष्वात्ताः पितर ऽ एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवीᳬषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिᳬ सर्ववीरं दधातन ॥५६॥
ये ऽ अग्निष्वात्ता ये ऽ अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

कल्याण प्रदान करने वाले पितरों को मैं अभिमुख जानता हूँ। व्यापनशील यज्ञ के विक्रम रूप देवयान मार्ग को और अनेक गमन वाले पितृयान मार्ग को भी मैं जानता हूँ। कुश के आसन पर बैठने वाले जो पितर स्वधा के सहित सोम-पान करते हैं, वे इस स्थान में आवें ॥ ५६ ॥

हे पितरो ! इस यज्ञ में आओ। कुशाओं पर विजमान तथा हवि के निमित्त आहूत सोम के योग्य पितर हमारे आह्वान को सुनें। जैसे पिता पुत्रों से बोलते हैं, उसी प्रकार वे हम से बोलें और हमारे रक्षक हों ॥५७॥

सोम के योग्य तथा अग्नि जिनके दहन का आस्वादन करता है वे हमारे पितर देवताओं के गमन योग्य देवयान मार्ग से आवें। वे इस यज्ञ में स्वधा से प्रसन्न होकर हमें उपदेश देते हुए रक्षा करें ॥ ५८ ॥

हे अग्निष्वात्त ! पितर हमारे इस यज्ञ में आगमन करें और श्रेष्ठ

नीति वाले सभा स्थान में स्थित होकर कुशाओं पर स्थित सब प्रकार की हवियों का भक्षण करें । फिर वीर पुत्रादि युक्त धन की हम में सब ओर से स्थापना करें ॥ ५९ ॥

जो पितर अग्निदाह से और्ध्वदैहिक कर्म को प्राप्त हैं और जो पितर अग्नि दाह को प्राप्त नहीं हुए, वे सभी अपने उपार्जित कर्म के भोग से स्वर्ग में प्रसन्न रहते हैं । उन पितरों को यम देवता मनुष्य सम्बन्धी प्राणयुक्त शरीर को इच्छानुसार देते हैं ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य ऽ आशुः ।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६१ ॥
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिꣳसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व ऽ आगः पुरुषता कराम ॥६२॥
आसीनासो ऽ अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त ऽ इहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥
यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥
यो ऽ अग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य ऽ आ ॥ ६५ ॥

हम उन सत्य युक्त अग्निष्वात्त नामक पितरों को आहूत करते हैं। जो पितर चमस पात्र में सोम का भक्षण करते हैं, वे वेदाध्ययन युक्त पितर हमारे लिए सुख पूर्वक आह्वान के योग्य हों । हम उनकी कृपा से धनों के स्वामी हों ॥ ६१ ॥

हे पितरो ! तुम सब अपनी वाम जानु को झुका कर दक्षिण की ओर मुख करके बैठते हुए, इस यज्ञ की प्रशंसा करो । हमारे द्वारा किसी प्रकार अपराध हो जाय, तो भी हमारी हिंसा न करो । वह अपराध हम जान कर नहीं करते, भूल से करते हैं ॥ ६२ ॥

हे पितरो ! सूर्यलोक में बैठे हुए तुम हविदाता यजमान के निमित्त

धन को स्थापित करो। इसके पुत्रों को भी धन दो। इस यजमान के यज्ञ में आनन्द की उपस्थिति करो ॥ ६३ ॥

हे कव्य वहन करने वाले अग्निदेव ! तुम जिस हवि रूप अन्न के जानने वाले हो, उस वाणियों द्वारा सुनने योग्य हवि को सब ओर से देवताओं को प्राप्त कराओ ॥ ६४ ॥

जो कव्य वाहन अग्नि सत्य की वृद्धि करने वाले पितरों का यजन करते हैं, वही अग्नि देवताओं और पितरों को भी सब ओर से हवि अर्पित करते हैं ॥ ६५ ॥

त्वमग्न ऽ ईडित कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्य स्वधया ते ऽ अक्षन्नद्धि त्व देव प्रयता हवीᳪषि ॥ ६६
ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ ऽ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेद स्वधाभिर्यज्ञᳪ सुकृतं जुषस्व ॥ ६७ ॥
इदं पितृभ्यो नमो ऽ अस्त्वद्य ये पूर्वासो य ऽ उपरास ऽ ईयु ।
य पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनᳪ सुवृजनासु विक्षु ॥ ६८ ॥
अधा यथा न पितर परास प्रत्नासो ऽ अग्न ऽ ऋतमाशुषाणा ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशास क्षामा भिन्दन्तो ऽ अरुणीरप व्रन् ॥ ६९ ॥
उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्त समिधीमहि ।
उशन्नुशत ऽ आ वह पितॄन्हविषे ऽ अत्तवे ॥ ७० ॥

हे कव्य वाहक अग्ने ! ऋत्विजों द्वारा स्तुत किये गए तुम मनोहर गंध युक्त हवियों को वहन करते हुए स्वधा के द्वारा पितरों को प्राप्त कराओ। हे अग्ने ! तुम पवित्र हवियों का भक्षण करो ॥ ६६ ॥

इस लोक में वर्त्तमान पितर, इस लोक से परे स्वर्ग आदि लोकों में वर्त्तमान पितर और जिन्हें हम जानते हैं तथा जिन्हें हम नहीं जानते, वे सब जितने भी हैं, उन्हें हे अग्ने ! तुम ही जानते हो। अत स्वधा के द्वारा इस श्रेष्ठ अनुष्ठान का सेवन करो ॥ ६७ ॥

आज यह अन्न पितरों को प्राप्त हो। जो पूर्व पितर स्वर्ग में जा

चुके हैं, जो मुक्ति को प्राप्त होकर परब्रह्म में मिल चुके हैं, जो पृथिवी में स्थित अग्नि रूप ज्योति में रम गए हैं अथवा जो पितर धर्म रूप और बल से युक्त प्रजाओं में देह धारण कर आगए हैं, उन सभी प्रकार के पितरों को अन्न देते हैं ॥ ६८ ॥

हे अग्ने ! हमारे श्रेष्ठ सनातन यज्ञ को प्राप्त करने वाले पितरों ने जैसे देहान्त पर श्रेष्ठ कान्ति वाले स्वर्ग को प्राप्त किया है, वैसे ही यज्ञों में उक्थ पाठ करते और सब साधनों द्वारा यज्ञ करते हुए हम भी उसी कान्तिमान स्वर्ग को प्राप्त करें ॥ ६९ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी कामना करते हुए हम, तुम्हें स्थापित करते और यज्ञ करने की इच्छा से तुम्हें प्रज्वलित करते हैं । तुम हवि की कामना करने वाले पितरों को हवि-भक्षणार्थ आहूत करो ॥ ७० ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर ऽ इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ७१ ॥

सोमो राजामृतꣳ सुत ऽ ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७३ ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

हे इन्द्र ! जब तुम सभी युद्धों में विजयी हुए, तब तुमने नमुचि नामक राक्षस के शिर को समुद्र के फेन से काट डाला और उसे मारकर बल धारण किया ॥ ७१ ॥

निष्पन्न हुआ राजा सोम अमृत के समान होता है, उस समय यह अपने स्थूल भाग को त्याग कर रस रूप सार होता हुआ इस यज्ञ के द्वारा सत्य जाना गया है। इन्द्र का यह रस रूप अन्न शुद्ध, ओजदाता, पीने पर बल का उत्पन्न करने वाला अमृतत्व गुण वाला मधुर दुग्ध है ॥ ७२ ॥

जैसे अंगों के रस को प्राण पीता है, वैसे ही अपनी बुद्धि के द्वारा हंस जलों के रस रूप दुग्ध का पान करता है । इसी सत्य से यह सत्य जाना जाता है। यह पेय इन्द्रियों को बल करने वाला हो, इसका सार हीन स्थूल भाग इससे पृथक् हो ॥ ७३ ॥

निर्मल आकाश में विचरण करने वाले आदित्य ने जल युक्त सोम को छन्दों द्वारा पृथक् करके इसके रस रूप का पान किया। यह सत्य है। यह पेय इन्द्रियों को बल देने वाला हो । यह श्रेष्ठ रस इन्द्र के पीने के योग्य है ॥ ७४ ॥

प्रजापति ने परिस्रुत अन्न से सोम रस रूप दुग्ध का विचार कर पान किया और उससे क्षत्रिय को भी वश में किया। यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है । इन्द्र का यह अन्न रूप सोम रस श्रेष्ठ बल देने वाला, इन्द्रियों को बलिष्ठ करने वाला, अमृतत्व प्रदान करने वाला, मधुर दुग्ध है ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत ऽ उल्वं जहाति जन्मना ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं
पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं
पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥
वेदेन रूपे व्यपिवत्सुतासुती प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं
पयोऽमृतं मधु ॥ ७८ ॥
दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिवत् पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं
पयोऽमृतं मधु ॥७९॥
सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऽ ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥८०॥

एक द्वार में कार्यवश भिन्न पदार्थ निर्गत होता है। गर्भ सञ्चार के पश्चात् जरायु से आवृत्त गर्भ जन्म लेने के पश्चात् जरायु को त्याग देता है। यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है। इन्द्र का यह सोम रूप अन्न श्रेष्ठ ओजदाता, इन्द्रियों को बलिष्ठ करने वाला, अमृत रूप मधुर दुग्ध है ॥७६॥

प्रजापति ने सत्यासत्य को देखकर विचार पूर्वक पृथक् पृथक् स्थापित किया। असत्य में अश्रद्धा को और सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया। यह सत्य, सत्य से जाना जाता है। इन्द्र का यह अन्न ओज का देने वाला, इन्द्रियों को बलप्रद, अमृत के समान मधुर दुग्ध है ॥ ७७ ॥

प्रजापति के द्वारा प्रेरित धर्म और अप्रेरित अधर्म के रूप ज्ञान द्वारा पीता हुआ भक्ष्याभक्ष्य दोनों प्रकार के पदार्थों का भक्षण कर यह सत्य है। इन्द्र का यह सोमात्मक अन्न इन्द्रियों को बल कारक, अमृतत्व दाता मधुर दुग्ध है ॥ ७८ ॥

प्रजापति ने परिस्रुत रस को देखकर अपने बल से दूध और सोम का पान किया। यह सत्य है। इन्द्र का यह सोम रूप अन्न इन्द्रियों को बल-कारक, अमृतत्व का देने वाला मधुर दूध है ॥ ७९ ॥

अश्विद्वय, सवितादेव, सरस्वती, वरुण, मेधावी और क्रान्तदर्शी इन्द्र

के रूप को औषधि से पुष्ट करते हुए मन पूर्वक सौत्रामणि यज्ञ का सम्पादन करते हैं, जैसे सीसा और ऊन के द्वारा पट बुना जाता है ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतᳪ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवता सᳪरराणा ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माᳪसमभवन्न लाजा ॥८१
तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशोऽ अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥८२॥
सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥८३॥
पयसा शुक्रममृतं जनित्रᳪं सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऽ ऊवध्यं वातᳪं सब्वं तदारात् ॥८४॥
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ,
यकृत क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥८५

अश्विद्वय और सरस्वती इन तीनों ने कर्म के द्वारा इन्द्र का अविनाशी रूप सन्धान करते हुए, रोगों को विरुध रूखड़ी आदि से सम्पन्न किया और त्वचा को भी प्रकट किया तथा खीलें भी मास को पुष्ट करने वाली हुईं ॥ ८१ ॥

पृथिवी पर सोम रस को स्थापित करते हुए रुद्र के समान वर्तने वाले वैद्य अश्विनीकुमार और सरस्वती शरीर में वर्तमान इन्द्र के रूप को पूर्ण करते हैं। शष्पादि का चूर्ण घट के स्राव से अस्थियों को और गलन वस्त्र से मज्जा को परिपूर्ण करते हैं ॥ ८२ ॥

अश्विद्वय के सङ्ग सरस्वती मन के द्वारा विचार कर इन्द्र के सोना-चाँदी आदि धन के दर्शनीय रूप को बनाते हैं और परिस्रुत सुरा रस से उन्होंने लोहित को इन्द्र की देह रक्षार्थ पूर्ण किया। बुद्धि को प्रेरित करने वाला सर्जवगादि से रस को पूर्ण कर 'तसर' का साधन 'वेम' हुआ ॥८३

उक्त तीनों देवताओं ने दुग्ध के द्वारा उज्वल अमृत रूप एवं प्रजनन-

शील वीर्य की उत्पत्ति की और पास में स्थित होकर उन्होंने अज्ञान और कुमति को बाधा दी। आमाशय में गए उस अन्न को नाड़ी में प्राप्त और पक्वाशय में गए अन्न को सुरा रस से कल्पित मूत्र से मूत्र की कल्पना की ॥ ८४ ॥

भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र हृदय से हृदय को प्रकट करते हैं। सवितादेव ने इन्द्र के सत्य को पुरोडाश से प्रकट किया। वरुण ने इन्द्र की चिकित्सा करके तिल्ली और कंठ नाड़ी को प्रकट किया। ऊर्ध्व पात्रों द्वारा हृदय की दोनों पसलियों में स्थित हड्डियों और पित्त की कल्पना की ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो ऽ अन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार ऽ उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७॥
मुख ँ सदस्य शिर ऽ इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥
अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥८९॥
अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽ अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

मधु द्वारा सिक्त स्थाली आंत की सम्पादिका हुई। भले प्रकार दूध देने वाली गौ और पात्र गुदस्थानापन्न हुए। श्येन का पङ्ख हृदय के बाँए भाग के मांस का सम्पादक हुआ और आसन्दी कर्मों के द्वारा नाभि स्थान और उदर रूप हुई ॥ ८६ ॥

रस साधन कुम्भ ने कर्म के द्वारा स्थूलान्त्र को उत्पन्न किया। जिस कुम्भ के भीतर सोम-रस गर्भ रूप से स्थित है, वह घट जननेन्द्रिय रूप है। सुराधानीपात्र ने स्वधा रूप अन्न का पितरों के निमित्त दोहन किया ॥८७॥

सत्नाम पात्र इन्द्र का मुख हुआ, उसी पात्र से शिर की चिकित्सा हुई। जिह्वा का सम्पादन पवित्रे ने किया। अश्विद्वय और सरस्वती मुख में स्थित हुए। चप्य पायु इन्द्रिय हुई। बाल इसका चिकित्सक हुआ और वस्ति तथा वीर्य से जननेन्द्रिय हुई ॥ ८८ ॥

अश्विद्वय ने ग्रहों के द्वारा इन्द्र के अविनाशी नेत्र कल्पित किए। अजा दुग्ध परिपक्व हवि के द्वारा नेत्र सम्बन्धी तेज हुआ। गेहुओं से नेत्रों के नीचे के लोम और बेरों से नेत्रों को ढकने वाले ऊपर के लोम हुए। वे नेत्र के शुक्ल और काले रूप को ढकते हैं ॥ ८९ ॥

भेड और मेढा नासिका को बलप्रद हुआ। ग्रहों से प्राण का मार्ग अविनाशी हुआ। सरस्वती जौ के अंकुरों से व्यान वायु को प्रकट करती है। बदरी फलों द्वारा कुशा नासिका के लोम रूप हुई ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳪ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥९१॥
आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिᳪहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥९२
अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपᳪ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधाना ॥ ९३ ॥
सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्त्ति ।
अपाᳪ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳪ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥
तेजः पशूनाᳪ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥९५

इन्द्र का रूप बल के निमित्त उत्कृष्ट किया। श्रोत्र से सम्बन्धित ग्रहों द्वारा वाणी को सुनने वाली श्रोत्र इन्द्रिय हुई। जौ और कुशा नेत्र भौं के बालों का सम्पादन करने वाले हुए। मुख के द्वारा बेर के समान और मधु के समान लार आदि की उत्पत्ति हुई ॥ ९१ ॥

अपने देह में उपस्थ भाग और नीचे के भाग के लोम वृकलोम से कल्पित किए गए। दाढ़ी मूँछों के बाल व्याघ्र के लोम से और शिर के बाल, शोभामयी चोटी और अन्य स्थानों के बाल सिंह के लोम से कल्पित हुए ॥९२॥

इन्द्र के रूप को और सौ वर्ष पूर्ण आयु को चन्द्रमा की ज्योति से, अमृतत्व का सम्पादन करते हुए चिकित्सक अश्विद्वय ने आत्मा में अवयवों को संयुक्त किया और सरस्वती ने उस आत्मा का अवयवों के द्वारा समाधान किया ॥९३॥

अश्विद्वय के साथ सरस्वती इन्द्र को धारण करती है और जलों का अधिष्ठात्री देवता राजा वरुण जलों के सार भूत रस-द्वारा और साम के द्वारा संसार के ऐश्वर्य के निमित्त इन्द्र का पोषण करता है। इस प्रकार सरस्वती इंद्र को जन्म देती और अश्विद्वय द्वारा वरुण उसे पुष्ट करते हैं ॥९४॥

चिकित्सक अश्विद्वय और सरस्वती ने वीर्यवान् पशुओं के दूध और घृत तथा मधु मक्खियों के शहद रूप हव्य को लेकर शुद्ध दूध से तेज का मन्थन किया और परिस्रुत दूध से अमृत के समान भोगप्रद सोम का दोहन किया ॥९५॥

॥ विंशोऽध्यायः ॥

ऋषिः—प्रजापतिः, अश्विनौ, प्रस्कण्वः, आश्वतराश्विः, विश्वामित्रः, नृमेध पुरुषमेधौ, कौण्डिन्यः, काक्षीवत्सुकीर्तिः, आङ्गिरसः, वामदेवः, गर्गः, वसिष्ठः विदर्भिः, गृत्समदः; मधुच्छन्दाः।

देवता—सभेशः, सभापतिः, राजा, उपदेशकाः, विश्वेदेवाः, अध्यापकोपदेशकौ, अग्निः, वायुः, सूर्यः, लिंगोक्ताः, वरुणः, आपः, समिद्, सोम

इन्द्रः, परमात्मा, तनूनपाद्, उपासनक्ता, दैव्याध्यापकोपदेशकौ, तिस्रो देव्य, त्वष्टा, वनस्पतिः, स्वाहाकृतय, अश्विसरस्वत्येन्द्राः, इन्द्रसवितृवरुणाः अश्विनौ, सरस्वती।

छन्द—गायत्री, उष्णिक, धृति, अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, पंक्तिः त्रिष्टुप्, अष्टि, बृहती।

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि।
मा त्वा हि ँ सीन्मा मा हि ँसी ॥१॥
निषसाद धृतव्रतो वरुण पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥२॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥३॥
कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा।
सुश्लोक सुमङ्गलसत्यराजन् ॥४॥
शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो ऽअमृत ँ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥५॥

हे आसन्दी ! तुम क्षत्रियों की राज्यपद की स्थान रूप हो तथा उनकी एकता के लिए नाभि रूप हो। हे कृष्णाजिन ! तुम्हें आसन्दी पीड़ित न करे ॥१॥

हे यजमान ! इस उपवेशन के फल स्वरूप तुम इस देश के अरिष्ट-निवारण में और राज-कार्य में कुशल होओ। हे रुक्म ! अकाल मृत्यु से हमारी रक्षा कर। हे रुक्म ! विद्युत आदि के उत्पातों से मेरी रक्षा कर ॥२॥

हे यजमान ! सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय के बाहुओं से,

पूषा देवता के हाथों से और अश्विद्वय के चिकित्सा कर्म से, तेज तथा ब्रह्मवर्च के निमित्त मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। हे यजमान! सविता की प्रेरणा से, सरस्वती द्वारा सम्पादित औषधि से ओज के निमित्त और अन्न की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ। हे यजमान! सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विद्वय के बाहुओं से, पूषा के हाथों से और इन्द्र के सामर्थ्य से बल, समृद्धि और यश की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ ॥३॥

हे यजमान! तुम प्रजापति हो। तुम बहुतों में कौन से हो? प्रजापति पद को पाने के लिए और प्रजापति पद की प्रीति के लिए मैं तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ। हे श्रेष्ठ कीर्ति वाले, मंगलमय और सत्य राज्य से सम्पन्न! यहाँ आगमन करो ॥४॥

मेरा शिर श्रीसम्पन्न हो। मेरा मुख यशस्वी हो। मेरे बाल और दाढ़ी-मूँछ कान्तिवाले हों। मेरे श्रेष्ठ प्राण अमृत के समान हों। मेरे नेत्र ज्योतिमय हों। मेरे श्रोत्र विशेष सुशोभित हों ॥५॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा ऽ अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥६॥
बाहु मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥७॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरू ऽ अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥८॥
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥९॥
प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु।
प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥१०॥

मेरी जिह्वा कल्याणमयी हो। मेरी वाणी महिमामयी हो। मन में क्रोध न रहते हुए भी आवश्यकता पर क्रोधाश को प्राप्त हो। मेरे क्रोध को कोई हिंसित न कर सके। मेरी अंगुलियां सुख स्पर्श वाली हों। मेरे अङ्ग श्रेष्ठ आनन्द वाले हों। मेरे मित्र शत्रुओं को मारने में समर्थ हों ॥६॥

मेरे दोनों बाहु और इन्द्रियाँ बल से युक्त हों। मेरे दोनों हाथ बलवान् हों। मेरी आत्मा और हृदय क्षत्रियोचित कर्म करने में लगे रहें ॥७॥

मेरी पीठ, सब के धारण करने वाले राष्ट्र के समान है। उदर, स्कन्ध, ग्रीवा, उरु, हाथ, श्रोणी, जंघा आदि मेरे सभी अंग पोषण के योग्य हों ॥८॥

मेरी नाभि ज्ञान रूप हो। मेरी पायु ज्ञान युक्त संस्कार का आधार बने। मेरी पत्नी प्रजनन-समर्थ हो। मेरे कोष आनन्द से युक्त हों। मेरी इन्द्रियाँ, ऐश्वर्यमय, सौभाग्यरूप, जांघों और पाँवों द्वारा धर्म रूप वाली हों। मैं सब अंगों से धर्म रूप हुआ प्रजा के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त राजा हूँ ॥ ९ ॥

मैं क्षत्रियों में अधिक प्रतिष्ठित हूँ। मैं अपने राष्ट्र में प्रतिष्ठित हूँ। मैं अश्वों में स्वामित्व को प्राप्त हूँ। गौओं का अधिपति हूँ। अङ्गों से प्रतिष्ठित, आत्मा, प्राण, धन समृद्धि आदि में प्रतिष्ठा को प्राप्त हूँ। द्यावा-पृथिवी की प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ मैं यज्ञ में भी प्रतिष्ठित होता हूँ ॥१०॥

त्रया देवा ऽ एकादश त्रयस्त्रि ँ शा सुराधस ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे ।
देवा देवैरवन्तु मा ॥११॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीया सत्येन सत्य यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजू ँ षि सामभिः सामान्यृग्भिरृचः पुरोऽनुवाक्याभि पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा ऽ आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् म ऽ आनतिरागति ।

मा ँ सं म ऽ उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म ऽ आनतिः ॥१३॥
यद्देवा देवहेडनं देवाश्चकृमा वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥१४॥
यदि दिवा यदि नक्तमेना ँ सि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥१५॥

श्रेष्ठ धन वाले, बृहस्पति रूप पुरोहित वाले, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता, ग्यारह देवता तेंतीस देवता, सवितादेव की अनुज्ञा में वर्तमान देवताओं के सहित मेरी सब प्रकार से रक्षा करें ॥११॥

प्रथम देवता वसु, द्वितीय रुद्र देवताओं के साथ मिलकर मेरी रक्षा करें। तृतीय आदित्य सत्य के साथ, सत्य यज्ञ सहित यज्ञ, यजु के साथ यजु, साम मन्त्रों के साथ साम मन्त्र, ऋचाओं के साथ ऋचाएं, पुरोनुवाक्यों के साथ पुरोनुवाक्य, याज्यों के साथ याज्य, वषट्कारों के साथ वषट्कार, आहुतियों के साथ आहुतियाँ मेरी अभिलाषाओं को पूर्ण करें। सुवन के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ॥१२॥

मेरे सम्पूर्ण रोम प्रयत्नशील हैं, उससे मेरी त्वचा सब ओर से नम्रता को प्राप्त होती है। वह इस प्रकार की हो कि सब प्राणी देखते ही मेरे पास आवें। मेरा मांस सब प्राणियों को नमन कराने वाला हो। मेरी हड्डियाँ धन रूप हों। मेरी वसा संसार को झुकाने वाली हो ॥१३॥

हे देवताओ! हमसे जो अपराध देवताओं का होगया है, उस अपराध के पाप से और समस्त विघ्न रूप पापों से अग्निदेव मुझे मुक्त करें ॥१४॥

हमने दिन में या रात्रि में जो पाप किये हों, उन पापों से तथा अन्य सब पापों से वायु देवता मुझे मुक्त करें ॥१५॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽ एना ँ सि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥१६॥
यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।

यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥१७॥

यदापोऽअघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुण ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥१८॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्त स त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधय सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म ॥१९॥

द्रुपदादिव मुमुचान स्विन्न स्नातो मलादिव ।
पूत पवित्रेणेवाज्यमाप शुन्धन्तु मैनस ॥२०॥

हमने जाग्रत अवस्था में अथवा सोते हुए भी जो पाप किए हैं, उन पापों से तथा अन्य सब पापों से सूर्य मुझे भली प्रकार मुक्त करें ॥१६॥

ग्राम में, जंगल में, वृक्ष काटने या पशुओं को मारने से, असत्य भाषण से, इन्द्रियों के द्वारा जो पाप देवताओं, शूद्रों, वैश्यों आदि के प्रति किए हैं तथा जो पाप एक कर्म में किया है उन सब पापों का तुम निवारण करो ॥१७॥

हे जलाशय ! तुम अवभृथ नाम वाले, अत्यन्त गमनशील हो, सो भी इस स्थान में मन्दगति वाले होओ। ज्ञानेन्द्रिय द्वारा देवताओं का जो पाप किया है, उसे इस जलाशय में त्याग दिया है तथा हमारे ऋत्विजों द्वारा यज्ञ देखने को आने वाले मनुष्यों का असत्कार रूप जो पाप होगया है, वह भी इस यज्ञ में त्याग दिया है। हे अवभृथ यज्ञ ! हिंसा आदि अनिष्ट फल वाले कर्मों से तुम हमारी रक्षा करो। जो अहिंस्य व्यक्ति का हमने हनन रूप पाप किया है, उससे हे वरुण ! हमारी रक्षा करो ॥१८॥

हे सोम ! तुम्हारा जो हृदय समुद्र के जलों में स्थित है, मैं तुम्हें

वहीं भेजता हूँ। वहाँ तुम में औषधियाँ और जल प्रविष्ट हों। जल और औषधियाँ हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र के समान हों। जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, उनके लिए यह जल और औषधियाँ शत्रु के समान हों ॥१६॥

जल देवता मुझे पाप से पवित्र करें। जैसे खड़ाऊँ उतारते ही पृथक् होजाती है और जैसे पसीने वाला व्यक्ति स्नान करके मैल से छूट जाता है अथवा कम्बल रूप वस्त्र से छना हुआ घृत मैल से रहित होता है, वैसे ही जल मुझे मैल से रहित करे ॥२०॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥२१॥
अपो ऽ अद्यान्वचारिष ँरसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वा ऽ अग्न ऽ आगमं तं मा सँसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥२२॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् ।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥
अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो ऽ अहम् ॥२४॥
यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥२५॥

अन्धकारयुक्त इस लोक से परे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक को देखते हुए हम सूर्यलोक में स्थित सूर्य को देखते हुए श्रेष्ठ ज्योति रूप को प्राप्त होगए ॥२१॥

हे अग्ने ! आज मैंने जल-कर्म को पूर्ण किया है। अब मैं जलों के रस से युक्त हुआ हूँ। इस प्रकार तुम मुझे तेज, अपत्य और धन आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न करो ॥२२॥

हे समिध ! तुम दीप्ति की करने वाली और तेज रूप हो। मैं तुम्हारी

कृपा से ऐश्वर्य की समृद्धि को प्राप्त हूँ। हे समिध! तुम दीप्ति की करने वाली और तेज रूप वाली हो, मुझमें तेज की स्थापना करो। यह पृथिवी प्रदक्षिण आवर्त्तन युक्त है। उषाकाल और सूर्य इसे आवर्तित करते हैं। सम्पूर्ण जगत अस्थिर है। मैं अपने समस्त अभीष्ट की सिद्धि के निमित्त वैश्वानर ज्योति को प्राप्त हूँ अतः महान् अभीष्टों को प्राप्त करूँ। स्वयं उत्पन्न ब्रह्म के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो॥ २३॥

हे अग्ने! तुम कर्मों के स्वामी हो। यह समिधाएँ तुममें स्थापित करता हूँ। मैं यज्ञ में दीक्षित होकर कर्म और श्रद्धा को प्राप्त होता हुआ तुम्हें दीप्त करता हूँ॥ २४॥

जिस लोक में ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियाँ समान मन वाली होकर चलती हैं और जहाँ देवगण अग्नि के साथ निवास करते हैं, मैं उसी पवित्र स्वर्ग लोक को प्राप्त होऊँ॥ २५॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते॥ २६॥
अ॑ꣳशुना ते अ॑ꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः॥ २७॥
सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च।
सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः॥ २८॥
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ २९॥
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि॥ ३०॥

जिस लोक में इन्द्र और वायु देवता समान मन वाले होकर एक साथ घूमते हैं और जहाँ अन्नाभाव आदि के दुःख नहीं हैं, मैं उसी पवित्र लोक को प्राप्त करूँ॥ २६॥

हे औषधि रस! तुम्हारे अंश सोमांशों से मिलें। तुम्हारा पर्व सोम के

पर्व से मिले। तुम्हारी गन्ध और अविनाशी रस आनन्द की प्राप्ति के लिए सोम से सुसंगत हों ॥ २७ ॥

बल के धारण करने वाली महौषधियों का रस पीने से हर्ष युक्त हुए इन्द्र 'तुम किस-किस के हो' इस प्रकार पूछते हैं। इसलिए उन्हें ऋत्विगण दूध आदि से तथा ग्रहों से सींचते हैं और श्रेष्ठ सुवर्णादि से पवित्र करते हैं ॥ २८ ॥

हे इन्द्र ! इस प्रातः काल में तुम हमारे धान्य युक्त दधि सत्तू और मालपूए आदि से युक्त पुरोडाश तथा श्रेष्ठ स्तुति को ग्रहण करो ॥ २९ ॥

हे ऋत्विजो ! वृत्र रूप पाप के नाशक बृहत् साम को इन्द्र के निमित्त गाओ। यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं ने इसी साम गान के द्वारा इन्द्र के लिए अत्यन्त चैतन्यताप्रद और दीप्त तेज को प्राप्त कराया था ॥ ३० ॥

अध्वर्यो ऽ अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र ऽ आ नय।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥
यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका ऽ अधि श्रिताः।
य ऽ ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥३२॥
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण ऽ एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥
प्राणपा मे ऽ अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥
अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य।
उपहूत ऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

हे अध्वर्यो ! इस श्रेष्ठ सोम को ऊन के पवित्रे में लाओ और इन्द्र के पीने के लिए इसे शोधित करो ॥ ३१ ॥

जो परमात्मा सब प्राणियों का पालन करने वाला है और जिस में सभी लोक आश्रित हैं और जो महत्तत्व आदि का नियंता है, उसी परमात्मा की आज्ञाके अनुसार तथा उसी की कृपा से हे ग्रह ! मैं तुम्हें ग्रहण करता

हूँ ! परमात्म भाव को प्राप्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ ३२ ॥

हे ग्रह ! तुम मेरे प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र और इन्द्रिय की रक्षा करने वाले हो । मेरी वागिन्द्रिय सब औषधियों और मन के विषय से निवृत्त पाकर आत्मा में स्थापित हो ॥ ३४ ॥

हे ग्रह ! आज्ञा पाकर मैं अश्विद्वय से संस्कार किये और सरस्वती से प्रस्तुत किये तथा इन्द्र द्वारा संस्कृत और ऋत्विजों द्वारा आहूत तुझे भक्षण करता हूँ ॥ ३५ ॥

समिद्ध ऽ इन्द्र ऽ उपसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिᳬशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥३६॥
नराशᳬस. प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥
ईडितो देवैर्हरिवाँ ऽ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरा यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥३८॥
जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न ऽ इन्द्रः प्राचीनᳬ सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानᳬ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥
इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताᳬ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥४०॥

भले प्रकार दीप्त, उषाकाल से आगे चलने वाले प्रकाश से सूर्य के रूप से पूर्व दिशा को प्रकाशित करने वाले तैंतीस देवताओं के साथ बढ़ने वाले, हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्र ने वृत्रासुर को ताड़ित किया और मेघों के स्रोतों को खोला ॥ ३६ ॥

ऋत्विजों द्वारा स्तुत यज्ञ-रूप वीरता आदि गुण से युक्त यज्ञ-स्थान को जानता हुआ जठराग्नि रूप से शरीर का रक्षक, पशु सम्बन्धी वपन क्रिया युक्त मधु के समान स्वादिष्ट घृत के द्वारा हवि भक्षण करता हुआ यजमान सुवर्ण आदि द्रव्यों से सम्पन्न, कर्म का जानने वाला होकर नित्य प्रति इन्द्र का यज्ञ एवं पूजन करता है ॥ ३७ ॥

देवताओं द्वारा पूजित, हरि नामक अश्वों वाले सम्पूर्ण यज्ञों में स्तुतियों को प्राप्त, हवियों से ऋत्विजों द्वारा आहूत किये गए, अत्यन्त बली, शत्रु पुरों के तोड़ने वाले, राक्षसों के वंश को नष्ट करने वाले, वज्रधारी देवता इन्द्र हमारे यज्ञ को स्वीकार करने के लिए आगमन करें ॥ ३८ ॥

अश्वों से युक्त, अत्यन्त यशस्वी, प्रीति सम्पन्न इन्द्र देव पृथिवी की प्रदिशा में बनी हुई श्रेष्ठ बर्हिशाला को देखते हुए द्वादश आदित्यों और अष्टावसुओं से युक्त होकर महान् सुख रूप कुश के आसन का आश्रय लेते हुए हमारे इस प्राचीन यज्ञ स्थान में विराजमान हों ॥ ३९ ॥

जहाँ से वायु के जाने आने का मार्ग है, जहाँ मनुष्य शब्द करते हैं, वे यज्ञगृह के द्वार अभीष्टवर्षी वीर इन्द्र को प्राप्त हों, जिस प्रकार यजमान को पतिव्रता स्त्री और श्रेष्ठ कर्म वाले ऋत्विज् आदि के सहित एवं उत्सवों में सुविस्तृत और सजे हुए द्वार दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर सब ओर से खुलते हैं ॥४०॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥
दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्द्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥४२॥
तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना ऽ इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ॥४३॥
त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४॥
वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५॥

महती, जलवती श्रेष्ठ दोहन वाली, विस्तारवती, सूत्र के समान अद्भुत रूप से ग्रथित करने वाली सूर्य की प्रभा और रात्रि महान् वीर देवताओं में प्रमुख इन्द्र को श्रेष्ठ दीप्ति में स्थापित करती हैं ॥ ४१ ॥

बहुत प्रकार से यज्ञ करने वाले मनुष्य होता -पहले श्रेष्ठ वचन वाले यज्ञ के मूर्धा रूप इन्द्र की प्रतिष्ठा करते हैं । दिव्य होता वायु और अग्नि पूर्व दिशा में स्थित आह्वानीय अग्नि को हवियों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं ॥ ४२॥

दीप्तिमती, सर्वगामिनी सरस्वती भारती धारण पोषण वाली और स्तुतियों के योग्य, साध्वी स्त्रियों के समान इन्द्र की सेवा करती हैं। वे देवी हमारे यज्ञ को विघ्न रहित करती हुई दुग्ध और हवि से सम्पन्न करें ॥ ४३ ॥

अत्यन्त प्रशंसनीय, अर्चनीय; मनोरथों की वर्षा करने वाले, सब के उत्पत्तिकर्त्ता त्वष्टादेव यश के निमित्त सिंचनशील इन्द्र के लिए बल को धारण कर पूजा करते हैं। वे त्वष्टादेव यज्ञ के मूर्धा रूप आहवनीय देवताओं को तृप्त करें ॥ ४४ ॥

वनस्पति देवता यज्ञ के समान और आज्ञा प्राप्त के समान पशुओं के द्वारा आत्मा से युक्त करते हुए हवियों के द्वारा इन्द्र को तृप्त करते हैं और घृत द्वारा यज्ञ का सेवन करते हैं ॥ ४५ ॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर ऽ इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा ऽ अमृता मादयन्ताम् ॥४६॥
आ यात्विन्द्रोऽवस ऽ उप न ऽ इह स्तुत सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७॥
आ न ऽ इन्द्रो दूरादा न ऽ आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ ४९ ॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रँ हवेहवे सुहवँ शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥

शत्रुओं के प्रति गर्जनशील, वीर, वर्षक और शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले इन्द्र स्वाहाकार रूप घृतबिन्दु के द्वारा मनमें प्रसन्न होते हुए

अमृतमय दिव्य गुणों वाले सोम के द्वारा अत्यन्त आनन्दित हों ॥४६॥

जिस इन्द्र के प्राचीन कर्म स्वर्ग के समान कहे जाते हैं और जो किसी के द्वारा तिरस्कृत न होने वाले इन्द्र हमारे क्षात्र धर्म को पुष्ट करते हैं, वह स्तुतियों द्वारा समृद्ध होने वाले इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त हमारे पास आवें और हमारे इस अनुष्ठान में देवताओं के साथ बैठकर भोजन करें ॥ ४७ ॥

अभीष्टों को पूर्ण करने वाले, श्रेष्ठ, ओजस्वी, मनुष्यों का पालन करने वाले, छोटे बड़े युद्धों में शत्रुओं का हनन करने वाले वज्रधारी इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त दूर देश से आगमन करें। हमारे निकट कहीं हों, तो वहाँ से भी आवें ॥४८॥

अत्यन्त धनिक, महान् और वज्र धारण करने वाले इन्द्र हमारी रक्षा के लिए और हमें धन देने के लिए अभिमुख होकर, अपने हर्यश्वों के द्वारा आवें और हमारे इस यज्ञ में अन्न के समान भाग करने के लिए यहाँ स्थित हों ॥ ४९ ॥

मैं रक्षक इन्द्र का आह्वान करता हूँ। पालन कर्त्ता इन्द्र का भी आह्वान करता हूँ। मैं उन श्रेष्ठ वीर इन्द्र को बुलाता हूँ। वे इन्द्र सब कर्मों में समर्थ एवं बहुतों द्वारा स्तुत हैं। वे इन्द्र सब प्रकार से हमें कल्याण प्रदान करें ॥ ५० ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ ऽ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो ऽ अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५१॥
तस्य वयᳬ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ ऽ इन्द्रो ऽ अस्मे ऽ आराच्चिद् द्वेषः
सनुतयुर्योतु ॥ ५२ ॥
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ ऽ इहि ॥५३॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो ऽ अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।

स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूय पात स्वस्तिभि सदा न' ।।५४।।
समिद्धो ऽग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुत ।
दुद्दे धेनु सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ।।५५।।

भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र अश्वों द्वारा सुख देने वाले हों। वे धनवान् हमारे दुर्भाग्य को दूर कर सौभाग्य प्रदान करें। वे हमारे भयों को नष्ट करें जिससे हम श्रेष्ठ धनों के स्वामी और सुन्दर सन्तानों से युक्त हों ॥ ५१ ॥

हम इस कार्य का भले प्रकार निर्वाह करने वाले इन्द्र की कृपा बुद्धि को प्राप्त करें, उनके अनुग्रह पूर्ण मन में हम निवास करें। वे धनवान् और भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र हमसे दूर स्थित अर्थात् आने वाले दुर्भाग्य को भी अन्तर्हित करते हुए दूर कर दें ॥ ५२ ॥

हे इन्द्र ! तुम गंभीर शब्द वाले मोरों के समान रोम वाले अपने अश्वों के द्वारा यहाँ आगमन करो। तुम्हारे मार्ग में कोई भी विघ्न बाधक न हो। जैसे जाल रखने वाले शिकारी पक्षियों को जाल में फाँसते हैं, वैसे ही दुष्ट लोग तुम्हें न फाँस लें। यदि वे बाधक हों तो उन्हें मरुभूमि के समान लाँघ कर यहाँ चले आओ ॥ ५३ ॥

महर्षि वसिष्ठ के वंशज इस प्रकार के स्तोत्रों द्वारा ही अभीष्टों की वर्षा करने वाले, वज्रबाहु इन्द्र की पूजा करते हैं। वे हम में वीर पुत्रों और गवादि पशुओं से सम्पन्न धन को स्थापित करें। हे ऋत्विजो ! तुम भी अनेकों कल्याण करने वाले प्रयत्नों द्वारा हमारी सदा रक्षा करते रहो ॥५४॥

हे अश्विद्वय ! अग्नि देवता प्रदीप्त होगए, प्रवर्ग्य तप्त हो गया, अनेक प्रकार से सुशोभित राजा सोम का निष्पीडन किया गया। तृप्त करने वाली गौ के समान सरस्वती ने हमारे इस यज्ञ में श्रेष्ठ इन्द्रियों को बल देने वाले सोम का दोहन किया ॥ ५५ ॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती ।
मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम् ।
अधाद्यामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥
आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।
इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥ ५८ ॥
अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता ।
सरस्वती तमा भरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥
कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी ऽ उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

शरीरों की रक्षा करने वाले वैद्य अश्विद्वय और सरस्वती देवी मधुर रस के द्वारा लोकों को पूर्ण करती हैं। सोम के निष्पीडित होने पर वे उस मधुर रस को इन्द्र की बल-वृद्धि के निमित्त मार्गों द्वारा वहन करते हैं ॥५६॥

इन्द्र के निमित्त सरस्वती ने यज्ञ के साथ ही सोम और महौषधियों के कंद को धारण किया और भिषक् अश्विद्वय ने अभिषव के पश्चात् इस मधुर रस वाली औषधि को धारण किया ॥ ५७ ॥

इन्द्र का आह्वान करती हुई सरस्वती ने और अश्विद्वय ने इन्द्र के निमित्त नेत्रादि इन्द्रियों और वीर्य को स्थापित किया। फिर पशुओं के सहित समस्त अन्न, दधि दुग्धादि रस तथा उत्तम धन को भी धारण किया ॥ ५८ ॥

अश्विनीकुमारों के द्वारा महौषधियों के रस के सहित शुद्ध एवं संस्कृत सोम को नमुचि नामक राक्षस से लिया और उसे इन्द्र की रक्षा के निमित्त कुशों पर स्थापित किया ॥ ५९ ॥

अश्विद्वय के सहित सरस्वती और इन्द्र ने द्यावापृथिवी और छिद्र युक्त यज्ञ-द्वार तथा समस्त दिशाओं से कामनाओं का दोहन किया ॥ ६० ॥

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः ।
संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥६१॥

पात नो ऽ अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥६२॥
तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा ।
तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥
अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳरूपमधुः सुते ॥ ६४ ॥
ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्या मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

सरस्वती के साथ समान मति वाले अश्विद्वय ने श्रेष्ठ रूप वाले, दिन, रात्रि और संध्या कालों में इन्द्र को बलों से युक्त किया ॥ ६१ ॥

हे अश्विद्वय ! हमारी दिन में रक्षा करो । हे सरस्वती ! तुम हमारी रात्रि में रक्षा करो । हे दिव्य होताओ ! हे चिकित्सक अश्विद्वय ! सोमाभिषव कर्म में एकमत होते हुए तुम इन्द्र की भले प्रकार रक्षा करो ॥ ६२ ॥

मध्य में स्थित सरस्वती, स्वर्ग में स्थित भारती और पृथिवी में स्थित इडा इन तीनों देवियों ने अश्विनीकुमारों द्वारा महान् औषधियों के रस से सम्पन्न अत्यन्त आनन्ददायी सोम को इन्द्र के निमित्त संस्कृत किया ॥ ६३ ॥

सोम के अभिषुत होने पर हमारे इन्द्र में अश्विद्वय ने महौषधि, सरस्वती ने मधु रूप औषधि, त्वष्टादेव ने कीर्ति तथा श्री आदि की स्थापना की ॥ ६४ ॥

वनस्पति युक्त इन्द्र स्तुत हुए । समय समय पर महौषधियों के रस के सहित अन्न के रस को इन्द्र ने प्राप्त किया । अश्विद्वय के सहित सरस्वती ने गौ के समान होकर इन्द्र के लिए मधु का दोहन किया ॥६५॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥ ६६ ॥
अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।

आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् ।
स बिभेद वलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥
तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधाना ऽ अभ्यनूषत हविषा यज्ञ ऽ इन्द्रियैः ॥ ६९ ॥
य ऽ इन्द्र ऽ इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ।
स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ ७० ॥

हे अश्विद्वय ! तुम सरस्वती के सहित दुग्ध घृत आदि के द्वारा महौषधियों के रस से निष्पन्न मधुर सोम-रस को इन्द्र के निमित्त आरोपित करो। हे प्रयाज देवता ! तुम सरस्वती के सहित निष्पन्न मधु को धारण करो ॥ ६६ ॥

अश्विद्वय और सरस्वती ने बुद्धि पूर्वक नमुचि नामक राक्षस से इन्द्र के निमित्त श्रेष्ठ संस्कृत हवि बलकारी और पूजनीय धन को प्राप्त कराया ॥ ६७ ॥

अश्विद्वय और सरस्वती ने समान मति वाले होकर इन्द्र को हवियों से प्रवृद्ध किया तब उन इन्द्र ने नमुचि नामक असुर से विवाद किया और बल पूर्वक मेघ को विदीर्ण किया ॥ ६८ ॥

दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती ने एक साथ मिल कर उन इन्द्र में, यज्ञ में हवियों द्वारा बलों को धारण कराया और फिर उनकी स्तुति की ॥ ६९ ॥

सविता, वरुण, भग ने जिन इन्द्र में बल की स्थापना की, वे हवियों के स्वामी और भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र यजमान के लिए अभिलषित देकर सुखी करें ॥ ७० ॥

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।

सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥
अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।
हविषेन्द्रᳪ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥ ७३ ॥
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा ।
सरस्वती हविष्मती इन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र ने नमुचि नामक दैत्य से धन, बल और इन्द्रियों की सामर्थ्य को प्राप्त किया । सविता और वरुण देवताओं ने हविदाता यजमान के निमित्त धन और बल को धारण किया ॥ ७१ ॥

क्षात्र बल वाली सामर्थ्य, बल, सौभाग्य, लक्ष्मी और यश के सहित पराक्रम की यजमान में स्थापना करते हुए सविता देव और इन्द्र इस सौत्रामणि यज्ञ को व्याप्त करते हैं । इस प्रकार वरुण क्षात्र बल और इन्द्रिय-सामर्थ्य, सविता देव ऐश्वर्य तथा इन्द्र यश और पराक्रम के देने वाले हैं ॥ ७२ ॥

अश्विद्वय और सरस्वती ने गवादि पशुओं से इन्द्रियों की सामर्थ्य, अश्वों से ओज, बल और हवियों से इन्द्र को तथा यजमान को प्रवृद्ध किया । हवियों से तृप्त करना इन्द्र को समृद्ध करते और अश्वादि धनों से यजमान को समृद्ध करते हैं ॥ ७३ ॥

सुवर्णमय मार्गों में विचरण करने वाले, मनुष्याकृति वाले, सुन्दर रूप वाले वे अश्विद्वय, श्रेष्ठ हवि वाली सरस्वती और ऐश्वर्यवान् इन्द्र यह सब हमारे यज्ञ में आकर हमारी भले प्रकार रक्षा करें ॥ ७४ ॥

श्रेष्ठ कर्म वाले, श्रेष्ठ चिकित्सक, अश्विद्वय, काम्य धन का दोहन करने वाली सरस्वती और वृत्रहन्ता, सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ने यजमान के निमित्त इन्द्रिय सम्बन्धी सामर्थ्य को धारण कर उसे समर्थ बनाया ॥७५॥

युवᳪ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना: सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्द ँसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥
यस्मिन्नश्वास ऽ ऋषभास ऽ उक्षणो वशा मेषा ऽ अवसृष्टास ऽ आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८॥
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिँ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥७९॥
अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

हे अश्विद्वय और हे सरस्वती ! तुम समान मति वाले होकर नमुचि नामक दैत्य में विद्यमान महौषधियों के रस वाले ग्रह को ग्रहण कर पीते हुए इस यज्ञानुष्ठान में आकर इन्द्र के कृपा-पात्र इस यजमान की रक्षा करो ॥ ७६ ॥

हे इन्द्र ! दोनों अश्विनीकुमार रूव का हित करने वाले हैं । जब तुमने मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की स्तुतियों से असुरों से सहवास कर अशुद्ध सोम-रस को पिया और विपत्ति-ग्रस्त हुए तब उन अश्विद्वय ने उसी प्रकार तुम्हारी रक्षा की थी जिस प्रकार माता पिता अपने पुत्र की रक्षा करते हैं । हे इन्द्र ! जब तुम नमुचि वध आदि कर्म करके सोम-पान करते हो तब सरस्वती स्तुति रूप से तुम्हारी सेवा करती है ॥ ७७ ॥

अन्न-रस के पीने वाले, सोम की आहुति वाले, श्रेष्ठ मति वाले अग्नि के निमित्त मनु बुद्धि को शुद्ध करो । उस शुद्ध व्यवहार से ही अश्व, सेंचन-समर्थ वृषभ और वंध्या मेष आदि को सुशिक्षित किया जाता है ॥७८॥

हे अग्ने ! हम सब ओर से तुम्हारे मुख में हवि डालते हैं । जैसे स्रुवे में घृत और अधिषवण चर्म में सोम वर्तमान रहता है, वैसे ही मैं तुम्हारे मुख में आहुति देता रहता हूँ । तुम हमें श्रेष्ठ अन्न, वीर पुत्रादि,

प्रशस्त धन और सब लोकों में प्रसिद्ध यश को प्रदान करते हुए सौभाग्य-शाली बनाओ ॥ ७९ ॥

अश्विद्वय ने अपने तेज से नेत्र ज्योति, सरस्वती देवी ने प्राणों के सहित सामर्थ्य और इन्द्र ने वाणी की सामर्थ्य से इन्द्रिय बल को यजमान में स्थापित किया ॥ ८० ॥

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना ।
वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥
न यत्परो नान्तर ऽआदधर्षद् वृषण्वसू ।
दुःशᳬसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥
ता न ऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम सदैव सत्य कर्म करने वाले हो । तुम रुद्र रूप होकर पापियों को रुलाते हो । तुम गौओं से युक्त, अश्वों से युक्त वर्तमान होकर श्रेष्ठ मार्ग में और इस सोम-रस पान वाले अनुष्ठान में आगमन करो ॥ ८१ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम फल-रूप में वृष्टि-जल के देने वाले हो । जो हमारा सम्बन्धी अथवा असम्बन्धी मनुष्य निन्दा करने वाला हो वह हमारा शत्रु रूप दुष्ट हमको तिरस्कृत न कर सके, इसलिए तुम उसे तिरस्कृत करो ॥८२॥

हे सब के धारण करने वाले दोनों अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे लिए पीले रंग का सुवर्ण रूप धन प्राप्त कराओ । वह धन हमारे लिए वृद्धिकारक हो ॥ ८३ ॥

पवित्र करने वाली, अन्नों के द्वारा यज्ञ-कर्म की अधिष्ठात्री और

बुद्धि के कर्म रूप धन-सम्पन्नता वाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञ की कामना करें ॥८४॥

सत्य और प्रिय वचनों की प्रेरणा करने वाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञ को धारण करने वाली हैं ॥८५॥

महो ऽ अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥८६॥

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता ऽ इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥८७॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥८८॥

इन्द्रा याहि तूतुजान ऽ उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥८९॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ता ँ सोम्यं मधु ॥९०॥

अपने महान् कर्म के द्वारा देवी सरस्वती महिमामय जल को वृष्टि रूप से प्रेरित करती हैं। वे समस्त प्राणियों की बुद्धियों को प्रदीप्त करती हैं, उन सरस्वती देवी की हम स्तुति करते हैं। वे सरस्वती सब प्राणियों को सुमति में प्रतिष्ठित होकर उन्हें कर्मों में लगाती हैं ॥८६॥

अद्‌भुत कान्ति वाले हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य वाले हो। हमारे इस यज्ञ-स्थान में आगमन करो। तुम्हारी कामना करके यह सोम अंगुलियों के द्वारा दशा पवित्र से छाने जाकर तुम्हारे निमित्त ही रखे जाते हैं ॥८७॥

हे इन्द्र ! तुम अपनी बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर ही हमारे इस श्रेष्ठ

यज्ञ में आगमन करो। तुम्हारी कामना करते हुए ऋत्विज् सोम का संस्कार करने वाले यजमान की हवियों के समीप बैठे हुए प्रतीक्षा करते हैं ॥८८॥

हरि नामक अश्वों वाले हे इन्द्र ! तुम इन हवियों की ओर शीघ्रता पूर्वक आओ। ऋत्विजों के स्तोत्रों से आकर्षित होते हुए शीघ्र आगमन करो। सोम के अभिषुत होने पर हमारे इस सोम-रस रूप मधुर अन्न को और हवियों को अपने उदर में धारण करो ॥८९॥

सरस्वती देवी से समान मति वाले हुए अश्विद्वय इस मधुर और स्वादिष्ट सोम का पान करें और भले प्रकार रक्षा करने वाले वृत्रहन्ता इन्द्र भी इस मधुर रस वाले का भले प्रकार पान करें ॥९०॥

॥ अथोत्तरविंशति ॥

॥ एकविंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—शुनःशेपः, वामदेवः, गयस्फानः, गयः प्लातः, विश्वामित्रः, वसिष्ठः, आत्रेयः, स्वस्त्यात्रेयः ।

देवता—वरुणः, अग्निवरुणौ, आदित्याः, अदितिः, स्वर्ग्या नौः, मित्रावरुणौ, अग्निः, ऋत्विजः, विद्वांसः विश्वेदेवाः, रुद्राः, इन्द्रः, अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ताः, अश्व्यादयो लिंगोक्ताः, अश्व्यादयः, सरस्वत्यादयः, होत्रादयः, यजमानर्त्विजः, अग्न्यादयः, लिंगोक्तः ।

छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्, बृहती, अष्टिः, धृतिः, कृतिः, उष्णिक्, जगती शक्वरी ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युरा चके ॥१॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽ आयुः प्र मोषीः ॥२॥

त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसीष्ठाः ॥
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥

स त्वं नो ऽ अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳरराणो वीहि मृडीकꣳसुहवो नऽएधि ॥४॥

सुहीमू षु मातर ँ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तविक्षत्रामजरन्तीमुरूची ँ सुशर्माणमदिति ँ सुप्रणीतिम् ॥५॥

हे वरुण ! तुम मेरे इस आह्वान को सुनो और हमको सब प्रकार का सुख प्रदान करो । मैं अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हें यहाँ बुलाता हूँ ॥१॥

हे वरुण ! हविर्दान वाला यजमान धन पुत्रादि की जो कुछ भी कामना करता है, यजमान के उस अभिलाषित फल की स्तुति करता हुआ मैं तुमसे याचना करता हूँ । हे आराध्य ! इस स्थान में क्रोध न करते हुए तुम मेरी याचना को समझो और हमारी आयु को नष्ट न करो ॥२॥

हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञाता, यज्ञादि कर्मों से प्रधान, अत्यन्त हवि वाहक और कान्तिमान हो तुम हमसे वरुण देवता के क्रोध को दूर करो तथा हमसे सम्पूर्ण दुर्भाग्य आदि को पृथक् कर डालो ॥३॥

हे अग्ने ! तुम इस उषाकाल में समृद्ध करने को अपनी रक्षा-शक्ति के सहित हमारे निकट आकर रक्षा करो । हविर्दान करते हुए हमारे राजा वरुण को तृप्त करो । तुम हमारी इस सुखकारी हवि का भक्षण करो और भले प्रकार आह्वान वाले होओ ॥४॥

महान् यश वाली, श्रेष्ठ कर्मों की माता और सत्य रूप यज्ञ की पालिका, बहुत से रक्षा करने वाली, दीर्घ मार्ग में गमनशील और अजर तथा कल्याण रूप अदिति को रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥५॥

सुत्रामाणं पृथिवी द्यामनेहस ँ सुशर्माणमदिति ँ सुप्रणीतिम् ।
दैवी नाव ँ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥६॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् ।
शतारित्रा ँ स्वस्तये ॥७॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजा ँ सि सुक्रतू ॥८॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न ऽ आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु-देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृक ँ रक्षा ँसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१०॥

क्रोधहीना, पालिका, भले प्रकार शरण देने वाली, श्रेष्ठ निवास वाली, विस्तीर्ण द्यावा पृथिवी रूप दोष रहिता, श्रेष्ठ पतवार वाली, छिद्र रहित नौका पर कल्याण के निमित्त चढ़ते हैं ॥६॥

बिना छेद वाली, दोष-रहिता, अनेक पतवार वाली इस यज्ञ रूपिणी उत्तम नौका पर संसार रूप समुद्र से तरने के लिए चढ़ते हैं ॥७॥

हे श्रेष्ठ कर्म वाले मित्रावरुण देवताओ ! हमारे यज्ञ के मार्ग को घृत से सिंचित करो। पृथिवी की रक्षा के लिए खेतों को अमृत रूप मधुर जल के द्वारा सिंचित करो। सब लोकों को मधु से सींचो ॥८॥

हे युवकतम मित्रावरुण देवो ! तुम मेरे आह्वान को सुनकर हमारे जीवन पर्यन्त आयु के निमित्त अपने बाहुओं को फैलाओ। हमारे खेत को शुद्ध जल से सब प्रकार सिंचित करो और मुझे सब लोकों में विख्यात करो ॥६॥

देवताओं के कार्य के लिए यज्ञ में आहूत करने पर द्रुत गति से दौड़ने वाले, श्रेष्ठ प्रकाश से ज्योतिर्मान, सर्प, वृक और राक्षसों के मारने वाले अश्व हमारे लिए कल्याणकारी हों। वे हमसे हर प्रकार की नवीन और पुरातन व्याधियों को दूर करें ॥१०॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽ अमृता ऽ ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥

समिद्धो ऽ अग्निऽ समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥१२॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्द ऽ इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥१३॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो ऽ अमर्त्यः ।
अनुष्टुप् छन्द ऽ इन्द्रियं पंच विर्गौर्वयो दधुः ॥१४॥

सुपर्हिरग्नि पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यं ।
बृहती छन्द ऽ इन्द्रिय त्रिवत्सो गौर्वयो दधु ॥१५॥

हे अश्वो ! तुम मेधावी दीर्घजीवी, सत्य रूप यज्ञ के ज्ञाता सम्पूर्ण श्रेष्ठ धनों में हमें प्रतिष्ठित करो। तुम यजमान की अभीष्ट सिद्धि के लिए बुलाए जाते हो। तुम यहाँ से जाने से पहिले नौ बार सूँघे हुए मधुर हवि को पान करके तृप्त होओ। फिर देवयान में बैठकर अपने मार्ग से जाओ ॥११॥

महती समिधाओं द्वारा भले प्रकार प्रदीप्त और प्रज्वलित वरणीय अग्नि ने गायत्री छन्द के प्रभाव पूर्वक डेढ़ वर्ष की गौ के समान पूजनीय होने के कारण यजमान में बल और आयु की स्थापना की ॥१२॥

शुद्ध कर्म वाले, जलों के पौत्र रूप अग्नि ने शरीर के पोषक गो घृत, सरस्वती, उष्णिक छन्द और दिव्य हवि की वाहिका दो वर्ष की पूजिता गौ के समान होकर यजमान में बल और आयु को स्थापित किया ॥१३॥

प्रयाज देवता द्वारा स्तुत अग्निदेव ने अविनाशी देव रूप सोम, अनुष्टुप छन्द और ढाई वर्ष की गौ के समान पूजित होते हुए यजमान में बल और आयु की स्थापना की ॥१४॥

श्रेष्ठ बर्हि वाले पूषा युक्त प्रयाज देवता, विस्तृत कुश वाले अविनाशी अग्नि ने बृहती छन्द और तीन वर्ष की गौ के समान पूज्य होकर बल और आयु को यजमान में स्थापित किया ॥१५॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पति ।
पंक्तिश्छन्द ऽ इहेन्द्रिय तुर्यवाड् गौर्वयो दधु ॥१६॥
उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा ऽ अमर्त्या ।
त्रिष्टुप् छन्द ऽ इहेन्द्रिय पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥१७॥
दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा ।
जगती छन्द ऽ इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधु ॥१८॥
तिस्र ऽ इडा सरस्वती भारती मरुतो विश ।

विराट् छंद ऽ इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥१९॥
त्वष्टा तुरीपो ऽ अद्भुत ऽ इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द ऽ इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥२०॥

महती दिशाऐं, दीप्तिमती द्वार देवी, बृहस्पति, ब्रह्मा, पंक्तिछन्द और चार वर्ष की गौ ने पूजित होकर इस यजमान में बल और आयु को स्थापित किया ॥१६॥

महती, श्रेष्ठ रूप वाली दिन रात्रि, अमृतत्व गुण वाले विश्वेदेवा, त्रिष्टुप छन्द और पीठ पर भार वहन करने में समर्थ वृषभ ने इस यजमान में बल और आयु को स्थापित किया ॥१७॥

दिव्य होता रूप यह अग्नि और वायु इन्द्र के द्वारा सुसंगत होते हुए; वैद्य रूप अग्नि और वायु, जगती छन्द तथा छै वर्ष के वृषभ ने इस यजमान में बल और अवस्था को धारण किया ॥१८॥

इडा, सरस्वती और भारती यह तीनों देवियाँ इन्द्र की प्रजा, विराट् छन्द और पयस्विनी गौ ने इस यजमान में बल और वय की स्थापना की ॥१९॥

पूर्णता को प्राप्त, अद्भुत और महान् त्वष्टा देवता, तुष्टि और पुष्टि को प्रवृद्ध करने वाले इन्द्र और अग्नि, द्विपदाछन्द और सेंचन-समर्थ वृषभ इन पाँचों ने बल और अवस्था को स्थापित किया ॥२०॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द ऽ इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २१ ॥
स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्दा ऽ इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दः ॥ २२ ॥
वसन्तेन ऽ ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥
ग्रीष्मेण ऽ ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २४ ॥

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुता ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधु ॥ २५ ॥

हमको सुखी करने वाली वनस्पति और धन के प्रेरक सविता ककुपछन्द, वंध्या धर्म को प्राप्त तथा गर्भघात वाली गौ ने इस इन्द्र में बल और वय धारण किया ॥ २१ ॥

दुर्गों से भले प्रकार रक्षा करने वाला वरुण, स्वाहा कृत प्रयाज देवताओं के साथ औषधि रूप यज्ञ को इन्द्र के लिए करते हुए अतिच्छन्द महान् वृषभ, गौ ने बल और अवस्था की स्थापना की ॥ २२ ॥

त्रिवृत् स्तोम रथन्तर पृष्ठ से स्तुति को प्राप्त हुए वसन्त ऋतु के सहित अष्टावसु देवता ने इन्द्र में तेज के सहित हवि और आयु की स्थापना की ॥ २३ ॥

पञ्चदश स्तोम और बृहत्पृष्ठ से स्तुत हुए ग्रीष्म ऋतु के सहित रुद्र देवता ने इन्द्र में यश के द्वारा बल, हवि और आयु को स्थापित किया ॥२४॥

सप्तदश स्तोम और वैरूपपृष्ठ से स्तुत हुए वर्षा ऋतु के सहित आदित्य देवता ने इन्द्र में प्रजा के द्वारा ओज के सहित हवि और आयु को स्थापित किया ॥ २५ ॥

शारदेन ऽ ऋतुना देवा ऽ एकविँशऽ ऋभव स्तुता ।
वैराजेन श्रिया श्रियँ हविरिन्द्रे वयो दधु ॥ २६ ॥
हेमन्तेन ऽ ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुता ।
बलेन शक्वरी सहो हविरिन्द्रे वयो दधु ॥ २७ ॥
शैशिरेण ऽ ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिँशेऽमृता स्तुता ।
सत्येन रेवती क्षत्रँ हविरिन्द्रे वयो दधु ॥ २८ ॥

होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रँ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमै कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज ऽ इन्द्रियं पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्न-श्विनेन्द्राय वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

एकविंश स्तोम और वैराज पृष्ठ के द्वारा स्तुत हुए, लक्ष्मी और शरद् ऋतु से सम्पन्न ऋभु नामक देवताओं ने इन्द्र में श्री, हवि और आयु की स्थापना की ॥ २६ ॥

त्रिणव स्तोम और शाक्वरी पृष्ठ के द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए हेमन्त ऋतु के सहित मरुद्गण ने इन्द्र में बल के सहित हवि और अवस्था की स्थापना की ॥ २७ ॥

त्रयस्त्रिंश स्तोम और रेवती पृष्ठ द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए शिशिर ऋतु के सहित अमृत संज्ञक देवताओं ने इन्द्र में सत्य युक्त क्षात्र बल, हवि और अवस्था को धारण किया ॥ २८ ॥

आह्वानीय वेदी में प्रतिष्ठित दिव्य होता ने समिधा दान द्वारा अग्नि, अश्विद्वय, इन्द्र और सरस्वती के निमित्त आह्वानीय के स्थान में यजन किया। उस यज्ञ में धूम्र वर्ण अज, गेहूँ, वेर और प्रफुल्लित व्रीहि के सहित मधुर औषधि होती है। वह औषधि तेज, बल की देने वाली है। वह अश्विद्वय, सरस्वती, इन्द्र और होता इस पूजनीय दुग्ध रूप औषधि-रस के सहित सोम, मधु, घृत का पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी इस प्रकार की आज्याहुति से देवताओं को तृप्त करो ॥ २६ ॥

दिव्य होता ने प्रयाज देवता, सरस्वती और अश्विद्वय का यजन किया। उस यज्ञ में वदरीफल, इन्द्रजौ, व्रीहि, अज, मेष आदि इन्द्र के निमित्त माधुर्य युक्त यज्ञ-मार्ग के द्वारा बल का पोषण करने वाली औषधि हुई। परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु, घृत आदि का अश्विद्वय, सरस्वती, इन्द्र और होता पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी इसी प्रकार आज्याहुति के द्वारा देवताओं को तृप्त करो ॥ ३० ॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं

तोक्मभि पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१

होता यक्षदिडेडित ऽ आजुह्वान सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषज यवै कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासर पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

होता यक्षद् बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनु सरस्वती भिषग्दुह ऽ इन्द्राय भेषज पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्दुरो दिश कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्या न दुरो दिश ऽ इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनु सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषज७ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रिय पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

होता यक्षत्सुपेशसोपे नक्त दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषज७ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासर पय सोम परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

दिव्य होता ने मनुष्यों द्वारा स्तुतियों के योग्य, पालनकर्त्ता औषधि आदि को यजन किया। उस यज्ञ में औषधियों के रस, बेर, इन्द्र जौ, ब्रीहि, अज, मेष और भिषक् अश्विद्वय का उज्ज्वल रथ तथा घृत के सार को सरस्वती ने इन्द्र के निमित्त वीर्यप्रद औषधि कल्पित की। उन देवताओं ने परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु, औषधि, घृत का पान किया। हे मनुष्य होता! तुम भी इसी प्रकार आज्याहुति से देवताओं को तृप्त करो ॥ ३१ ॥

दिव्य होता ने इडा के द्वारा प्रशंसित होकर और उन्हें आहूत करते हुए बलवती के बल से बढ़ाते हुए सरस्वती, इन्द्र और अश्विद्वय का यज्ञ किया। उस यज्ञ में जौ, बेर, खील और भात से इन्द्र के लिए बल

करने वाली मधुर औषधि हुई। वे देवता परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु, घृत का पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी इसी प्रकार आज्याहुति से यज्ञ करो ॥ ३२ ॥

दिव्य होता ऊन के समान कोमल बर्हि को सत्य रूप भिषक् अश्विद्वय सरस्वती के लिए यज्ञ करें। उस यज्ञ में शिशु वाली घोड़ी चिकित्सक है तथा बछड़े वाली गौ भी चिकित्सक है। इन्द्र के निमित्त इस औषधि का दोहन करते हैं। दूध, सोम, मधु, घृत का वे देवता पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी इसी प्रकार घृताहुतियों वाला यज्ञ करो ॥ ३३ ॥

दिव्य होता दिशाओं के समान अवकाश युक्त झरोखों वाले तथा जाने आने के योग्य द्वार इन्द्र, सरस्वती और अश्विद्वय के लिए यज्ञ करें। इस यज्ञ में दिशा के समान द्वार अश्विद्वय के सहित विस्तीर्ण द्यावा पृथिवी इन्द्र के लिए औषधि हुए। सरस्वती ने गौ रूप होकर इन्द्र के लिए पवित्र तेज और बल को पूर्ण किया। दूध, सोम, मधु, घृत का वे देवता पान करें। हे मनुष्य! तू भी आज्याहुति वाला ऐसा ही यज्ञ कर ॥ ३४ ॥

दिव्य होता श्रेष्ठ रूप वाले दिन-रात्रि, सरस्वती और अश्विद्वय के लिए यज्ञ करें। उस यज्ञ में रात्रि-दिन में ज्योति के द्वारा मन और श्री सहित औषधि, जल और श्येन ने इन्द्र में कांति को पूर्ण किया। परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का वे देवता पान करें। हे मनुष्य होता! तू भी घृताहुति वाला इसी प्रकार का यज्ञ कर ॥ ३५ ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूष ँ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३६॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्यमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती महऽइन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषज ँ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८॥

होता यक्षद्वनस्पति ँ शमितार ँ शतक्रतुं भीमं न मन्यु ँ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भाम ँ सरस्वती भिषगिन्द्राय ऽ दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

होता यक्षदग्नि ँ स्वाहाज्यस्य स्तोकाना ँ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्या ँ स्वाहा मेष ँ सरस्वत्यै स्वाहा ऽ ऋषभमिन्द्राय सि ँ हाय सहस ऽ इन्द्रिय ँ स्वाहाग्निं न भेषज ँ स्वाहा सोममिन्द्रिय ँ स्वाहेन्द्र ँ सुत्रामाण ँ सवितारं वरुणं भिषजां पति ँ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषज ँ स्वाहा देवा ऽ आज्यपा जुषाणो ऽ अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

दिव्य होता ने अग्नि, वैद्य, अश्विद्वय और इन्द्र का यज्ञ किया। उस यज्ञ में दिन रात्रि अपने कर्म में सावधान सरस्वती ने औषधियों के सहित बल और वीर्य का सीसा द्वारा दोहन किया। परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत को वे देवता पीवें। हे मनुष्य तू भी इसी प्रकार घृताहुति वाला यज्ञ कर ॥३६॥

दिव्य होता ने इडा, भारती, सरस्वती इन तीनों देवियों को इन्द्र और अश्विद्वय के लिए यजन किया। कर्म वाले त्रिगुणात्मक तीन पशु, तीन रूप वाली वाणी से औषधि गुण रूप महान् बल को इन्द्र के लिए सरस्वती ने दोहन किया। परिस्रुत दूध, सोम, मधु और घृत को वे देवता पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी इसी प्रकार घृत युक्त आहुति से सम्पन्न यज्ञ करो ॥३७॥

दिव्य होता ने सुन्दर वृष्टि रूप वीर्य द्वारा वर्षक और हितैषी त्वष्टा देव को इन्द्र, अश्विद्वय और सरस्वती का यजन किया, तथा यत्नवान् वैद्य वृक और औषधि-रस युक्त श्री के सहित यज्ञ किया। जिससे औषधि,जल परिपक्व अन्नादि रूप हुए इस यज्ञ में तेज, वेग, बल और यश इन्द्र में प्रतिष्ठित हुए औषधियों का सार रूप दुग्ध, सोम, मधु, घृत का वे देवता पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी आज्याहुति वाले यज्ञ को इसी प्रकार करो ॥३८॥

दिव्य होता ने क्रोधयुक्त, विकराल, सैकड़ों कर्म वाले, क्रुद्ध करने वाले वनस्पति देवता को सूँघने वाले व्याघ्र के समान इन्द्र के लिए, अश्विद्वय और सरस्वती के लिए अन्न के द्वारा यजन किया। तब चिकित्सका सरस्वती ने क्रोध और बल का इन्द्र के लिए दोहन किया। दुग्ध, सोम, मधु, घृत का वे देवता पान करें। हे मनुष्यहोता! तुम भी आज्याहुति वाले श्रेष्ठ यज्ञ को इसी प्रकार करो ॥३९॥

दिव्य होता ने अग्नि का यजन किया और घृत की बूँदों को श्रेष्ठ कहा। स्निग्ध पदार्थ को उससे भिन्न और उत्तम कहा। अश्विद्वय के लिए छाग को और सरस्वती के लिए मेष को श्रेष्ठ बताया। सिंह के समान अत्यन्त बली और शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र के लिए बली ऋषभ को श्रेष्ठ कहा और हित करने वाले अग्नि को, बलकारी सोम को श्रेष्ठ कहा। रक्षक इन्द्र, सविता देव, भिषक् श्रेष्ठ वरुण को पुरोडाश देने के कारण श्रेष्ठ कहा। अभीष्ट औषधि को उत्तम कहा। घृतपान करने वाले व्यक्ति घृतपायी देवताओं को श्रेष्ठ कहें। औषधि पान करते हुए अश्विद्वय, सरस्वती, इन्द्र, दुग्ध, सोम, मधु, घृत का पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी घृत की आहुति वाला यज्ञ करो ॥४०॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेता ँ हविर्होतर्यज।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषेता ँ हविर्होतर्यज।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषेता ँ हविर्होतर्यज ॥४१॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्र ँ सुत्रामाणमिमे सोमा सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः।

सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ता ँ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥४२॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष ऽआत्तामद्य मध्यतो मेद ऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे ऽ अज्राणां यवसप्रथमाना ँ सुमत्क्षराणा ँ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत ऽ एवाश्विना जुषेता ँ हविर्होतर्यज ॥४३॥

होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविष ऽ आवयदद्य मध्यतो मेद ऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे ऽ अज्राणां यवसप्रथमाना ँ सुमत्क्षराणा ँ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेव ँ सरस्वती जुषता ँ हविर्होतर्यज ॥४४॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष ऽ आवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे ऽ अज्राणां यवसप्रथमाना ँ सुमत्क्षराणा ँ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषता ँ हविर्होतर्यज ॥४५॥

दिव्य होता ने अश्विद्वय के निमित्त यज्ञ किया। हे मनुष्य होता! तुम भी उसी प्रकार यज्ञ करो। दिव्य होता ने सरस्वती के निमित्त यज्ञ

किया। हे मनुष्य होता! तुम भी उसी प्रकार यज्ञ करो। दिव्य होता ने इन्द्र का यज्ञ किया। हे मनुष्य होता! तुम भी इन्द्र का यज्ञ करो ॥४१॥

दिव्य होता ने अश्विद्वय, सरस्वती और रक्षक इन्द्र के निमित्त यज्ञ किया। हे अध्वर्यो! ऋषभों द्वारा यह मनोहर तृण, अन्न, जौ, खील और पके हुए चावल आदि से सुशोभित दुग्ध से युक्त अमृत के समान मधुर रस वर्षक सोम तुम्हारे लिए प्रस्तुत हैं। अश्विद्वय, सरस्वती, वृत्र-हन्ता इन्द्र उन सोमों का सेवन करें। वे उस सोम के मधुर रस का पान कर तृप्त हों। हे मनुष्य होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥४२॥

दिव्य होता ने अश्विद्वय के लिए यज्ञ किया। वे दोनों हवि सेवन करें। यज्ञ से द्वेष करने वाले राक्षसों के आने से पहले ही पुरुषार्थ वाली इडा द्वारा स्वीकृत हवि का भक्षण करें। घास में स्थित नवीन अन्नों में स्वयं क्षरणशील और पाक समय में अग्नि द्वारा प्रथम आस्वदित हवि से अश्विद्वय जब तक तृप्त हों, तब तक भक्षण करें। हे मनुष्य होता! तुम भी घृताहुति द्वारा भले प्रकार यज्ञ करो ॥४३॥

दिव्य होता ने सरस्वती के निमित्त यज्ञ किया। यज्ञ से द्वेष करने वाले राक्षसों के आगमन से पूर्व ही पुरुषार्थ वाली इडा द्वारा स्वीकृत हवि का सरस्वती सेवन करें। घास में स्थित नवीन अन्न वाली, पाक समय में अग्नि द्वारा प्रथम आस्वादित हवि का तृप्ति पर्यन्त भक्षण करें। हे मनुष्य होता! तुम भी घृत आहुति वाले यज्ञ को विधि पूर्वक करो ॥४४॥

दिव्य होता ने इन्द्र के लिए यज्ञ किया। यज्ञ से द्वेष करने वाले राक्षसों के आने से पहले ही बलवती इडा द्वारा स्वीकृत हवि को इन्द्र ग्रहण करें। वह नवीन अन्न वाली, पकते समय अग्नि द्वारा आस्वदित हवि को प्राप्त होने तक सेवन करें। हे मनुष्य होता! तुम घृताहुति से यज्ञों को सम्पन्न करो ॥४५॥

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित ।
यत्राश्विनोश्छागस्य हविष प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऽऋषभस्य हविष प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितु प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पते प्रिया पाथाᳬसि यत्र देवानामाज्यपाना प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतु प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्र-भीयसऽइव कृत्वी करदेव देवो वनस्पतिर्जुषता ᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

होता यक्षदग्निᳬ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविष प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविष प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऽऋषभस्य हविष. प्रिया धामान्ययाडग्ने प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्ण प्रिया धामान्ययाट् सवितु प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पते प्रिया पाथाᳬस्य-याड् देवानामाज्यपाना प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतु प्रिया धामानि यक्षत् स्व महिमानमायजतामेज्या ऽ इष. कृणोतु सो ऽ अध्वरा जात-वदा जुषताᳬ हविर्होतर्यज । ४७ ॥

देवं बर्हि सरस्वती सुदेवमिन्द्रे ऽ अश्विना ।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वारो ऽ अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।
प्राण न वीर्य्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रिय वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४९ ॥

देवो ऽ उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।

वलं न वाचमास्य ऽ उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५० ॥

दिव्य होता ने वनस्पति का यज्ञ किया, जैसे पशु को रोकने वाली रस्सी से पशु को बाँधा जाता है । जहाँ अश्विद्वय की हवि के प्रिय स्थान हैं जहाँ इन्द्र के, सोम के, अग्नि के और इन्द्रात्मक हवि के प्रिय स्थान हैं, जहाँ सविता के, वरुण के, वनस्पति के, घृतपायी देवताओं के और होता अग्नि के प्रिय धाम हैं, वहाँ इनकी श्रेष्ठ स्तुति करते हुए वनस्पति देवता की स्थापना करे और वह वनस्पति देवता हवि-सेवन करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी घृताहुति वाला श्रेष्ठ यज्ञ करो ॥ ४६ ॥

दिव्य होता ने अग्नि का यज्ञ किया। इस अग्नि ने अश्विद्वय की हवि के प्रिय धाम का यजन किया। सरस्वती के, इन्द्र के अग्नि के, सोम के, सवितादेव के, वरुण के, वनस्पति के, -घृतपायी देवताओं के हवि सन्बन्धी प्रिय धामों का अग्नि ने यजन किया । उन्होंने सब प्रकार की कामना वाली प्रजा का और अपनी महिमा का भी यज्ञ किया । वह जातवेदा अग्नि यज्ञ कर्म करते हुए, हवियों का सेवन करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी घृता-हुति वाला श्रेष्ठ यज्ञ करो ॥ ४७ ॥

श्रेष्ठ देव रूप अनुयाज याज देवता ने कुशा के सहित सरस्वती, अश्विद्वय, और इन्द्र में तेज को स्थापित किया। दोनों नेत्रों में चक्षुओं को धारण किया । वे देवता धन-लाभ के लिए इन्द्र को ऐश्वर्यवान् करें। हे मनुष्य होता ! इन देवताओं ने जिस प्रकार इन्द्र को तेजस्वी किया, उसी प्रकार तुम यजमान को तेजस्वी करो ॥ ४८ ॥

दिव्य द्वार देवी यज्ञ के द्वारा अनुयाज देवताओं के सहित अश्विद्वय और सरस्वती ने इन्द्र में बल और नासिका में प्राण को धारण किया। वे धन लाभ के निमित्त इन्द्र को सम्पत्तिवान् करें । हे मनुष्य होता ! इन देवताओं ने जैसे इन्द्र को सम्पन्न किया, वैसे ही तुम यजमान को सम्पन्न करो ॥ ४६ ॥

दिव्य गुण वाली दिन-रात्रि के सहित दोनों अश्विनीकुमार और

रक्षा करने वाली सरस्वती ने इन्द्र में बल और मुख में वाणी को धारण किया। वे धन लाभ के लिए इन्द्र को सम्पन्न करें। हे मनुष्य होता! इन देवताओं के समान तुम भी यजमान को सब प्रकार सम्पन्न करो ॥ ५० ॥

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् ।
श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५१ ॥

देवी ऽ ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावत ।
शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्त ऽ इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५२ ॥

देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना ।
वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५३ ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।
शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥

देव ऽ इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्यश्विभ्यामीयते रथः ।
रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५॥

सुख का सेवन करने वाली, मंगलमयी द्यावापृथिवी, सरस्वती और अश्विद्वय ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया और इन्द्र को यश तथा कर्णेन्द्रिय में स्थापित किया। इनसे इन्द्र सम्पन्नता को प्राप्त हों। हे मनुष्य होता! इन देवताओं द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करने के समान तुम भी यजमान को सम्पन्न करो ॥ ५१ ॥

कामनाओं को पूर्ण करने वाली, भले प्रकार दोहनशीला पयस्विनी,

दिव्य, आह्वान रूपिणी सरस्वती और वैद्य अश्विद्वय रक्षा करते हुए, इन्द्र में ओज और हृदय में तेज आदि को धारण करते हैं। इस प्रकार इन्द्र के सम्पन्न होने के समान ही हे मनुष्य होता ! तुम यजमान को सम्पन्न करो ॥ ५८ ॥

देवताओं में दिव्य होता अनुयाज, वैद्य अश्विद्वय, सरस्वती ने इन्द्र के हृदय में वषट्कारों द्वारा कांति, बुद्धि और इन्द्रिय को धारण किया। हे मनुष्य होता ! इन्द्र जैसे सम्पन्न किये गए वैसे ही तुम यजमान को सम्पन्न करो ॥ ५३ ॥

इडा, सरस्वती और भारती, उन तीनों देवियों के सहित अश्विद्वय ने इन्द्र के निमित्त नाभि के मध्य में बल और इन्द्रिय को धारण किया। जैसे इन देवताओं ने इन्द्र को समृद्ध किया, वैसे ही हे होता मनुष्य ! तुम अपने यजमान को सम्पन्न करो ॥ ५४ ॥

ऐश्वर्यवान् तीन घर वाला त्वष्टा देव देवयज्ञ रूपी रथ, ओज, सौंदर्य, अमृतत्व, श्रेष्ठ उत्पत्ति और सामर्थ्य की इन्द्र के निमित्त स्थापना करें। उस नराशंस रथ को अश्विद्वय और सरस्वती वहन करते हैं। हे मनुष्य होता ! जैसे इन देवताओं ने इन्द्र को समृद्ध किया वैसे ही तुम यजमान को समृद्ध करो ॥ ५५ ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो ऽ अश्विभ्याँ सरस्वत्या सुपिप्पल ऽ इन्द्राय पच्यते मधु ।
ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योन-मिन्द्र ते सदः ।
ईशायै मन्युँ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५७ ॥

देवो ऽ अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथँ होताराविन्द्रमश्विना वाचा

वाचँ सरस्वतीमग्निँ सोमँ स्विष्टकृत् स्विष्ट ऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा ऽ आज्यपाः स्विष्टो ऽ अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिँ स्वधा वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५८ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागँ सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऽ ऋषभँ सुन्वन्नश्विभ्याँ सरस्वत्याऽइन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥ ५६ ॥

सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽ ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचताग्रृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥ ६० ॥

त्वामद्य ऽ ऋष ऽ आर्षेय ऽ ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य ऽ आ सङ्गतेभ्य ऽ एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत ऽ इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा ऽ आ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥ ६१ ॥

देवताओं का अधिष्ठित, सुवर्णपत्र युक्त अश्विद्वय और सरस्वती द्वारा श्रेष्ठ फल वाले पूजनीय वनस्पति देवता इन्द्र के निमित्त मधुर फल वाले होते हैं। वही वनस्पति हमें तेज, वेग, भीमित क्रोध और इन्द्रिय बल धारण करायें। हे मनुष्य होता! तुम भी वैसे ही यज्ञ करो ॥२६॥

हे इन्द्र! जल से उत्पन्न ओषधियों से संबंधित, ऊन की समान मृदु और सुख रूप तुम्हारी सभा में अश्विद्वय और सरस्वती द्वारा फैलाये गए बर्हि द्वारा तेज, क्रोध का ऐश्वर्य के निमित्त इन्द्रियों में स्थापन हुआ। हे मनुष्य होता! तुम भी यज्ञ करो ॥ २७ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ कर्म वाले, दिव्य अग्निदेव ने होता रूप मित्रावरुण अश्विद्वय, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सोम देवताओं का वाणी से यजन किया और

श्रेष्ठ कर्मा इन्द्र ने, सविता, वरुण, भिषक् वनस्पति ने भी यज्ञ किया, घृत-पायी देवताओं ने तथा अग्नि ने भी यजन किया। मनुष्य होता के लिए दिव्य होता ने यश, इन्द्रिय, बल, अन्न, पूजा और स्वधा की आहुति दी। सभी देवता अपने अपने भाग को ग्रहण करें। हे मनुष्य होता! तुम भी यज्ञ करो ॥ ५८ ॥

इस यजमान ने आज पकाने योग्य हवि का पाक करते हुए, पुरोडाशों को पक्व किया। अश्विद्वय की प्रीति के लिए, सरस्वती के लिए, इन्द्र के लिए उन-उन से संबंधित हवि से तृप्त किया। अश्विद्वय, सरस्वती और इन्द्र के निमित्त महौषधि-रस और सोम को संस्कृत कर होता रूप अग्नि का वरण किया ॥ ५९ ॥

वनस्पति देवता ने आज अश्विद्वय की हवि से सेवा की। सरस्वती और इन्द्र का भी हवि से सत्कार किया। उन देवताओं ने हवियों के सार भाग को ग्रहण किया। पुरोडाश द्वारा प्रवृद्ध हुए दोनों अश्विनीकुमार, रक्षक इन्द्र और सरस्वती ने औषधि-रस और सोम का पान किया ॥ ६० ॥

हे मंत्रद्रष्टा, ऋषियों के सन्तान और पौत्र रूप! इस यजमान ने सुसंगत हुए अनेक देवताओं द्वारा तुम को सब प्रकार से वरण किया। यह अग्नि देवताओं में वरणीय धन को देवताओं के लिए ग्रहण करते हैं। हे अग्ने! तुम्हारे जो दान देवताओं में हैं, उन्हें इस यजमान को प्रदान करो और अधिक दान देने को भी यत्नशील होओ। हे होता! तुम कल्याण के निमित्त प्रेरित हो। हे मनुष्य! तुम कथन योग्य सूक्तों का कथन करो ॥ ६१ ॥

॥ द्वाविंशोऽध्याय ॥

ऋषिः—प्रजापतिः, यज्ञपुरुषः, विश्वामित्रः, मेधातिथिः, सुतम्भरः, विश्वरूपः, अरुणत्रसदस्यूः, स्वस्त्यात्रेय ः।

देवता—सविता, विद्वांसः, अग्निः, विश्वेदेवाः, इन्द्रादयः, अग्न्यादयः, प्राणादयः, प्रयत्नवन्तो जीवादयः, पवमानः, प्रजापत्यादयः, विद्वान्

लिङ्गोक्ताः, दिशः जलादयः, वातादयः, नक्षत्रादयः, रस्यादयः, मासाः, वाजादयः, आयुरादयः, यज्ञः ।

छन्दः—पंक्तिः, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, धृतिः, अष्टिः, गायत्री, कृतिः, उष्णिक् ।

तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा ऽ आयुर्मे पाहि ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥१॥

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽ आयुषि विदथेषु कव्या ।
सा नो ऽ अस्मिन्त्सुत ऽ आ बभूव ऽ ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥२॥

अभिधा ऽ असि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता ।
स त्वमग्निं वैश्वानरᳫं सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम् । तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥४॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि । यो ऽ अर्वन्तं जिघाᳫंसति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्तः परः श्वा ॥ ५ ॥

हे सुवर्ण ! तुम अग्नि से सम्बन्धित होने से तेजस्वी हो । अग्नि के शुक्र रूप हो । तुम अमृतत्व युक्त और आयु की रक्षा करने वाले हो । अतः मेरी आयु की रक्षा करो । हे रशना ! सविता देव की आज्ञा में वर्तमान मैं अश्विदय की भुजाओं और पूषा देवता के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

यज्ञ कर्मों में कुशल कवियों ने यज्ञानुष्ठान के आरम्भ में इस रशना को ग्रहण किया, यह रशना इस यज्ञ के आरम्भ में यज्ञ का प्रसार करती हुई प्रकट हुई ॥ २ ॥

हे अश्व ! तुम स्तुति के योग्य और सबके आश्रय रूप हो। तुम संसार के धारण करने वाले और नियन्ता हो। तुम स्वाहाकार युक्त, सबका हित करने वाले, विस्तारयुक्त अग्नि को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

हे अश्व ! तुम देवताओं और प्रजापति के निमित्त स्वयं ही गमन करते हो। हे ब्रह्मन् ! देवताओं और प्रजापति की प्रीति के निमित्त मैं इस अश्व को बाँधता हूँ। इसके बाँधने से मैं कर्म की फल रूप सिद्धि को प्राप्त होऊँ। हे अध्वर्यो ! तुम उस अश्व को देवताओं के निमित्त और प्रजापति के निमित्त बाँधो, जिससे यज्ञ की फल रूपी सिद्धि की प्राप्ति हो ॥ ४ ॥

हे अश्व ! तुम प्रजापति के प्रिय पात्र हो, मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। इस प्रोक्षण के द्वारा प्रजापति अश्व को वीर्यवान् करते हैं। हे इन्द्र और अग्नि के प्रिय पात्र अश्व ! मैं तुम्हारा प्रोक्षण करता हूँ। इस कर्म से अश्व ओजस्वी होता है। हे वायु देवता के प्रिय पात्र अश्व ! मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। इस प्रोक्षण द्वारा अश्व यशस्वी होता है। समस्त देवताओं के प्रिय पात्र हे अश्व ! मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। इस प्रोक्षण-कर्म द्वारा सभी देवता अश्व में विद्यमान होते हैं। जो शत्रु वेगवान् अश्व की हिंसा करना चाहे, उस शत्रु को वरुण देवता हिंसित करें। इस अश्व की हिंसा-कामना वाला शत्रु और कुक्कुर पराजित होगए ॥ ५ ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय

स्वाहा सᳫंहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥९॥
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥१०॥

अग्नि देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। सोम देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। जलों के आमोदकारी देवता के लिए दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। सविता देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। वायु देवता के निमित्त दी गई आहुति स्वाहुत हो। विष्णु देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। इन्द्र देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो। बृहस्पति देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुति हो। मित्र देवता के निमित्त दी गई आहुति स्वाहुत हो। वरुण देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ६ ॥

अश्व की हिंकार के निमित्त प्रदत्त यह आहुति स्वाहुत हो। हिंकृत चेष्टा के निमित्त आहुति स्वाहुत हो। ऊँचे स्वर के निमित्त आहुति स्वाहुत हो। निम्न शब्द के निमित्त स्वाहुत हो। पर्याय क्रिया के निमित्त स्वाहुत हो। मुख चेष्टा के निमित्त स्वाहुत हो। गन्ध चेष्टा के निमित्त स्वाहुत हो। घ्राण क्रिया के लिए स्वाहुत हो। निविष्ट चेष्टा के लिए स्वाहुत हो। स्थित क्रिया के लिए स्वाहुत हो। समान चेष्टा के लिए स्वाहुत हो। जाते हुए के

लिए स्वाहुत हो। बैठे हुए के लिए स्वाहुत हो। सोते हुए के लिए स्वाहुत हो। सोने वाले के लिए स्वाहुत हो। जागते हुए के लिए स्वाहुत हो। कूजते हुए के लिए स्वाहुत हो। ज्ञानवान के लिए स्वाहुत हो। जंभाई लेते हुए के लिए स्वाहुत हो। विशेष दीप्ति वाले के लिए स्वाहुत हो। सुसंगत देह वाले के लिए स्वाहुत हो। उपस्थित के निमित्त स्वाहुत हो। विशेष ज्ञान के लिए स्वाहुत हो। अति गमन के निमित्त स्वाहुत हो ॥ ७ ॥

गमन करते हुए को स्वाहुत हो, दौड़ते हुए को स्वाहुत हो। अधिक गति वाले को स्वाहुत हो। शूकर के लिए स्वाहुत हो। बैठे हुए के लिए स्वाहुत हो। उठते हुए के लिए स्वाहुत हो। वेग रूप वाले के लिए स्वाहुत हो। वल युक्त वीर के लिए स्वाहुत हो। विशेष प्रकार से वर्तमान के लिए स्वाहुत हो। विवृत गति के निमित्त स्वाहुत हो। कम्पित होते हुए के लिए स्वाहुत हो। विशेष कम्पायमान् के लिए स्वाहुत हो। श्रवणेच्छा वाले को स्वाहुत हो। सुनने वाले को स्वाहुत हो। दर्शन शक्ति वाले को स्वाहुत हो। विशेष द्रष्टा को स्वाहुत हो। पलक लगाने की चेष्टा के लिए स्वाहुत हो। जो खाता है उसके लिए स्वाहुत हो। जो पीता है उसके लिए स्वाहुत हो। चेष्टा के लिए स्वाहुत हो। कर्म के कर्त्ता को स्वाहुत हो। किये हुए कर्म के लिए स्वाहुत हो ॥ ८ ॥

उन सर्व प्रेरक सविता देव के, सबसे वरणीय सभी पापों के दूर करने में समर्थ उस सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि तेज का हम ध्यान करते हैं। वे सविता देव हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों के करने की प्रेरणा दें ॥ ९ ॥

उन हिरण्यपाणि सविता देव को मैं अपनी रक्षा के लिए आहूत करता हूँ। वे सर्वज्ञ एवं सर्व प्रेरक देव ज्ञानियों के लिए आश्रय रूप हैं ॥१०॥

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे। सुमतिँ सत्यराधसम् ॥११॥
सुष्टुतिँ सुमतीवृधो रातिँ सवितुरीमहे। प्र देवाय मतीविदे ॥१२
रातिँ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये। आसवं देववीतये ॥१३॥
देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्। धिया भगं मनामहे ॥१४॥

अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानो ऽ अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

सबको चैतन्य करने वाले और सर्व ज्ञाता सविता देव की सत्य को सिद्ध करने वाली महिमामयी श्रेष्ठ मति की हम प्रार्थना करते हैं ॥११॥

सबकी बुद्धि को जानने वाले एवं दिव्य गुण सम्पन्न, श्रेष्ठ मति की वृद्धि करने वाले सवितादेव के अत्यन्त प्रशंसित सामर्थ्य रूप धन को हम माँगते हैं ॥१२॥

सब धनों के दाता, सत्यनिष्ठ पुरुषों के पालन करने वाले, सब कर्मों में प्रेरणा करने वाले सवितादेव को, देवताओं की तृप्ति के लिए आहूत करते और उनका भले प्रकार पूजन करते हैं ॥१३॥

श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा सविता देवता की समस्त धनों को कारण रूप और सभी देवताओं का हित करने वाली श्रेष्ठ बुद्धि रूप कल्याण को हम माँगते हैं ॥१४॥

हे अध्वर्यो ! तुम अविनाशी अग्नि को प्रज्वलित करके उन्हें स्तुति द्वारा चैतन्य करो, जिससे वे हमारी हवियों को देवताओं में स्थापित करें ॥१५

स हव्यवाडमर्त्य ऽ उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ २ऽ आ सादयादिह ॥१७

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा ऽ असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवा ऽ आशापाला ऽ एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै

मह्यै स्वाहादित्यैसुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहापूष्णो नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥

जो अग्नि देव हमारी हवियों के वहन करने वाले, अविनाशी हमारा हित चिन्तन करने वाले और विविध अन्नों की प्राप्ति कराने वाले हैं. वह अग्नि श्रेष्ठ-बुद्धि के द्वारा हविर्दान के निमित्त देवताओं के पास पहुँचते हैं ॥ १६ ॥

देवताओं के दौत्य कर्म में लगे हुए हवियों के धारण करने वाले अग्नि को मैं आगे प्रतिष्ठित करता हूँ और उनसे निवेदन करता हूँ कि 'हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ में देवताओं को प्रतिष्ठित करो' ॥ १७ ॥

हे पवमान ! तुम पवित्र करने वाले हो। धारा के द्वारा वेग से गमन करने वाले सूर्य को तुम प्रकट करते हो। गौओं की जीविका के निमित्त अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ जल को धारण करते हो। गौओं के द्वारा दुग्ध, दुग्ध से हवि और हवि के द्वारा ही यज्ञ-कर्म सम्पन्न होता है ॥ १८ ॥

हे अश्व ! तुम पृथिवी माता के द्वारा पोषण को प्राप्त होते हो। पिता द्युलोक के द्वारा समर्थ किये जाते हो। तुम मार्गों के व्याप्त करने वाले, निरन्तर गमनशील, अथकित रूप से चलने वाले सुख रूप हो। तुम शत्रु-हन्ता, सेना से सम्पन्न करने वाले, वेगवान् , सेंचन समर्थ तथा यजमान से प्रीति करने वाले हो। अश्वमेध में जाने वाले ययु नामक तथा शिशु कहाते हो। तुम आदित्यों के मार्ग पर गमन करो। हे दिशाओं के पालन करने वाले देवताओ ! देवताओं के निमित्त प्रोक्षित और यज्ञ के निमित्त प्रोक्षित इस अश्व की तुम रक्षा करो। हे अग्ने ! अश्व के रमण हेतु आहुति देते हैं। यह अश्व इस स्थान में रमण करे। इस स्थान में यह अश्व तृप्ति को प्राप्त हो। यह इस स्थान में धारण हो, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ १६ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय ऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥२१॥
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर ऽ
इषव्योति व्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो
जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽ ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥२२॥
प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय
स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥
प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे
स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशेस्वाहार्वाच्यै
दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वहार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशेस्वाहार्वा-
च्यै दिशे स्वाहा ॥२४॥
अद्भ्य स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा
स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः
स्वाहा धार्याभ्यः स्वहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय
स्वाहा ॥२५॥

प्रजापति देव के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। श्रेष्ठ प्रजापति के लिए स्वाहुत हो, अत्यन्त श्रेष्ठ प्रजापति को स्वाहुत हो, विद्या वृद्धि वाले को स्वाहुत हो। मन में स्थित प्रजापति को स्वाहुत हो। चित्त के साक्षी आदित्य को स्वाहुत हो। अखण्डित अदिति को स्वाहुत हो। पूजनीया अदिति को स्वाहुत हो। सुख देने वाली अदिति को स्वाहुत हो। सरस्वती के निमित्त स्वाहुत हो। शुद्ध करने वाली सरस्वती को स्वाहुत हो। महान् देवता सरस्वती को स्वाहुत हो। पूषा देवता के निमित्त स्वाहुत हो। श्रेष्ठ मनुष्यों की शिक्षा को स्वाहुत हो। त्वष्टा देव के निमित्त स्वाहुत हो। वेग

रक्षक पूषा को स्वाहुत हो। त्वष्टा देवता को स्वाहुत हो। विष्णु के निमित्त स्वाहुत हो। अनेक रूप वाले रक्षक विष्णु के लिए स्वाहुत हो। सब प्राणियों में अन्तर्हित विष्णु के निमित्त स्वाहुत हो ॥२०॥

सभी मरणधर्मा प्राणियों के कर्म फल को प्राप्त कराने वाले दानादि गुण युक्त सविता देवता की मित्रता की याचना करो। कर्म की पुष्टि के निमित्त अन्न की कामना करो। क्योंकि सभी प्राणी धन प्राप्ति के लिए उन्हीं से प्रार्थना करते हैं। उन परमात्मा के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥२१॥

हे ब्रह्मन्! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण सर्वत्र जन्म लें। बाण विद्या में चतुर, शत्रु को भले प्रकार बींधने वाले महारथी वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों। इस यजमान की गौ दूध देने वाली हों। बलीवर्द वहनशील और अश्व शीघ्र गमन करने वाला हो। स्त्री सर्व गुण सम्पन्ना तथा रथ में बैठने वाले पुरुष विजयशील हों। यह युवा और वीर पुरुषों वाला हो। कामना करने पर मेघ वर्षणशील हों। औषधियाँ परिपक्व एवं फलवती हों। हमको योग, क्षेम आदि की प्राप्ति हो ॥ २२ ॥

प्राणों के निमित्त स्वाहुत हो। अपान के निमित्त स्वाहुत हो। व्यान के निमित्त स्वाहुत हो। चक्षुओं के निमित्त स्वाहुत हो। श्रोत्रों के निमित्त स्वाहुत हो। वाणी के लिए स्वाहुत हो। मन के निमित्त स्वाहुत हो ॥२३॥

प्राची दिशा के लिए स्वाहुत हो। आग्नेय दिशा के लिए स्वाहुत हो। दक्षिण दिशा को स्वाहुत हो। नैऋत्य दिशा को स्वाहुत हो। पश्चिम दिशा को स्वाहुत हो। वायव्य दिशा को स्वाहुत हो। उत्तर दिशा को स्वाहुत हो। ईशान दिशा को स्वाहुत हो। ऊर्ध्व दिशा को स्वाहुत हो। अधो दिशा को स्वाहुत हो। सबसे नीचे की दिशा को स्वाहुत हो। भूगोलक में तल रूप दिशा को स्वाहुत हो ॥ २४ ॥

जलों के लिए स्वाहुत हो। वारि रूप जलों को स्वाहुत हो। सूर्य रश्मियों द्वारा ऊपर जाने वाले जलों को स्वाहुत हो। स्थित जलों को स्वाहुत

हों। क्षरणशील जलों को स्वाहुत हो। गमनशील जलों को स्वाहुत हो। कूप-जलों को स्वाहुत हो। वृष्टि जलों को स्वाहुत हो। धारण करने योग्य जलों को स्वाहुत हो। नदियों के जलों को स्वाहुत हो। समुद्र के जलों को स्वाहुत हो। श्रेष्ठ जलों को स्वाहुत हो ॥ २५ ॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहाग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽ ऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳪ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥२८॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये

स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ॥३०॥

वायु देवता के लिए स्वाहुत हो। धूम के लिए स्वाहुत हो। मेघ के कारण रूप को स्वाहुत हो। मेघ के लिए स्वाहुत हो। विद्युत युक्त के लिए स्वाहुत हो। गर्जनशील को स्वाहुत हो। वज्र के समान घोर शब्द वाले को स्वाहुत हो। वर्षा करते हुए को स्वाहुत हो। अल्प वर्षा के लिए स्वाहुत हो। उग्र वर्षा के लिए स्वाहुत हो। शीघ्र वर्षा के लिए स्वाहुत हो। जल को ऊपर खींचने वाले के लिए स्वाहुत हो। ऊपर से ग्रहण किये हुए को स्वाहुत हो। अधिक जल गिराते हुए को स्वाहुत हो। रुक-रुक कर गिरने वाले को स्वाहुत हो। घोर वृष्टि को स्वाहुत हो। शब्दवान् को स्वाहुत हो। कुहरे वाले को स्वाहुत हो ॥२६॥

अग्निदेव के निमित्त स्वाहुत हो। सोम के निमित्त स्वाहुत हो। इन्द्र के लिए स्वाहुत हो। पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। अंतरिक्ष के लिए स्वाहुत हो। स्वर्ग लोक के लिए स्वाहुत हो। सब दिशाओं के लिए स्वाहुत हो। ईशान आदि कोण रूप दिशाओं को स्वाहुत हो। पृथिवी की दिशाओं को स्वाहुत हो। नीचे की दिशाओं के निमित्त स्वाहुत हो ॥२७॥

नक्षत्र को स्वाहुत हो। नक्षत्रों के अधिष्ठात्री देवता को स्वाहुत हो। दिन-रात्रि के देवताओं को स्वाहुत हो। अर्द्धमास के लिए स्वाहुत हो। मास के लिए स्वाहुत हो। ऋतुओं के लिए स्वाहुत हो। ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों को स्वाहुत हो। संवत्सर के लिए स्वाहुत हो। द्यावा पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। चन्द्रमा के निमित्त स्वाहुत हो। सूर्य के निमित्त स्वाहुत हो। सूर्य-रश्मियों के लिऐ स्वाहुत हो। वसुओं को स्वाहुत हो। रुद्रों को स्वाहुत हो। आदित्यों को स्वाहुत हो। मरुद्गण को स्वाहुत हो। विश्वेदेवों को स्वाहुतहो। सब की मूलों को स्वाहुत हो। शाखाओं को स्वाहुत हो। वनस्पतियों को स्वाहुत हो। पुष्पों को स्वाहुत हो। फलों को स्वाहुत हो। औषधियों के निमित्त स्वाहुत हो ॥२८॥

पृथिवी को स्वाहुत हो। अंतरिक्ष को स्वाहुत हो। स्वर्ग लोक को स्वाहुत हो। सूर्य के लिए स्वाहुत हो। चन्द्रमा के लिए स्वाहुत हो। नक्षत्रों को स्वाहुत हो। जलों को स्वाहुत हो। औषधियों को स्वाहुत हो। वनस्पतियों को स्वाहुत हो। भ्रमण करते हुए ग्रहों को स्वाहुत हो। सब प्राणियों के लिए स्वाहुत हो। सर्पादि के निमित्त स्वाहुत हो ॥२९॥

प्राण देवता को स्वाहुत हो। वसुओं के निमित्त स्वाहाकार हो। विभु के निमित्त स्वाहाकार हो। सूर्य के निमित्त स्वाहा हो। गणश्री देवता के लिए स्वाहुत हो। गणपति के लिऐ स्वाहुत हो। अभिभु व को स्वाहुत हो। सब के अधिपति को स्वाहुत हो। बलशाली देवता को स्वाहुत हो। गमनशील को स्वाहुत हो। चन्द्रमा के लिये स्वाहुत हो। ज्योति देवता को स्वाहुत हो। मलिम्लुच के लिए स्वाहुत हो। दिवाधिपति सूर्य के लिए स्वाहुत हो ॥ ३० ॥

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाँहसस्पतये स्वाहा ॥३१॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्व स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहापानो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताँ स्वाहा ॥ ३३ ॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्या७ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

चैत मास के निमित्त स्वाहुत हो। वैशाख के निमित्त स्वाहुत हो। शुद्ध करने वाले ज्येष्ठ के लिए स्वाहुत हो। पृथिवी का जल से शोधन करने वाले आषाढ़ को स्वाहुत हो। मेघों के शब्द वाले श्रावण को स्वाहुत हो। वर्षा वाले भाद्रपद को स्वाहुत हो। अन्न-सम्पादक आश्विन को स्वाहुत हो। अन्न के पोषक कार्त्तिक को स्वाहुत हो। बलप्रदाता मार्गशीर्ष को स्वाहुत हो। बल दाताओं में श्रेष्ठ पौष के लिए स्वाहुत हो। व्रत-स्नानादि युक्त माघ को स्वाहुत हो। उष्णता प्रवर्त्तक फाल्गुन को स्वाहुत हो। मल मास को स्वाहुत हो॥ ३१ ॥

अन्न देवता के निमित्त स्वाहुत हो। पदार्थों के उत्पादक को स्वाहुत हो। जल से उत्पन्न अन्नों को स्वाहुत हो। यज्ञ के योग्य हविरन्न को स्वाहुत हो। दिव्य अन्न को स्वाहुत हो। मूर्धा रूप अन्न-स्वामी को स्वाहुत हो। व्यापक अन्न के लिए स्वाहुत हो। महत्तावान् अन्न को स्वाहुत हो। संसार में उत्पन्न होने वाले महान् अन्न को स्वाहुत हो। संसार के पालन करने वाले अन्न देवता को स्वाहुत हो। सब के स्वामी अन्न को स्वाहुत हो। प्रजापति रूप अन्न को स्वाहुत हो॥ ३२ ॥

यज्ञ के द्वारा कल्पित आयु के निमित्त स्वाहाकार हो। यज्ञ के द्वारा कल्पित प्राण की समृद्धि के निमित्त स्वाहाकार हो। यज्ञ द्वारा कल्पित अपान के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से कल्पित व्यान के निमित्त स्वाहुत हो। यज्ञ द्वारा कल्पित उदान के निमित्त स्वाहुत हो। यज्ञ से कल्पित समान वायु के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से समृद्धि को प्राप्त चक्षुओं के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से समृद्ध श्रोत्रों के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से कल्पित वाणी के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से प्रवृद्ध मन के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से सम्पन्न आत्मा के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ में कल्पित ब्रह्मा के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ से कल्पित आत्म ज्योति के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ के फल से स्वर्ग-प्राप्ति के लिए स्वाहुत हो। यज्ञ के फल से ब्रह्म-लोक की प्राप्ति के लिए स्वाहुत हो॥ ३३ ॥

एक मात्र अद्वितीय परमात्मदेव के निमित्त स्वाहुत हो। प्रकृति और पुरुष के निमित्त स्वाहुत हो। अनन्त रूप ईश्वर के लिए स्वाहुत हो। अनेक रूप होकर भी एक या एक सौ पदार्थों को स्वाहुत हो। रात्रि देवता के लिए स्वाहुत हो। दिन के अधिपति देवता को स्वाहुत हो ॥ ३४ ॥

॥ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—प्रजापतिः।

देवता—परमेश्वरः, सूर्यः, इन्द्रः, वाय्वादयः, जिज्ञासुः, विद्युदादयः, ग्रहादयः, ब्रह्मा, विद्वान्, सविता, अग्न्यादयः, प्राणादयः, गणपतिः, राजप्रजे, न्यायाधीशः, भूमिसूर्यौ, श्रीः, प्रजापतिः, विद्वांसः, राजा, प्रजा, स्त्रियः, सभासदः, अध्यापकः, सूर्यादयः, प्रष्टसमाधातारौ, ईश्वरः, पुरुषेश्वरः, प्रष्टा, समाधाता, समिधा।

छन्दः—त्रिष्टुप्, कृतिः, गायत्री, बृहती, अष्टिः, अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, उष्णिक्, पंक्तिः।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे, महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥२॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽ इन्द्राजा जगतो बभूव।
य ऽईशे ऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्या-

मग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव
तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥५॥

प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व हिरण्यगर्भ ने देह धारण किया और उत्पन्न होते ही वह सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हुए। उन्होंने इस पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष को रच कर धारण किया। उन्हीं प्रजापति के लिए हवियों का विधान करते हैं ॥१॥

हे ग्रह! उपयाम पात्र में गृहीत हो। तुम्हें प्रजापति की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह! यह तुम्हारा स्थान है और सूर्य तुम्हारी महिमा है। हे ग्रह! तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा दिन के समय प्रति वर्ष प्रकट है। तुम्हारी महिमा वायु और अन्तरिक्ष में प्रकट है और स्वर्ग तथा सूर्य लोक में प्रकट है, तुम्हारी उस महिमा से युक्त प्रजापति के लिए और देवताओं के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ॥२॥

जो प्रजापति प्राण रूप व्यापार करते हुए सम्पूर्ण प्राणियों के एक मात्र स्वामी हैं, जो अपनी महिमा से ही इन दो पाँव वाले मनुष्यों और चार पाँव वाले पशुओं पर प्रभुत्व करते हैं, उन प्रजापति के निमित्त हम हवि का विधान करते हैं ॥३॥

हे ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें प्रजापति की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह! यह तुम्हारा स्थान है और चन्द्रमा तुम्हारी महिमा है। हे ग्रह! तुम्हारी जो महिमा प्रति संवत्सर में रात्रि रूप में प्रकट है, तुम्हारी जो महिमा पृथिवी में और अग्नि में प्रकट है, तुम्हारी जो महिमा चन्द्रमा में और नक्षत्रों में प्रकट है, तुम्हारी उस महिमा से युक्त प्रजापति के निमित्त और देवताओं के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥४॥

कर्म में स्थित ऋत्विज क्रोध-रहित होकर सिद्धि के निमित्त विचरण

करते हुए आदित्य के समान प्रभाव वाले अश्व को रथ में जोड़ते हैं। उन आदित्य का प्रकाश आकाश पर छा जाता है ॥५॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥६॥

यद्वातो ऽअपो ऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एत ᳪ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः ॥७॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वांजन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा ।
भूर्भुवः स्वर्लाजीञ्छाचीन्यव्ये गव्य ऽ एतदन्नमत्त देवा ऽ एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥

कः स्विदेकाकी चरति क ऽ उ स्विज्जायते पुनः ।
कि ᳪ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥

सूर्य ऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥१०॥

इस अश्व की सहायता के निमित्त वेगवान् पक्षी के समान गति वाले, प्रगल्भ एवं रक्तवर्ण वाले, मनुष्यों को वहन करने में सामर्थ्य वाले दो अश्वों को ऋत्विगण रथ में योजित करते हैं ॥६॥

हे अध्वर्यो ! वायु के समान वेग वाले अश्व ने जिस मार्ग से जलों को और इन्द्र के प्रिय शरीर को प्राप्त किया, उस अश्व को उसी मार्ग से पुनः लौटा लाओ ॥७॥

हे अश्व ! तुझे वसुगण गायत्री छन्द से लिप्त करें। रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द से लिप्त करें। आदित्यगण जगती छन्द द्वारा लिप्त करें। तुझे पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग अलंकृत करें। हे देवगण ! खील, सत्तू, दुग्ध-दधि और जौ मिश्रित इस अन्न का भक्षण करो। हे प्रजापते ! इस अन्न का भक्षण करो ॥८॥

इकला कौन विचरण करता है ? कौन फिर प्रकाश को पाता है ? हिम की औषधि क्या है ? बीज बोने का महान् क्षेत्र क्या है, यह बताओ ॥९॥

सूर्य रूप ब्रह्म एकाकी विचरण करते हैं। चन्द्रमा पुनः प्रकाश को प्राप्त करते हैं। हिम की औषधि अग्नि हैं। बीज बोने का महान् क्षेत्र यह पृथिवी है ॥ १० ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳫं स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥११॥
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽ आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥१२॥
वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ।
एषस्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥१३॥

सᳫंशितो रश्मिना रथः सᳫंशितो रश्मिना हयः ।
सᳫंशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥
स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥१५॥

हे ब्रह्मन् ! पूर्व चिन्तन का विषय कौन-सा है ? बड़ा पक्षी कौन हुआ ? चिकनी वस्तु कौन-सी हुई ? रूप का निगलने वाला कौन हुआ ? ॥११॥

पूर्व चिन्तन का विषय वृष्टि है। अश्व ही गमन करने वाला बड़ा पक्षी है। रक्षिका पृथिवी ही वृष्टि द्वारा चिकनी होती है। रात्रि ही रूप को निगलने वाली है ॥१२॥

हे अश्व ! वायु तुम्हारी रक्षा करें। अग्नि तुम्हारी रक्षा करें। वटवृक्ष चमस द्वारा तुम्हारी रक्षा करें। सेंमल वृक्ष वृद्धि द्वारा रक्षक हो।

सेचन समर्थ और रथ में जोड़ने योग्य अश्व हमारे अभीष्टों का वर्षक हो। यह अश्व चार चरणों सहित आगमन करे। निष्कलंक ब्रह्मा हमारे रक्षक हों। हम अग्नि देवता को विघ्नादि दूर करने के निमित्त नमस्कार करते हैं ॥१३॥

यह रथ रश्मियों द्वारा दर्शनीय है। यह अश्व लगाम द्वारा सुशोभित है। जलों से उत्पन्न अश्व जलों में शोभायमान हैं। ब्रह्मा सोम को आगे गमन कराते हुए इसे स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं ॥१४॥

हे अश्व ! अपने देह की कल्पना करो। तुम इस यज्ञ में स्वयं ही यजन करो। अपने इष्ट स्थान को प्राप्त होओ। तुम्हारी महिमा अन्य किसी की महिमा से तिरस्कृत नहीं होती ॥१५॥

न वा ऽ उ ऽ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता ऽ अपः।
वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता ऽ अपः।
सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स ऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता ऽ अपः ॥१७॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बे ऽ अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१९॥

ता ऽ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा

रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥

यह अश्व मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। यह नष्ट नहीं होता। हे अश्व ! तुम श्रेष्ठ गमन वाले होकर देवयान मार्ग द्वारा देवताओं के पास जाते हो। जिस लोक में पुण्यात्मा गए हैं और जहाँ वे पुण्यकर्मी निवास करते हैं, उसी लोक में सूर्य प्रेरक सवितादेव तुम्हारी स्थापना करे ॥१६॥

देवताओं की सृष्टि में उत्पन्न पशु रूप अग्नि द्वारा देवताओं ने यजन किया। इस कारण अग्नि ने इस लोक को जीता। जिस लोक में अग्नि निवास करते हैं, वह लोक तेरा होगा। तू उसे जीतेगा। तू इस जल का पान कर। वायु पशु रूप से उत्पन्न हुआ, उस वायु से देवताओं ने यज्ञ किया। इस कारण वायु ने इस लोक को जीत लिया। जिस लोक में वायु का निवास है, वह तेरा होगा, तू उसे विजय करेगा। तू इस जल का पान कर ॥२॥ इस कारण सूर्य ने इस लोक को जय किया। जिस लोक में सूर्य का निवास है, वह लोक तेरा होगा, तू उसे विजय करेगा। तू इस जल का पान कर ॥१७॥

प्राणों की तुष्टि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। अपान की तुष्टि के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। व्यान की तृप्ति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। हे अम्बे ! हे अम्बिके ! यह अश्व कम्पिला में निवास करने वाली सुखकारिणी के साथ सोता है। मुझे कोई भी नहीं पाता, मैं स्वयं इसके निकट जाती हूँ ॥१८॥

हे गणपते ! तुम सब गणों के स्वामी हो। हम तुम्हें आहुत करते हैं। हे प्रियों के मध्य में निवास करने वाले प्रियों के स्वामी, हम तुम्हें आहूत करते हैं। हे निधियों के मध्य निवास करने वाले निधिपते ! हम तुम्हें आहुत करते हैं, तुम हमें श्रेष्ठ निवास देने वाले और रक्षक होओ। मैं गर्भ धारक जल को सब प्रकार आकर्षित करती हूँ। तुम गर्भ धारण करने वाले को अभिमुख करती हूँ। तुम समस्त पदार्थों के रचयिता होते हुए सब प्रकार से अभिमुख होते हो ॥१६॥

हम तुम दोनों ही चारों पावों को भले प्रकार पसारें अर्थात् चारों पदार्थों को विस्तृत करें। हे प्रजापते और हे महिषी! तुम दोनों इस यज्ञ-भूमि रूप स्वर्ग लोक को आच्छादित करो। यह वीर्य रूप तेज के धारण करने वाले और सेंचन समर्थ प्रजापति मुझमें तेजोमय, उत्पादक जल की स्थापना करें ॥२०॥

उत्सक्थ्या ऽ अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥२१॥
यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वंचति।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥२२॥
यकोऽसकौ शकुन्तक ऽ आह लगिति वंचति।
विवक्षत ऽ इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥२३॥
माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमत ँ सयत् ॥२४॥
माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः।
विवक्षत ऽ इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५॥

सेंचन समर्थ प्रजापति यज्ञ स्थान में महिषी के प्राणों पर तेज धारण करें। यह तेज जल रूप में प्रविष्ट होकर प्रज्ञा रूप स्त्रियों को जीवन देने वाला है। उस फल के सम्पादक तेज का वे प्रजापति सचार करें ॥२१॥

यज्ञ साधन भूत यह जल शकुन्तिका नाम की पक्षिणी के समान हलहल शब्द करता हुआ जाता है, इस उत्पादक जल में यज्ञ का तेज आगमन करता है, उस समय उस तेज के धारण करने वाला जल गलगल शब्द करता है ॥२२॥

हे अध्वर्यो! आत्मा के द्वारा परिणित यह तेज शकुन्तक नामक पक्षी की उपमा देने वाले तुम्हारे मुख के समान चंचलता पूर्वक गमन करता है, अतः यह बात तुम मुझसे न कहो ॥२३॥

हे महिषी! तुम्हारी माता पृथिवी और पिता स्वर्ग लोक वृक्ष के

ऊपर आरोहण करते हैं, उस समय तुम्हारा पिता उत्पादक जल में तेज को प्रविष्ट करता है ॥२४॥

हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी माता पृथिवी और पिता स्वर्ग वृक्ष के मंच के समान पंचभूत पर क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार कहने की इच्छा वाले तुम्हारे मुख के समान की तुम्हारी उत्पत्ति है, अतः तुम हमसे बहुत मत कहो ॥२५॥

ऊर्ध्वमिनामुच्छ्रापय गिरौ भारँ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताँ शीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारँ हरन्निव ।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥ २७ ॥

यदस्या ऽ अँहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या ऽ एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः ।
सक्थना देदिम्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

हे प्रजापते ! इस प्रजा को ऊर्ध्व गमन-योग्य करो। जैसे पर्वत पर भार डाल कर उसे ऊँचा किया जाता है, जैसे ठन्डी वायु के चलने पर कृषक धान्य के पात्र को ऊँचा उठाता है, वैसे ही इसका मध्य भाग वृद्धि को प्राप्त हो और सब प्रकार से समृद्धि को पावे ॥ २६ ॥

हे प्रजापते ! इस उद्गाता को ऊँचा उठाओ। जैसे पर्वत पर भार डाल कर उसे ऊँचा किया जाता है, जैसे ठन्डी वायु चलने पर कृषक धान्य पात्र को ऊँचा उठाता है, वैसे ही इसके मध्य भाग को प्राप्त हुआ तेज कम्पायमान हो ॥ २७ ॥

जब इस जल को भेद कर ह्रस्व और स्थूल तेज शरीर के उत्पादक जल की ओर जाता है उस समय द्यावा पृथिवी इसके ऊपर ही कम्पायमान होवे हैं। जैसे जल पूर्ण स्थान में दो मत्स्य काँपते हैं ॥ २८ ॥

जब श्रेष्ठ गुण युक्त होता और ऋत्विजादि जिस विशिष्ट क्लेद युक्त यज्ञीय तेज को श्रद्धा पूर्ण जल में प्रविष्ट करते हैं, वह उदक में प्रविष्ट तेज फल दान में तत्पर होता है। उस समय नारी रूप श्रद्धा उरु रूप कर्म से विशिष्ट लक्षित होती है। जैसे सत्य रूप नेत्र शास्त्र ज्ञान द्वारा दिखाई देता है और सत्य कथन को श्रोत्र विश्वास के द्वारा ग्रहण करते हैं ॥ २९ ॥

जब हरिण खेत में घुस कर जौ को खाता है, तब कृषक उससे प्रसन्न न होता हुआ जौ की हानि से दुःखी होता है। वैसे ही ज्ञानी से शिक्षा पाने वाली शूद्रा का मूर्ख पति भी अपनी पत्नी को अन्य से शिक्षा ग्रहण करने के कारण दुखी होता है ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥ ३१ ॥
दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण ऽआयूꣳषि तारिषत् ॥ ३२ ॥
गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥
द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥
महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मेघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

खेत में जाकर जौ खाने वाले हरिण को देखकर कृषक जैसे प्रसन्न नहीं होता, वैसे ही अज्ञानी से शिक्षा पाने वाली नारी का ज्ञानी पुरुष भी प्रसन्न नहीं होता ॥ ३१ ॥

हमने इस मनुष्यों को धारण करने वाले, सर्व विजेता, वेगवान् अश्व का संस्कार किया है। यह हमारे मुख को यज्ञ के प्रभाव से सुरभित करे। हम आयु की पुष्टि को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

हे अश्व ! गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति छन्द के सहित बृहती छन्द, उष्णिक् और ककुप् छन्द तुम्हारे लिए शान्ति देने वाले हों ॥३३

हे अश्व ! दो पद वाले, चार पद वाले, तीन पद वाले, छै पद वाले, छन्द लक्षण वाले और छन्द लक्षण से रहित सभी प्रकार के छन्द तुम्हें सूची द्वारा शान्ति देने वाले हों ॥ ३४ ॥

महान् यश वाली शक्वरी ऋचा, रेवत साम वाली ऋचा, सम्पूर्ण दिशायें, सब प्राणियों को धारण करने वाली ऋचा, मेघ द्वारा प्रकट होने वाली विद्युत और सब प्राणियाँ सूची के द्वारा तुम्हारा कल्याण करने वाली हों ॥ ॥ ३५ ॥

नार्य्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥३८॥
कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति ।
कऽउ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥
ऋतयस्त ऽऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

हे अश्व ! पति वाली स्त्रियाँ अपनी बुद्धि के द्वारा तुम्हारे लोमों को पृथक् करें। देव-पत्नियाँ और दिशाएं सूची द्वारा तुम्हारा कल्याण करें ॥३६

चाँदी, सुवर्ण और सीसा आदि की सूचियाँ मिल कर अश्वकार्य में

लगती हैं। वे वेगवान् अश्व के लिए भले प्रकार रेखायुक्त संस्कार के करने वाली हों ॥ ३७ ॥

हे सोम ! जैसे कृषक गण बहुत-से जौ से युक्त अनाज को क्रम पूर्वक पृथक् कर काटते हैं, वैसे ही तुम देवताओं को प्रिय हो। तुम इस यजमान के लिए विशिष्ट भोजनों की स्थापना करो, उस हवि रूप भोजन के द्वारा कुशाओं पर विराजमान ऋत्विज् श्रेष्ठ यज्ञों को करते हैं ॥ ३८ ॥

हे अश्व कौन प्रजापति तुझे मुक्त कर जीवन के बंधन से पृथक् करते हैं ? कौन प्रजापति तेरा कल्याण करने वाले हैं ? यह सब कार्य मेधावी प्रजापति ही करते हैं ॥ ३९ ॥

हे अश्व ! ऋतुएं कल्याणकारिणी हैं। वे समय-समय पर संवत्सर के प्रभाव से तुझे कर्मों से मुक्त करें। ऋतुएं तुम्हारा कल्याण करें ॥ ४० ॥

अर्द्धमासा परूᳬषि ते मासाऽ आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टᳬ सूदयन्तु ते ।
दैव्या ऽअध्वर्यवस्त्वा च्छ्यन्तुवि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्ती. ॥४२॥
द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३॥
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥४४॥
कः स्विदेकाकी चरति क ऽ उ स्विज्जायते पुनः ।
किᳬ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥४५॥

कल्याणकारी पक्ष और महीने तथा दिन और रात्रि तेरे देह का शोधन करें ॥ ४१ ॥

हे अश्व ! देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुझे मुक्त करें। वे तेरे देहांगों को पः पुर्ण करें ॥ ४२ ॥

हे अश्व ! स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष तुम्हें छिद्र-रहित करें। वायु तुम्हारे छिद्रों को पूर्ण करें। नक्षत्रों सहित सूर्य तुम्हारे लिए लोक को श्रेष्ठ करें ॥ ४३ ॥

हे अश्व ! तुम्हारे अवयव सुखी हों। तुम्हारे सब अंग सुख-पूर्ण हों। तुम्हारे द्वारा हमारा कल्याण हो। तुम्हारा देह सब का कल्याण करने वाला हो ॥ ४४ ॥

कहो एकाकी कौन विचरता है, कौन फिर प्रकाश पाता है ? हिम की औषधि क्या है ? बीज बोने का क्षेत्र क्या है ? ॥४५॥

सूर्य्य ऽ ऐकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥
किं स्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥
ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥
पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशाँऽ ॥४९॥
अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश।
सद्य. पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो ऽ अस्य पृष्ठम् ॥५०॥

सूर्यात्मक ब्रह्म एकाकी विचरण करते हैं, चन्द्रमा उनसे प्रकाश पाता है। अग्नि हिम की औषधि है। पृथिवी बीज बोने का महान् क्षेत्र है ॥४६॥

सूर्य के समान ज्योति कौन-सी है ? समुद्र के समान सरोवर क्या है ? पृथिवी से बढ़ कर क्या है ? परिमाण किसका नहीं है ॥४७॥

सूर्यात्मक ज्योति ब्रह्म है। समुद्र के समान सरोवर स्वर्ग है। इन्द्र पृथिवी से अधिक महिमा वाले हैं। वाणी का परिमाण नहीं है ॥४८॥

हे देवताओं के सखा, मैं तुमसे जिज्ञासु भाव से पूछता हूँ। तुम अपने

मन के द्वारा मेरे प्रश्न के सम्बंध में जानते हो तो कहो कि विष्णु ने जिन तीन स्थानों में आक्रमण किया उन स्थानों में समस्त विश्व समा गया क्या? ॥ ४९ ॥

जिन तीन स्थानों में समस्त विश्व समाया हुआ है, उनमें मैं भी हूँ। पृथिवी, स्वर्ग और उससे ऊपर के लोकों को भी मैं इस एक मन के द्वारा ही क्षण मात्र में जान लेता हूँ ॥ ५० ॥

केष्वन्तः पुरुष ऽ आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे ऽ अर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किᳬ स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥
पञ्चस्वन्तः पुरुष ऽ आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे ऽ अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो ऽ अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥
का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳬ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥५३॥
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व ऽ आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥५४ ॥
का ऽ ईमरे पिशङ्गिला का ऽ ईं कुरुपिशङ्गिला ।
क ऽ ईमास्कन्दमर्षति क ऽ ईं पन्थां वि सर्पति ॥५५॥

हे ब्रह्मन्! सब के अंतर में वास करने वाला परमात्मा किन पदार्थों में रमा हुआ है? इस परमात्मा में कौन सी वस्तुएं अर्पित हैं? यह जिज्ञासा पूर्वक तुमसे पूछता हूँ। इस संबंध में तुम क्या कहते हो? ॥५१॥

परमात्मा पंचभूतों में रमा हुआ है। वह सब प्राणियों के अंतर में व्याप्त है। सभी भूत आत्मा में और आत्मा सब भूतों में रमा है। यह प्रत्यक्ष जानता हुआ तुम्हें उत्तर देता हूँ क्योंकि तुम मुझसे अधिक जानकार नहीं हो ॥ ५२ ॥

हे ब्रह्मन्! प्रथम चिन्तन का विषय कौन है? उड़ने वाला बृहद् पक्षी कौन है? चिकनी वस्तु क्या हुई? रूप को निगल लेने वाला कौन है? ॥ ५३ ॥

प्रथम चिन्तन का विषय वृष्टि हुई। अश्व ही महान् गमन वाला श्रेष्ठ पक्षी है। वृष्टि के द्वारा पृथिवी चिकनी होती है और रात्रि रूप को निगलने वाली है ॥ ५४ ॥

हे होता ! रूपों को निगलने वाली कौन है ? शब्द पूर्वक रूपों को कौन निगल लेती है ? कौन कूद कूद कर चलता है ? कौन मार्ग पर चलता है ? ॥ ५५ ॥

अजारे पिशंगिला श्वावित्कुरुपिशंगिला ।
शश ऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥५६॥
कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऽ ऋतुशो यजन्ति ॥५७॥
षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऽ ऋतुशो यजन्ति ॥५८॥
को ऽ अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षम् ।
कः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५९॥
वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्य्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥६०॥

हे अध्वर्यो ! अजन्मा माया ही रूपों को निगल लेती है। सेही शब्द करती हुई रूपों को निगल जाती है। खरगोश कूद-कूद कर चलता है। सर्प मार्ग पर विशिष्ट गति से गमन करता है ॥ ५६ ॥

यज्ञान्न कितने प्रकार के हैं ? अक्षर कितने हैं ? होम कितने हैं ? समिधा कितने प्रकार की हैं ? यज्ञ करने वाले होता कितने हैं ? मैं तुमसे यज्ञ का ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त प्रश्न करता हूँ ॥ ५७ ॥

यज्ञ के छः अन्न हैं। अक्षर सौ होते हैं। होम अस्सी हैं। प्रसिद्ध समिधायें तीन हैं। वषट्कार वाले सात होता प्रत्येक ऋतु में यज्ञ करते हैं। यह बात यज्ञ-ज्ञान के लिए तुमसे कहता हूँ ॥ ५८ ॥

इस ससार के नाभि बधन वाले कारण का ज्ञाता कौन है ? द्यावा पृथिवी का ज्ञाता कौन है ? बृहद् सूर्य की उत्पत्ति को कौन जानता है ? जिससे यह चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है, उसे कौन जानने वाला है ॥५९॥

इस ससार के नाभि रूप कारण का मैं ज्ञाता हूँ। द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष को मैं जानता हूँ। बृहद् सूर्य के उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्म को मैं जानता हूँ। चन्द्रमा को और जिस ब्रह्म के द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई है, उसे भी मैं भले प्रकार जानता हूँ ॥६०॥

पृच्छामि त्वा परमन्त पृथिव्या पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभि ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो ऽ अश्वस्य रेत पृच्छामि वाच परम व्योम ॥६१॥
इय वेदि परो ऽ अन्त पृथिव्या ऽ अय यज्ञो भुवनस्य नाभि ।
अयᳬ सोमो वृष्णो ऽ अश्वस्य रेतो ब्रह्माय वाच परम व्योम ॥६२॥
सुभू स्वयम्भू प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जात प्रजापति ॥६३॥
होता यक्षत्प्रजापतिᳬ सोमस्य महिम्न ।
जुषता पिबतु सोमᳬ होतर्यज ॥६४॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽ अस्तु वयᳬ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५॥

मैं तुमसे पृथिवी के अंत को पूछता हूँ। ब्रह्माण्ड की नाभि जहाँ है, उसे भी पूछता हूँ। सेंचन समर्थ अश्व के पराक्रम को तुमसे पूछता हूँ। वाणी के श्रेष्ठ स्थान को तुमसे पूछता हूँ ॥६१॥

यह उत्तरवेदी ही पृथिवी का परम सीमा है। यह यज्ञ सब लोकों की नाभि है। सेंचन-समर्थ अश्व रूप प्रजापति का ओज सोम है। यह ब्रह्मा रूप ऋत्विज् ही तीनों वेद रूप वाणी का श्रेष्ठ स्थान है ॥६२॥

सर्व प्रथम श्रेष्ठ ससार के उत्पादक स्वयंभू परमात्मा ने महान् सागर के मध्य में ऋतु के अनुसार प्राप्त गर्भ की स्थापना की जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई ॥ ६३ ॥

महिमा युक्त सोम ग्रह से संबंधित प्रजापति का दिव्य होता पूजन करे और प्रजापति सोम का सेवन करे और पीवे। हे मनुष्य होता! तुम भी उसी प्रकार पूजन करो ॥६४॥

हे प्रजापते! प्रजाओं का पालन करने में तुमसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। तुम हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने में समर्थ हो। अतः हम जिस अभिप्राय से यह यज्ञ करते हैं, हमारा वह अभिप्राय फल युक्त हो। हम तुम्हारे अनुग्रह से महान् ऐश्वर्य के अधिपति होते हुए सदा सुख पावें ॥६५॥

॥ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—प्रजापतिः ॥ देवता—प्रजापति, सोमादयः, अग्न्यादयः, मारुतादयः, विश्वेदेवाः, अग्न्यादयः, इन्द्रादयः, इन्द्राग्न्यादयः, अन्तरिक्षादयः वसन्तादयः, विराजादयः पितरः, वायुः, वरुणः, सोमादयः, कालावयवाः, भूम्यादयः, वस्वादयः, ईशानादयः,प्रजापत्यादयः, मित्रादयः, चन्द्रादयः, अश्विन्यादयः, अर्धमासादयः, वर्षादयः, आदित्यादयः, विश्वेदेवादयः ॥ छन्द—कृतिः, जगती, धृतिः,बृहती, उष्णिक्,पंक्ति, गायत्री,अनुष्टुप्, शक्वरी,त्रिष्टुप्।

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव ऽ आग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेध्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याꣳ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छ ऽ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥१॥

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥२॥

शुद्धवाल. सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽ आश्विना श्येत. श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा ऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपा: पार्जन्या ॥३॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुता फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ता सारस्वत्य प्लीहाकर्णं शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्रा कृष्णग्रीव शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऽ ऐन्द्राग्ना कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्तऽ उपस्या: ॥४॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचे ऽ विज्ञाता ऽ अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवाना पत्नीभ्य. ॥५॥

अश्व को प्रजापति की प्रीति के निमित्त अज को अग्नि की प्रीति के लिए, मेषी को सरस्वती की प्रसन्नता के लिए, श्वेत अज को अश्विद्वय के लिए, काला और काला श्वेत अश्व सोम और पूषा के लिए, श्वेत और कृष्ण वर्ण के अज सूर्य और यम के लिए. अधिक रोम वाला त्वष्टा के लिए, श्वेत वायु के लिए, गर्भघातिनी इन्द्र के लिए और विष्णु की प्रसन्नता के लिए नाटे पशु को बाँधे ॥१॥

लाल, धूम्र वर्ण, बेर के समान वर्ण सोम सम्बन्धी हैं। भूरे, लाल, भूरे-हरे वरुण सम्बन्धी हैं। मर्म स्थान में श्वेत और अन्य स्थान में श्वेत रन्ध्र वाले सविता सम्बन्धी है। श्वेत पद वाले बृहस्पति सम्बन्धी हैं। विचित्र वर्ण वाले, छोटी या बड़ी बूँद वाले मित्रावरुण सम्बन्धी हैं ॥ २ ॥

श्वेत बालों वाले, मणि के समान वर्ण वाले अश्वद्वय सम्बन्धी हैं। श्वेत रङ्ग के, श्वेत नेत्र और लाल रङ्ग के पशुपति रुद्र सम्बन्धी, हैं। श्वेत कर्ण वाले यम सम्बन्धी हैं। सगर्व पशु रुद्र सम्बन्धी और आकाश के समान वर्ण वाले पर्जन्य सम्बन्धी हैं ॥३॥

[५२७] अद्भुत वर्ण, तिरछी रेखा वाले, लम्बी-ऊँची रेखा वाले मरुद्गण सम्बन्धी हैं। कृश देह वाले, लोहित वर्ण या श्वेत वर्ण के लोम

वाले सरस्वती सम्बन्धी हैं। प्लीहा के समान कान वाले त्वष्टा सम्बन्धी हैं। कृष्ण रेखा वाले, अल्प रेखा वाले अथवा सम्पूर्ण शरीर पर रेखाओं वाले पशु उषा देवता सम्बन्धी हैं ॥४॥

अद्‌भुत एवं कई रङ्गों वाले विश्वेदेवों सम्बन्धी हैं। लाल वर्ण के डेढ़ वर्ष की आयु वाले वाणी सम्बन्धी हैं। ज्ञान रहित अथवा चिह्न रहित पशु अदिति सम्बन्धी हैं। श्रेष्ठ रूप वाले पशु धाता देवता सम्बन्धी तीन वाल वाली छागी देव-पत्नियों से सम्बन्धित हैं ॥५॥

कृष्णग्रीवा ऽ आग्नेया. शितिभ्रवो वसूनाᳬ रोहिता रुद्राणाᳬ श्वेता ऽ अवरोकिण ऽ आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥६॥
उन्नत ऽ ऋषभो वामनस्त ऽ ऐन्द्रावैष्णवा ऽ उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऽ ऐन्द्राबार्हस्पत्या शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा ऽ आग्नि-मारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥७॥

एता ऽ ऐन्द्राग्नाः द्विरूपा ऽ अग्नीषोमीया वामना ऽ अनड्वाह ऽ आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्यो ऽ न्यत ऽ एन्यो मैत्र्यः ॥८॥
कृष्णग्रीवा ऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या ऽ अविज्ञाता ऽ अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥९॥
कृष्णा भौमा धूम्रा ऽ आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥

कृष्णग्रीव पशु अग्नि सम्बन्धी, श्वेत भौं वाले वसु सम्बन्धी, लाल वर्ण के रुद्र सम्बन्धी और श्वेत वर्ण के आदित्य सम्बन्धी हैं। आकाश के समान वर्ण वाले पर्जन्य सम्बन्धी हैं ॥६॥

उन्नत, पुष्ट अथवा नाटा पशु इन्द्र और बृहस्पति सम्बन्धी हैं। तोते के समान वर्ण वाले वाजी देवता सम्बन्धी हैं। चितकबरे पशु अग्नि और मरुद्‌गण सम्बन्धी हैं। श्याम वर्ण वाले पशु पूषा सम्बन्धी हैं ॥७॥

चितकबरे इन्द्राग्नि सम्बन्धी, दो रूप वाले अग्नि-सोम सम्बन्धी,

माटे पशु अग्नि विष्णु वाले, वन्ध्या अजा मित्रावरुण सम्बन्धी और एक ओर से चित्र विचित्र पशु मित्र देवता सम्बन्धी हैं ॥८॥

कृष्णग्रीव पशु अग्नि सम्बन्धी, कपिल वर्ण के सोम देवता सम्बन्धी, सर्वाङ्ग श्वेत वायु देवता सम्बन्धी, अविज्ञात वर्ण के पशु अदिति सम्बन्धी, श्रेष्ठ रूप वाले धाता देवता सम्बन्धी और वत्सतरी देवांगनाओं सम्बन्धी हैं ॥९॥

काले वर्ण के पृथिवी सम्बन्धी, धूम्र वर्ण के अन्तरिक्ष सम्बन्धी और बड़े पशु स्वर्ग सम्बन्धी हैं। चितकबरे विद्युत सम्बन्धी तथा सिध्म पशु नक्षत्र सम्बन्धी हैं ॥१०॥

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥११॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा ऽ अनुष्टुभे तुर्यवाह ऽ उष्णिहे ॥१२॥

पष्ठवाहो विराज ऽ उक्षाणो बृहत्या ऽ ऋषभाः ककुभे ऽ नड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥१३॥

कृष्णग्रीवा ऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्या ऽ उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥१४॥

उक्ताः सञ्चरा ऽ एता ऽ ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥१५॥

धूम्र वर्ण के वसन्त ऋतु सम्बन्धी, श्वेत वर्ण के ग्रीष्म ऋतु सम्बन्धी, कृष्ण वर्ण के वर्षा ऋतु सम्बन्धी हैं। अरुण वर्ण के शरद् ऋतु सम्बन्धी, विभिन्न वर्ण और बिन्दुओं से चित्रित हेमन्त ऋतु सम्बन्धी तथा अरुण-कपिल वर्ण के पशु शिशिर ऋतु सम्बन्धी हैं ॥११॥

डेढ़ वर्ष के गायत्री छन्द सम्बन्धी, ढाई वर्ष के त्रिष्टुप छन्द सम्बन्धी, दो वर्ष के जगती छन्द सम्बन्धी, तीन वर्ष के अनुष्टुप् छन्द सम्बन्धी और साढ़े तीन वर्ष की आयु वाले पशु उष्णिक छन्द सम्बन्धी हैं ॥१२॥

चार वर्ष के विराट् छन्द सम्बन्धी, युवावस्था वाले बृहती छन्द सम्बन्धी, उक्षा से अधिक आयु वाले ककुभ् छन्द सम्बन्धी, शकट वाहक पशु पंक्ति छन्द सम्बन्धी और नवोत्पन्न पशु अतिच्छन्द से सम्बन्धित हैं ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीव पशु अग्नि-सम्बन्धी, कपिल वर्ण वाले सोम-सम्बन्धी, निम्न स्वभाव के पशु सवितादेव सम्बन्धी, वत्सछागी सरस्वती सम्बन्धी श्याम वर्ण के पूषा सम्बन्धी विविध रूप वाले विश्वेदेवों सम्बन्धी तथा वशा पशु द्यावा पृथिवी सम्बन्धी हैं ॥१४॥

कृष्णग्रीवादि पन्द्रह पशु को कहे गए हैं वे अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती आदि से सम्बन्धित हैं। श्याम वर्ण के पूषा-सम्बन्धी, चितकबरे, इन्द्राग्नि सम्बन्धी, काले वरुण सम्बन्धी, कृश देह वाले मरुद्गण सम्बन्धी तथा बिना सींग के प्रजापति सम्बन्धी हैं ॥१५॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो वष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥१६॥

उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥१७॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाꣳ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥१८॥

उक्ताः संचराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्य्याः ॥१९॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरी-
ञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥२०॥

पहलौठी के पशु अग्नि सम्बन्धी, बात में स्थित पशु मरुद्गण सम्बन्धी, बहुत समय के उत्पन्न पशु गृहमेधी नामक मरुद्गण की प्रसन्नता के निमित्त बाँधने चाहिए ॥१६॥

कृष्ण ग्रीवादि १४ पशु अठारवें यूप में बताए गए हैं, वे अग्नि सोम, सविता, सरस्वती और पूषा से सम्बन्धित हैं। उन्नीसवें में चितकबरे पशु इन्द्राग्नि सम्बन्धी, प्रकृष्ट सींगों वाले महेन्द्र देवता सम्बन्धी और विभिन्न रूप वाले तीन पशु विश्वकर्मा सम्बन्धी बाँधने चाहिए ॥१७॥

धूम्र वर्ण वाले पशु और कपिल वर्ण के पशु सोम युक्त पितरों से सम्बन्धित हैं। कपिल वर्ण के, धूम्र के समान पशु कुशाओं पर बैठने वाले पितरों से सम्बन्धित हैं। कृष्ण और कपिल वर्ण के पशु अग्निष्वात्त नामक पितरों वाले तथा कृष्णरंग और बिन्दु युक्त पशु त्र्यम्बक नामक पितरों से सम्बन्धित हैं ॥१८॥

अग्नि सम्बन्धी कृष्णग्रीव, सोम सम्बन्धी बभ्रु वर्ण और सविता सम्बन्धी उपध्वस्त पशु बाँधे। सरस्वती सम्बन्धी वत्सतरी, पूषा सम्बन्धी कृष्ण और चितकबरे, शुनासीर सम्बन्धी श्वेत, वायु सम्बन्धी श्वेत छाग और सूर्य सम्बन्धी तीन पशु इक्कीसवें यूप में बाँधे ॥१६॥

वसन्त के लिए कपिञ्जल चातक, ग्रीष्म के लिए कलविंक चटक वर्षा के लिए तीतर, शरद् के लिए बटेर, हेमन्त के लिए ककर और शिशिर के लिए विककर। इस प्रकार तीन-तीन नियुक्त करे ॥२०॥

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्
मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥२१॥

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाकाऽइन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्
मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥२२॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्यऽउलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषान-

श्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥२३॥

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्यो ऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥२४॥

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयो, सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥२५॥

समुद्र के लिए शिशुमार जलचर, पर्जन्य के लिए मण्डूक, जल के लिए मत्स्य, मित्र के लिए केंकड़े और वरुण के लिए तीन कुलीरक नाके नियुक्त करे ॥२१॥

सोम के निमित्त हंस, वायु के निमित्त जल-काक और वरुण के निमित्त चकवों को नियुक्त करे ॥२२॥

अग्नि के निमित्त मुर्गे, वनस्पति के निमित्त उलूक, अग्नि-सोम के निमित्त नीलकंठ, अश्विद्वय के निमित्त मयूर और मित्रावरुण के निमित्त कपोतों को नियुक्त करे ॥२३॥

सोम के लिए बटेर, त्वष्टा के लिए कौलीक पक्षी, देव-पत्नियों के लिए गोषादी नामक पक्षी, देव-भगिनियों के लिए कुलीक और गृहपति अग्नि के लिए पारुष्ण नामक पक्षियों को नियुक्त करे ॥२४॥

अहदेवता के लिए कपोत, रात्रि के लिए सीचापू पक्षि, दिन-रात्रि के सन्धिकाल के लिए पात्र नामक पक्षी, मास के लिए कालकण्ठ पक्षी और संवत्सर के लिए बड़े सुपर्णों को नियुक्त करे ॥२५॥

भूम्या ऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥

वसुभ्य ऽऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२७॥

ईशानाय परस्वत ऽआलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्र ऽउष्ट्रान् ॥२८॥

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन ऽ आलभते वाचे प्लुषीश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥२९॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषोयमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गो कृमि समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥३०॥

भूमि के निमित्त चूहे, अन्तरिक्ष के निमित्त पाङ्क्त्र नामक चूहे और स्वर्ग के निमित्त काश नामक चूहों को नियुक्त करे। दिशाओं के लिए न्यौले और अन्तर दिशाओं के लिये बभ्रु वर्ण वाले न्यौलों को नियुक्त करे ॥२६॥

वसुओं के लिए ऋश्य मृगों को, रुद्रों के लिए रुरु मृगों को, आदित्यों के लिय न्यंकु नामक मृगों को, विश्वेदेवों के लिए पृषत मृगों को, साध्य देवताओं के लिए कुलङ्गों को नियुक्ति करे ॥२७॥

ईशान देवता के लिए पारस्वत नामक मृग, मित्र देवता के लिए गौर मृग, वरुण के लिए वन महिष, बृहस्पति के लिए गवय मृग और त्वष्टा देव के लिए ऊँटों की नियुक्ति करे ॥२८॥

प्रजापति के लिए नर हाथी, वाणी के लिए वज्रतुण्ड, चक्षु के लिए मशक और श्रोतों के लिए भौंरों को नियुक्त करे ॥२९॥

प्रजापति और वायु देवता के लिए गवय मृग, वरुण के लिये वन-मेष, यम के लिये कृष्ण मेष मनुष्य राजा के लिए बन्दर, शार्दूल के लिए लाल रंग का मृग, ऋषभ देवता के लिए गवय मृगी, श्येन देवता के लिए बतक, नीलग के लिए कृमि, समुद्र के लिए शिशुमार जलचर और हिमवान् देवता के लिए हाथी नियुक्त करे ॥३०॥

मयुः प्राजापत्य ऽ उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे कुञ्च ॥ ३१ ॥

सोमाय कुलुङ्ग ऽ आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायो-रिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्र-वाकः ॥ ३२ ॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुष-वाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

सुपर्णः पार्जन्य ऽ आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज ऽ आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावा-पृथिवीयः कूर्मः ॥३४॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

प्रजापति संबंधी तुरंग-किन्नर, धाता संबंधी उपपक्षी, सिंह और बिडाल, दिशाओं संबंधी चील, आग्नेय दिशा वाली धुङ्क्षा-नाम की पक्षिणी तथा त्वष्टा-सम्बन्धी चिरौंटा, लाल सर्प और कमल को खाने वाला पक्षी यह तीनों हैं। वाणी के निमित्त क्रौंच पक्षी को नियुक्त करे ॥ ३१ ॥

सोम के लिए कुलंग नामक मृग पूषा के लिए वन-मेष, न्यौला और शकुनी, मायु देवता के लिए शृगाल, इन्द्र के लिए गौर मृग, अनुमति देवता के लिए न्यंकु नामक मृग और कक्कट मृग, प्रतिश्रुत्वा देवता के लिए चकवे की नियुक्ति करे ॥ ३२ ॥

सूर्य देवता संबंधी बगुली, मित्र देवता सम्बन्धी चातक, सृजय और शयाण्डक नामक पक्षी, सरस्वती संबंधी मनुष्य के समान बोलने वाली मैना, पृथिवी सम्बन्धी सेही, क्रोध देवता सम्बन्धी सिंह, शृगाल और सर्प तथा समुद्र सम्बन्धी मनुष्य के समान बोलने वाला तोता हैं ॥ ३३ ॥

सुपर्ण पर्जन्य सम्बन्धी, थाड़ी पक्षी, वाहस, और काष्टकुट यह तीनों

वायु सम्बन्धी, पैङ्गराज पक्षी वाचस्पति सम्बन्धी, अलज पक्षी अन्तरिक्ष सम्बन्धी, जलकुक्कुट, कारण्डव और मत्स्य यह तीनों नदी पति से सम्बन्धित तथा कच्छप द्यावापृथिवी से सम्बन्धित है ॥ ३४ ॥

वन मानुस चन्द्रमा सम्बन्धी, गोधा, कालका और कठफोर वनस्पति सम्बन्धी, ताम्रचूड सूर्य सम्बन्धी, हंस वायु संबंधी, नाक्र, मगर और जलजन्तु समुद्र सम्बन्धी और शल्यक ह्री देवी संबंधी है ॥ ३५ ॥

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणा लोपाश ऽ आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऽ ऋक्षो जतू सुषिलीका त ऽ इतरजनाना जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूर सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासाङ्कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसा मृत्यवेऽसित. ॥३७॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणा बलायाजगरो वसूना कपिञ्जल कपोत ऽ उलूक. शशास्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

श्वित्र ऽ आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वाध्रीनसस्ते मत्या ऽ अरण्याय सृमरो रुरु रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिना कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्ण. कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुत. कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषा देवाना पृषत ॥ ४० ॥

हरिणी यह देवता संबंधी, मैंढक, चुहिया और तीतर सर्प सम्बन्धी लोपाश नामक वनचर अश्विद्वय सम्बन्धी, काला मृग रात्रि सम्बन्धी, रीछ, जतू और सुषिलीक पक्षी यह अन्य देवताओं से सम्बन्धित तथा जहका पक्षिणी विष्णु सम्बन्धी है ॥ ३६ ॥

कोकिल पक्षी अर्धमास के लिए, ऋष्य मृग, मोर और सुपर्ण गंधर्वों

के लिए, कर्कटादि जलचर जलों के लिए, कछुआ महीनों के लिए, कालमृग, वनचरी और गोलत्तिका पक्षिणी अप्सराओं के लिए तथा काला मृग मृत्यु देवता के लिए नियुक्त करे ॥ ३७ ॥

भेकी ऋतु-सम्बन्धी, चूहा, छछून्दर और छिपकली पितर-संबंधी, अजगर बलदेवता सम्बन्धी, कपिंजल वसु संबंधी, कपोत, उलूक और शश निऋति देवता सम्बन्धी तथा वन मेष वरुण-संबंध में नियुक्त करे ॥ ३८ ॥

शिवत्र मृग आदित्यों के लिए, ऊँट, चील, कण्ठ स्तन युक्त पशु मति देवी के लिए, नीलगौ अरण्य के लिए, रुरुमृग रुद्रों के लिए, मुर्गा, कालकण्ठ और क्वयि नामक पक्षी वाजि देवताओं के लिए तथा कोकिल काम देवता के लिए नियुक्त करे ॥ ३९ ॥

गैंडा विश्वेदेवा संबंधी, कालाश्वान, गधा और व्याघ्र राक्षसों संबंधी, सुकर इन्द्र सम्बन्धी, सिंह मरुद्गण संबंधी कृकलास, पपीहा और शकुनी शरव्य देवी सम्बन्धी, पृषत जाति वाला हरिण विश्वेदेवों संबंधी है ॥४०॥

॥ पञ्चविंशोऽध्याय ॥

ऋषि—प्रजापतिः, गोतमः, ।

देवता—सरस्वत्यादयः, प्राणादयः, इन्द्रादयः, अग्न्यादयः, मरुतादयः, पूषादयः, हिरण्यगर्भः, ईश्वरः, परमात्मा, यज्ञः, विद्वांसः, विश्वेदेवाः, वायुः, द्यौरित्यादयः, मित्रादयः, यजमानः, आत्मा, प्रजा, अग्निः, विद्वान् ।

छन्द—शक्वरीः, कृतिः, धृतिः, अष्टिः, त्रिष्टुप, पंक्तिः, जगती, बृहती ।

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं वर्स्वैस्तेगान्दंष्ट्राभ्याᳬ सरस्वत्या ऽअग्रजिह्वं जिह्वाया ऽ उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजᳬ हनुभ्यामप ऽ आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावा-

पृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याᳫं शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या ऽ इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या ऽ इक्षवः ॥ १ ॥

वात प्राणेनापानेन नासिके ऽ उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳫं श्रोत्रᳫं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳫं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳫं स्तुपेन ॥ २ ॥

मशकान् केशैरिन्द्रᳫं स्वपसा वहेन बृहस्पतिᳫं शकुनिसादेन कूर्म्माञ्छफैराक्रमणᳫं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावᳫंसाभ्याᳫं रुद्रᳫं रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताᳫं सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳫं सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥

अश्व के दाँतों द्वारा शाद देवता को दंतमूल से अवका देवता को, दांतों की पछड़ियों से मृद देवता को, दाढ़ों से तेग देवता को, तेरी दृष्ट्रा से वाणी को, जिह्वा के अग्र भाग द्वारा सरस्वती को, जिह्वा द्वारा उत्साद देवता को, तालु से अवक्रन्द देवता को, हनु से अन्न देवता को, मुख से अप देवता को, वृषणों से वृषण देवता को, दाढ़ी से आदित्यों को, भौं से

पन्थ देवता को, पलक-लोमों से द्यावा पृथिवी को, कनीनका से विद्युत को प्रसन्न करता हूँ। शुक्र देवता के निमित्त स्वाहुत हो, कृष्ण देवता के लिए स्वाहुत हो। नेत्र के ऊपर के लोम पार देवता वाले हैं। नेत्र के निचले भाग के लोम अवार देवता वाले हैं, मैं उन्हें प्रसन्न करता हूँ ॥ १ ॥

प्राण से वात देवता को, अपान से नासिक देवता को, अधर से उपयाम देवता को, उपरोष्ठ से सत् देवता को, शरीर कान्ति से अन्तर देवता को, नीचे के देह की कान्ति से बाह्य देवता को मस्तक से निवेष्य को, अस्थि भाग से स्तनयित्नु को, शिर के मध्य भाग से अशनी देवता को, नेत्र तारका से विद्युत देवता को, कर्णों से श्रोत्र को, श्रोत्र से कानों को, कण्ठ के निचले भाग से तेदनी देवता को, शुष्क कण्ठ से जल देवता को, ग्रीवा के पीछे की नाड़ी से चित्त को, शिर से अदिति को, जर्जरित शिरोभाग से निऋति को, शब्द से प्राणों को और शिखा से रेष्म को प्रसन्न करता हूँ ॥ २ ॥

केशों से मशकों को, स्कंध से इन्द्र को, गमन से बृहस्पति को, खुरों से कूर्मों को, स्थूल गुल्फों से आक्रमण को, नाड़ियों से कपिंजल को, जाँघों से वेग को, बाहु से मार्ग को, जानु से अरण्य को, जानु देश से अग्नि को, जानु के अधोभाग से पूषा को, अंसों से अश्विद्वय को और अंस ग्रन्थी से रुद्र को प्रसन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

अग्नि के लिए दक्षिण अस्थि, वायु के लिए दूसरी, इन्द्र की तीसरी, सोम को चौथी, अदिति को पाँचवीं, इन्द्राणी को छठवीं, मरुद्गण को सातवीं, बृहस्पति को आठवीं, अर्यमा को नौवीं, धाता को दसवीं, इन्द्र को ग्यारहवीं, वरुण को बारहवीं और यम को तेरहवीं प्रसन्न करने वाली है ॥ ४ ॥

इन्द्राग्नि के लिए वामास्थि, सरस्वती को दूसरी, मित्र को तीसरी, जल देवता को चौथी, निऋति को पाँचवीं, अग्नि-सोम को छठवीं, सर्पों को सातवीं, विष्णु को आठवीं, पूषा को नवमी, त्वष्टा को दशमी, इन्द्र को ग्यारहवीं, वरुण को बारहवीं, यम को तेरहवीं प्रसन्नताप्रद हो। द्यावापृथिवी

का पार्श्व भाग और विश्वेदेवों का उत्तर पर्श्व है, वह उससे प्रसन्नता को प्राप्त हो ॥ ५ ॥

मरुताᳪ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऽ ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳪ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत ऽ आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनᳪ शेपेन प्रजाᳪ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ ऽ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभि स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳪ समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ ८ ॥

विधृतिं नाभ्या घृतᳪ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा ऽ अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाᳪसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥

मरुद्गण को स्कन्ध, विश्वेदेवों को प्रथम अस्थि पंक्ति, रुद्रों को दूसरी, आदित्यों की तीसरी, वायु को पुच्छ, अग्नि सोम सम्बन्धी नितम्ब, कुंच देवों को श्रोणी, इन्द्र बृहस्पति को उरु मित्रावरुण को जंघा सन्धि, अधोभाग द्वारा आक्रमण देव और आवर्तों से बल को प्रसन्न करता हूँ ॥ ६ ॥

वनिष्ठु से पूषा को, स्थूल गुद से अन्ध सर्पों को आंत से विहुत को, वस्ति से जल को, अण्ड से वृषण को, मेढ़, से वाजी को, वीर्य से उत्पन्न

को, पित्त से चाष देवता को, तृतीय भाग से प्रदरों को और शकपिण्ड से कूश्मों को प्रसन्न करता हूँ ॥ ७ ॥

क्रोड से इन्द्र को, पाजस्य से अदिति को, जत्र से दिशाओं को, मेढ्राग्र से अदिति को, हृदय से मेघों को, आँत से अन्तरिक्ष को, उदर से आकाश को, पार्श्वास्थि से चकवों को, वृक्क से दिव को, प्लाशि से पर्वतों को, प्लीहा से उपल देवों को, गलनाडी से वल्मीक देवों को, हृदय नाड़ियों से गल्म देवताओं को, अन्न वाहिकाओं से स्रवन्ती देवों को, कुक्षि से हृददेव को, उदर से समुद्र को और भस्मि से वैश्वानर अग्नि को प्रसन्न करता हूँ ॥८॥

नाभि से विधृति को, वीर्य से घृत को, पक्वान्न से अप को, विन्दुओं से मरीची को, उष्णता से नीहार को, वसा से शीन को, अश्रुओं से प्रुष्वा को, नेत्रों से ह्रादुनी को, अस्र से राक्षसों को, अङ्गों से चित्र देवताओं को, रूप से नक्षत्रों को और त्वचा से पृथिवी को प्रसन्न करता हूँ ॥ ९ ॥

जो हिरण्य गर्भ सृष्टि से पूर्व एकाकी थे, वे सृष्टि के उत्पन्न होने पर इस सम्पूर्ण संसार के स्वामी हुए । उन्होंने इस पृथिवी और स्वर्गलोक को भी अपनी शक्ति से धारण किया । उन्हीं परम पिता की प्रसन्नता के लिए हम हवियों का विधान करते हैं ॥ १० ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक ऽ इद्राजा जगतो वभूव ।
य ऽ ईशे ऽ अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥
य ऽ आत्मदा वलदा यस्य विश्व ऽ उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो ऽ अपरीतास ऽ उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे ऽ असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवदिवे ॥१४॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न ऽ आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

जो प्रजापति जीवन देते और निमेष व्यापार करते हैं वे सब प्राणियों के एक मात्र स्वामी हैं। वही पशु, पक्षी और मनुष्यों पर आधिपत्य करते हैं। उन्हीं के लिए हम हवि विधान करते हैं ॥११॥

यह हिम युक्त पर्वत जिसकी महिमा को बखानते हैं, नदियों के साथ समुद्र को भी जिसकी महिमा ही कहा गया है और समस्त दिशाएँ जिसका पराक्रम बताई गई हैं, जिसकी भुजाएँ संसार का पालन करती हैं, उस परमात्मदेव के निमित्त हम हवि-विधान करते हैं ॥१२॥

जो ईश्वर देह में प्राण का संचार करता है, जो बलदाता और सब प्राणियों का शासक है, सभी देवता जिसके आधीन हैं, जिनकी छाया के स्पर्श से भी प्राणी अविनाशी मुक्ति को प्राप्त होता है, जिसे न जानना आवागमन का हेतु है, उस अद्वितीय परमात्म देव के लिए हम हवि-विधान करते हैं ॥ १३ ॥

सब ओर से विघ्न-रहित, अज्ञात फल वाले, कल्याणकारी यज्ञ हमें प्राप्त हों, जिससे देवगण आलस्य त्याग कर प्रतिदिन हमारी समृद्धि के कार्य में लगें ॥१४॥

सरल स्वभाव वाले देवताओं की कल्याणमयी श्रेष्ठ मति हमारे अभिमुख हो। उन देवताओं का दान हमारे सामने आवे। वे देवगण हमारी आयु को बढ़ावें ॥१५॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुण सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥१६॥
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥१७॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८॥
स्वस्ति न ऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा ऽ अवसागमन्निह ॥२०॥

पूर्व काल में स्वयं उत्पन्न वेद वाणी द्वारा हम उन अच्युत भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, सोम और आश्विनीकुमारों को आहूत करते हैं। श्रेष्ठ भाग्य के देने वाली सरस्वती भी हमारे लिए सुख की हेतु बनें ॥ १६ ॥

हे वायो ! तुम हमारे निमित्त उस सुखकारी औषधि को लाओ। माता पृथिवी महान् सुख देने वाली भेषज से युक्त हों। पिता रूप स्वर्ग उस सुखकारी जल का विस्तार करें। सोमाभिषव करने वाले सुखकारी ग्रावा औषधि रूप से प्रकट हों। हे अश्विद्वय ! तुम सबके आश्रय रूप हो, अतः हमारी स्तुति सुन कर हमें सुख प्रदान करो ॥१७॥

जो स्थावर जंगम प्राणियों के एक मात्र स्वामी हैं, जिनकी प्रेरणा से सब प्राणी चैतन्य होकर संतोष-लाभ करते हैं, हम उन रुद्र देवता का आह्वान करते हैं, जिससे वेद ज्ञान के रक्षक, हमारे पुत्र आदि का पालन करने वाले अच्युत पूषा देवता हमारे कल्याण की वृद्धि करने वाले हों ॥१८॥

अत्यंत यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करने वाले हों। सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करने वाले हों। जिनके संकट नाशक चक्र को कोई रोक नहीं सकता, वह परमात्मा, गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें ॥१९॥

वड़वा वाहन वाले, दिति द्वारा उत्पन्न, कल्याणकारी, यज्ञशालाओं में जाने वाले, अग्निजिह्व, सर्वज्ञ और सूर्य रूपी नेत्र वाले मरुद्गण और विश्वेदेवा हमारे हविरन्न के निमित्त इस स्थान पर आगमन करें ॥२०॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥
शतमिन्नु शरदो ऽ अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा ऽ अदितिः पञ्च जना ऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥२३॥
मा नो मित्रो वरुणो ऽ अर्य्यमायुरिन्द्र ऽ ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्य्याणि ॥ २४ ॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप ऽ इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२५॥

हे यज्ञकर्त्ता यजमानों के पालक देवगण! हम दृढ़ शरीर वाले, पुत्रादि से सम्पन्न होकर तुम्हारी स्तुति करें और अपने कानों से तुम्हारे श्रेष्ठ कर्मों को सुनें। अपने नेत्रों से सुख को देखें। तथा देवताओं की उपासना में लगने वाली आयु को प्राप्त करें ॥ २१ ॥

हे देवताओ! तुम हमें उस आयु में जरावस्था प्राप्त कराओ, जिस आयु में हमारे पुत्र संतानवान होकर पिता बन जाँय। तुम सौ वर्ष तक हमारे समीप आओ। हमारे गमनशील जीवन को मध्य काल में ही समाप्त मत कर देना ॥ २२ ॥

स्वर्ग अदिति है, अन्तरिक्ष अदिति है, माता, पिता, पुत्र, विश्वेदेवा, मनुष्य तथा उत्पन्न हुए प्राणी और भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्राणी सभी अदिति रूप एवं सौभाग्यशाली हैं ॥ २३ ॥

हम अपने यज्ञ में जिस सूर्योत्पन्न अश्व के चरित्र को कहेंगे उसके प्रभाव से मित्र, वरुण, अर्यमा, आदित्य, वायु, इन्द्र, ऋभुक्षा, और मरुद्गण हमारी निन्दा न करें ॥ २४ ॥

जब ब्राह्मण स्नान और सुवर्ण मणि आदि के द्वारा संस्कारित अश्व के मुख में घृतादि देते हैं, तब अनेक वर्ण वाला अज इन्द्र और पूषा को संतुष्ट करता है ॥ २५ ॥

एष छाग: पुरो ऽश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनᳬ सौश्रवसाय जिन्वति ॥२६॥
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्य्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग ऽ एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७॥

होताध्वर्यु रावया ऽ अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ ऽ उत शꣳस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥
यूपव्रस्का ऽ उत ये यूपवाहाश्चषालं ये ऽ अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न ऽ इन्वतु ॥२९॥
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा ऽ उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऽ ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥३०॥

जब यह अज अश्व के आगे प्राप्त किया जाता है, तब प्रजापति उसे स्वर्ग गमन युक्त श्रेष्ठ यश की प्राप्ति कराते हैं ॥ २६ ॥

जब मनुष्य ऋत्विज् यज्ञीय अश्व की तीन परिक्रमा करते हैं, तब वह अज अपने शब्द सहित यज्ञ को प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

हे ऋत्विजो ! तुम उस श्रेष्ठ हवि और दक्षिणा वाले अश्वमेध यज्ञ के द्वारा घृत के समान जल वाली उत्कृष्ट नदियों को पूर्ण करो ॥२८॥

जो ऋत्विज् सभी यज्ञीय कर्मों को कुशलता पूर्वक करते हैं, उन ऋत्विजों का श्रेष्ठ उद्यम हम यजमानों को भले प्रकार तृप्त करने वाला हो ॥ २९ ॥

मनन करने योग्य श्रेष्ठ फल हमारे समीप स्वयं आवें । वह फल मेरे कारण धारण किया गया है । उस पर चढ़ने की इच्छा सभी करते हैं। हमने इस अश्व को देवताओं का मित्र बनाया है। हमारे कार्य का सभी विद्वान् ब्राह्मण अनुमोदन करें ॥ ३० ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते ऽ अपि देवेष्वस्तु ॥३१॥
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते ऽ अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य ऽ आमस्य क्रविषो गन्धो ऽ अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ ॥
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।

मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३४॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति।
ये चार्वतो माᳬसभिक्षामुपासत ऽ उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न ऽ इन्वतु ॥३५॥

यन्नीक्षणं माᳬस्पचन्या ऽ उखाया या पात्राणि यूष्ण ऽ आसेचनानि।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥३७॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते ऽ अपि देवेष्वस्तु ॥३८॥

यदश्वाय वास ऽ उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३९ ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद।
स्रुचेव ता हविषो ऽ अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥४०॥

चतुस्त्रिᳬशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऽ ऋतुः।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥४२॥

मा त्वा तपत् प्रिय ऽ आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व ऽ आ तिष्ठिपत्ते।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३॥

न वा ऽ उ ऽ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
हरी ते युञ्जा पृषती ऽ अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥४४॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुᳬसः पुत्राँ२ ऽ उत विश्वापुषᳬ रयिम्।
अनागास्त्वं नो ऽ अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो ऽ अश्वो वनताᳬ हविष्मान्
। ४५ ॥

[ऊपर दिये गये ३१ से ४५ तक के मंत्रों में "अश्व" के बलिदान का विवरण दिया गया है। कर्मकाण्ड प्रधान भाष्यों में इनका अर्थ वास्तविक अश्व का बलिदान बतलाया है, और साथ ही यह भी लिखा है कि यज्ञ कराने वाले अलौकिक शक्ति सम्पन्न ऋषिगण अपने तपोबल द्वारा मृत अश्व को पुनर्जीवित कर देते थे। अन्य वेदकालीन ऋषियों और विद्वानों ने इस "अश्व" को समस्त विश्व का रूपक बतलाया है। अथर्व वेद में कहा गया है—

"देवताओं ने अश्व रूप हवि से साध्य अश्वमेध यज्ञ को किया, तब रसोत्पादिका बसन्त ऋतु यज्ञ का घृत और ग्रीष्म ऋतु समिधा होगई तथा शरद् ऋतु पुरोडाश रूप हवि हुई। (१६—६—६७)

"यजुर्वेद" के ग्यारहवें अध्याय के २० वे मन्त्र में 'अश्व' का विवरण देते हुए लिखा है—

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः"

अर्थात् 'हे अश्व ! स्वर्ग तुम्हारी पीठ है, पृथिवी तुम्हारे पाँव, अन्तरिक्ष तुम्हारी आत्मा है, समुद्र तुम्हारी योनि (उत्पत्ति स्थान है।)

इस अश्व और अश्वमेध यज्ञ का वास्तविक रहस्य 'वृहदारण्यक उपनिषद्" में प्रकट किया गया है। जैसा सब जानते हैं—उपनिषद् वैदिक-साहित्य के सर्वोच्च अङ्ग हैं और वेदों के आध्यात्मिक तत्वों की व्याख्या उन्हीं में की गई है। "अश्वमेध यज्ञ' के सम्बन्ध में इस उपनिषद् में लिखा है—

उषा वा अश्वस्य मेधस्य शिरः सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सर आत्मा अश्वस्य मेध्यस्य द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथ्वी पाजस्यम् । दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पर्शव ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्द्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो मांसानि ऊवध्यं सिकताः सिन्धवो गुदा ।

यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च लोमानि उद्यन् पूर्वार्द्धो निम्लोचञ्जघनार्द्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते । यद्विधूनुते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक् ॥१॥

(बृहदारण्यक ब्रा० १.१)

अर्थात्—"उषा, यज्ञसम्बन्धी अश्व का सिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, वैश्वानर अग्नि खुला हुआ मुख है और संवत्सर यज्ञिय अश्व का आत्मा है। द्युलोक उसकी पीठ है, अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पैर रखने का स्थान है, दिशायें पार्श्वभाग हैं, अवान्तर दिशाएं पसलियाँ हैं, ऋतुएँ अंग हैं, मास और अर्द्धमास पर्व (संधि स्थान अथवा जोड़) हैं, दिन और रात्रि प्रतिष्ठा (पाद, पैर) हैं, नक्षत्र अस्थियाँ हैं, आकाश (आकाश स्थित मेघ) माँस है, बालू ऊवध्य (उदर स्थित अर्धजीर्ण भोजन है), नदियाँ गुदा (नाड़ियाँ) हैं, पर्वत यकृत और हृदयगत मांस खण्ड हैं, औषधि और वनस्पतियाँ रोम हैं। उदय होता हुआ सूर्य नाभि के ऊपर का और अस्त हुआ सूर्य कटि के नीचे का भाग है। उसका जमुहाई लेना बिजली का चमकना है और शरीर हिलाना मेघ का गर्जन है। वह जो मूत्र त्याग करता है वही वर्षा और हिनहिनाना ही उसकी वाणी है।

अहर्वा अश्वम्पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनम्पश्चान्महिमान्वजायत तस्य.परे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्व महिमानावभितः सम्बभूवतुर्हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वाऽसुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धु समुद्र योनिः ॥

(बृह० १ ब्रा० २)

"अश्व के सामने महिमा रूप से दिन प्रकट हुआ। उसकी पूर्व समुद्र योनि है। रात्रि इसके पीछे महिमा रूप से प्रकट हुई, उसकी अपर (पश्चिम) समुद्र योनि है। ये ही दोनों इस अश्व के आगे पीछे के महिमा संज्ञक ग्रह हुए। इसने 'हय' होकर देवताओं को, वाजी होकर गन्धर्वों को,

'अर्वा होकर असुरों को और 'अश्व' होकर मनुष्यों को वहन किया है। समुद्र ही इसक बन्धु है और समुद्र ही उद्गम स्थान है।

आगे चलकर इस 'अश्व' द्वारा किये जाने वाले यज्ञ के विषय में लिखा है:—

सोकामयत मेध्यं म इदं स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततोऽश्वं समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वमेष ह व अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद । तमनवरुध्यैवामन्यत । तं संवत्सरस्यपरस्तादात्मन आलभत।
पशून्देवताभ्यः प्रत्यौहत्त । तस्मात्सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्त। एष वा अश्वमेधो य एस तपति तस्य संवत्सर आत्माऽयमाग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मानस्तावेतावर्काश्वमेधौ तौ पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाय पुनर्मृत्युंजयति नैनं मृत्युराप्नोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतोसां देवतानामेको भवति य एवं वेद।

(बृहदा आ० २)

"उसने कामना की कि मेरा यह शरीर मेध्य (यज्ञिय) हो, मैं इसके द्वारा शरीरवान् होऊँ। क्योंकि वह शरीर 'अश्वत्' अर्थात् फूल गया था, इसलिए वह अश्व होगया और वह मेध्य हुआ। अतः यही अश्वमेध का अश्वमेधत्व है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वही अश्वमेध को जानता है। उसने उसे अवरोध रहित (बन्धनशून्य) ही चिन्तन किया। उसने संवत्सर के पश्चात् उसका अपने ही लिए (अर्थात् इसका देवता प्रजापति है—इस भाव से) आलभन किया, तथा अन्य पशुओं को भी देवताओं के प्रति पहुँचाया। अतः याज्ञिक लोग मन्त्र द्वारा संस्कार किये हुए सर्व देव सम्बन्धी प्राजापत्य पशु का आलभन करते हैं। यह जो तपता है (अथवा सूर्य) वही अश्वमेध है। उसका संवत्सर शरीर है, यह अग्नि अर्क है, तथा उसके ये लोक आत्मा हैं। ये ही दोनों "अग्नि और आदित्य" अर्क और अश्वमेध हैं। किन्तु वे मृत्यु रूप एक ही देवता हैं। जो इस प्रकार जानता है,

वह पुनर्मृत्यु को जीत लेता है, उसे मृत्यु नहीं पा सकता, मृत्यु उसका आत्मा हो जाता है, तथा वह इन देवताओं में से ही एक हो जाता है।"

उपर्युक्त विवरण के पढ़ने से "अश्वमेध" के वास्तविक तत्व पर प्रकाश पड़ता है और वैदिक ऋषियों ने किस भावना से समस्त समाज की प्रगति के उद्देश्यसे यज्ञ का आधार ग्रहण किया था उसका भी रहस्य प्रकट होता है।

ये सब मन्त्र ऋग्वेद के मंडल १ सूक्त १६२ में (८ से २२ तक) भी आए हैं और इनका अर्थ भी वहीं दिया गया है]

❖ ❖ ❖

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवा ।
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६॥
अग्ने त्वं नो ऽअन्तम ऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽअच्छा नक्षि द्युमत्तम ँ रयिं दाः ॥४७॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽअघायतः समस्मात् ॥४८॥

इस कर्म के द्वारा इन्द्र, विश्वेदेवा आदित्य मरुद्गण आदि समस्त देवताओं को वशीभूत करते हैं। वे हमको नीरोग रखें और पुत्र पौत्र आदि प्रदान करें ॥४६॥

हे अग्ने! तुम हमारे निकट रहते हो तुम हमारा कल्याण करो, हमको द्युतिमान बनाओ और सब यज्ञ करने वालों को सुखी करो ॥४७॥

हे अग्ने! हमारी प्रार्थना को सुनकर हमारे सब मित्रों का कल्याण करो और पापाचारी हिंसकों से हमारी रक्षा करो ॥४८॥

॥ षड्विंशोऽध्यायः ॥

—:▭:—

ऋषिः—याज्ञवल्क्यः, लौगाक्षिः, गृत्समदः, रम्याक्षी, प्रादुराक्षिः, कुत्सः, वसिष्ठः, नोधा गोतमः, भारद्वाजः, वत्सः, महीयवः, मुद्गलः, मेधातिथिः, मधुच्छन्दाः ।

देवता—अग्न्यादयः, ईश्वरः, इन्द्रः, सूर्यः, वैश्वानरः, वैश्वानरोऽग्निः अग्निः, संवत्सरः, विद्वान्, विद्वांसः सोमः ।

छन्दः—कृतिः, अष्टि, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती, गायत्री, पंक्तिः ।

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चाऽन्तरिक्षं च सन्नते ते मे सं नमतामद ऽ आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामद ऽ आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सं नमतामदः । सप्त सँसदो ऽ अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ ऽ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥१॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२॥

बृहस्पते ऽ अति यदर्यो ऽ अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऽ ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३॥

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमँ शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥४॥

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिवा सोमँ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभि. सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥५॥

अग्नि और पृथिवी परस्पर अनुकूल गुण वाले हैं। वे दोनों मेरे अभीष्ट को न झुके दें। वायु और अन्तरिक्ष परस्पर मिले हुए हैं, वैसे ही मेरी कामनाएं मुझमें संगति करें। आदित्य और स्वर्ग जिस प्रकार सुसंगत है, वैसे ही मेरी इच्छायें फल से सुसंगत हों। जल और वरुण जिस प्रकार अभिन्न हैं, वैसे ही मेरी कामनायें फल से अभिन्न हों। हे परमात्मदेव! तुम अग्नि, वायु, सूर्य, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, जल, वरुण और पृथिवी के आश्रय रूप हो, हमारे मार्गों को कामनामय करो। मैं अभीष्ट फल वाला होऊँ ॥१॥

कल्याण करने वाली इस वाणी को ब्राह्मण, राजा, शूद्र, वैश्य, अपने जनों और समस्त जनों के लिए कहता हूँ। इस वाणी के द्वारा मैं इस यज्ञ में देवताओं का, दक्षिणा देने वालों का प्रीति पात्र होऊँगा। मेरा यह अभीष्ट सफल हो और मेरा अमुक कार्य सिद्ध हो जाय ॥ २ ॥

हे बृहस्पते! तुम सत्य के द्वारा आविर्भूत हुए हो। तुम हम यज्ञ-मानों मे अनेक प्रकार के धनों को धारण करो। जो धन परमात्मदेव का सत्कार करने वाला और कान्तिवान् है, जो यज्ञ के योग्य और प्राणियों को श्रेष्ठ शोभा प्रदान करने वाला है, जो धन अपने प्रभाव से अन्य धनों को लाने में समर्थ है। हे ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें बृहस्पति की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें बृहस्पति के निमित्त इस स्थान में स्थापित करता हूँ ॥ ३ ॥

सैकड़ों पराक्रमों वाले, रश्मियों से युक्त इन्द्र इस यज्ञ में आवें। वे यहाँ आकर पाषाणों से अभिषुत हुए सोम का पान करें। हे ग्रह! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए इस स्थान में स्थापित करता हूँ ॥ ४ ॥

हे सैकड़ों कर्म वाले, वृत्र-हन्ता इन्द्र ! तुम यहाँ आगमन करो और स्तुतियों के सहित निवेदित इस श्रेष्ठ संस्कृत सोम-रस का पान करो। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, गोमत इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें गोमत इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त इस स्थान में सादित करता हूँ ॥ ५ ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिपस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैप ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैप ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥

वैश्वानरो न ऽ ऊतय ऽ आ प्र यातु परावत. । अग्निरुक्थेन वाहसा ।
उपयामगृहीपोऽसि वैश्वानराय त्वैप ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥

अग्निऋर्पिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसे ऽ एप ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥९

महाँ ऽ इन्द्रो वज्रहस्तः पोडशी शर्म यच्छतु। हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१०॥

सत्य यज्ञ वाले, तेजराशि रूप, अविनाशी, दीप्तिकारी, अहिंसनीय वैश्वानर अग्नि की हम स्तुति करते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें वैश्वानर अग्नि की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वैश्वानर अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ सादित करता हूं ॥ ६ ॥

वैश्वानर देवता की श्रेष्ठ मति में हम प्रतिष्ठित हों। वे सब लोकों के आश्रय रूप वैश्वानर इस ज्ञानाग्नि द्वारा उत्पन्न हुए विश्व को देखते हुए सूर्य से स्पर्द्धा करते हैं और सूर्य के समान दीप्तिमान् होकर वृष्टि आदि

कर्मों को करते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हे वैश्वानर देवता की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वैश्वानर देव की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ सादित करता हूँ ॥ ७ ॥

वैश्वानर अग्नि स्तोम रूप वाहन द्वारा हमारी रक्षा के लिए दूर देश से भी आगमन करें। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, वैश्वानर देव की प्रीति के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वैश्वानर देव की प्रसन्नता के लिए तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ ८ ॥

जो अग्नि मन्त्रद्रष्टा ऋषि के समान पवित्र करने वाले और पाँचों वर्णों के हितकारी तथा यज्ञ में पुरोहित रूप से आगे स्थापित हैं, हम उन महान् अग्नि की स्तुति करते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, वर्चस्वी अग्नि की प्रसन्नता के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वर्चस्वी अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त तुम्हे यहाँ स्थापित करता हू ॥ ९ ॥

जो इन्द्र वृत्रहन्ता, वज्रधारी, सोलह कला युक्त और महान् हैं, वे इन्द्र हमें सुख दें। हमसे द्वेष करने वाले पापी को वे नष्ट कर डालें। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, महान् इन्द्र की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें महिमावान् इन्द्र की प्रीति के निमित्त यहाँ स्थापित करता हूँ ॥ १० ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव ऽ इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥११॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा ऽ उदीरते ॥ १२ ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न ऽ इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्द्धास ऽ इन्दुभिः ॥ १३ ॥

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥१४॥

उपह्वरे गिरीणाᳬ सङ्गमे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो ऽअजायत ॥ १५ ॥

हे यजमानो ! अपने प्रभुत्व से सब के दबाने वाले, तुम्हारे दर्शनीय निवास के योग्य अन्न से प्रसन्न हुए इन्द्र को हम स्तुतियों से प्रसन्न करते हैं, जैसे गौ अपने शब्द से बछड़े को प्रसन्न करती हैं ॥ ११ ॥

जो बृहत्साम अभीष्ट फल का प्राप्त कराने वाला है, उस साम को अग्नि के निमित्त गाओ और अग्नि से प्रार्थना करो कि हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा श्रेष्ठ धन की प्राप्ति होती है जैसे घर की स्वामिनी घर के समस्त उपभोग पति को देती है, वैसे ही तुम्हारे धन हमारे अनुगत हों ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! यहाँ भले प्रकार आओ। मैं तुम्हारे निमित्त स्तुति रूप दूसरी वाणी को निवेदित करता हूँ । तुम इस सोम-रस के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी सभी ऋतुऐं हमारे इस यज्ञ को समृद्ध करें । सभी मास हमारे इस हविरन्न की रक्षा करें । संवत्सर हमारे यज्ञ को तुम्हारे निमित्त पुष्ट करें और हमारे अपत्य आदि की सब प्रकार रक्षा करें ॥ १४ ॥

पर्वतों के समीप, नदियों के संगम स्थल पर तथा अन्य पवित्र स्थानों में अपने साधन और श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रᳬ शर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥
स न ऽ इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥
एना विश्वान्यर्य ऽ आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥
अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १९ ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।
त्वष्टारँ सोमपीतये ॥ २० ॥

हे सोम ! तुम्हारे रस रूप अन्न से उत्पन्न, उन्नत स्वर्ग में स्थित श्रेष्ठ पुत्रादि से युक्त सुख और महिमामयी कीर्ति वाले उत्कृष्ट धन को भूमि ग्रहण करती है ॥ १६ ॥

हे सोम ! ऐसे तुम कीर्ति वाले धन के ज्ञाता और यज्ञ के योग्य हो। अत इन्द्र, वरुण और मरुद्गण की तृप्ति के निमित्त रस रूप होकर आहुति के योग्य होओ ॥ १७ ॥

हे प्रभो ! मनुष्यों के योग्य इन सब धनों को प्राप्त कराओ और हम दानशील उपासक तुम्हारे प्रदत्त धनों का भले प्रकार उपभोग करें ॥१८॥

हे देव ! हम वीर पुत्रादि से युक्त हों । हम गौओं और अश्वों से युक्त हों तथा अन्य सभी ऐश्वर्यों की पुष्टि हम में हो । हमारे मनुष्य और पशु सब प्रकार की पुष्टि को प्राप्त हों और देवगण समय समय पर हमें यज्ञ कर्म में स्थित करें ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! हवि की कामना करने वाली देव पत्नियों को और त्वष्टा देवता को हमारे इस यज्ञ में सोम पान करने के निमित्त बुलाओ ॥२०॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्ट पिब ऽ ऋतुना ।
त्वँ हि रत्नधा ऽ असि ॥ २१ ॥
द्रविणोदा पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।
नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥
तवायँ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमँ सुमना ऽ अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर ऽ इन्दुमिन्द्र ॥२३॥
अमेव नः सुहवा ऽ आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मदस्व जुजुषाणो ऽ अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥२४॥
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुत ॥ २५ ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

हे पत्नीवत नेष्टा अग्ने ! हमारे यज्ञ की प्रशंसा करो । ऋतु के अधिष्ठात्री देवता के सहित इस यज्ञ में सोम-पान करो और हमारे लिए रत्नादि धनों के धारण करने वाले होओ ॥ २१ ॥

हे ऋत्विजो ! द्रविणोदा अग्नि सोम-पान की कामना करते हैं, अतः यजन करो और इस अनुष्ठान में नेष्टा के स्थान से ऋतुओं के सहित सोम की ओर गमन करो ॥ २२ ॥

हे इन्द्र ! सामने रक्खा हुआ यह सोम तुम्हारे निमित्त ही है । तुम हमारे सामने आओ और प्रसन्न होकर बहुत समय तक इस सोम की रक्षा करो । हमारे इस यज्ञ में कुशाओं पर विराजमान होकर श्रेष्ठ सोम-रस को उदरस्थ करो ॥ २३ ॥

हे श्रेष्ठ आह्वान वाली देवाङ्गनाओ ! तुम हमारे यज्ञगृह में अपने आवास-गृह के समान आगमन करो, और कुशाओं पर विराजमान होकर परस्पर वार्तालाप करती हुई प्रसन्न होओ । हे त्वष्टादेव ! तुम देव-पत्नियों के आगमन पर हवि रूप अन्न का सेवन करते हुए देवताओं और उनकी पत्नियों के सहित तृप्ति को प्राप्त करो ॥ २४ ॥

हे सोम ! तुम अपनी अत्यन्त हर्षप्रद और सुस्वादु धारा के सहित द्रोण कलश में आगमन करो । क्योंकि तुम इन्द्र के पानार्थ ही निष्पन्न हुए हो ॥ २५ ॥

हे सोम ! देवताओं के पान-द्वारा राक्षसों का नाश करने वाले और सर्व शुभाशुभ के द्रष्टा तुम ऋत्विजों और यजमानों से युक्त लौह और काष्ठमय सुसंस्कृत द्रोणकलश में जाते और यज्ञ स्थान में स्थित होते हो ॥ २६ ॥

॥ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—अग्नि । प्रजापति । वसिष्ठ । हिरण्यगर्भ । गृत्समद । पुरुमीढ । अजमीढ । अङ्गिरस । शम्युर्बार्हस्पत्य । वामदेव । शम्यु । भार्गव ।

देवता—अग्नि, सामिधेन्य, विश्वेदेवा, अश्व्यादय, सूर्य यज्ञ वह्नि, वायु, देव्य, इडादयोलिङ्गोक्ता, त्वष्टा, विद्वान, इन्द्र, प्रजापति, परमेश्वर ।

छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती, अनुष्टुप्, उष्णिक् गायत्री, कृति ।

समास्त्वाग्न ऽऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सरा ऽऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽआ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते ऽअग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये ॥२॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा ऽइमे शिवो ऽअग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो ऽअभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥
इहैवाग्ने ऽअधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां ते ऽअनिष्टृतः ॥ ४ ॥
क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था ऽएधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥

हे अग्ने ! तुम्हें प्रतिमास, हर ऋतु में, प्रत्येक संवत्सर में ऋषिगण सत्यवाणी रूप मंत्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं। ऐसे तुम अपने दिव्य तेज के द्वारा प्रदीप्त होते हुए सभी दिशाओं, प्रदिशाओं को प्रकाशित करो ॥१॥

हे अग्ने ! तुम प्रदीप्त होकर इस यजमान को प्रेरणा दो और इसे

महान् ऐश्वर्य प्राप्त कराने का यत्न करो। हे अग्ने ! तुम्हारा उपासक नाश को प्राप्त न हो। तुम्हारे ऋत्विज् और यजमान आदि सभी भक्त यश के भागी हों और अभक्त किंचित् यश भी न प्राप्त कर सकें ॥२॥

हे अग्ने ! यह ब्राह्मण तुम्हारी उपासना करते हैं, अतः इन ब्राह्मणों के वरण किये जाने पर तुम हमारा कल्याण करने वाले होओ और हमारे शत्रुओं का नाश करने वाले होकर सभी के जीतने वाले बनो तथा अपने गृह में हमारी रक्षा के लिए सावधान रहो ॥३॥

हे अग्ने ! इन यजमानों के धनों की वृद्धि करो। अग्नि चयन करने वाले याज्ञिक तुम्हारी अवज्ञा न करें। क्षत्रिय तुम्हारे लिए सुख पूर्वक वश में करने योग्य हों। तुम्हारा उपासक नष्ट न होता हुआ सब प्रकार की समृद्धि में प्रतिष्ठित हो ॥४॥

हे श्रेष्ठ गुण वाले अग्निदेव ! तुम क्षत्रिय यजमान के सहित यज्ञ कर्म का आरम्भ करो। सूर्य से सुसंगत होते हुए तुम यजमान के करने योग्य यज्ञ को सम्पन्न करो। हे अग्ने ! तुम समान जन्म वालों के मध्य रहते हो। राजाओं के द्वारा आह्वान किये जाने योग्य तुम हमारे इस यज्ञ में प्रदीप्त होओ ॥५॥

अति निहो ऽ अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ सहवीराꣳ रयिं दाः ॥६॥

अनाधृष्यो जातवेदा ऽ अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह।
विश्वा ऽ आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥ ७ ॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳ शिशाधि।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व ऽ एनमनु मदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते ऽ अभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम्।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तुम हत्याकारियों, अतिक्रमण करने वालों, दुराचार में प्रवृत्त और चञ्चल मन वालों को वशीभूत करते हुए तथा लोभीजनों को तिरस्कृत कर पापों को दूर करो। फिर हे अग्ने ! हमको वीर पुत्रादि युक्त श्रेष्ठ धनों को दो ॥६॥

हे अग्ने ! अपराजेय, सर्वज्ञ, अच्युत और विराट् तथा महान् बल वाले क्षात्र-धर्म के पोषक तुम हमारे इस कर्म में लगो और हमारी सभी आशाओं को पुष्ट करो। तुम हमारे समस्त भयों को दूर करते हुए शान्त भाव से हमारा पालन और सब प्रकार की समृद्धि करो ॥७॥

हे बृहस्पते ! हे सवितादेव ! इस यजमान को कर्म में प्रेरित करो। शिक्षित होते हुए भी इसे अधिक शिक्षित बनाओ। महान् सौभाग्य के निमित्त इसकी समृद्धि करो। विश्वेदेवा भी इसके सहायक हों ॥८॥

हे बृहस्पते ! परलोक गमन के भय से और यमराज के भय से तथा इस जन्म और पूर्वजन्मों के अभिशाप से हमें मुक्त करो। हे अग्ने ! देवताओं के वैद्य अश्विद्वय शुभ कर्मों के करने वाले इस यजमान को मृत्यु-भय से छुड़ावें ॥६॥

अन्धकार युक्त इस लोक से परे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक को देखते हुए और सूर्य लोक में सूर्य के दर्शन करते हुए हम श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप को प्राप्त हुए ॥१०॥

ऊर्ध्वा ऽ अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीᳪष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशᳪसो ऽ अग्ने ।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥
अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।

अग्निᳬ स्रुचो ऽ अध्वरेषु प्रयत्सु ॥ १४ ॥
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ऽ ई मन्द्रा सुप्रयसः ।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥

यजमान द्वारा प्रकट किये जाने वाले इन श्रेष्ठ मुख वाले अग्नि की समिधाएँ ऊर्ध्वगमन करती हैं तथा शुभ्र प्रकाश वाली उनकी रश्मियाँ भी ऊर्ध्वगामिनी होती हैं ॥११॥

जलों के पौत्र, अविनाशी, प्राणवान्, सब के जानने वाले, देवताओं में श्रेष्ठ अग्नि मधुर घृत के द्वारा यज्ञ के श्रेष्ठ मार्ग को सिंचित करें ॥१२॥

हे अग्ने ! देवताओं के उपासक ऋत्विजों से स्तुत होते हुए सुन्दर कर्म वाले तेजस्वी सविता रूप तुम सब के द्वारा वरण किये जाने योग्य हो। तुम इस यज्ञ को मधुर घृत के द्वारा व्याप्त करते हो ॥१३॥

ज्ञान के द्वारा स्तुत और यज्ञ के निर्वाहक यह अध्वर्यु यज्ञ के प्रयत्न में वर्तमान होकर घृत और हविरन्न सहित अग्नि के निकट गमन करता है ॥ १४ ॥

वह अध्वर्यु यज्ञ कर्म में स्थित होकर चैतन्यताप्रद और श्रेष्ठ धनों के देने वाले अन्नवान् अग्नि की महिमा की उपासना करता है। वही अध्वर्यु इन प्रसन्नताप्रद हवियों का हवन करे ॥१५॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते ऽ अग्नेः ।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ १६ ॥
ते ऽ अस्य योषणे दिव्ये न योना ऽ उषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥
दैव्या होतारा ऽ ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदᳬ सदन्त्विडा सरस्वती भारती ।
मही गृणाना ॥ १९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।

रायस्पोष वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

श्रेष्ठ स्थान से युक्त ऐश्वर्यमान् दिव्य द्वार अग्नि के कर्मों को धारण करते हैं और तब सभी देवता अग्नि के व्रत को धारण करते हैं ॥१६॥

इन अग्नि की अनुगामिनी दिन रात्रि, जो स्वर्ग में स्थित हैं, वे दोनों हमारे इस सरल और श्रेष्ठ यज्ञ को गार्हपत्य स्थान में स्थित अग्नि से सगत करें ॥१७॥

दिव्य होता अग्नि और वायु हमारे श्रेष्ठ यज्ञ का सम्पादन करें । हमारा यज्ञ और अग्नि की ज्वालाएँ ऊर्ध्वगमन करने वाले और श्रेष्ठ हों ॥१८॥

अत्यन्त महिमा वाली स्तुति को प्राप्त हुई इडा, सरस्वती और भारती देवियाँ हमारे इस कुशा रूप आसन पर आकर विराजमान हों ॥१६॥

त्वष्टादेव उस अत्यन्त श्रेष्ठ, सामर्थ्य वाले धन को शीघ्र प्राप्त कर हमारे अंक में छोड़े ॥२०॥

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
अग्निर्हव्य ँ शमिता सूदयाति ॥२१॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद ऽ इन्द्राय हव्यम् ।
विश्वे देवा हविरिद जुषन्ताम् ॥२२॥
पीवो ऽ अन्ना रयिवृध सुमेधा श्वेत सिषक्ति नियुतामभिश्री ।
त वायव समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नर स्वपत्यानि चक्रु ॥२३॥
राये नु य जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायु नियुत सश्चत स्वाऽउत श्वेत वसुधिति निरेके ॥२४॥
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भ दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवाना ँ समवर्त्ततासुरेक कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५॥

कल्याणकारी अग्नि देवता हवियों का संस्कार करने वाले हैं । हे वनस्पते ! तुम स्रुवादि रूप होकर श्रेष्ठ हवियों का होम करो ॥२१॥

हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञ हो । इस हवि को इन्द्र के लिए प्राप्त कराओ । विश्वेदेवा हमारी हवियों को सेवन करे ॥२२॥

श्रेष्ठ बुद्धि वाले नियुत नामक अश्वों के आश्रय योग्य वायु पुष्ट अन्न और धन की वृद्धि करने वाले अश्वों से कार्य लेते हैं और वे अश्व वायु के निमित्त स्थित होते हैं। इस प्रकार वायु के अश्वारूढ़ होने पर सब ऋत्विज श्रेष्ठ सन्तान-प्राप्ति वाले कर्मों को करते हैं ॥२३॥

जिस वायु को द्यावा पृथिवी ने जल रूप धन के निमित्त प्रकट किया। ब्रह्मशक्ति रूप दिव्य वाणी ने श्रेष्ठ धन के लिए जिस देवता को धारण किया, उन वायु देवता को धनों का धारण करने वाला होने से उनके नियुक्त नामक अश्व वहन करते हैं ॥२४॥

जब हिरण्यगर्भ रूप धारी अग्नि को प्रकट करते हुए महान् जलचर सब संसार में व्याप्त हुए, तब उस गर्भ से देवताओं का आत्मा प्रकट हुआ। उस प्रजापति रूप एक आत्म ब्रह्म के लिए हवि का विधान करते हैं ॥२५॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव ऽ एक ऽ आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥
प्र याभिर्यासि दाश्वाᳬंसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिᳬं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरᳬं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो ऽ अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥
नियुत्वान् वायवा गह्ययᳬं शुक्रो ऽ अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२९॥
वायो शुक्रो ऽ अयामि ते मध्वो ऽ अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥३०॥

जिस ब्रह्म ने अपनी महिमा के द्वारा कुशल प्रजापति को धारण करने वाले और यज्ञ करने वाली प्रजा को उत्पन्न करने वाले जलों को सब ओर से देखा, जो ब्रह्म देवताओं में एक मात्र ही स्वामी हुए, उन ब्रह्म के लिए हम हवि-विधान करते हैं ॥२६॥

हे वायो ! तुम अपने जिन अश्वों पर चढ़कर यज्ञशाला में स्थित हवि देने वाले यजमान के पास जाते हो, अत उसी वाहन द्वारा हमें सुख भोग युक्त अन्न को प्रदान करो तथा हमें गवादि धन भी दो ॥२७॥

हे वायो ! तुम अपने सैकड़ों और हजारों वाहनों द्वारा हमारे यज्ञ में आगमन करो और इस तृतीय सवन में तृप्ति को प्राप्त होओ। तुम अपने श्रेष्ठ कल्याण साधनों द्वारा सदा हमारी रक्षा करो ॥२८॥

हे वायो ! तुम यजमान के गृह में गमन करने वाले हो, अत अश्व पर चढ़ते ही इस स्थान में आगमन करो। यह शुक्रग्रह तुम्हारे लिए उपस्थित है ॥२९॥

हे वायो ! स्वर्ग फल प्रापक यज्ञों में रस का सारभूत जो शुक्र ग्रह प्रमुख माना जाता है उस शुक्रग्रह को तुम्हारे लिए प्रस्तुत करता हूँ। तुम सोम पान के निमित्त अपने अश्वों द्वारा यहाँ आओ ॥३०॥

वायुरग्रेगा यज्ञप्री साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भि शिवाभि ॥३१॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥३२॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।
अवाꣳस्या वृणीमहे ॥३४॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा ऽइव धेनव ।
ईशानमस्य जगत स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष ॥३५॥

अग्रगन्ता, यज्ञ द्वारा तृप्त होने वाले मंगलमय वायु देवता अपने कल्याणकारी अश्वों द्वारा हमारे यज्ञ में आवें ॥३१॥

हे वायो ! तुम्हारे सहस्रों रथ हैं, उनमें अश्वों को जोड़कर सोम-पान करने के लिए यहाँ आगमन करो ॥३२॥

हे वायो ! तुम आत्मरूप समृद्धि वाले हो। तुम एक, दो, तीन, दश, बीस या तीस अश्वों के द्वारा जिन यज्ञ-पात्रों को धारण करते हो, उन्हें इस यज्ञ में छोड़ो ॥३३॥

हे वायो ! तुम सत्य के स्वामी, त्वष्टा के जामाता और अद्‌भुत रूप वाले हो। हम तुम्हारी कृपा से युक्त रक्षाओं और पोषण की कामना करते हैं ॥३४॥

हे वीर इन्द्र ! तुम इस संसार के स्वामी, सर्वदर्शी तथा स्थावर प्राणियों के अधीश्वर हो। हम तुम्हारे अभिमुख होकर स्तुति करते हैं। जैसे बिना दुही गौ बछड़े को चाहती है, वैसे ही तुमसे पुष्टि को चाहते हैं ॥३५॥

न त्वावाँ ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥३६॥
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो ऽ अद्रिवः ।
गामश्व ँ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥३८॥
कया नश्चित्र ऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥३९॥
कस्त्वा सत्यो मदानां म ँहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥४०॥

हे धनेश्वर इन्द्र तुम्हारे समान कोई अन्य नहीं होगा, कोई उत्पन्न भी नहीं हुआ और न वर्तमान में कोई है। अतः हम गौओं, अश्वों और हवि की कामना से तुम्हें आहूत करते हैं ॥३६॥

हे इन्द्र ! तुम सत्य के पालक हो। हम ऋत्विज तुम्हें अन्न-लाभ के हेतु आहूत करते हैं तथा तुम्हीं को शत्रु-हनन कर्म के लिए, अश्व लाभ के लिए और दिग्विजय करने के लिए आहूत करते हैं ॥३७॥

हे इन्द्र ! तुम अद्भुत कर्म वाले, वज्रधारी, अजेय और ऐश्वर्य सम्पन्न हो। तुम स्तुति किये जाने पर हमारे लिए गौ और रथ वाहक अश्व प्रदान करो। जैसे युद्ध को जीतने की इच्छा से अश्वादि को अन्नादि देकर पुष्ट किया जाता है, वैसे ही हम पुष्टि को प्राप्त हों ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! तुम सदा वृद्धि करने वाले और अद्भुत हो। किस क्रिया से सन्तुष्ट होकर तुम हमारे सखा रूप में सम्मुख होते हो ॥ ३९ ॥

हे इन्द्र ! सोम का कौन-सा अंश तुम्हें प्रसन्न करता है ? जिस अंश से प्रसन्न होते हुए तुम सुवर्ण आदि धनों को अपने उपासकों को प्रदान करते हो ॥ ४०॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतये ॥४१॥

यज्ञायज्ञा वो ऽ अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥४२॥

पाहि नो ऽ अग्न ऽ एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥४३॥

ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध ऽ उत त्राता तनूनाम् ॥४४॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्या ऽ एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥४५॥

हे इन्द्र ! हम सखा रूप ऋत्विजों के तुम पालन करने वाले हो। तुम हम उपासकों की कार्य सिद्धि के निमित्त बहुत से रूप धारण करते हो ॥४१॥

अनेक यज्ञों में हम अनन्य स्तुतियों के द्वारा अत्यन्त बली, अविनाशी, सर्वज्ञ और मित्र के समान सर्व प्रिय अग्नि की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं ॥ ४२ ॥

हे अग्ने ! तुम अन्नों के पालक और श्रेष्ठ निवास के देने वाले हो। एक लक्षण वाणी के द्वारा तुम हमारी रक्षा करो। दूसरी वाणी से स्तुति किये जाने पर हमारी रक्षा करो। तीन वेद वाली वाणी से स्तुत होकर तुम हमारी रक्षा करो और चौथी वाणी से भी हमारी रक्षा करो ॥४३॥

हे अध्वर्यो ! तुम जलों के नाती अग्नि को सन्तुष्ट करो। यह अग्निदेव हमारी कामना वाले हैं, इसलिए हम इन्हें हवि देना चाहते हैं। यह अग्नि हमारी पत्नी, पुत्र आदि के रक्षक हैं। यह हमारे शरीर की रक्षा करते और अभीष्ट पूर्ण करते हैं ॥४४॥

हे अग्ने ! तुम संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर हो। तुम्हारे उषा आदि तथा दिवस रात्रि आदि अङ्ग रूप अवयव में कल्पित हों। तुम गमन और आगमन के लिए संकोच और प्रसार करो। तुम वाणी देवता के सहित अंगिरा के समान अविचलित होते हुए यहाँ प्रतिष्ठित होओ ॥४५॥

॥ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्य, गोतम, प्रजापति, अश्विनौ, सरस्वती।

देवता—इन्द्र, रुद्र, अश्विनौ, बृहस्पति, अहोरात्र, अग्नि, वायव।

छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति, शक्वरी, कृति, अष्टि।

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या ऽ अधि।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ऽ ओजिष्ठश्चर्षणीसहा वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥१॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्।
इन्द्रं देव ँ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराश ँ सेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥२॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्त पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥३॥

होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम्।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥४॥

होता यक्षदोजो न वीर्य ँ सहो द्वार ऽ इन्द्रमवर्द्धयन्।
सुप्रायणा ऽ अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार ऽ इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥५॥

दिव्यहोता समिधाओं के द्वारा इन्द्र का यजन करे। पृथिवी के यज्ञ स्थल में अग्नि रूप से, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप से और स्वर्ग में आदित्य

रूप से ही यह अग्नि प्रदीप्त होते हैं। विजेता और अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र घृत का पान करें और हे होता! तुमके उनके निमित्त होम करो ॥१॥

दिव्य होता अत्यन्त तेजस्वी, मनुष्यों में प्रशंसनीय, तनूनपात, शत्रु जेता, अजेय इन्द्र को तृप्त करने वाली और यजमान को स्वर्ग-लाभ कराने वाली हवियों के द्वारा यज्ञ करें। वे इन्द्र इस प्रकार घृत-पान करें और हे होता! तुम भी उन इन्द्र के निमित्त यज्ञ करें ॥२॥

दिव्य होता प्रयाज देवता सहित वेद मंत्र रूप वाणी द्वारा स्तुत और अविनाशी इन्द्र का यज्ञ करें। देवताओं के समान धर्म वाले वज्रधारी, शत्रु-नगर-ध्वंसक देवता घृत पान द्वारा सन्तुष्ट हों। हे होता! तुम भी यज्ञ करो ॥३॥

दिव्य होता ने यजमानों के हितैपी और सींचन समर्थ इन्द्र को कुशाओं पर बैठाकर उनकी पूजा की। समान कर्म वाले वसुगण, रुद्रगण और आदित्यों के साथ कुशा पर विराजमान होकर वे इन्द्र घृत-पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी उसी प्रकार इन्द्र का यजन करो ॥४॥

दिव्य होता ने इन्द्र का यज्ञ किया और द्वार देवता ने उनके ओज, बल और साहस की वृद्धि की। सुखपूर्वक जाने आने योग्य तथा यज्ञ को समृद्ध करने वाले द्वार-सींचन-समर्थ इन्द्र के निमित्त खुल जाँय और इस यज्ञ में आकर घृत-पान करें। हे होता! इसी उद्देश्य से यजन करो ॥५॥

दिव्य होता ने इन्द्र की माता के समान श्रेष्ठ दुग्धवती दो गौओं के समान नक्त और उषा का यजन किया तब उन्होंने तेज के द्वारा इन्द्र की वृद्धि की। जैसे एक बछड़े पर प्यार करने वाली दो गौएं उसे पुष्ट करती हैं, वैसे ही वे घृत-पान द्वारा पुष्ट हों। हे होता तुम भी इसी उद्देश्य से यजन करो ॥६॥

होता यक्षदुषे ऽ इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही :
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥
होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः ।

कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त ऽ इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस ऽ इडा सरस्वती भारती महीः ।
इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देव भिषज ऽ सुयजं घृतश्रियम् ।
पुरुरूप ऽ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥

होता यक्षद्वनस्पति ऽ शमितार ऽ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥

दिव्य होता ने सखा रूप, वैद्य, मेधावी, प्रकृष्ट ज्ञानवान् दिव्य होताओं का यजन किया। उन दोनों ने हवि के द्वारा इन्द्र की चिकित्सा की और और उनमें बल स्थापित किया। वे घृत का पान करें। हे होता! तुम भी इसी निमित्त यजन करो ॥७॥

दिव्य होता ने औषधि रूप, लोकत्रय को अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन धातु धारक, शीत, वर्षा और वायु कर्म वालों का तथा इन्द्र की भार्या, हविष्मती इडा, सरस्वती, भारती की पूजा की। वे घृत का पान करें। हे होता! तुम भी इसी हेतु से पूजन करो ॥८॥

दिव्य होता ने परम ऐश्वर्य वाले, दाता, रोग-शामक, श्रेष्ठ पूजा के योग्य, स्निग्ध, श्री-सम्पन्न, अनेक रूपों के कारण, श्रेष्ठ वीर्य वाले त्वष्टा देवता का पूजन किया। तब त्वष्टा देवता ने इन्द्र में पराक्रम की स्थापना की। वे घृत का पान करें। हे होता! तुम भी इसी अभिप्राय से पूजन करो ॥९॥

दिव्य होता ने उलूखल आदि रूप से हवि संस्कारक सैकड़ों कर्म

वाले, बुद्धि पूर्वक कार्य करने वाले, इन्द्र के हितैषी वनस्पति देवता का पूजन किया। वह देवता मधुर घृत से यज्ञ को सींचते और श्रेष्ठ गमन वाले मार्गों से मधुर घृत द्वारा यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराते हैं। वे घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी उसी उद्देश्य से यजन करो ॥१०॥

होता यक्षदिन्द्र ँ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकाना ँ
स्वाहा स्वाहा कृतीना ँ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् ।
स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणाऽइन्द्रऽआज्यस्य व्यन्तु होतर्यज
॥११॥

देवं बर्हिरिन्द्र ँ सुदेवं देवैर्वीरवत् स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत् ।
वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृत ँ राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य
वेतु यज ॥१२॥

देवीर्द्वारऽइन्द्र ँ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन् ।
आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाण ँ रेणुककाटं नुदन्तां
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् ।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टा ँ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां
यजः ॥१४॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम् ।
अयाव्यन्याघा द्वेषा ँ स्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते
वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१५॥

इन्द्र के लिए दिव्य होता ने स्वाकार युक्त यज्ञ किया और आज्याहुति दी। मेद भाग से, सोम-बिन्दुओं से स्वाहाकार पूर्वक प्रयाज देवता की पूजा करे। हव्य सम्बन्धी सूक्तों के द्वारा यज्ञ करे। तब प्रसन्न होकर घृतपायी देवता घृत पान करें। हे होता ! तुम भी इसीलिए यज्ञ करो ॥११॥

जहाँ श्रेष्ठ देवता विराजमान होते हैं, वहाँ ऋत्विजों के द्वारा वीर

के समान वेदी में विस्तृत तथा दिन में काटकर रात्रि में सम्भाल कर रखे हुए बर्हि देवता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। जो बर्हि हवि रूप धन से बर्हि-युक्त अन्य यज्ञों को लाँघ कर गये, वे यजमान के गृह में धन की स्थापना के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसी उद्देश्य से यज्ञ करो ॥१२

देवरी कपाट आदि के समूह रूप दृढ़ द्वार देवता ने कर्मों में इन्द्र की वृद्धि की। यह हिंसक, तरुण-कुमार और सामने आने वाले पशु आदि को रोकें तथा धूल, वृष्टि आदि को भी दूर करें। वे धन देने के निमित्त पान करें। हे होता! तू भी इसी उद्देश्य से पूजा कर ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ प्रीति वाले, हितैषी, उषा और नक्त देवता यज्ञ के अवसर पर इन्द्र को आहूत करें। दिव्य प्रजा वसु, रुद्र, आदि को प्रवृत्त करें। यजमान को धन लाभ कराने और घर में स्थापित करने के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तू भी इसी अभिप्राय से यज्ञ कर ॥ १४ ॥

सदा प्रीति वाली, तत्व के जानने वाली, धन-धारण करने वाली अहोरात्र की अधिष्ठात्री दो देवियाँ इन्द्र की वृद्धि करती हुई पाप और दुर्भाग्य को हटाती और वरणीय धन यजमान को देती हैं। वे धन लाभ और धन स्थापन के निमित्त घृत पान करें। हे होता! इसी अभिप्राय से तुम भी यजन करो ॥ १५ ॥

देवी ऽ ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम् ।
इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धि ᳪ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऽ ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम् ।
हताघश ᳪ सावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् ।

अस्पृक्षद्भारतीं दिवᳬ रुद्रैर्यज्ञᳬ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

देव ऽ इन्द्रो नराशᳬ सस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्र वर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्र-मर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृᳬहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

अन्न और जल सहित श्रेष्ठ आह्वान वाली, दोहन योग्य, परिपूर्ण दोनों देवियाँ दुग्ध के द्वारा इन्द्र की वृद्धि करती हैं। उनमें से एक अन्न जल का वहन करती और दूसरी खान-पान का वहन करती है। यह दया-वती, रस-वृद्धि करने वाली, नूतन अन्न वाली यजमान को वरणीय धन देती हैं, अतः धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! इसीलिए तुम भी यजन करो ॥ १६ ॥

पाप कर्मों के प्रशंसकों को रोकने वाले, शिक्षाकारी दिव्य होता द्वय ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया। वे यजमान के लिए वरणीय धन लावें। यजमान की धन-प्राप्ति और धन में स्थिति के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसीलिए यजन करो ॥ १७ ॥

भारती, सरस्वती और इडा ने पालनकर्त्ता इन्द्र को प्रवृद्ध किया। इनमें भारती स्वर्ग को, रुद्रवती सरस्वती यज्ञ को और वसुमती इडा घरों को स्पर्श करती है। यह तीनों धन प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी अभिप्राय से यज्ञ करो ॥ १८ ॥

जिस यज्ञ में देवताओं की प्रशंसा होती है, वह त्रिवरूथ यज्ञ ऋक्, साम, यजु से युक्त होकर इन्द्र की वृद्धि करता है तथा श्याम पीठ वाली सैकड़ों, सहस्रों गौओं द्वारा वहन किया जाता है। इस यज्ञ के होता मित्रा-

वरुण, स्तोता बृहस्पति और अध्वर्यु अश्विद्वय हैं। वे यजमान को धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसी उद्देश्य से यज्ञ करो ॥ १६ ॥

स्वर्णिम पत्र वाले, मधुमयी शाखों वाले, सुस्वादु फल वाले वनस्पति देव ने देवताओं के सहित तेजस्वी इन्द्र की समृद्धि की। जो वनस्पति अग्र भाग से स्वर्ग को, मध्य भाग से अन्तरिक्ष को और निम्न भाग से भूमि को स्पर्श करता है, वह यजमान की धन प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥ २० ॥

देवं बर्हिर्वारितीना देवमिन्द्रमवर्द्धयत् ।
स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीᳪष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥
देवो अग्नि: स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्द्धयत् ।
स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम् ।
सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन ।
अघत्त मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऽ ऋषे ॥२३
होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥
होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् । उष्णिहं छन्द ऽ इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २५ ॥

जल की आश्रिता औषधियों में दीप्तियुक्त, सुख पूर्वक बैठने योग्य इन्द्र के आश्रित अनुयाज देवता इन्द्र की वृद्धि करते हैं। वे यजमान को धन-प्राप्त कराने और स्थिति के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥२१॥

अभिलाषाओं के पूर्ण करने वाले तेजस्वी अग्नि ने इन्द्र को समृद्ध किया। आज वे देवता हमारे इष्ट फल को करें और यजमान के धन लाभ और स्थिति के निमित्त घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसी अभिप्राय से यज्ञ करो ॥२२॥

आज यह यजमान पाक योग्य चरु का पाक करता और पुरोडाश को पकाता हुआ होता कर्म में अग्नि को वरण करता है। आज वनस्पति देवता ने पकी हुई हवि को धारण कर पुरोडाश के द्वारा इन्द्र की वृद्धि की, आज यह यजमान मन्त्रद्रष्टा तुम अग्नि को वरण करता है ॥२३॥

दिव्य होता ने गायत्री छन्द, बल, इन्द्रिय और आयु की इन्द्र में स्थापना की। महान् यश से तेजस्वी और वरणीय अग्नि की और आयु दाता इन्द्र की पूजा करे। प्रयाज देवता इन्द्र के सहित घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इस प्रकार यज्ञ करो ॥ २४ ॥

दिव्य होता ने श्रेष्ठ यज्ञ-फल के प्रकट करने वाले अग्नि और आयु दाता अदिति-पुत्र इन्द्र का पूजन किया। तब उष्णिक् छन्द युक्त इन्द्रिय, गौ और आयु की यजमान में स्थापना हुई। वे घृत-पान करें। हे होता! तुम भी यज्ञ करो ॥ २५ ॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीडच७ सहः सोममिन्द्रम् वयोधसम्।
अनुष्टुभं छंद ऽ इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६
होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्य७ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्।
बृहतीं छंद ऽ इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२७॥

होता यक्षद्व्यचस्वती सुप्रायणा ऽ ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययी-
र्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।
पङ्क्ति छन्द ऽ इहेन्द्रियं तुर्यवाह गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥२८
होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती ऽ उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्व-
मिन्द्रं वयोधसम् ।
त्रिष्टुभं छन्द ऽ इहेन्द्रिय पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज
॥ २९ ॥
होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं
वयोधसम् ।
जगती छन्द ऽ इन्द्रियमनडवाह गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥३०

दिव्य होता ने स्तुति योग्य, स्तुत, वृत्रहन्ता, इडा द्वारा स्तुत, आयु दाता, सोम से प्रसन्न होने वाले इन्द्र का यज्ञ किया। प्रयाज देवता ने अनुष्टुप् छन्द, इन्द्रिय, गौ और पूर्णायु की स्थापना की। वे घृत पान करें। हे होता! तुम भी यज्ञ करो ॥ २६ ॥

दिव्य होता ने श्रेष्ठ बर्हि वाले, पोषण समर्थ, अविनाशी, प्रिय कुशाओं पर बैठने वाले, आयुदाता इन्द्र का पूजन किया। बर्हि देवता बृहती छन्द, बल, गौ आयु आदि की स्थापना करते हुए घृत-पान करें। हे होता! तुम भी यज्ञ करो ॥ २७ ॥

दिव्य होता ने अत्यन्त प्रकाश युक्त, गमनशील, सत्य वृद्धि वाले, स्वर्णिम द्वार से महान् इन्द्र का यज्ञ किया। प्रयाज देवता पंक्ति छन्द, बल, गौ, आयु आदि की स्थापना पूर्वक घृत पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥ २८ ॥

दिव्य होता ने श्रेष्ठ रूप वाली, सुनिर्मित, महिमामयी और दर्शनीय नक्त और उषा देवियों द्वारा विश्व के हितैषी और आयुदाता इन्द्र का यजन किया। वे नक्त और उषा देवियाँ त्रिष्टुप् छन्द, बल, भारवाहिनी गौ, आयु आदि की यजमान में स्थापना करें और घृत पीवें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥ २९ ॥

दिव्य होता ने चैतन्य मन वाले, दिव्य यश वाले, क्रान्तदर्शी, परस्पर मित्र, दोनों दिव्य होताओं के सहित आयुदाता इन्द्र का यज्ञ किया। वे दिव्य होता जगती छन्द, बल, गौ, आयु आदि को यजमान में स्थापित करें और घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यजन करो ॥ ३० ॥

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।
विराजं छन्द ऽ इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१
होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।
द्विपदं छन्द ऽ इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥
होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् ।
ककुभं छन्द ऽ इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।३३
होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।
अतिच्छन्दसं छन्द ऽ इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥
देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्द्धयत ।
गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज।३५

दिव्य होता ने श्रेष्ठ रूप वाली, सुवर्णमयी, महिमामयी, तेजस्विनी इडा, सरस्वती, भारती देवियों और आयुदाता, पालनकर्त्ता इन्द्र का यजन किया। वे विराट् छन्द, बल, गौ और आयु को यजमान में धारण करती हुई घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥ ३१ ॥

दिव्य होता ने श्रेष्ठ वीर्य वाले, पुष्टि वर्द्धक, विभिन्न रूप वाले त्वष्टा देवता और आयुदाता इन्द्र का पूजन किया। वे त्वष्टा द्विपदा छन्द, बल,

वृषभ और आयु को यजमान में स्थापित करते हुए घृत पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥ ३२ ॥

दिव्य होता ने हवि-संस्कारक शतकर्मा, स्वर्णिम पत्र वाले उक्थ युक्त, रज्जुयुक्त वनस्पति और आयुदाता इन्द्र का यज्ञ किया। वनस्पति देव ककुम् छन्द, बल, वन्ध्या धेनु और आयु को धारण करते हुए घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी आज्याहुति दो ॥ ३३ ॥

दिव्य होता ने यज्ञों में गृहस्वामी, ऋत्विजों द्वारा वरणीय औषधि-गुण वाले, क्रान्तदर्शी, रचक, आयुदाता अग्नि, इन्द्र और प्रयाज देवता का यज्ञ किया। प्रयाज देवता अतिछन्दस छन्द, बल, सुपुष्ट गौ और आयु को यजमान में स्थापित करते हुए घृत पान करें। हे होता ! तुम भी घृत से यज्ञ करो ॥ ३४ ॥

बर्हि ने आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध किया। गायत्री छंद के द्वारा चक्षु, बल, आयु आदि को यजमान में स्थापित करते हुए बर्हि धन-लाभ और स्थिति के लिए घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी यजन करो ॥ ३५ ॥

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्द्धयन्।
उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

देवी ऽ उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३७ ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३८ ॥

देवी ऽ ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥

देवा दैव्या होतारा देवमि द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्द्धताम् ।
त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ·० ॥

उष्णिक् छंद के द्वारा द्वार-देवी प्राण वल और आयु को यजमान में स्थापित करती हैं और आयुदाता श्रेष्ठ इन्द्र को प्रवृद्ध करती है। वह यजमान को धन-लाभ कराने और उसे स्थित करने के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी यजन करो ॥ ३६ ॥

उषा और नक्त दोनों देवियाँ अनुष्टुप् छंद से वल, इन्द्रिय और आयु को यजमान में स्थापित करती हुई आयुदाता इन्द्र की वृद्धि करती हैं। वे धन-लाभ कराने और उसकी रक्षा करने के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥ ३७ ॥

परस्पर प्रीति वाली, कान्तिमती, धन धारिका दोनों देवियाँ वृहती छंद द्वारा श्रोत्र, इन्द्रिय और आयु को यजमान में स्थापित करती हुई आयु-दाता इन्द्र को प्रवृद्ध करती हैं। वे यजमान के धन-लाभ और उसकी स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥३८॥

कामनाओं का दोहन करने वाली, परिपूर्ण, दीप्तिमती अन्न जल का आह्वान करने वाली दोनों देवियाँ पंक्ति छंद के द्वारा वीर्य, इन्द्रिय और आयु को यजमान में धारण करती हुई आयुदाता इन्द्र की वृद्धि करती हैं। वे यजमान के धन-लाभ और उसकी स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यजन करो ॥ ३६ ॥

दोनों दिव्य होताओं ने त्रिष्टुप् छंद द्वारा कान्ति, इन्द्रिय और आयु को यजमान में धारण किया और आयुदाता इन्द्र की वृद्धि की। वे यजमान के धन-लाभ और स्थिति के लिए घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यजन करो ॥ ४० ॥

देवीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् ।

जगत्या छन्दसेन्द्रियँ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

देवो नराशँसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् ।
विराजा छन्दसेन्द्रियँ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४२ ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् ।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्द्धयत् ।
ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश ऽ इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४४ ॥

देवो ऽ अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् ।
अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४५ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् ।
सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन ।
अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऽ ऋषे ॥४६॥

इडा, सरस्वती और भारती यह तीनों देवियाँ जगती छंद द्वारा बल, इन्द्रिय और आयु को यजमान में धारण कराती और आयुदाता इन्द्र की वृद्धि करती हैं। वे तीनों यजमान के धन-लाभ और स्थिति के निमित्त घृत पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यजन करो ॥४१॥

मनुष्यों द्वारा स्तुत यज्ञ देवता विराट् छन्द के द्वारा यजमान में रूप, बल और आयु को स्थापित करते हुए, आयुदाता इन्द्र को बढ़ाते हैं। वे यजमान के लिए धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥४२॥

दिव्य गुण वाले वनस्पति देव द्विपाद्छन्द द्वारा सौभाग्य, इन्द्रिय और आयु को यजमान में स्थापित करते हुए, आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। वे यजमान के धन-लाभ और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥४३॥

जलोत्पन्न औषधियों के मध्य दीप्तिमान् बर्हिदेवता ककुप्छन्द द्वारा यश, इन्द्रिय और आयु को यजमान में स्थापित करते और आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। वे यजमान की धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥४४॥

श्रेष्ठ कर्म वाले, दानशील अग्नि अतिच्छन्द के द्वारा यजमान में क्षात्र धर्म, इन्द्रिय और आयु की स्थापना करते और आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। वे यजमान की धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ॥४५॥

आज यह यजमान चरु और पुरोडाश का पाक करता हुआ होता रूप से अग्नि का वरण करता है। वनस्पतिदेव ने आज पक्व हवि धारण कर पुरोडाश से इन्द्र को बढ़ाया। हे मंत्रद्रष्टा अग्ने! तुम्हें यह यजमान आज वरण करता है ॥४६॥

॥ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषिः—बृहदुक्थो वामदेव्यः। भार्गवो जमदग्निः। जमदग्निः। मधुच्छन्दाः। भारद्वाजः।

देवता—अग्निः। मनुष्याः। अश्विनौ। सरस्वती। त्वष्टा। सूर्यः। यजमानः। मनुष्यः। वायवः। विद्वान्। अन्तरिक्षम्। स्त्रियः। विद्वांसः। वाग्। वीराः। धनुर्वेदाध्यापकाः। महावीरः सेनापतिः। सुवीरः। वीरः। वादयितारो वीराः। अग्न्यादयः।

छन्दः—त्रिष्टुप् पंक्तिः, बृहती, गायत्री, जगती, अनुष्टुप् अष्टिः शक्वरी, प्रकृतिः।

समिद्धो ऽ अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ।१॥
घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥२॥
ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषा प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३॥
स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥
एता ऽ उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा ऽ उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ।५॥

हे जातवेदा अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर बुद्धिमानों के हृदयगत भाव को प्रकट करते हुए मधुर घृत का पान कर प्रसन्न होते और अन्न रूप हवि को देवताओं के लिए वहन करते हुए देवताओं के प्रीति पात्र होते हो ॥ १ ॥

देवताओं के गमन योग्य मार्ग को घृत से सींचता हुआ यह यज्ञ देवताओं के पास जाय । हे अश्व ! सब दिशाओं में स्थित प्राणी तुम्हें जाता हुआ देखें । तुम इस यजमान को अन्न प्रदान करने वाले होओ ॥२॥

हे वेगवान् अश्व ! तुम स्तुति और नमस्कार के योग्य होकर अश्वमेध के योग्य होते हो । वसुदेवों से प्रीति करते हुए जातवेदा अग्नि संतुष्ट होकर तुम्हें देवताओं के पास ले जांय ॥३॥

हम कुशाओं को भले प्रकार बिछावें और सुख करने वाली, प्रीति भाव वाली अदिति पृथिवी पर बिछे हुए इन कुशों पर प्रतिष्ठित हों ॥४॥

हे यजमानो ! तुम्हारे यह द्वार अत्यन्त सुन्दर और शोभा वाले अनेक प्रकार से सजे हुए, पंख के समान किवाड़ों वाले, जाने आने में उपयोगी, खोलने बंद करने पर शब्द वाले विशेष प्रकार से कल्याणकारी हों ॥५॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाँ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऽ ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥
प्रथमा वाँ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥
आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञँ सरस्वती सह रुद्रैर्न ऽ आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥
त्वष्टा वीरं देवकाम जजान त्वष्टुरर्वा जायत ऽ आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥९॥
अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त ऽ उप देवाँ ऽ ऋतुशः पाथ ऽ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१०॥

द्यावापृथिवी के मध्य में स्थित यज्ञों में हवन काल को बताने वाली, श्रेष्ठ ज्योति वाली, सुनिर्मित उषा और नक्त दोनों देवियों को सत्य के स्थान रूप यज्ञ में सादित करता हूँ ॥६॥

तुम दोनों समान रथ वाले श्रेष्ठ वर्ण वाले देवता लोकों को देखते हुए सब को कर्म में लगाते हो । तुम सब दिशाओं में प्रकाश भरते हुए अपनी ज्योति से यज्ञ करो । इस प्रकार मैंने दोनों दिव्य होताओं को प्रसन्न किया है ॥ ७ ॥

आदित्यों वाली भारती देवी हमारे यज्ञ की कामना करें । वसुओं और रुद्रों के सहित समान प्रीति वाली आहूत हुईं सरस्वती और इडा हमारे यज्ञ की रक्षा करती हुईं, इस यज्ञ को देवताओं में स्थापित करें ॥८॥

त्वष्टादेवता, देवताओं की कामना वाले यज्ञ के करने वाले वीर पुत्र को उत्पन्न करते हैं । त्वष्टा द्वारा ही शीघ्रगामी और सब दिशाओं में व्याप्त होने वाला अश्व उत्पन्न होता है । वही त्वष्टा इस सम्पूर्ण विश्व का रचयिता है । हे होता ! इस प्रकार अनेक कर्म वाले परमात्मा का इस स्थान में पूजन करो ॥९॥

पत्नियों द्वारा घृत से सींचा हुआ अश्व देवताओं को प्राप्त हो ।

देवलोक को जानता हुआ वनस्पति अग्नि द्वारा भक्षित हवियों को देवताओं को प्राप्त करावे ॥१०॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान ऽ उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽ उपस्तुत्यं महि जातं तेऽअर्वन् ॥१२

यमेन दत्तं त्रित ऽ एनमायुनगिन्द्र ऽ एणं प्रथमो ऽ अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो ऽ अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३॥

असि यमो ऽ अस्यादित्यो ऽ अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त ऽ आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥१४

त्रीणि त ऽ आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त ऽ आहुः परमं जनित्रम् ॥१५॥

हे अग्ने ! प्रजापति के तप से प्रवृद्ध होकर तुरन्त ही अरणियों द्वारा प्रकट होकर तुम यज्ञ को धारण करते हो । अतः स्वाहाकार युक्त होमी हुई हवियों द्वारा तुम अग्र गमन करो, जिससे उपास्य देवता हमारी हवियों को प्राप्त करें ॥ ११ ॥

हे अश्व ! तुमं पूर्व काल में समुद्र से उत्पन्न हुए या तुमने पशुओं से उत्पन्न होकर शब्द किया तब तुम्हारी महिमा स्तुति के योग्य हुई, जैसे बाज के पंख वीरता से और हरिण के पैर द्रुत गमन के कारण स्तुत होते हैं ॥ १२ ॥

वसुओं ने अश्व को सूर्य मन्डल से निकाला, फिर यम द्वारा प्रदत्त इस अश्व को वायु ने कार्य में नियुक्त किया । सर्व प्रथम इन्द्र इस पर चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगाम पकड़ी ॥ १३ ॥

हे वेगवान् अश्व ! तुम गुप्त कर्म द्वारा यम, आदित्य, तीनों स्थानों

में स्थित वायु या इन्द्र हो। तुम सोम के साथ एकाकार हुए हो। स्वर्ग में तुम्हारे तीन ऋक्, यजु, साम रूप बंधन कहे गये हैं ॥ १४ ॥

हे अश्व! तुम्हारा श्रेष्ठ उत्पादक सूर्य बताया है और स्वर्ग में तुम्हारे तीन बन्धन कहे हैं, अन्तरिक्ष में भी तीन बंधन बताये हैं और वरुण रूप से तुम मेरी प्रशस्ति करते हो ॥ १५ ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाँ सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना ऽ अपश्यमृतस्य या ऽ अभिरक्षन्ति गोपाः ॥१६

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरा ऽ अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥१७॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष ऽ आ पदे गोः ।
यदा ते मर्त्तो ऽ अनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठ ऽ ओषधीरजीगः ॥१८

अनु त्वा रथो ऽ अनु मर्यो ऽ अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥१९॥

हिरण्यशृङ्गोऽ योऽअस्य पादा मनोजवा ऽ अवर ऽ इन्द्र ऽ आसीत् ।
देवा ऽ इदस्य हविरद्यमायन्यो ऽ अर्वन्तं प्रथमो ऽ अध्यतिष्ठत् ॥२०

हे अश्व! मैं तुम्हारे मार्जन साधनों को देखता हूँ। खुरों से खोदे हुए इन स्थानों को भी देखता हूँ। यहाँ तुम्हारी कल्याण रूप रज्जु को भी देखता हूँ, जो यज्ञ साधन के निमित्त तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥ १६ ॥

हे अश्व! नीचे से आकाश मार्ग द्वारा सूर्य की ओर गमन करते हुए तुम्हारे आत्मा को मन से जानता हूँ। सुख पूर्वक गमन योग्य उपद्रव-रहित मार्गों के द्वारा तुम्हारे जाते हुए शिर को सूर्य रूप से देखता हूँ ॥१७॥

हे अश्व! तुम्हारे यज्ञ की इच्छा वाले रूप को मैं सूर्य मण्डल में भले प्रकार देखता हूँ। जब यजमान ने तुम्हारे लिए हवि रूप अन्न समर्पित किया तब तुमने इस औषधि रूप अन्न का भक्षण किया था ॥ १८ ॥

हे वाजिन् ! रथ में जुड़ जाने पर वह रथ तुम्हारा अनुगमन करता है और सारथी भी तुम्हारे अनुगामी होते हैं। गौएँ तुम्हारा अनुसरण करती हैं। जब मनुष्यों ने तुम्हारे मित्र भाव को पाया, तब देवताओं ने तुम्हारे पराक्रम को कहा ॥ १६ ॥

स्वर्ण के समान तेजस्वी अश्व पर इन्द्र स्थित थे। इस अश्व के चरण मन के समान वेग वाले हैं। देवगण इसको प्राप्त हुए ॥ २० ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सᳬ शूरणासो दिव्यासो ऽ अत्याः ।
हᳬसा ऽइव श्रेणिशो यतन्ते सदाक्षिपुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥२१॥
तव शरीर पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्त वातऽइव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥२२॥
उप प्रागाच्छसन वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥२३॥
उप प्रागात्परम यत्सधस्थमर्वां ऽ अच्छा पितरं मातर च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या ऽ अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४
समिद्धो ऽ अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेद. ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥२५॥

जब हृदय से पुष्ट और मध्य में कृश, निरन्तर चलने वाले सूर्य के रथ के अश्व पंक्तिबद्ध होकर चलते हैं, तब वे स्वर्ग में होने वाले युद्ध को व्याप्त करते हैं ॥२१॥

तुम्हारा देह उत्पतन वाला और मन वायु के समान वेग वाला है । तुम्हारी अनेक प्रकार से स्थित दीप्तियाँ दावानल रूप से जंगलों में फैलती हैं ॥२२॥

अश्ववान, देवताओं की ओर गमनशील, मन से यशस्वी अश्व गमन स्थान को प्राप्त होता है, तब इसके आगे कृष्णग्रीव अज लाया जाता है। फिर स्तुति करने वाले ऋत्विज् चलते हैं ॥२३॥

यह अश्व पिता माता के निकटस्थ परम स्थान को प्राप्त हुआ और अश्व के दिव्य लोक प्राप्त कर लेने पर हे यजमान! तुम भी अब देवताओं के निकट पहुँचो और देवत्व को प्राप्त होने पर देवगण तुम्हें उपभोग्य वस्तु प्रदान करें ॥ २४ ॥

हे मित्र-हितैषी! तुम आज प्रदीप्त होकर मनुष्य यजमान के यज्ञ-गृह में देवताओं को बुलाओ। क्योंकि इस कार्य में तुम प्रवृत्त हो और देवताओं के दूत रूप से नियुक्त हुए हो। तुम देवताओं का यज्ञ करते हुए उनके लिए हवि वहन करो ॥ २५ ॥

तनूनपात्पथ ऽ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२६॥
नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा ऽ उभयानि हव्या ॥२७॥
आजुह्वान ऽ ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स ऽ एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८॥
प्राचीनं वर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते ऽ अग्रे ऽ अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो ऽ अदितये स्योनम् ॥ २९ ॥
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो वृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥

हे अग्ने! तुम्हारी ज्वाला रूप जिह्वाऐं श्रेष्ठ हैं। तुम सत्य रूप यज्ञ के गमन योग्य पथ को मधुर रस से सींचो तथा बुद्धि पूर्वक ज्ञान एवं यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥

यज्ञों में पूज्य प्रजापति की महिमा की स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ कर्म वाले बुद्धिमान देवगण दोनों प्रकार की हवियों का भक्षण करते हैं ॥ २७ ॥

हे अग्ने! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले, स्तुत्य एवं वन्दनीय हो। तुम वसुगण के समान प्रीति रखने वाले हो। तुम देवताओं के होता हो, अतः यहाँ आकर इन देवताओं का यजन करो ॥२८॥

यह बिछाई गई कुशा अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह देवगण और अदिति के लिए सुख से बैठने योग्य हो। यह इस वेदी को आच्छादित करने के लिए ही फैलाई जाती है ॥२९॥

महती, अवकाश वाली द्वार देवियाँ खुलें और श्रेष्ठ शोभा वाली, महिमामयी तथा विश्व की गमन स्थान होती हुई देवताओं के श्रेष्ठ गमना-गमन वाली होवें ॥३०॥

आ सुष्वयन्ती यजते ऽ उपाके ऽ उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे ऽ अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥३१॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३॥
य ऽ इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवाना पाथ ऽ ऋतुथा हवीꣳषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो ऽ अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥३५॥

परस्पर प्रसन्न होती हुई, यज्ञ के समीप, दिव्य स्थान वाली यज्ञ योग्य, महिमामयी उषा और नक्त देवियाँ हमें यज्ञ स्थान में प्रतिष्ठित करें ॥३१॥

दोनों दिव्य होता प्रथम श्रेष्ठ वचन वाले आहवनीय को यज्ञ करने की आज्ञा देकर मनुष्यों के यज्ञ में ऋत्विज् आदि को प्रेरणा देने वाले हैं ॥ ३२ ॥

हमारे इस यज्ञ में कर्म और ज्ञान का मनुष्यों के समान बोध कराने वाली भारती, इडा और सरस्वती तीनों देवियाँ आकर इस मृदु कुशासन पर विराजमान हों ॥३३॥

हे होता ! तुम मेधावी और अत्यन्त यज्ञ करने वाले हो, अतः आज

तुम त्वष्टा देव का पूजन करो। वे देवता आकाश-पृथिवी और अन्य सब लोकों को रूप प्रदान करते हैं ॥३४॥

हे होता ! तुम देवताओं के निमित्त की जाने वाली हवियों को मधु-घृत द्वारा सींचो और यज्ञ के समय हवि प्रदान करो। वनस्पति, शमितादेव और अग्नि उन हवियों का सेवन करें ॥३५॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतँ हविरदन्तु देवाः ॥३६॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या ऽ अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथा ॥ ३७ ॥
जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वँ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियँ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयँ समने पारयन्ती ॥४०॥

यह नवजात अग्नि देवताओं के अग्रगन्ता हैं। यह यज्ञ को परिमित करने वाले, देवाह्वाक तथा यज्ञ में स्थित हैं। इनके मुख में स्वाहाकार सहित जाती हुई हवियों को देवगण भक्षण करें ॥३६॥

हे अग्ने ! अज्ञानी मनुष्य को तुम ज्ञान देते हो और रूपहीन को रूप देते हो। यजमान तुम्हें सदा प्रकट करते हैं ॥३७॥

जब कवच धारण कर वीर पुरुष रणभूमि को प्रस्थान करता है, तब वह सेना का मुख रूप मेघ के समान होता है। अतः हे कवचधारी वीर ! तुम आहत न होते हुए, विजय को प्राप्त करो। कवच की महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥३८॥

धनुष के प्रभाव से गौ, राजमार्ग और घोर युद्ध पर विजय पाई

जाती है। इससे शत्रुओं का अपकार्य होता है। धनुष के प्रभाव से ही सम्पूर्ण दिशाएँ जीती जाती हैं ॥३६॥

युद्ध को जिताने वाली प्रत्यंचा धनुष पर चढ़ कर शब्द करती और बाण रूप सखा से मिलती है। वह कान तक खिंचती हुई ज्ञात पड़ती है कि कुछ कहना चाहती हो ॥४०॥

ते ऽ आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यताᳬ संविदाने ऽ आर्त्नी ऽ इमे विष्फुरन्ती ऽ अमित्रान् ॥ ४१ ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ४२ ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ ऽ रनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

रथवाहनᳬ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मᳬ सदेम विश्वाहा वयᳬ सुमनस्यमानाः ॥४५॥

समान मन वाली नारी के समान आकर संकेत पूर्वक शत्रुओं के प्रति टंकार करने वाली यह धनुष कोटि बीच में उसी प्रकार बाण को धारण करती है, जिस प्रकार माता पुत्र को धारण करती है। हे धनुकोटि! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करो ॥४१॥

यह तरकस अनेक बाणों का रक्षक है। अनेकों बाण इसके आश्रय में पुत्रवत् रहते हैं। युद्ध को उपस्थित हुआ जानकर वह तरकस चित्कार करता है और आदेश मिलने पर सब योद्धाओं के गतिस्थान रणभूमि में स्थित समस्त सेनाओं पर विजय पाता है ॥४२॥

रथ में बैठा हुआ सारथी जहाँ चाहता है वहीं अश्वों को ले जाता है। यह लगाम भी प्रशंसा के योग्य है, जो पीछे रह कर भी अश्व के मन को अपने वश में रखती है ॥४३॥

जिनके हाथ में अश्वों की लगाम है, वे पुरुष घोर जयघोष करते हैं और रथों के साथ चलते हुए अश्व शत्रुओं पर अपने खुरों से आक्रमण करते हैं। वे अहिंसित अश्व शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ होते हैं ॥४४॥

इस रथ को धारण करने वाले शकट में इस वीर का कवच और आयुध रखे हैं। उस स्थान पर हम इस सुखकारी रथ को स्थापित करें ॥४५॥

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना ऽ इषुबला ऽ अमृध्राः सतोवीरा ऽ उरवो व्रातसाहाः ॥४६॥
ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी ऽ अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरिताहतावृधो रक्षा माकिर्नो ऽ अघशꣳस ऽ ईशत ॥ ४७ ॥
सुपर्णं वस्ते मृगो ऽ अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन् ॥४८॥
ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो ऽ अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ ४९ ॥
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ ऽ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

जो रथ गुप्ति सुख पूर्वक बैठने योग्य, आयु धारक, रक्षक, संकटकाल में सेवनीय, सामर्थ्यवान्, गंभीर, विचित्र सेना युक्त, वाण रूप शक्ति से सशक्त, उग्र और विशाल है, हम उसके आश्रय में स्थित हों ॥४६॥

ब्राह्मण, सोमपायी पितर और सत्य की वृद्धि करने वाले देवगण हमारी रक्षा करें। कल्याणमयी और अपराध निवर्त्तक द्यावा पृथिवी और पूषा हमारी रक्षा करें। पूषा देवता ही हमारे पापों को हटावें। कोई भी दुष्ट पुरुष हम पर शासन न कर पावे ॥४७॥

जो वाण सुपर्ण धारण करता है, उस वाण के फल शत्रुओं को खोजते हैं। वह वाण स्नायु द्वारा बंधा हुआ शत्रुओं पर गिरता है। जहाँ

वीर पुरुष गमन करते हैं, उस युद्ध भूमि में यह बाण हमारे निमित्त कल्याण का उपार्जक हो ॥४८॥

हे ऋजुगामी बाण ! तुम हमको छोड़, अन्यों पर गिरो । हमारा देह पाषाण के समान दृढ़ हो जाय । सोम देवता हमारी प्रार्थना का अनुमोदन करें । अदिति माता हमारी ओर कल्याण को प्रेरण करें ॥४६॥

हे अश्व प्रेरिका कशा (चाबुक) तुम रणक्षेत्रों में वीरता युक्त मन वाले अश्वों को प्रेरित करो । तुम्हारे द्वारा ही अश्व वाले पुरुष अश्वों के मांसल अंगों को ताड़ित करते और कटिप्रदेश में चोट करते हैं ॥५०॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाᳬंसं परि पातु विश्वतः
॥ ५१ ॥
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया ऽ अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो ऽ असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥
दिवः पृथिव्याः पर्योज ऽ उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतᳬं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रᳬं हविषा रथं यज
॥ ५३ ॥
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ५४ ॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो ऽ अप सेध शत्रून् ॥५५॥

यह ज्या के आघात को रोकने वाला खेटक मुझ वीर पुरुष की सब प्रकार रक्षा करे । यह प्रत्यंचा के प्रहार को निवारण कर उसी प्रकार हाथ पर लिपटता है, जैसे अपनी देह को सर्प हाथ आदि पर लपेट लेता है ॥५१॥

वनस्पति काष्ठ द्वारा निर्मित यह रथ सुदृढ़ हो । यह हमारा सखा होकर संग्राम से पार लगावे । यह चर्म द्वारा बंधा हुआ, वीर युक्त है । हे रथ ! तेरा रथी जीतने योग्य शत्रु के धनों को जीतने में समर्थ हो ॥५२॥

स्वर्ग और पृथिवी से उद्धृत तेज, वनस्पतियों से ग्रहण किया गया बल और जलों का ओज रश्मिवंत इन्द्र के वज्र के समान दृढ़ रथ में निहित है। हे अध्वर्यो! तुम इस रथ की पूजा करो ॥५३॥

हे दिव्य रथ! तुम इन्द्र के वज्र के समान दृढ़ हो। तुम विजय प्रदान करने वाले होने के कारण मरुद्गण के मुख के समान हो। मित्र देवता के गर्भ रूप और वरुण की नाभि हो। ऐसे तुम, हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों को ग्रहण कर, सेवन करो ॥५४॥

हे दुंदुभे! द्यावा पृथिवी को गुञ्जायमान करो। अनेक प्रकार से स्थित विश्व तुम्हें जानें। तुम इन्द्र और अन्य देवताओं की प्रीति-पात्र हो, अतः हमारे शत्रुओं को अत्यन्त दूर भगाओ ॥५५॥

आ क्रन्दय बलमोजो न ऽ आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना ऽ इत ऽ इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६॥
आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥
आग्नेय कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऽ ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऽ ऐन्द्राग्नः सँहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण ऽ एकशितिपात्पेत्वः ॥५८॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष ऽ आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥ ५९ ॥
अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल ऽ इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविँशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः

सवित्र ऽ औष्णिहाय त्रयस्त्रिᳬशाय रवताय द्वादशकपाल' प्राजापत्य-श्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या ऽ अष्टाकपाल. ।। ६० ।।

हे दुंदुभे ! तुम्हारे शब्द से शत्रु सेना क्रन्दन करने लगे । तुम हम में तेज स्थापित करो । हमारे पापों को दूर करो । श्वान के समान दुष्ट शत्रुओं को हमारी सेना के समीप से नष्ट करो । तुम इन्द्र की मुष्टि के समान हो, इस को हर प्रकार सुदृढ करो ॥५६॥

हे इन्द्र ! इस शत्रु सेना को सब ओर से दूर करो । यह दुदुंभी घोर शब्द कर रही है, अतः हमारी सेना विजय श्री लेकर लौटे । हमारे शीघ्रगामी अश्वों के सहित वीर रथी घूमते हैं, वे सब प्रकार विजयी हों ॥५७॥

कृष्णग्रीवा पशु अग्नि सम्बन्धी, मेषी सरस्वती सम्बन्धी, पिंगल वर्ण पशु सोम सम्बन्धी, कृष्णवर्ण पशु पूषा सम्बन्धी, कृष्णपृष्ठ पशु बृहस्पति सम्बन्धी, चितकबरा विश्वेदेवों सम्बन्धी, अरुण वर्ण वाला इन्द्र सम्बन्धी, कल्मष वर्ण का मरुद्गण सम्बन्धी, दृढांग पशु इन्द्राग्नि सम्बन्धी, अधोभाग श्वेत सूर्य सम्बन्धी और एक चरण श्वेत और सर्वाङ्ग कृष्ण वरुण सम्बन्धी है ॥५८॥

रोहिताञ्जि वृष सेनामुख वाले अग्नि सम्बन्धी, अधोदेश में श्वेत सविता सम्बन्धी, शुक्र नाभि वाले पूषा सम्बन्धी, पीतवर्ण बिना सींग के विश्वेदेवों सम्बन्धी, चितकबरा मरुद्गण सम्बन्धी, कृष्ण वर्ण अज अग्नि सम्बन्धी, मेषी सरस्वती सम्बन्धी, वेगवान् पशु वरुण सम्बन्धी है ॥५९॥

गायत्री छन्द त्रिवृत् स्तोम और रथन्तर साम वाला अष्टा कपाल में संस्कृत पुरोडाश अग्नि के निमित्त है, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम और बृहत्साम वाला एकादश कपाल में संस्कृत हवि इन्द्र के निमित्त है । जगती, छन्द, सप्तदश स्तोम और वैरूप साम से स्तुत, द्वादश कपाल में संस्कृत हवि विश्वेदेवों के निमित्त है । अनुष्टुप् छन्द, एकविंश स्तोम और वैराजसाम से स्तुत दुग्ध चरु मित्रावरुण के निमित्त है । पंक्ति छन्द त्रिणवस्तोम और शाक्वर साम से स्तुत चरु बृहस्पति के निमित्त है । उष्णिक छन्द, त्रयस्त्रिंश

स्तोम और रैवत साम से स्तुत द्वादश कपाल में संस्कृत पुरोडाश सविता के निमित्त है। प्रजापति के लिए चरु, विष्णुपत्नी अदिति के लिए चरु, वैश्वानर अग्नि के लिए द्वादश कपाल में संस्कृत पुरोडाश और अनुमति देवता के लिए अष्टाकपाल में संस्कृत पुरोडाश होता है ॥ ६० ॥

॥ त्रिंशोऽध्याय ॥

ऋषि—नरायण:, मेधातिथि: ।
देवता—सविता, परमेश्वर:, विद्वांस:, विद्वान्, ईश्वर:, राजेश्वरौ ।
छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, शक्वरी, अष्टि:, कृति:, धृति:, जगती ।

देव सवित: प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्व: केतपू: केतं न: पुनातु वाचस्पतिर्वाचं न: स्वदतु ॥१॥
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो न: प्रचोदयात् ॥ २ ॥
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न ऽ आ सुव ॥ ३ ॥
विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधस: ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीवमाक्रयाया ऽ अयोगूं कामाय पुꣳश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! हमारी ऐश्वर्य वृद्धि वाली कामना से युक्त और श्रेष्ठ फल प्रापक यज्ञ को प्रेरित करो । यज्ञ के पालक देवता हमें

यज्ञ करने की सामर्थ्य प्रदान करें । हे दिव्य रूप वाले गंधर्व देवता ! तुम ज्ञान युक्त प्रेरणा करने वाले हो, अतः हमको ज्ञानयुक्त करो। तुम सब वाणियों के स्वामी हो, हमको स्तुति करने में समर्थ बनाओ। हे देव! हम पर प्रसन्न होओ ॥ १ ॥

उन सर्वप्रेरक सवितादेव के तेज का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को सत्य कर्मों के निमित्त प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! हमारे समस्त पापों को दूर करो । हमारे प्रति कल्याण को प्रेरित करो ॥ ३ ॥

अतुल धनों के धारण करने वाले, धन का विभाग कर भक्तों को प्रदान करने वाले, मनुष्यों के कर्मों को देखने वाले, सर्वप्रेरक सवितादेव को हम आहूत करते हैं ॥ ४ ॥

ब्राह्मण को परमात्मा, क्षत्रिय को वीर कर्म, वैश्य को मरुद्गण की प्रीति, शूद्र को सेवा, चोर को अन्धकार, वीर को नारक, नपुंसक को पाप, रथिक को आक्र देवता, अनाचारी को काम, मागध को अतिकुष्ट सेवन के योग्य है ॥ ५ ॥

नृत्ताय सूत गीताय शैलूषं धर्माय सभाचर नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभᳬं हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषख प्रमदे कुमारीपुत्र मेधायै रथकार धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

तपसे कौलालं मायायै कर्मारᳬं रूपाय मणिकारᳬं शुभे वपᳬं शरव्याया ऽ इषुकारᳬं हेत्यै धनुष्कार कर्मणे ज्याकार दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥ ७ ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषाद पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्य प्रयुग्भ्य ऽ उन्मत्तᳬं सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया ऽ अकितव पिशाचेभ्यो विदलकारी यातुधानेभ्य. कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

सन्धये जार गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्त निरृत्यै परिविविदान-

मराद्ध्या ऽएदिधिषूपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारी॑ᳪं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्राम॑ᳪं स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुप- शिक्षाया ऽ अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

सूत को नृत्य, नट को गीत, सभासद को धर्म, घोराकृति वाले पुरुष को नरिष्टादेवी. वाचाल को नर्मदेव, चञ्चल को हंस, स्त्रैण को आनन्द, कुमारी पुत्र को प्रमद. रथकार को बुद्धि और सूत्रकार को धैर्य सेवनीय है ॥६

कुम्भकार को तप के लिए, लोहार को माया के लिये, सुवर्णकार को रूप के लिये, बीज बोने वाले को शुभ के निमित्त, बाण बनाने वाले को शरव्या देवी के निमित्त, धनुकार को हेति के लिये, प्रत्यञ्चा बनाने वाले को कर्म के लिये, रज्जु बनाने वाले को दिष्टि के लिये, व्याध को मृत्यु के लिये, श्वान को अन्तक के लिये नियुक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

पौञ्जिष्ट को नदियों के लिये, निषाद को ऋचीकों के लिये, उन्मत्त को पुरुष व्याघ्र के लिये, व्रात्य को गन्धर्व अप्सरा के लिये, उन्मत्त को प्रयुगों के लिये, चञ्चल चित्त वाले को सर्पों के लिये, जुआरी को पाशों के लिये, द्यूत के अङ्ग वाले को ईर्यता के लिये, बाँसों के वर्तन बनाने वाले को पिशाचों के लिये और पत्तल आदि बनाने वालों को यातुधान की प्रीति में नियुक्त करे ॥ ८ ॥

जार को संधि के लिये, उपपति को घर के लिये, परिवित्त को आर्ति के लिये, परिविविद को निऋति के लिये, बड़ी कन्या के अविवाहित रहने पर छोटी के पति को आराध्यदेवी के लिये, वेश-विन्यास से जीविका वाली को निष्कृति के लिये, स्मर दीप्त करने वाली को संज्ञान के लिये, उपसद को प्रकामोद्या के लिए, घूँस लेने वाले को वर्ण के लिये और घूँस देने वाले बल को देवता के लिये नियुक्त करना चाहिये ॥६॥

कुबड़े को उपसाद के लिये, बौने को प्रमद के लिए, अधयुक्त को द्वार देवता के लिए, अंधे को स्वप्न के लिए, बहरे को अधर्म के लिए, वैद्य को पवित्र के लिए, गणक को प्रज्ञान के लिए, शकुन जिज्ञासु को अशिक्षा के लिए, जिज्ञासु को उत्तर देने वाले को उपशिक्षा के लिए और प्रश्नविवाकको मर्यादा के लिए नियुक्त करना चाहिए ॥ १० ॥

अर्मेभ्यो हस्तिप जवायाश्वप पुष्ट्यै गोपाल वीर्यायाविपाल तेजसेऽजपालमिरायै कीनाश कीलालाय सुराकार भद्राय गृहपँ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया ऽ अग्न्येध व्रध्नस्य विष्टपाय भिषेक्तार वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टार देवलोकाय पेशितार मनुष्यलोकाय प्रकरितारँ सर्वेभ्यो लाकेभ्य ऽ उपसेक्तारमव ऽ ऋत्यै वधायोपमन्थितार मेधाय वाम पल्पूली प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ।

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुन विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तार बलायानुचर भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्याऽ अश्वसादँ स्वर्गाय लोकाय भागदुघ वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

मन्यवेऽयस्ताप क्रोधाय निसर योगाय योक्तार शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिन वपुषे मानस्कृतँ शीलायाञ्जनीकारी निर्ऋत्यै कोशकारी यमायासूम् ॥ १४ ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाँ सवत्सराय पर्यायिणी परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरी वत्सराय विजर्जराँ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धँ साध्येभ्यश्चर्मम्नम ॥ १५ ॥

हाथी के पालक को धर्म के लिए, अश्व पालक को जौ के लिए, गो-

पालक को पुष्टि के लिए, मेषी पालक को वीर्य के लिए, बकरी-पालक को तेज के लिए, कपुंक को इरा के लिए, सुराकार को कीलाल के लिए, गृह-पालक को भद्र के लिए, धन धारक को श्रेय के लिए, अनुक्षत्ता को आध्यक्ष के लिए नियुक्त करे ॥११॥

काठ लाने वाले को 'भा' के लिए, अग्नि की वृद्धि करने वाले को प्रभा के लिए, अभिषेक करने वाले को सूर्य के लिए, परिवेषणकर्त्ता को स्वर्ग के लिए, प्रतिमा के अवयव बनाने वाले को दिव्य लोक के लिए, मूर्तिकार को मनुष्य लोक के लिए, उपसेक्ता को सब लोकों के लिए, शरीर मर्दन करने वाले को वध देवता के लिए, धोबिन को मेधा के लिए, वस्त्र रंगने वाली को प्रकाम के लिए नियुक्त करे ॥१२॥

नापित को सत्य के लिए, परनिंदक को वैर, हत्या के लिए, सारथि को विविक्ति के लिए, अनुक्षत्ता को औपद्रष्टि के लिए, सेवक को बल के लिए झाड़ने वाली को भूमि के लिए, प्रियवादी को प्रिय के लिए, अश्वारोही को अरिष्ट के लिए, गौ दुहने वाले को स्वर्ग के लिए और परिवेष्टा को स्वर्ग के लिए नियुक्त करे ॥ १३ ॥

लोहा तपाने वाले को मन्यु के लिए, तपे लोहे को पीटने वाले को क्रोध के लिए, योगी को योग के लिए, सन्मुख आने वाले को शोक के लिए, विपत्ति से छुड़ाने वाले को क्षेम के लिए, विद्वान् को उत्कूल निकूल के लिए, मान वाले को देह के लिए, नेत्रांजन लगाने वाली को शील के लिए, कोशकारिणी को निर्ऋति के लिए और मृत्वत्सा को यम के लिए नियुक्त करे ॥ १४ ॥

जुड़वाँ प्रसव वाली को यम के लिए, पुत्रहीना को अथर्व के लिए, पर्यायिणी को संवत्सर के लिए, वंध्या को परिवत्सर के लिए, कुलटा को इदावत्सर के लिए, युवती को इद्वत्सर के लिए, शिथिल देह वाली को वत्सर के लिए, श्वेत केशिनी को संवत्सर के लिए, अस्थिमात्र शरीर वाली को ऋभुओं के लिए और चर्मकार को साध्यों के लिए नियुक्त करे ॥१५॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्तं तीर्थेभ्य ऽ आन्दं विषमेभ्यो मैनालँ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातँ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्या ऽ अपगल्भँ सँशराय प्रच्छिदम् ॥१७॥

अक्षराजाय कितवं कृताय़ादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण ऽ उप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

प्रतिश्रुत्काया ऽ अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकँ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोरण्याय दावपम् ॥ १९ ॥

नर्माय पुँश्चलूँ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वँशनर्तिनं दिवे खलतिँ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षँ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च । अशूद्रा ऽ अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः । मागधः पुँश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा ऽ अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ २२ ॥

धींवर को सरोवर के लिए, नौकारोही को उपस्थावरों के लिए, निषाद को वंशन्तों के लिए मत्स्यजीवी को नड्वलों के लिए, मृग घातकी को पार के लिए, कैवर्त को अवार के लिए, बाँधने वाले को तीर्थों के लिए, मछली वाले को विषम के लिए, भील को स्वनों के लिए, किरात को गुहाओं के लिए, वन में हिंसा करने वाले को सानुओं के लिए और कुत्सित पुरुष को पर्वतों के लिए नियुक्त करे ॥ १६ ॥

पुल्कस पुत्र को बीभत्सा के लिए, स्वर्णकार को वर्ण के लिए, वणिक को तुला के लिए, मेह रोग से ग्लानि वाले रोगी को पश्चाताप के लिए, किलास रोग वाले को सब प्राणियों के लिए, जागते रहने वाले को भूति के लिए, सदा सोते रहने वाले को अभूति के लिए, स्पष्टवक्ता को आर्ति के लिए, अप्रगल्भ को व्यृद्धि के लिए और अच्छेद वाले को संशर के लिए नियुक्त करे ॥ १७ ॥

धूर्त को अक्षराज के लिए, प्रारम्भ में ही दोष देखने वाले को कृत के लिए, प्रवन्धक को त्रेता के लिए, अति कल्पना वाले को द्वापर के लिए, स्थिर सभासद को आस्कन्द के लिए, गौ को ताड़ित करने वाले को मृत्यु के लिए, गो हिंसक को अन्तक के लिए, गो-हिंसा के प्रायश्चित्त स्वरूप भिक्षा-जीवी व्यक्ति को क्षुधा के लिये, वैद्यक शास्त्र के आचार्य को दुष्कृत के लिये और ठग के पुत्र को पाप कर्म के लिये नियुक्त करे ॥ १८ ॥

अपना दुःख कहकर जीने वाले को प्रतिश्रुत्का के लिये, वृथा वक-वक करने वाले को घोष के लिये, बहुत बोलने वाले को अन्त के लिये, गूंगे को अनन्त के लिये, कोलाहल करने वाले को शब्द के लिये, वीणा-वादक को महस के लिये, वंशीवादक को क्रोश के लिये, शङ्ख बजाने वाले को अवरस्पर के लिये, वनरक्षक को वन के लिये, ढोल बजाने वाले को दावानल बुझाने के निमित्त उसकी सूचना देने के लिये नियुक्त करे ॥१६॥

दुष्ट स्त्री को मृदु हास्य के लिये, शाबासी देने वाले को यादस के लिये, ग्राम पथ दर्शक, गणक, परनिन्दक को महस के लिये, वीणा वादक,

मृदङ्ग वादक और वंशी वादक को नृत्य के लिये तथा ताली बजाने वाले को आनन्द के लिये नियुक्त करे ॥ २० ॥

अत्यन्त स्थूल को अग्नि के लिए, पंगु को पृथिवी के लिए, चांडाल को वायु को लिए, नट को अन्तरिक्ष के लिए, गंजे को दिव के लिए, गोल नेत्र वाले को सूर्य के लिए, कबरे रंग वाले को नक्षत्रों के लिए, सिध्म रोगी को चन्द्रमा के लिए, श्वेत या पीले नेत्र वाले को अह्न के लिए, कृष्ण नेत्र वाले को रात्रि के लिए नियुक्त करे ॥ २१ ॥

फिर इन आठ विरूपों को नियुक्त करे । अतिदीर्घ, अत्यन्त छोटा, अत्यन्त स्थूल, अत्यन्त कृश, अत्यन्त श्वेत, अत्यन्त काला, बिना लोम का, अत्यन्त लोम वाला । परन्तु यह शूद्र या ब्राह्मण न हों । फिर मागध, व्यभिचारिणी नारी, धूर्त, पुंसत्वहीन को नियुक्त करे । यह भी शूद्र या ब्राह्मण न हों ॥ २२ ॥

॥ एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—नारायण, उत्तरनारायणः ।

देवता—पुरुषः, ईशानः, स्रष्टा, स्रष्टेश्वरः, आदित्यः, सूर्यः, विश्वेदेवाः ।

छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
पुरुषऽएवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥
ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः ।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र वाले, और सहस्रों चरण वाले यह परम पुरुष पंचभूतों को व्याप्त करते हुए, दश अंगुलि के बराबर प्रदेश को अतिक्रमण कर स्थित हुए हैं ॥ १ ॥

यह वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है, और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व रूप को प्राप्त होता है उस अमृतत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही हैं ॥२॥

यह त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और वह पुरुष स्वयं तो इस विश्व से अत्यधिक है । सभी प्राणि समूह इस पुरुष के चतुर्थ भाग हैं। इस पुरुष का त्रिपात् रूप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरूप में स्थित है ॥ ३ ॥

संसार के स्पर्श से हीन यह तीन पद वाला परम पुरुष उच्च स्थान में स्थित हुआ है । इसका एक पाद इस संसार में सृष्टि संहार द्वारा बारम्बार आवागमन करता है । और विविध रूप होकर स्थावर जंगम प्राणियों को देखता हुआ व्याप्त करता है ॥ ४ ॥

उस आदि पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई । विराज का अधिकरण करके एक ही पुरुष हुआ । वह विराट् पुरुष उत्पन्न होकर विभिन्न रूप वाला हुआ और उसने पृथिवी की रचना कर सप्तधातु वाले देहों की रचना की ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥
तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥८॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ॥१०॥

उस सर्वात्मा की जिस यज्ञ में पूजा होती है, उस यज्ञ से दधि युक्त घृत सम्पादित हुआ। उसी पुरुष ने उन वायु देवता से सम्बन्धित पशुओं की उत्पत्ति की। वे पशु हरिणादि तथा गौ अश्व आदि हैं ॥ ६ ॥

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से ऋक्, साम प्रकट हुए, उसी से छंद (अथर्व) प्रकट हुए और उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

उस यज्ञ पुरुष से अश्व, गर्दभ, ऊपर नीचे के दाँतों वाले पशु, गौएं और भेड़ बकरी आदि उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥

सृष्टि के पूर्व उस यज्ञ साधन भूत पुरुष को यज्ञ में संस्कृत करते हुए मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने उसी पुरुष से मानस याग को सम्पन्न किया ॥९॥

जिस विराट् पुरुष को सङ्कल्प द्वारा प्रकट करते हुए अनेक प्रकार से कल्पना की कि इस पुरुष का मुख क्या हुआ? भुजा, जाँघ और चरण कौन-से कहे जाते हैं? शरीर की रचना करते हुए यह विराट् कितने प्रकार से पूर्ण हुआ? ॥१०॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬशूद्रोऽअजायत ॥११॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

नाभ्या ऽ आसीदन्तरिक्ष ७ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां ऽ अकल्पयन् ॥१३॥
यत्पुरुषेण हविषा यज्ञमतन्वात ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽ इध्मः शरद्धविः ॥१४॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽ अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

ब्राह्मण इस प्रजापति का मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य जंघा और शूद्र चरण रूप हुआ ॥११॥

उसी पुरुष के मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, श्रोत्र से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि प्रकट हुई ॥१२॥

नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से स्वर्ग, पाँवों से पृथिवी, श्रोत्र से सब दिशाएं उत्पन्न हुई । इसी प्रकार लोकों की कल्पना की गई ॥१३॥

उक्त प्रकार देव-शरीर की प्राप्ति पर देवताओं ने पुरुष रूप को मानस हवि मानकर उसके द्वारा मानस यज्ञ को विस्तृत किया । उस समय वसन्त ऋतु घृत, ग्रीष्म समिधा और शरद् ऋतु हवि हुई ॥१४॥

जब देवताओं ने मानस यज्ञ को विस्तृत करते हुए इस विराट् पुरुष में पशु रूप की भावना कर बाँधा, तब इस यज्ञ की सात परिधियाँ हुई और इक्कीस छन्द इसकी समिधाएं हुईं ॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽ यनाय ॥१८॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽ अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥
यो देवेभ्य ऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽ अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽ असन्वशे ॥२१॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥२२॥

मानस यज्ञ के द्वारा देवताओं ने यज्ञ रूप प्रजापति की पूजा की और वे धर्मधारकों में प्रमुख हुए। जिस स्वर्ग लोक में प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैं, उसी स्वर्ग को सिद्ध महात्माजन प्राप्त होते हैं ॥१६॥

पृथिवी आदि की रचना के निमित्त पंचभूत से जिस रस की पुष्टि हुई और जो विश्व कर्म वाला है, उसका रस सर्व प्रथम उत्पन्न हुआ, उस रस को और रूप को धारण करते हुए सूर्य नित्य प्रकट होते हैं ॥१७॥

मैं इस अत्यन्त महान्, अनुपम आदित्य रूप पुरुष को अन्धकार-रहित जानता हूँ। उस आदित्य को जान लेने पर ही मृत्यु को जीता जाता है। आश्रय प्राप्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है ॥१८॥

सर्वात्मा प्रजापति गर्भ में प्रविष्ट होकर अजन्मा होते हुए भी अनेक कारण रूप होकर जन्म लेते हैं। ब्रह्मज्ञानीजन उस प्रजापति के स्थान को देखते हैं। सम्पूर्ण भुवन उस कारणात्मक प्रजापति रूप ब्रह्म में ही स्थित है ॥१९॥

जो सूर्यात्मक प्रजापति सब ओर से देवताओं के लिए प्रकाशित होते हैं और जो देवताओं में पूजनीय एवं उनसे प्रकट हुए हैं, उन तेजस्वी ब्रह्म को नमस्कार है ॥२०॥

देवताओं ने श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप सूर्य को प्रकट कर प्रथम यह कहा कि 'हे आदित्य ! जो ब्राह्मण तुम्हें अजर अमर रूप से इस प्रकार प्रकट हुआ

जानते हैं, देवता उस ज्ञानी ब्राह्मण के वशवर्ती होते हैं ॥२१॥

हे ज्योतिस्वरूप ब्रह्म ! जो लक्ष्मी सबको समृद्ध करती है, वह वैभव रूपा लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी रूप है, दिन-रात दोनों तुम्हारे पार्श्व हैं, नक्षत्र तुम्हारा रूप और द्यावा पृथिवी तुम में व्याप्त हैं। कर्म-फल की इच्छा वाले तुम, मेरे लिए परलोक की इच्छा करते हुए मुझे मुक्त करने की इच्छा करो ॥२२॥

॥ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—स्वयम्भु ब्रह्म, मेधाकामः, श्रीकामः।

देवता—परमात्मा, हिरण्यगर्भः परमात्मा, आत्मा, परमेश्वरः, विद्वान्, इन्द्रः, परमेश्वरविद्वांसौ, विद्वद्राजानौ।

छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, गायत्री, बृहती

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः। १॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥
न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जातऽ इत्येषः ॥३॥
एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः सऽउ गर्भेऽअन्तः।
सऽएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आवभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳ रराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचतेसषोडशी॥५॥

अग्नि वही है, आदित्य वही है, वायु, चन्द्रमा और शुक्र वही है, जल, प्रजापति और सर्वत्र व्याप्त भी वही है ॥१॥

उसी विद्युत के समान तेजस्वी पुरुष से सभी काल प्रकट हुए हैं । इस पुरुष को ऊपर, इधर उधर अथवा मध्य में, कहीं भी ग्रहण नहीं किया जा सकता । अर्थात् वह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता ॥२॥

उस पुरुष की कोई प्रतिमा नहीं है, उसका नाम ही अत्यन्त महान् है । सबसे बड़ा उसका यश ही है ॥३॥

यह प्रसिद्ध देव सब दिशाओं को व्याप्त कर स्थित हैं । हे मनुष्यो ! सबसे पहले यही पुरुष प्रकट हुए हैं । गर्भ में यही स्थित होते हैं । जन्म लेने वाले भी यही हैं । सब पदार्थों में व्याप्त और सब ओर मुख वाले भी यही हैं ॥४॥

जिनसे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, जो इकले ही सब लोकों में व्याप्त हैं, वह सोलह कलात्मक प्रजापति प्रजा से सुसंगत हुए तीनों ज्योतियों का सेवन करते हैं ॥५॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
यो ऽ अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥
यं क्रन्दसी ऽ अवसा तस्तभाने ऽ अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर ऽ उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
आपो ह यद्बृहतीर्मश्चिदापः ॥७॥
वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्नदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ऽ ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥
प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥९॥
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा ऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥१०॥

जिस पुरुष ने स्वर्ग लोक को वृद्धि देने वाला बनाया और भूलोक को धारणादि में दृढ़ किया, जिसने सूर्य मंडल को और स्वर्ग को स्तम्भित किया, जो अन्तरिक्ष में वृष्टि रूप जल का रचयिता है, हम उन देवता को छोड़ कर अन्य किसे हवि प्रदान करें ॥६॥

जिसने हवि रूप अन्न के द्वारा प्राणियों को स्तम्भित करने वाली सुन्दर द्यावा पृथिवी को प्रकट किया। इन दोनों के मध्य में उदय हुआ सूर्य जिसके प्रभाव से अधिक शोभा पाता है, हम उस देवता को छोड़ कर अन्य किसके लिए हवि-विधान करें ॥७॥

सृष्टि के रहस्य को जानने वाला ज्ञानी गुप्त स्थान में निहित उस सत्यरूप ब्रह्म को देखता है। जिस परम ब्रह्म में यह विश्व घोंसले के रूप होता है और यह सभी प्राणी प्रलय काल में जिस ब्रह्म में लय होजाते हैं तथा सृष्टिकाल में उसी से प्रकट होते हैं, वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्याप्त है ॥८॥

रहस्य ज्ञाता विद्वान् इस परमात्मा के उस अविनाशी और गुप्त स्थान में निहित स्वरूप का वर्णन करता है। इसके तीन पाद गुप्त स्थान में स्थित हैं। जो उन्हें जानता है वह पिता के भी पिता के समान होता है ॥९॥

वह पुरुष हमारा बन्धु है, वही हमारा उत्पन्नकर्त्ता है, वही विधाता और सब लोकों तथा प्राणियों के जानने वाला है। जहाँ मोक्ष-प्रद ज्ञान की प्राप्ति होती है, ऐसा वह ब्रह्म स्वर्ग रूप तृतीय धाम है ॥१०॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥११॥
परि द्यावापृथिवी सद्य ऽ इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥१२॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिष ँ स्वाहा ॥१३॥
या मेधा देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१४॥
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥
इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥

समस्त भूतों को ब्रह्म मानकर और सब लोकों को ब्रह्म मान कर तथा सब दिशा, प्रदिशा आदि को भी ब्रह्म मानकर प्रथम उत्पन्न हुई वाणी का सेवन कर आत्म रूप से यज्ञ के स्वामी ब्रह्म में लीन होजाता है ॥११॥

द्यावा पृथिवी को ब्रह्म जानकर और लोकों को भी ब्रह्म मानते हुए तथा दिशाओं और स्वर्गादि की परिक्रमा कर यज्ञ कर्म को अनुष्ठान आदि से सम्पन्न कर ब्रह्म को जो देखता है, वह अज्ञान से छूटते ही ब्रह्म रूप हो जाता है ॥१२॥

यज्ञ के रक्षक, अद्भुत शक्ति वाले इन्द्र के मित्र, कामना योग्य अग्नि से धन दान और श्रेष्ठ ज्ञान वाली बुद्धि की याचना करते हैं ॥१३॥

हे अग्ने ! जिस बुद्धि की देवगण और पितरगण कामना करते हैं, उस बुद्धि से मुझे सम्पन्न करो। यह आहुति तुम्हारे निमित्त स्वाहुत हो ॥१४॥

वरुण देवता तत्वज्ञान-सम्पन्न बुद्धि मुझे दें, अग्नि और प्रजापति मुझे बुद्धि दें। इन्द्र और वायु मुझे बुद्धि प्रदान करें। धाता मुझे बुद्धि दें। यह आहुति स्वाहुत हो ॥१५॥

यह ब्राह्मण और क्षत्रिय, दोनों जातियाँ मेरी लक्ष्मी का उपभोग

करें। देवगण मेरे निमित्त श्रेष्ठ लक्ष्मी की स्थापना करें। उस प्रख्यात लक्ष्मी के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥१६॥

॥ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—वत्सप्रीः, विश्वरूपः, गोतमः, कुत्सः, विश्वामित्रः, भरद्वाजः, मेधातिथिः, पराशरः विश्ववारा, वसिष्ठः, प्रस्कण्वः, लुशोधानकः, पुरुमीढा-जमीढौ, सुनीतिः, सुचीकः, त्रिशोकः, मधुच्छन्दाः, अगस्त्यः, विभ्राट्, गौरी-वितिः, श्रुतकक्षसुकक्षौ, जमदग्निः, नृमेधः, हिरण्यस्तूपः, कुत्सीदिः, प्रति-क्षत्रः, वत्सारः, प्रगाथः, कूर्मः, लुश, सुहोत्रः, वामदेवः, ऋजिश्वः, कुशिकः देवलः, दक्षः, प्रजापतिः, बृहद्दिवः, तापसः, कण्वः, त्रितः, मनुः, मेधः।

देवता—अग्नयः, अग्निः, विद्वांसः, विश्वेदेवाः, सविता, इन्द्रः, इन्द्रवायू, वेनः, सूर्यः, विद्वान्, वायुः, वरुणः, महेन्द्रः, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, वैश्वानरः, इन्द्राग्नी, सोमः, आदित्याः, अध्वर्यू, इन्द्रामरुतौ।

छन्द—पंक्तिः, गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती जगती।

अस्याजरासो दमामरित्रा ऽ अर्चद्धूमासो ऽ अग्नयः पावकाः।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥१॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता ऽ उप द्यवि।
यतन्ते वृथगग्नयः ॥२॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऽ ऋतं बृहत्।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ ऽ अश्वाँ ऽ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥४॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे ऽ अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्या भवति स्वधावाञ्छुक्रो ऽ अन्यस्या ददृशे सुवर्चाः ॥५॥

इस यजमान की अग्नियाँ गृहों की रक्षा करें। अर्चनीय ज्वालायुक्त पावक यजमानों के लिए उज्वलताप्रद, फलप्रद, पोषण करने वाली, काष्ठों में रमने वाली, वायु के समान दीप्तिमती और यजमान की कामना को पूर्ण करने वाली है ॥१॥

हरित वर्ण वाली धूम रूप ध्वजा वाली, वायु से बढ़ने वाली अग्नियाँ स्वर्ग में जाने को अनेक यत्न करती रहती हैं ॥२॥

हे अग्ने ! मित्रावरुण के लिए यज्ञ करो। इस बृहत् यज्ञ रूप अपने गृह का यजन करो ॥३॥

हे अग्ने ! देवताओं को आहूत करने वाले अश्वों को रथी के समान रथ में योजित करो। क्योंकि तुम प्राचीन काल से ही आह्वान करने वाले बने हुए हो। इस यज्ञ में भी अपना स्थान ग्रहण करो ॥४॥

परस्पर विभिन्न रूप वाले, कल्याण रूप दिन और रात्रि दोनों ही, प्राणियों को दुग्ध पान कराते हैं। जब यह विचरण करते हैं तब रात्रि में तो हरे वर्ण वाले अग्नि स्वधावान् होते हैं और दिन में सूर्य तेजस्वी होते हैं ॥५॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो ऽ अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥६॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिꣳशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा ऽ आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥७॥
मूर्धानं दिवो ऽ अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽ आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥

अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र ऽआहुतः ॥९॥
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न ऽ इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०॥

देवाह्वाक यह अग्नि यज्ञों में स्थित होकर सोम यागादि में स्तुत होकर इस स्थान में स्थापित करने वालों द्वारा प्रतिष्ठित किए गए हैं। यजमानों का उपकार करने के लिए भृगुओं ने अद्भुत शक्ति वाले अग्नि को वनों में प्रज्वलित किया ॥६॥

तेंतीससौ उन्तालीस देवता अग्नि की सेवा करते हैं। वे घृत के द्वारा अग्नि को सींचते हैं और उनकी प्रीति के लिए कुशाओं को बिछाते हैं, फिर उन्हें होता रूप से वरण करते हैं ॥७॥

देवताओं ने स्वर्ग के शिर रूप सूर्य और पृथिवी की सीमा रूप, वैश्वानर, यज्ञादि में अरणिद्वय से प्रकट होने वाले क्रान्तदर्शी नक्षत्रों में सम्राट् रूप, यजमान आदि द्वारा आदर के योग्य इस अग्नि को चमस पात्र के द्वारा प्रकट किया ॥८॥

शुद्ध, प्रदीप्त एवं आहूत अग्नि हविरन्न रूप धन की कामना करते हुए, विभिन्न पूजा आदि कर्मों द्वारा पापों को नष्ट करते हैं ॥९॥

हे अग्ने ! मित्र के तेज वाले सब देवता, इन्द्र और वायु के साथ सोम रस रूप मधु को सब प्रकार पान करें ॥१०॥

आ यदिषे नृपतिं तेज ऽ आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्द्धमनवद्यं युवान ँ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥११॥
अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्य ँ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महा ँ सि ।१२।
त्वा ँ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥
त्वे ऽ अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।

यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥१४॥
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभि ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो ऽ अर्य्यमा प्रातर्यावाणो ऽ अध्वरम् ॥१५॥

अन्न और जल के निमित्त जब अग्नि में स्थापित किया हुआ और मन्त्र द्वारा संस्कृत तेज, यजमान के रक्षक अग्नि में व्याप्त होता है तब वे अग्नि बल के आश्रय रूप, निर्दोष, दृढ़ एवं समान रूप से विचारणीय जल को स्वर्ग के पास अन्तरिक्ष में मघ से उत्पन्न करते हैं। वही जल वृष्टि के रूप में आकाश से पृथिवी पर गिरता है ॥११॥

हे अग्ने ! महान् सौभाग्य के निमित्त तुम बल को प्रकट करो। उस समय तुम श्रेष्ठ यश वाले होओ। यजमान और उसकी पत्नी को परस्पर प्रीति युक्त करो और जो शत्रुता करे उनकी महिमा को दबा दो ॥१२॥

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त गम्भीर हो। सूर्य के समान तेजस्वी मन्त्रों से तुमको ही वरण किया गया है। तुम हमारे महान् शक्ति वाले स्तोत्र को सुनते हो। तुम मनुष्यों में उत्तम, दिव्य गुण वाले तथा बल में इन्द्र और वायु के समान हो। तुम्हें हवि रूप अन्न से हम परिपूर्ण करते हैं ॥१३॥

हे अग्ने ! तुम भले प्रकार आहूत हो। मनुष्यों में जो व्यक्ति तुम्हें स्तवनादि के सहित पुरोडाश आदि प्रदान करते हैं, वे ज्ञानीजन तुम्हारे प्रीति पात्र हों ॥१४॥

हे अग्ने ! तुम स्तुतियाँ सुनने वाले तथा हविवाहक हो। तुम देवताओं के सहित हमारे यज्ञ में स्तोत्र सुनो। मित्र, अर्यमा और प्रात: सवन में हवि ग्रहण करने वाले सब देवता कुशाओं पर विराजमान हों ॥१५॥

विश्वपामदितिर्यज्ञियानां विश्वपामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव ऽ आवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६॥
महो ऽ अग्ने समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो ऽ अद्या वृणीमहे ॥१७॥
आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त ऽ इन्द्र ।

याहि वायुर्न नियुतो नोऽअच्छा त्वꣳ हि धीभिर्दयसे विवाजान्
॥१८॥
गाव ऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥१९॥
यदद्य सूर ऽ उदिते ऽ नागा मित्रो ऽ अर्य्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥२०॥

जातवेदा, यज्ञिय देवताओं के मध्य दाता और मनुष्यों के मध्य अतिथि के समान पूज्य अग्नि देवताओं को हविरन्न देते हुए हमारे लिए कल्याणकारी बनें ॥१६॥

सविता देव की अनुज्ञा में वर्तमान देवताओं की कल्याणकारी रक्षा को हम वरण करते हैं। पूजनीय और दीप्त अग्नि और मित्रावरुण के आश्रय को प्राप्त हुए हम सदा कल्याणयुक्त रहें ॥१७॥

हे इन्द्र ! स्तोतागण तुम्हारे यज्ञ को व्याप्त करते हैं और जल तुम्हें परिवर्द्धित करते हैं। तुम हमारे सम्मुख आगमन करो। अपने उन वायु वेग वाले अश्वों द्वारा अन्नों के देने वाले होकर यहाँ आओ ॥१८॥

हे गौओ ! यह पृथिवी यज्ञ का रूप प्रदान करती है। तुम अपने स्वर्णिम कर्णों द्वारा प्रार्थना सुनती हुई यहाँ आगमन करो ॥१९॥

सूर्योदय काल में जो मित्र देवता, अर्यमा, भग और सविता प्रेरणा करने वाले हैं, वे हमें श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें। हम आज नितांत अपराध रहित हैं, ऐसा जानकर वे हमें श्रेष्ठ कर्मों में लगावें ॥२०॥

आसुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥२१॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वेऽअभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णोऽअसुरस्य नामा विश्वरूपोऽअमृतानि तस्थौ ॥२२॥
प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।

इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्य्यतः ॥२३॥
बृहन्निदिध्मऽएषां भूरि शस्तं पृथु स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २४ ॥

इन्द्रे हि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँऽअभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥

द्यावापृथिवी के आश्रय रूप सुशोभित सोम को मही धारण करती है। सोम का अभिषव होने पर ऋत्विग्गण उसे सींचे ॥ २१ ॥

सब देवताओं ने जिस चिरकाल से प्रतिष्ठित देव को सुसज्जित किया, वह इन्द्र किसी के वशवर्ती न होते हुए विचरण करते हैं । विश्वरूप वह वृष्टि के लिए जलों को प्रेरित करते हैं । उन महाबली और फलों की वर्षा करने वाले देव का इन्द्र नाम अत्यन्त महान् है ॥ २२ ॥

हे ऋत्विजो ! तुम्हारी हवियों से प्रसन्न और सब मनुष्यों के स्वामी इन्द्र का पूजन करो । द्यावापृथिवी भी उस इन्द्र की यज्ञ, बल, यश और ऐश्वर्य के सहित पूजा करती हैं ॥ २३ ॥

जिन यजमानों के तरुण इन्द्र सखा हैं, उनका प्राण ही महिमामय है । उनके यज्ञ और आयुध विशाल हैं । हम उन इन्द्र की उपासना करते हैं ॥ २४ ॥

हे इन्द्र ! ओज से महान् एवं पूज्य तुम यहाँ आगमन करो और सोम पर्वों से निकले हुए रस तथा हवि रूप अन्न से तृप्ति को प्राप्त होओ ॥ २५ ॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्द्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन् व्यꣳसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना ऽ अकृणोद्राम्याणाम् ॥२६॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त ऽ इत्था ।
स पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्तेऽअस्मे ।
महाँऽइन्द्रो यऽओजसा । कदा चन स्तरीरसि ।

कदा चन प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥
आ तत्तऽइन्द्रायव: पनन्ताभि यऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीꣳ सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८॥
इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽआनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवास: शवसामदन्ननु ॥२९॥
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजा: पुपोष पुरुधा वि राजति ॥३०॥

महाबली, अनेक रूप वाले, परधनहारी चोरों को जलाने वाले इन्द्र मायामय राक्षसों को नष्ट करते हैं । वे वृत्रहन्ता, दुष्टों के नाश करने वाले इन्द्र देवताओं को प्रसन्न करने वाले याज्ञिकों की श्रेष्ठ वाणियों को प्रकट करते हैं ॥ २६ ॥

हे सत्य के स्वामी इन्द्र ! तुम इकले कहाँ जाते हो ? तुम्हारे जाने का अभिप्राय क्या है ? तुम्हारे जाते समय पूछते हैं कि हे हर्यश्व इन्द्र ! अपने एकाकी गमन का कारण हमें बताओ क्योंकि हम तुम्हारे ही हैं ॥२७॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य दुग्ध रूप जल वाले सोम का अभिषव करना चाहते हैं और जो बहुत पुत्र वाली सहस्रधारा वाली महती पृथिवी का दोहन करना चाहते हैं, वे तुम्हारे उस कर्म की ही अर्चना करते हैं ॥ २८ ॥

हे महिमामय इन्द्र ! मैं अपनी कर्म वाली स्तुति को निवेदित करता हूँ । इस यजमान की तुम्हारे स्तोत्र में लगी हुई बुद्धि जैसे तुम्हें प्रकट करती है, उस बुद्धि के द्वारा उत्सव, प्रसव आदि के समय शत्रुओं के दबाने वाले इन्द्र का सब देवता अनुमोदन करते हैं ॥ २६ ॥

अत्यन्त तेजस्वी सूर्य यजमानों में अखण्डित आयु को धारण करते हुए इस मधुर सोम-रस का पान करें । वे सूर्य वायु से प्रेरित आत्मा द्वारा प्रजा के रक्षक और पालक होते हुए अनेक प्रकार से विराजमान होते हैं ॥३०॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतव: ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ ३१ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ ऽ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥
दैव्यावध्वर्यू ऽआ गत ँ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञ ँ समञ्जाथे ।
तं प्रत्नथा । अयं वेनः । चित्रं देवानाम् ॥३३॥
आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगाऽअभि सूर्य्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥३५॥

उन प्रसिद्ध, सर्वज्ञाता, प्रकाशमान सूर्य को सम्पूर्ण विश्व का प्रकाश करने के लिए रश्मियाँ ऊपर की ओर वहन करती हैं ॥ ३१ ॥

हे पावक, हे वरुण ! तुम जिस सूर्य रूप ज्योति द्वारा उस सुपर्ण रूप को देखते हो, उसी ज्योति से अपने हम भक्तों को भले प्रकार देखो ॥३२॥

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्य के समान तेजस्वी रथ से आगमन करो और मधुर हवि आदि से सिंचित यज्ञ को महान् हवि वाला बनाओ ॥ ३३ ॥

सब प्राणियों के हितैषी सवितादेव श्रेष्ठ अन्नों से युक्त स्तुतियों से पूर्ण हमारे गृह में आवें और हे अजर देवगण ! तुम आते समय जैसे प्रसन्न होओ, वैसे ही यहाँ तृप्ति को प्राप्त होकर इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी बुद्धि के द्वारा तृप्त करो ॥ ३४ ॥

हे वृत्रहन्ता सूर्यात्मक इन्द्र ! आज तुम जहाँ कहीं भी प्रकाशित हो रहे हो, वह सब स्थान तुम्हारे अधिकार में है ॥ ३५ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य ।
विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ३६ ॥
तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततँ सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥३८॥

वण्महाँ ऽ असि सूर्य्य वडादित्य महाँ ऽ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ ऽ असि ॥ ३९ ॥
वट् सूर्य्य श्रवसा महाँ ऽ असि सजा देव महाँ ऽ असि ।
मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४०॥

हे सूर्य ! तुम तरणि रूप, विश्व दर्शन और ज्योति के कर्त्ता हो। तुम ही इस विश्व को प्रकाशित करते हो ॥ ३६ ॥

सूर्य का वह देवत्व महान् है जो संसार के मध्य स्थित होकर विस्तीर्ण ग्रह मंडल को आकर्षित करते हुए नियमित रखता है । जब वह सूर्य हरित वर्ण किरणों को आकाश से अपने में धारण करते हैं, तब आगत रात्रि सभी के लिए अपने काले वस्त्र का विस्तार करती है॥ ३७ ॥

द्यु लोक के अङ्क में स्थित सूर्य मित्रावरुण को रूप देते हुए उससे मनुष्यों को देखते हैं। इन सूर्य का एक रूप अनन्त ब्रह्म है और एक कृष्ण वर्ण वाला रूप है, उसे दिशाएं धारण करती हैं ॥ ३८ ॥

हे सूर्य ! तुम यथार्थ में ही सब से महान् हो । हे आदित्य तुम्हारे महान् होने के कारण ही तुम्हारी महिमा की सब स्तुति करते हैं। हे देव ! तुम यथार्थ ही सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ३६ ॥

हे सूर्य ! यह सत्य है कि तुम धन आदि के प्रकट करने वाले होने से महान् हो। हे देव ! तुम सब के हितैषी, देवताओं में सब से आगे विराजमान, विभु, निरुपम, तेजोमय तथा यज्ञ की महिमा से महान् हो ॥४०॥

आयन्तऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ऽ ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥
अद्या देवा ऽ उदिता सूर्य्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी ऽ उत द्यौः ॥४२॥
आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३॥
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट ऽ इयाते ।

विशामक्तोऽस्य पूर्वहूतो वायु पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४॥
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् ।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ४५ ॥

सूर्य की आश्रिता रश्मियाँ ही इन्द्र के धन आदि का सेवन करती हैं और हम उन धनों को सन्तान उत्पत्ति आदि में अपने भाग के समान ओज के सहित धारण करते हैं ॥ ४१ ॥

हे देवताओ ! आज यह सूर्योदय हमें पाप से छुड़ावे । मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और स्वर्ग हमारी कामना का अनुमोदन करें ॥४२॥

सवितादेव स्वर्णिम रथ पर चढ़ कर अन्धकारयुक्त अन्तरिक्ष के मार्ग में भ्रमण करने वाले देवताओं और मनुष्यों को अपने अपने कर्म में लगाते हुए, सम्पूर्ण लोकों का अवलोकन करते हुए आगमन करते हैं ॥ ४ ॥

इन सब प्राणियों का कल्याण करने के लिए नियुत नामक वाहन वाले वायु और पूषादेव रात्रि के अन्त रूप उषाकाल में आह्वान किये जाने पर दो राजाओं के समान मनुष्यों के समीप आते हैं । उनके लिए कुशाओं का आसन विस्तृत किया जाता है ॥ ४४ ॥

इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र अग्नि पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण का मैं आह्वान करता हूँ ॥ ४५ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करता नः सुराधसः ॥ ४६ ॥
अधि य इन्द्रं पा विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो ऽ अश्विना ।
त प्रत्नथा । अय वेनः । ये देवासः । आ न ऽ इडाभिः ।
विश्वेभिः सोम्यं मधु । ओमासश्चर्षणीधृतः ॥ ४७ ॥
अग्न ऽ इन्द्र वरुण मित्र देवा शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो ऽ अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिᳪ स्वः पृथिवी द्यां मरुतः पर्वताँ ऽ अपः ।

हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु श ँ स ँ सवितार मूतये ॥४९॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः श ँ सते स्तुवते धायि पज्र ऽ इन्द्रज्येष्ठा ऽ अस्माँ ऽ अवन्तु देवाः ॥ ५० ॥

वरुण और मित्र देवता अपने समस्त रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा करते हुए हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले बनावें ॥ ४६ ॥

हे इन्द्रो, विष्णो, मरुद्‌गण, अश्विद्वय ! तुम सभी हमारे इन समान जन्मा मनुष्यों में आओ ॥४७॥

हे अग्ने. इन्द्र, वरुण, मित्र, मरुद्‌गण, विष्णो और समस्त देवताओ ! तुम हमें बल प्रदान करो । अश्विद्वय, रुद्र, पूषा, भग, सरस्वती और देवपत्नियों की कृपा से हम बलवान बनें ॥४८॥

इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, स्वर्ग, पृथिवी, मरुद्‌-गण, पर्वत, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भग और स्तवनीय सवितादेव को अपनी रक्षा के निमित्त शीघ्र ही हम आहूत करते हैं ॥४६॥

जो स्तोता स्तुति करता हुआ स्तोत्रों का अत्यन्त पाठ करता है, वह अर्जित धनों वाली हवियों का धारण करने वाला होता है । इस प्रकार हमारे निमित्त धन-वृष्टि वाले रुद्र, पर्वत और वृत्र हनन करने वाले देवता, जिनमें इन्द्र बड़े हैं, वे सब हमारी रक्षा करने वाले हों ॥५०॥

अर्वाञ्चो ऽ अद्या भवता यजत्रा ऽ आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्व कर्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥

विश्वे ऽ अद्य मरुतो विश्व ऽ ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा ऽ अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽ अस्मे ॥५२॥

विश्वे देवाः शृणुतेम ँ हवं मे ये ऽ अन्तरिक्षे यऽउप द्यविष्ठ ।

ये ऽअग्निजिह्वा ऽउत वा यजत्रा ऽ आसद्यास्मिन् बर्हिषि माद-यध्वम् ॥५३॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्व ँ सुवसि भाग मुत्तमम्।
आदिद्दामान ँ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः
॥ ५४ ॥

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववार ँ रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

हे याज्ञिकों की रक्षा करने वाले देवताओ ! हमारे सम्मुख होओ, जिससे हम भयभीत उपासक तुम्हारे प्रीतियुक्त मन को प्राप्त करें। अत्यन्त हननकर्त्ता वृक के समान घोर पाप से तुम हमें मुक्त करो तथा बात बात में प्राप्त होने वाली निंदा से भी हमें छुड़ाओ ॥५१॥

हमारे इस यज्ञ में आज सभी मरुद्गण आवें। रुद्र आदित्य आदि सब आगमन करें। विश्वेदेवा आकर हवि ग्रहण करें। समस्त अग्नियाँ प्रदीप्त हों। सब प्रकार के धन और अन्न हमें प्राप्त हों ॥५२॥

हे विश्वेदेवो ! जो अन्तरिक्ष में, स्वर्ग में तथा स्वर्ग के समीप में हों और जो अग्निमुख के द्वारा पूजन के योग्य हो, ऐसे तुम सभी मेरे आह्वान को श्रवण करो और इस कुशा के आसन पर विराजमान होकर हवियों से तृप्ति को प्राप्त होओ ॥५३॥

हे सवितादेव ! उदयकाल में तुम यज्ञ योग्य देवताओं के निमित्त श्रेष्ठ अमृतमय भाग को प्रेरित करते हो और फिर उदय को प्राप्त होकर अपनी रश्मियों को बढ़ाते हो। फिर रश्मियों के अनुयायी प्राणियों को समृद्ध करते हो ॥५४॥

हे अध्वर्यो ! तुम तेजस्वी, कार्य में रत, अश्व द्वारा गमन करने वाले, महान् धन वाले, सब में व्याप्त, रथ को सम्पन्न करने वाले, क्रान्त-दर्शी वायु को अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा पूजन करने की इच्छा करो ॥५५॥

इन्द्रवायू ऽ इमे सुता ऽ उप प्रयोभिरा गतम् ।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥५६॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥५७॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातꣳ रुद्रवर्तनी ।
तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥५८॥

विदद्यदीं सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५९॥

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर ऽ एतारमग्नेः ।
एमेनमवृधन्नमृता ऽ अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥६०॥

हे इन्द्र और वायो ! यह सोम तुम्हारे लिए निष्पन्न किये गए हैं । इसका पान करने को हमारे पास शीघ्र आगमन करो । क्योंकि यह सोम-रस तुम्हारी प्रीति प्राप्त कराने की कामना करते हैं ॥५६॥

पवित्र करने में दक्ष मित्र देवता और पाप आदि का नाश करने वाले वरुण को आहूत करता हूँ । वे देवता आज्याहुति वाली बुद्धि को धारण करते हैं ॥५७॥

हे रुद्र के समान गतिवान्, दर्शनीय अश्विद्वय ! तुम यहाँ आओ । यहाँ बिछी हुई कुशा पर स्थित अभिषुत सोम सेवनार्थ प्रस्तुत है ॥५८॥

श्रेष्ठ अक्षरों और शब्दों को जानती हुई प्रथम उत्पन्न वाणी यज्ञ के सम्मुख होती है । उसके जानने वाला विद्वान् बड़े पात्रों में प्राप्त होने वाले प्रस्तर से अभिषुत अपरिमित सोम रूप अन्न को प्राप्त करता है ॥५९॥

देवताओं ने पहले इन विश्व-हितैषी और दूत रूप अग्नि को नहीं जाना, फिर उन्होंने इनके अविनाशी रूप को जानकर यजमान की क्षेत्र प्राप्ति के लिए प्रवृद्ध किया ॥६०॥

उग्रा विघनिना मृध ऽ इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ऽ ईदृशे ॥६१
उपास्मै गायता नर पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ ऽ इयक्षते ॥६२॥
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्ठौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्रा पिबेन्द्र सोमँ सगणो मरुद्भि. ॥६३॥
जनिष्ठा ऽ उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ऽ ओजिष्ठो बहुलाभिमान. ।
अवर्द्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीर दधनद्धनिष्ठा ॥६४॥
आ तू न ऽ इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥६५

हम उन पराक्रमी और शत्रुहन्ता इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं । वे इस घोर संग्राम में हमारा कल्याण करने वाले हों ॥६१॥

हे ऋत्विजो ! इस छन्ने से द्रोण कलश की ओर गमन करते हुए देवताओं की पूजन कामना वाले इस सोम रस के लिए स्तुतियाँ गाओ ॥६२॥

हे मघवन् ! जिन मेधावी मरुतों ने तुम्हें वृत्र-हनन कार्य में प्रवृद्ध किया तथा जिन्होंने शम्बर से युद्ध करते हुए भी बढ़ाया और जिन्होंने पणियों से गौएँ लाते हुये तुम्हारी स्तुति की वे मरुद्गगण तुम्हारा सदा अनुमोदन करते हैं । हे हर्यश्व इन्द्र ! तुम उन मरुतों के सहित सोम-पान करो ॥६३॥

हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ स्तुतियों के पात्र, ओजस्वी, स्वाभिमानी, द्रुत-गामी, साहसी रूप से प्रकट हुए हो । वृत्र वध कर्म में मरुद्गण ने भी इन्द्र को स्तुतियों से उत्साहित किया, जैसे धनवती माता ने इस वीर को धारण किया था, वैसे ही इन्होंने धारण किया ॥६४॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम अपनी महिमामयी रक्षाओं से महान् हो । अतः हमारी ओर शीघ्र आगमन करो और हमारे इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ ॥६५॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा ऽ असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ॥६६॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६७॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥६८॥
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो ऽ अघशꣳस ऽ ईशत ॥६९॥
प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुता याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥७०॥

हे इन्द्र ! तुम संग्रामों में स्पर्द्धा करती हुई सेनाओं को जीतते हो। तुम शत्रु-हन्ता, दुष्ट-हन्ता और स्तुतियों की कामना वाले हो। इन हिंसाकारी शत्रुओं को नष्ट करो ॥६६॥

हे इन्द्र ! शत्रुओं को शीघ्रता से जीतने वाले तुम्हारे बल की, माता पिता द्वारा शिशु की प्रशंसा करने के समान द्यावा-पृथिवी प्रशंसा करती हैं तुम जिस क्रोध से पराक्रमी वृत्र की हिंसा करते हो, उस क्रोध से शत्रु-सेन खिन्न होती है ॥६७॥

आदित्यों को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ आगमन करता है, अतः आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण करने वाले होओ। तुम्हारी श्रेष्ठ म हमारे सामने आवे। जिन पापियों के पास श्रेष्ठ मति हो, उनकी भी म हमारे अभिमुख हो ॥६८॥

हे सवितादेव ! तुम सुवर्ण की समान जिह्वा वाले हो। तुम कल्या रूप होकर अटूट रक्षाओं से हमारे घर की रक्षा करो। नवीन सुख लिये हमारा पालन करो। कोई पापी शत्रु हम पर प्रभुत्व स्थापित न सके ॥६९॥

हे यजमान दम्पति ! अध्वर्यु द्वारा अभिषुत तुम्हारे पवित्र सोम गए। हे वायो ! अपने वाहनों को देवयाग स्थान में लाओ और सोम अभिमुख होओ तथा सुख के निमित्त इस सोम का पान करो ॥७०॥

गाव ऽ उपावतावर्तं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१
काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थ ऽ आ ॥७२
दैव्यावध्वर्यू आ गतᳬ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञᳬ समञ्जाथे ।
तं प्रत्नथा । अयं वेनः ॥७३॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी दुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा ऽ आसन्महिमान ऽ आसन्त्स्वधा ऽ अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४
आ रोदसी ऽ अपृणादा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो ऽ अधारयन् ।
सोऽ अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७५॥

हे वृष्टि रूप जल धाराओ ! महिमामयी द्यावा पृथिवी यज्ञ के रूप की दात्री है । तुम दोनों सुवर्णमय कानों से स्तुति सुनती हुई आगमन करो ॥७१॥

हे मित्रावरुण ! कर्म कुशल यजमान के सोमयुक्त स्थान वाले यज्ञ-गृह में, ज्ञानियों का हित करने वाले इस सोमपान योग्य यज्ञ भूमि में यज्ञ-सम्पादनार्थ आगमन करो ॥७२॥

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्य के समान तेज वाले रथ से आगमन करो और मधुर हवियों से इस यज्ञ को सींचो, जिससे यह बहुत हवियों से सम्पन्न हो ॥ ७३ ॥

इन सोमों की किरणें तिरछी बढ़ती हैं और सोम को अग्नि में डालने पर जो सोम नीचे ऊपर होता है, उसके धारक द्रोण कलशादि पात्र हैं । इस प्रकार सोम रूप अन्य पदार्थ भी श्रेष्ठ हुए और उसके समान अन्न पहले निम्न था, परन्तु होम से फल युक्त होकर श्रेष्ठता को प्राप्त होगया ॥७४॥

इस वैश्वानर के प्रकट होते ही, यजमान कर्मों में लगे और द्यावा पृथिवी तथा अन्तरिक्ष सब ओर से परिपूर्ण हो गए । वह अग्नि हमारा और अन्न का हित करने वाला तथा यज्ञ के निमित्त, अश्व के सब ओर से आने के समान ही सब ओर से प्रकट होता है ॥७५॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।
आङ्गूषैराविवासतः ॥७६॥
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥७७॥
ब्रह्माणि मे मतयः शꣳसुतासः शुष्मऽइयर्ति प्रभृतो मे ऽअद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो ऽअच्छ ॥७८॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ ऽअस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ ऽउग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८०॥

जो इन्द्र और अग्नि वृत्र हनन करने वाले तथा स्वभाव से ही प्रसन्न रहने वाले हैं, उनको परिचर्या स्तोम और उक्थ रूप स्तुतियाँ सब प्रकार करती हैं ॥ ७६ ॥

प्रजापति के पुत्र विश्वेदेवा हमारी स्तुतियों को सुनें और हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥ ७७ ॥

श्रेष्ठ मंत्रात्मक स्तुतियाँ मेरे निमित्त अत्यन्त सुख की करने वाली हैं। मेरे द्वारा धारण किया गया शत्रु शोषक वज्र लक्ष्य का भेदन करता है। जिन उक्थों से यजमान प्रार्थना करते हैं, वे स्तोत्र सदा मुझे चाहते हैं। हमारे यह अश्व हमें यज्ञ के सामने पहुँचाते हैं ॥ ७८ ॥

हे मघवन्! तुमसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। तुम्हारे समान विद्वान् देवता अन्य कोई नहीं है। हे पुराण पुरुष! तुम जिन अद्भुत कर्मों को करते हो, उन कर्मों को वर्तमान काल में और पूर्वकाल में भी किसी ने नहीं किया ॥ ७९ ॥

सब लोकों में वह ज्येष्ठ ही उत्कृष्ट है, जिससे यह वीरकर्मा इन्द्र उत्पन्न हुए, जो उत्पन्न होता हुआ शत्रुओं को शीघ्र ही नष्ट करता है और सम्पूर्ण रक्षक जिसे सन्तुष्ट करते हैं ॥ ८० ॥

इमा ऽ उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥८१॥
यस्याय विश्व ऽ आर्यो दासः शेवधिपा ऽ अरिः ।
तिरश्चिदर्य्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो ऽ अज्यते रयिः ॥८२॥
अयᳪसहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र ऽ इव पप्रथे ।
सत्यः सो ऽ अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥८३॥
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वᳪशिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो ऽ अघशᳪस ऽ ईशत ॥८४॥
आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र ऽ उपरि श्रीणानोऽयᳪशुक्रो ऽ अयामि ते ॥८५॥

हे श्रेष्ठ निवास वाले आदित्य ! मेरी स्तुति रूप वाणी तुम्हारी वृद्धि करे । अग्नि के समान तेजस्वी तुम्हारे रूप के जानने वाले विद्वान् तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥८१॥

यह सभी वर्ण वाले मनुष्य परमात्मा के सेवक हैं । अदानशील व्यक्ति शत्रु रूप हैं । धन की रक्षा के लिए शस्त्रधारी अथवा धन के लिए शत्रु-हिंसक देवता, यह समस्त धन तुम्हारे लिए ही प्रकट हुए हैं ॥८२॥

यह इन्द्र ऋषियों द्वारा प्रवृद्ध किये गए । इन आदित्य की महिमा यथार्थ ही महान् है तथा समुद्र के समान व्यापक है । विद्वान् ब्राह्मणों के राज्य में उस महिमा को सहस्र प्रकार से वर्णन करता हूँ ॥८३॥

हे सविता देव ! हिरण्यजिह्व ! तुम हमारे घर को कल्याण रूप रक्षाओं से रक्षित करो । कोई पापी दुष्ट हम पर प्रभुत्व स्थापित न कर सके ॥८४॥

हे वायो ! हमारे स्वर्गस्पर्शी यज्ञ में आओ । यहाँ दशा पवित्र द्वारा छाना हुआ श्रेष्ठ रसात्मक सोम पात्र में स्थित है । मैं इसे स्तोत्रों द्वारा तुम्हें अर्पित करता हूँ ॥८५॥

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व ऽ इज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमना ऽ असत् ॥८६॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय ऽ आचक्रे हव्यदातये ॥८७॥
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥८८॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्य्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥
चन्द्रमा ऽ अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥९०॥

इस यज्ञ में हम इन्द्रवायु को आहूत करते हैं, जिससे हमारे सब मनुष्य व्याधि-रहित और उदार मन वाले हों ॥८६॥

जो पुरुष अभीष्ट धन-लाभ के लिए तथा हवि-दान के लिए मित्रा-वरुण की उपासना करता है, वह पुरुष देवकर्म में समृद्ध होता है और इस प्रकार सेवा करने से कल्याण को प्राप्त होता है ॥८७॥

हे अश्विद्वय ! यहाँ आकर हमारे यज्ञ को सुशोभित करो। इस श्रेष्ठ मधु का पान करो। हे वर्षणशील और धन के स्वामियो ! तुम अंतरिक्ष से जल-वृष्टि करो। हमारे निकट आओ तथा हमें हिंसित न करो ॥८८॥

ब्रह्मणस्पति हमारे यज्ञ के अभिमुख हों। सत्य रूपा दिव्य वाणी यहाँ आवें। देवता हमारे शत्रुओं को समूल नष्ट करें। वे मनुष्यों के हितैषी देवता पंक्तियों से समृद्ध यज्ञ को प्राप्त हों ॥८९॥

देवताओं को प्रसन्न करने वाला निष्पन्न सोम वसतीवरी जलों में रस रूप हो तथा अग्नि में हुत होकर गरुड़ के समान शीघ्रगामी होकर स्वर्ग को दौड़ता है और पर्जन्य के समान शब्द करता हुआ पीतवर्ण होकर अनेकों द्वारा कामना योग्य धन को पाता है ॥९०॥

देवं देवं वोऽवसे देवं देवमभिष्टये ।
देवं देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥९१॥

दिवि पृष्ठो ऽ अरोचनाग्निर्वैश्वानरो बृहन् ।
क्ष्मया वृधान ऽ ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥९२॥
इन्द्राग्नी ऽ अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिᳬशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकᳬ सरातयः ।
ते नो ऽ अद्य ते ऽ अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥९४॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त ऽ इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥९५॥
प्र व ऽ इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रᳬ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥९६॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यᳬ शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
इमा ऽ उ त्वा । यस्यायम् । अयं ।
ऊर्ध्व ऽ ऊ षु णः ॥९७॥

हम दिव्य बुद्धि के द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हुए रक्षा के लिए देवताओं में देव को आहूत करते हैं। अभीष्ट फल की प्राप्ति और अन्न की प्राप्ति के लिए हम देवाधिदेव का आह्वान करते हैं ॥९१॥

यह महान् वैश्वानर अग्नि स्वर्ग पृष्ठ में दीप्त होता है और मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवि से बढ़कर अपने ओज द्वारा अन्न का सम्पादन करने वाला अग्नि अपनी ज्योति से अन्धकार को नष्ट करता है ॥९२॥

हे इन्द्राग्ने ! यह बिना पाँव की उषा, पाँवों वाले प्राणियों से पूर्व आजाती है और स्वयं बिना शिर की होते हुए भी उन प्राणियों के शिरों को प्रेरित करती है। वह प्राणियों की वाक् शक्ति से शब्द करती हुई तीस मुहूर्तों को,एक दिन में ही लाँघ जाती है ॥९३॥

समान मन वाले, दाता वे विश्वेदेवा अब हमारे लिए धन प्राप्त

करने वाले हों और भविष्य में भी हमारे पुत्रादि को धन प्राप्त कराने वाले बनें ॥१४॥

हे तेज-सम्पन्न मरुतो ! हे इन्द्र ! देवताओं ने तुम्हारी मित्रता के लिए आत्मा को संयत किया और असुर-हन्ता इन्द्र ने सब अभिशापों को नष्ट कर अन्न और यज्ञ को प्राप्त किया ॥१५॥

हे मरुद्गण ! अपने मित्र महिमामय इन्द्र की स्तुति करो। वह वृत्रहन्ता और शतकर्मा इन्द्र सौ पर्व वाले वज्र द्वारा वृत्र को मारते हैं ॥ १६ ॥

इन्द्रात्मक, विष्णु सोम से प्रसन्न होकर इस यजमान के बल वीर्य की वृद्धि करते हैं। पूर्वकालीन ऋषियों के समान अब भी ऋषिगण उन इन्द्र की महिमा का गान करते हैं ॥१७॥

॥ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—शिवसङ्कल्पः, अगस्त्यः, गृत्समदः, हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः, देवश्रवदेववातौ भारतौ, नोधाः गोतमः, प्रस्कण्वः, कुत्सः, हिरण्यस्तूपः, वसिष्ठः, सुहोत्रः, ऋजिश्वः, मेधातिथिः, भरद्वाजः, विहव्यः; प्राजापत्यो यज्ञः, दक्षः, कूर्म, गार्त्समदः कण्वः।

देवता—मनः, अन्नम्, अनुमतिः, सिनीवाली, सरस्वती, अग्निः, इन्द्रः, सोमः, सविता, अश्विनौ, सूर्यः, रात्रिः, उषः, अग्न्यादयो लिङ्गोक्ताः, भगः, भगवान्, उषा, पूषा, विष्णुः, द्यावापृथिव्यौ, लिंगोक्ताः, मरुतः, ऋषयः, हिरण्यन्तेजः, आदित्याः, अध्यात्मं प्राणाः, ब्रह्मणस्पतिः।

छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्तिः, जगती, गायत्री, बृहती, शक्वरी।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥
यस्मिन्नृचः साम यजूᳮषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तᳮ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

जाग्रत पुरुष का जो मन दूर जाता है, वह उसकी सुप्तावस्था में पुनः प्राप्त होता है। दूर जाने वाले मन और ज्योतिर्मती इन्द्रियों की एक ज्योति हो। ऐसा मेरा मन कल्याणमय विचारों से युक्त हो ॥१॥

कर्मों में तत्पर, धीर, मेधावी जन जिस मन के द्वारा यज्ञ में श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं और जो मन शरीर में स्थित है, वह ज्ञान में अपूर्व और पूजनीय भाव वाला होता हुआ कल्याणमय संकल्प वाला हो ॥२॥

ज्ञानोत्पादक जो मन चेतनाशील, धैर्य रूप और अविनाशी है, वह सब प्राणियों के हृदय में प्रकाश करने वाला है। जिस मन के बिना कोई कार्य किया जाना सम्भव नहीं, मेरा वह मन कल्याणमय विचारों से युक्त हो ॥३॥

जिस अविनाशी मन ने इन सब भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी पदार्थों का ग्रहण किया है और जिसके द्वारा सप्त होतायुक्त यज्ञ का विस्तार किया जाता है, मेरा वह मन कल्याणमय विचारों से युक्त हो ॥४॥

जिस मन में ऋचाएं स्थित हैं, जिसमें साम और यजु स्थित हैं, जैसे रथ के पहिये में अरे स्थित हैं वैसे ही मन में शब्द स्थित हैं। जिस मन में प्रजाओं का सब ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन श्रेष्ठ विचारों से युक्त हो॥५॥

सुपारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन ऽ इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥
पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥७॥
अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनुप्रण ऽ आयू ᳪषि तारिषः ॥८॥
अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥९॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१०॥

जो मन मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करता है तथा कुशल सारथि जैसे लगाम से वेगवान् अश्वों को ले जाता है, वैसे ही मन मनुष्यादि प्राणियों को ले जाता है, जो मन जरा रहित, अत्यन्त वेग वाला इस हृदय में स्थित है, मेरा वह मन कल्याणकारी विचारों से युक्त हो ॥६॥

इस महान् बल के धारक अन्न की स्तुति करते हैं। जिसके बल से इन्द्र ने वृत्र का मर्दन किया था ॥७॥

हे अनुमते ! तुम हमारी बात को जानो और हमारा कल्याण करो। संकल्प-सिद्धि के लिए हमारी आयु की वृद्धि करो ॥८॥

हे अनुमते ! हमारे यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाओ। हविर्वाहक अग्नि भी हमारे यज्ञ को देवताओं के पास वहन करें। अनुमति और अग्नि हविदाता यजमान के लिए सुख रूप हों ॥९॥

हे सिनीवालि ! तुम देवताओं की बहन हो। भले प्रकार हुत की हुई हवि को तुम प्रसन्नता से सेवन करो और हमारे लिए सन्तान आदि की प्राप्ति कराओ ॥१०॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।

सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥११॥
त्वमग्ने प्रथमो ऽ अङ्गिरा ऽ ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसो ऽ जायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१२॥
त्वं नो ऽ अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेष ᳪ रक्षमाणस्तव व्रते ॥१३॥
उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज ऽ इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥१४॥
इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या ऽ अधि ।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥१५॥

समान स्रोत वाली नदियाँ जिस सरस्वती में ही सुसंगत होती हैं, वह सरस्वती ही उस देश में पाँचों के धारण करने वाली हुई है ॥११॥

हे अग्ने ! तुम अंगिराओं के लिए दीप्त होकर उनके लिए कल्याणमय और सब देवताओं में प्रथम मित्र हो। तुम्हारे व्रत में वर्तमान मरुद्गण क्रान्तदर्शी विद्वान् तथा श्रेष्ठ आयुधों से सम्पन्न हुए ॥१२॥

हे अग्निदेव ! तुम वन्दनीय हो। जो धनवान् यजमान तुम्हारे व्रत में लगा है उसकी रक्षा करो और हमारे देहों को पुष्ट करो। इस पुत्र रूप यजमान के पुत्रादि तथा गवादि पशुओं की भी रक्षा करने वाले होओ ॥ १३ ॥

यह पृथिवी पुत्र अग्नि विशाल-कर्म सहित प्रकट हुए हैं। इनके प्रदीप्त बल को अरणि धारण करे। वह अरणि इच्छा किये जाने पर सेंचक अग्नि को तुरन्त ही उत्पन्न करती है ॥१४॥

हे जातवेदा अग्ने ! पृथिवी के नाभि स्थान उत्तर वेदी के मध्य में हवि-वहन करने के लिए हम तुम्हें स्थापित करते हैं ॥१५॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे ऽ अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऽ ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्य ँ शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा ऽ अर्चन्तोऽअङ्गिरसो गाऽअविन्दन् ॥१७॥
इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायःसुन्वन्ति सोमं दधति प्रयाँ ँसि ।
तितिक्षन्ते ऽ अभिशस्ति जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

न ते दूरे परमा चिद्रजाँ ँस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधानेऽअग्नौ ॥१९॥

अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रि ँ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजा ँ सुक्षिति ँ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२०॥

इन्द्र को बल देने वाले स्तोम को हम जानते हैं और बल की कामना वाले, यश को चाहने वाले, मंत्रों द्वारा स्तुत, प्रख्यात और मनुष्य रूप इन्द्र की अंगिरा के समान स्तुति करते हैं ॥१६॥

हे ऋत्विजो ! महिमामय इन्द्र के लिए इस महान् अन्न को अर्पित करो और साम रूप स्तुति करो। उसी अन्न और साम के द्वारा हमारे आत्मज्ञानी पूर्वजों ने स्तुति की थी और वे सूर्य रश्मियों को प्राप्त हुए थे ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! सब प्रकार के ज्ञान तुम्हीं से प्राप्त होते हैं। यह सोम सम्पादक मित्रभूत ब्राह्मण तुम्हारी ही कामना करते हैं। वे मनुष्यों के दुर्वचनों को सहते हुए भी सोमाभिषव करते हुए अन्न धारण करते हैं ॥१८॥

हे हर्यश्व इन्द्र ! अग्नि के प्रज्वलित होने पर इस सौहार्द्र के लिए, सेंचन समर्थ तुम्हारे लिए यह सवन प्रस्तुत हैं। इन अभिषवण प्रस्तरों को तुम्हारे निमित्त ही प्रयुक्त किया है। अतः अपने अश्वों द्वारा यहाँ आओ क्योंकि अत्यन्त दूर का स्थान भी तुम्हारे लिए कुछ दूर नहीं है ॥१६॥

हे सोम ! संग्रामों में न हारने वाले तथा शत्रुओं को जीतने वाले, सेनाओं में पालनकर्त्ता, जलदाता, बलों के रक्षक, श्रेष्ठता में स्थित, सुन्दर निवास वाले और यशस्वी तुम्हारा अनुमोदन करें ॥२०॥

सोमो धेनु७ सोमो ऽ अर्वन्तमाशु७ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्य७ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२१॥
त्वमिमा ऽ ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो ऽ अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भाग७ सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥
अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव ऽ आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि ॥२४
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी ऽ अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्य्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥२५

इस सोम के लिए जो यजमान हवि देता है, उसके लिए सोम गोदान करता है, वही सोम अश्व देता है, वही सोम कर्म कुशल, सद्गृही, यज्ञ करने वाला, सभा योग्य, पितृ भक्त वीर पुत्र प्रदान करता है ॥२१॥

हे सोम ! तुम इन सभी औषधियों को प्रकट करते हो। तुमने जलों और गौओं को प्रकट किया। तुमने ही अन्तरिक्ष को विस्तृत किया और अन्धकार को मिटाया ॥२२॥

हे सोम ! तुम दिव्य बल वाले हो। हमें श्रेष्ठ धन भाग देने की इच्छा करो। तुम्हारे दान को कोई रोक न पावे। तुम बल वाले कार्यों में ईश्वर रूप हो। तुम दोनों लोकों में सुख के निमित्त यत्न करो ॥२३॥

हिरण्य दृष्टि वाले सवितादेव हविदाता यजमान के लिए वरणीय रत्नों को धारण करते हुए आवें। वे सवितादेव आठों दिशाओं, तीनों लोकों, सप्त सिंधुओं और योजनों को प्रकाशित करते हैं ॥२४॥

हिरण्यपाणि सवितादेव विविध प्रकार से देखने वाले हैं। वे द्यावा पृथिवी के मध्य में सूर्य को प्रेरित करते हैं। वह सूर्य अन्धकार आदि को दूर कर अस्ताचलगामी होता है तब अन्धकार रूप रश्मियों से द्युलोक को व्याप्त करता है ॥२५॥

हिरण्यहस्तो ऽ असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्नक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥२६॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता ऽ अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नोऽअद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो ऽ अधि च ब्रूहि देव ॥२७

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ २८ ॥
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे निह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२९॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽउत द्यौः ॥३०

हिरण्य हस्त, बली, श्रेष्ठ स्तोत्र वाले, सुखदाता, ऐश्वर्यवान् सविता देव सब दोषों को देखते हुए राक्षसादि का शमन करते हुए उदय होते हैं, वे हमारे अभिमुख हों ॥२६॥

हे सवितादेव ! जो प्राचीनकालीन रज रहित मार्ग भले प्रकार निर्मित हुए हैं, उन मार्गों के द्वारा हमको प्राप्त करो और हमारी रक्षा करते हुए हमें अपना ही बताओ ॥२७॥

हे अश्विद्वय ! तुम यहाँ सोमपान करो और अपनी अक्षुण्ण रक्षाओं द्वारा हमारे लिए कल्याण उपस्थित करो ॥२८॥

हे अश्विद्वय ! तुम सेचन-समर्थ तथा दर्शनीय हो । तुम हमारी वाणी और बुद्धि को श्रेष्ठ कर्म वाली करो । मैं तुम्हें श्रेष्ठ मार्ग द्वारा प्राप्त होने वाले अन्न के लिए आहूत करता हूँ । तुम इस अन्न वाले यज्ञ में हमारी वृद्धि करने वाले होओ ॥२९॥

हे अश्विद्वय ! दिन, रात्रि तथा अरिष्ट युक्त श्रेष्ठ धनों से हमारा पालन करो । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु और स्वर्ग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन आदि रक्षाओं का अनुमोदन करें ॥३०॥

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३१॥
आ रात्रि पार्थिवᳩ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिव सदाᳩसि बृहती वि तिष्ठसऽआ त्वेष वर्तते तम. ॥३२॥
उग्रस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनय च धामहे ॥३३॥
प्रातरग्नि प्रातरिन्द्रᳩ हवामह प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भग पूषण ब्रह्मणस्पति प्रातः सोममुत रुद्रᳩ हुवेम ॥३४॥
प्रातर्जित भगमुग्रᳩ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।
आध्रश्चिद्य मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भग भक्षीत्याह ॥३५॥

रथ पर चढ़ कर भ्रमण करने वाले सवितादेव अपनी किरणों से पृथिव्यादि लोकों को स्वभित किए हुए हैं। वे देवताओं और मनुष्यों को अपने-अपने कर्म में लगाते और सब लोकों को देखते हुए आगमन करते हैं ॥ ३१ ॥

हे रात्रि ! तुम पृथिवी लोक को मध्यम लोक के स्थानों से सब ओर से पूर्ण करती हो और स्वर्ग के स्थानों का अतिक्रमण करती हो। तुम्हारी महिमा से ही घोर अन्धकार छा जाता है ॥३२॥

हे अन्न सम्पन्ना उषे ! तुम हमारे निमित्त उस अद्भुत और प्रसिद्ध धन को दो, जिससे हम अपने पुत्र पौत्रादि का पालन करने में समर्थ हो सकें ॥ ३३ ॥

हम प्रात काल में अग्नि देवता का आह्वान करते हैं। प्रात' काल में ही इन्द्र, मित्रावरुण, अश्विद्वय, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्र देवताओं का आह्वान करते हैं ॥३४॥

हम उस प्रात काल में उन जयशील विकराल, अदिति पुत्र सूर्य का आह्वान करते हैं, जो संसार के धारणकर्त्ता हैं। जिन्हें निर्धन, रोगी और

राजा भी अपनी कामना सिद्धि के लिये चाहते है और यमराज भी उनके उदय होने की कामना करते हैं ॥ ३५ ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३६॥
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व ऽ उतमध्ये ऽ अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्य्यस्य वयं देवानाᳬ सुमतौ स्याम ॥३७॥
भग ऽ एव भगवाँ ऽ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व ऽ इज्जोहवीति स नो भग पुर ऽ ता भवेह ॥३८
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन ऽ आ वहन्तु ॥३९
अश्वावतीर्गोमतीर्न ऽ उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४०

हे कार्य प्रणेता भगदेव! तुम अविनाशी धन के प्राप्त कराने वाले हो। अतः तुम धन-दान द्वारा हमारी बुद्धि को उत्कृष्ट करो। हमको गौ और अश्वादि के द्वारा समृद्ध करो। हम पुत्रादि से युक्त बड़े कुटुम्ब वाले हों ॥ ३६ ॥

हे मघवन्! हम इस सूर्योदय काल में, दिन के मध्य में और सूर्यास्त के समय भी धनवान् रहें और हम सदा देवताओं की प्रिय बुद्धि में स्थित रहें ॥ ३७ ॥

हे देवगण! हमारे लिये भग ही धनवान् हों, जिनके दान द्वारा हम भी धनवान् बनें। हे भगदेव तुम प्रसिद्ध को सभी मनुष्य आहूत करते हैं। तुम हमारे कर्म में अग्रसर होकर हमारे सब कर्मों को सिद्ध करो ॥३८॥

उषाभिमानी देव यज्ञ के लिए नियमित होते हैं। जैसे समुद्री घोड़ा पदक्षेप के लिये तत्पर होता है, जैसे वेगवान् घोड़ा रथ वहन करता है, वैसे ही भग देवता श्रेष्ठ धनों को हमारे सम्मुख लावें ॥ ३९ ॥

यह उषा अश्व, गो और वीर संतान वाली है। यह घृतादि का क्षरण करने वाली, धर्म, अर्थ और काम द्वारा आप्यायित है। वह उषा हमारे अज्ञान रूप बन्धनों को सदा काटे। हे देवताओ तुम अपनी कल्याण-रूप रक्षाओं से सदा हमारा पालन करो ॥ ४० ॥

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त ऽ इह स्मसि ॥४१॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो ऽ अभ्यानडर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियसीषधाति प्र पूषा ॥४२॥
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा ऽ अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥४३॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥४४॥
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते ऽ अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥

हे पूषन्! तुम्हारे व्रत में लगे रहने वाले हम कभी भी नष्ट न हों। हम इस अनुष्ठान में तुम्हारे स्तोता हों ॥४१॥

इच्छित स्तुति द्वारा अभिमुख किये पूषा देवता सब मार्गों के स्वामी हैं। वे हमको आनन्द देने वाले और संताप नष्ट करने वाले साधन प्रदान करें। वे हमारी बुद्धियों को सुकर्मों में लगावें ॥४२॥

संसार के पालन करने वाले अच्युत विष्णु ने तीन पदों को विक्रमित किया और उन्हीं तीनों पदों से उन्होंने धर्मों को धारण किया ॥४३॥

उन विष्णु का जो परमपद है, उसे निष्काम कर्म वाले, कर्मों में आलस्य न करने वाले ब्राह्मण प्रदीप्त करते हैं ॥४४॥

घृतवती, सब प्राणियों को आश्रय देने वाली विस्तीर्ण पृथिवी मधुर रस का दोहन करने में समर्थ है। वह द्यावा पृथिवी श्रेष्ठ रूप वाली, जरा रहित, बीज रूप तथा वरुण की शक्ति द्वारा दृढ़ हुई हैं ॥४५॥

ये नः सपत्ना ऽ अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा ऽ आदित्या ऽ उपरिस्पृशं मोग्रं चत्तारमधिराजमक्रन ॥४६॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपाꣳसि मृक्षत ꣳ सेधतं द्वेषो भवत ꣳ सचाभुवा ॥४७॥
एष व स्तोमो मरुत ऽ इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां वद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥४८॥
सहस्तोमाः सहच्छन्दस ऽ आवृतः सहप्रमा ऽ ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा ऽ अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९॥
आयुष्यं वर्च्चस्य ꣳ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इद ꣳ हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्राय।विशतादु माम् ॥५०॥

हमारे शत्रु पराजय को प्राप्त करें । हम उन शत्रुओं को इन्द्राग्नि के बल से नष्ट करते हैं । वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण मुझे उच्चासन पर स्थित और श्रेष्ठ वस्तुओं का ज्ञाता तथा ऐश्वर्यों का स्वामी बनावें ॥४६॥

हे अश्विद्वय ! तुम तेंतीस देवताओं सहित हमारे यज्ञ में मधु पानार्थ आगमन करो । हमारी आयु की वृद्धि करो और पापों को भले प्रकार नष्ट कर डालो । हमारे दुर्भाग्य को नष्ट कर सब कार्यों में सहायता देने वाले होओ ॥ ४७ ॥

हे मरुद्गण ! सम्मान योग्य, फलप्रद यह स्तोम और सत्य प्रिय वाणी रूप यजमान की स्तुतियाँ तुम्हारे लिए निवेदित हैं । वय-वृद्धि वाले शरीरों के लिए और अन्नों के लिए यहाँ आओ । जिससे जीवनदाता और बलसाधक अन्न को हम पावें ॥४८॥

स्तोम और गायत्री आदि छन्दों सहित, कर्म में लगे, शब्द में तत्पर, बुद्धि वाले, दिव्य सप्त ऋषियों ने, पूर्वजन्मा ऋषियों के मार्ग को

देखकर सृष्टि यज्ञ किया। जैसे इच्छित स्थान पर जाने की कामना वाला रथी लगाम से अश्वों को लेजाता है ॥४६॥

यह आयुवर्द्धक, कान्तिदाता, धन रूप, पुष्टिवर्द्धक, जल द्वारा उत्पन्न, तेज प्रकाशक सुवर्ण विजय के निमित्त मेरा आश्रित हो ॥५०॥

न तद्रक्षा ᳪ सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजᳪ ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणᳪ हिरण्यᳪ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यᳪ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म ऽआ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज ऽ एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वेदेवाऽ ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ताऽअवन्तु ॥५३॥

इमा गिर ऽ आदित्येभ्यो घृतस्नू सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो ऽ अर्य्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो ऽ अ   शः
॥ ५४ ॥

सप्त ऽ ऋषयः प्रतिहिता. शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो ऽ अस्वप्नजौ सत्रसदौ च
देवौ ॥५५॥

उस सुवर्ण को राक्षस नहीं लाँघते, पिशाच नष्ट नहीं करते, यह देवताओं का प्रथम उत्पन्न तेज है। जो अलंकार रूप में स्वर्ण को धारण करता है, वह दीर्घ आयु प्राप्त करता है। दिव्यलोक में भी वह अधिक काल तक निवास करता है ॥५१॥

श्रेष्ठ मन वाले दक्षवंशीय ब्राह्मणों ने बहुत सेनाओं वाले राजा के लिए जिस सुवर्ण को बाँधा, उसी सुवर्ण को मैं सौ वर्ष तक जीवित रहने के लिए बाँधता हूँ, जिससे मैं दीर्घजीवी और वृद्धावस्था तक स्थित रहूँ ॥५२॥

अहिर्बुध्न्य देवता, अजएकपाद, पृथिवी, समुद्र और सभी

देवगण हमारे निवेदन को सुनें। सत्य की वृद्धि करने वाले, मन्त्रों द्वारा स्तुत, मेधावी जनों द्वारा पूजित तथा हमारे द्वारा आहूत वे सभी देवता हमारे रक्षक हों ॥५३॥

यह घृतदात्री स्तुति बुद्धि रूप जुहू द्वारा सनातन काल से प्रकाशमान् आदित्यों के लिए समर्पित है। मित्र, अर्यमा, भग, त्वष्टा, वरुण, दक्ष, अंश देवता भी हमारी स्तुति रूप वाणी को श्रवण करें ॥५४॥

शरीर में स्थित प्राणादि रूप सप्तर्षि सदा प्रमाद रहित रहते हुए देह की रक्षा करते हैं। यह सातों सोते हुए देहधारियों के हृदयों में प्राप्त होते हैं। उन ऋषियों के गमन काल में प्राणियों की रक्षा में रत तथा सुषुप्ति को प्राप्त न होने वाले प्राणापान ही जागृत रहते हैं ॥५५॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव ऽ इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥५६॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो ऽ अर्य्यमा देवा ऽ ओकाᳬसि चक्रिरे ॥५७॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।

य ऽ इमा विश्वा। विश्वकर्म्मा। यो नः पिता।

अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥५८॥

ब्रह्मणस्पते! उठो। जिससे हम देवताओं की कामना करते हुए तुम्हारे आगमन की प्रार्थना करें। श्रेष्ठदान वाले मरुद्गण तुम्हारे साथ रहें। हे इन्द्र! तुम भी उनके साथ आने के लिए सब प्रकार की शीघ्रता करो ॥५६॥

ब्रह्मणस्पति स्तुति योग्य मन्त्र को उच्चारण कराते हैं। उस मन्त्र में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा वास करते हैं ॥५७॥

हे महापराक्रम ! तुम्हीं इस सूक्त रूप संसार के शासक हो । अतः हमारी स्तुति को जानो और हमारे पुत्रादि पर प्रसन्न होओ। देवगण जिस कल्याण को पुष्ट करते हैं, वह कल्याण हमें मिले । पुत्रों सहित हम इस यज्ञ में महिमा को प्राप्त हों, ऐसा करो ।।५८।।

॥ पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—आदित्या देवा वा, आदित्या देवाः, सङ्कसुकः, सुचीकः, शुनः शेपः, वैखानसः, भरद्वाजः, शिरम्बिठः, दमनः, मेधातिथिः ।

देवता—पितरः, सविता, वायुसवितारौ, प्रजापतिः, यमः, विश्वेदेवाः, आपः, कृषीवलाः, सूर्यः ईश्वरः, अग्निः, इन्द्रः, जातवेदाः, पृथिवी ।

छन्द—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप् ।

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः ।
अस्य लोकः सुतावतः । द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै।१।

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्या लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ।।२।।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा ।
वि मुच्यन्तामुस्रियाः ।।३।।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज ऽ इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।४।।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ ऽ आ वपतु ।
तस्मै पृथिवि शं भव ।।५।।

देवताओं के वैरी, दूसरों के धनों का अपहरण करने वाले, दुःखदाता राक्षस इस स्थान से अलग चले जाँय । यह स्थान सोम के अभिषवकर्त्ता इस

मृत यजमान का है। ऋतुओं के दिनों, रात्रियों द्वारा व्यक्त इस स्थान को यमराज इस यजमान को दें ॥१॥

हे यजमान ! सवितादेव तुम्हारे शरीर के लिए पृथिवी में स्थान देने की इच्छा करें। सविता प्रदत्त उस क्षेत्र के संस्कार में वृषभ युक्त हों ॥२॥

वायु देवता इस स्थान को विदीर्ण कर पवित्र करें। सवितादेव इस स्थान को पवित्र करें। अग्नि का तेज इस स्थान को पवित्र करे। सूर्य के तेज से यह स्थान पवित्र हो। बैल हल से अलग हों ॥३॥

हे औषधियो ! तुम अश्वत्थ और पलाश वृक्ष पर रहती हो। तुम यजमान पर अनुग्रह करती हो, जिसके लिए अत्यन्त कृतज्ञता की पात्र हो ॥४॥

हे यजमान ! सवितादेव तेरे शरीर को पृथिवी के अङ्क में स्थापित करें। हे पृथिवी ! तुम उस यजमान के लिए कल्याणकारिणी होओ॥५॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ ।
अप नः शोशुचदघम् ॥६॥

परं मृत्यो ऽ अनु परेहि पन्थां यस्ते ऽ अन्य ऽ इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬरीरिषो मोत वीरान् ॥७॥

शं वातः शᳬ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः ।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥८॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः ।
अन्तरिक्षᳬ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥९॥

अश्मन्वती रीयते सᳬरभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीमो ऽ शिवा येऽअसञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

हे अमुक मृतक ! तुम्हें जल के निकटवर्ती स्थान में प्रजापति की स्मृति में स्थापित करता हूँ। वे प्रजापति देवता हमारे पापों को नितान्त दूर करें ॥६॥

हे मृत्यु ! तुम पराङ्मुख होकर लौट जाओ। तुम्हारा मार्ग देवयान मार्ग से भिन्न पितृयान वाला है। मैं नेत्र वाला और कानों वाला हूँ, तुमसे निवेदन करता हूँ कि तुम हमारी सन्तान को हिंसित न करना ॥७॥

हे यजमान ! तुम्हारे लिए वायु कल्याणकारी हो। सूर्य कल्याणकारी हो, इष्टका कल्याणकारिणी हो। पार्थिव अग्नि तुम्हारे लिए मंगलकारी हों, वे तुम्हें संतप्त न करें ॥८॥

दिशायें तुम्हारे सुख की कल्पना करें। जल तुम्हारा कल्याण करें। सिंधु, अन्तरिक्ष और समस्त दिशायें भी तुम्हारा कल्याण करें ॥९॥

हे मित्रो ! यह पाषाण वाली नदी प्रवाहित हो रही है। अतः इससे तरने का यत्न करो। अभिमुख होकर इसे पार करो। इस स्थान में जो अशान्त विघ्न तथा राक्षस आदि हों, उनको दूर करते हैं। कल्याणकारी अन्नों को हम पावें ॥१०॥

अपाघमप किल्विषमप कृत्यामपो रप. ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दु.ष्वप्न्य ँ सुव ॥११॥
सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१२॥
अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेय ँ स्वस्तये ।
स न ऽ इन्द्र ऽ इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥१३॥
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१४॥
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो ऽ अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१५॥

हे अपामार्ग ! तुम हमारे मानसिक पाप को नष्ट करो। यश का नाश करने वाले शारीरिक पाप को दूर करो। अन्य पुरुष कृत कृत्या को और वाणी द्वारा हुए पाप को तथा दुःस्वप्न के दु.ख रूप फल को भी हमसे दूर करो ॥११॥

जल और औषधियाँ हमारे लिए श्रेष्ठ सखा के समान हों। जो हमारा वैरी है और जिससे हम द्वेष करते हैं, उसके लिए यह दोनों शत्रु के समान हों ॥१२॥

सुरभि पुत्र वृषभ को हम मङ्गल के निमित्त स्पर्श करते हैं। हे अनड्वान्! तुम हमें पार लगाने वाले होओ। इन्द्र के समान तुम भी देवताओं के लिए धारण करने वाले हो ॥१३॥

हमने अन्धकारमय लोक से अन्यत्र उत्तम स्वर्ग को देखा और देवलोक में सूर्य रूप श्रेष्ठ ज्योति को देखते हुए ब्रह्मरूप ही होगए ॥ १४ ॥

इस परिधि को प्राणियों के निमित्त स्थापित करता हूँ। इन प्राणियों के मध्य में कोई भी वेदोक्त पूर्ण आयु से पूर्व गमन न करे। यह सब यज्ञानुकूल होते हुये सौ वर्षों तक जीवित रहें। इस पर्वत के द्वारा यह प्राणी मृत्यु को छिपा दें ॥ १५ ॥

अग्न ऽ आयूँषि पवस ऽ आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१६॥
आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१७॥
परीमे गामनेषत पर्य्यग्निमहृषत।
देवेष्वक्रत श्रवः क ऽ इमाँऽ आ दधर्षति ॥१८॥
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१९॥
वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके।
मेदसः कुल्या ऽ उप तान्त्स्रवन्तु सत्याऽएषामाशिषः सं नमन्ताँ स्वाहा ॥२०॥
स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम् ॥२१॥

असमात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२॥

हे अग्ने ! तुम आयु प्राप्ति वाले कर्मों के करने वाले हो । अतः हम को धान्य और रस आदि प्रदान करो । दूर रहने वाले दुष्टों के कार्य में बाधक होओ ॥१६॥

हे अग्ने ! तुम आयुष्मान्, हवि के द्वारा वृद्धि को प्राप्त घृत युक्त मुख वाले, घृत के उत्पत्ति स्थान तथा प्रवृद्ध हो । तुम गौ के मधुर और श्रेष्ठ घृत को पीकर इन प्राणियों की रक्षा करो, जैसे पिता द्वारा पुत्र रक्षित होता है ॥१७॥

इन प्राणियों ने गौ की पूंछ को पकड़ा है और अग्नि की उपासना की है । ऋत्विजों में दक्षिणा रूप धन का धारण किया । इन प्राणियों को अब कौन हरा सकता है ? ॥१८॥

मैं क्रव्याद अग्नि को दूर करता हूँ, वह यमलोक में पहुँचे । क्रव्याद से भिन्न यह अग्नि अपने अधिकार को जानता हुआ हमारे गृह में देवताओं के लिए हव्य वाहक हो ॥१९॥

हे जातवेदा अग्ने ! पितरों के लिए सार भाग का वहन करो क्योंकि तुम दूर देश में निवास करने वाले इन पितरों को जानते हो । उन्हें मेद की नदियाँ और दाताओं के आशीर्वाद भले प्रकार प्राप्त हों । यह आहुति स्वाहुत हो ॥२०॥

हे पृथिवी ! तू हमारे लिए सब ओर से कण्टक हीन और सुख-पूर्वक बैठने योग्य हो और कल्याणप्रद बनकर यह जल हमारे पाप को दूर करे ॥२१॥

हे अग्ने ! तुम इस यजमान के द्वारा प्रकट किये गए हो । फिर यह यजमान तुमसे प्रकट हो । यह स्वर्ग की प्राप्ति के लिए तुमसे प्रकट हो । यह आहुति स्वाहुत हो ॥२२॥

॥ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

—:▭:—

ऋषिः—दध्यङ्ङाथर्वणः, विश्वामित्रः, वामदेवः, मेधातिथिः, सिन्धुद्वीपः, लोपामुद्रा ।

देवता—अग्निः, बृहस्पतिः, सविता इन्द्रः, मित्रादयो लिङ्गोक्ताः, वातादयः, लिगोक्ताः, आपः, पृथिवी ईश्वरः, सोमः, सूर्यः ।

छन्दः—पंक्तिः, बृहती गायत्रीः अनुष्टुप्, शक्करी, जगती उष्णिक् ।

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥२॥

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

कया नश्चित्र ऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥

मैं ऋचा रूप वाणी की, यजु रूप मन की, प्राण रूप साम की, चक्षु और श्रोत्रों की शरण ग्रहण करता हूँ । मन, देह बल और प्राणापान यह मुझमें स्वस्थतापूर्वक निवास करें ॥१॥

मेरे नेत्रों में जो कमी है, हृदय और मन में जो कमी है, उस कमी को बृहस्पतिदेवता दूर करें जिससे हमारा कल्याण हो । सब लोकों के स्वामी बृहस्पति हमारे लिए मंगल रूप हों ॥२॥

उन सविता देवता के वरणीय तेज का हम ध्यान करते हैं । वे

सविता देवता हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करते हैं ॥३॥

हे अद्भुतकर्मा एवं वृद्धिकर्त्ता इन्द्र ! तुम किस कर्म के द्वारा हमारे सखा बनते हो और प्रसन्न होकर हमारे सामने आते हो ? ॥४॥

हे इन्द्र ! सोम का कौन-सा अंश तुम्हें अत्यन्त प्रसन्न करता है जिससे प्रसन्न होकर तुम अपने उपासकों को सुवर्ण रूप धन का भाग प्रदान करते हो ॥५॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥
कया त्वं न ऽ ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।
कया स्तोतृभ्य - आ भर ॥ ७ ॥
इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
शन्नो ऽ अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥
शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न ऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥
शन्नो वातः पवताँ शन्नस्तपतु सूर्य्यः ।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो ऽ अभि वर्षतु ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम हम स्तोताओं के मित्र हो । हमारी रक्षा के निमित्त तुम विभिन्न रूपों को धारण करते हुए हमारे सामने प्रकट होते हो ॥६॥

हे काम्य वर्षक इन्द्र ! तुम किस प्रकार तृप्त होकर हमें प्रसन्न करते हो ? स्तोताओं के लिए किस प्रकार देने के लिए धन लाते हो ? ॥७॥

विश्वरूप इन्द्र विराजमान होते हैं । हमारे मनुष्यों और पशुओं का कल्याण हो ॥ ८ ॥

मित्र देवता हमारा कल्याण करने वाले हों । वरुण और अर्यमा हमारा कल्याण करें । इन्द्र और बृहस्पति कल्याणकारी हों । पादक्रमण वाले विष्णु भगवान् हमारा भले प्रकार मंगल करें ॥ ९ ॥

वायु देवता मंगलकारी हों । सूर्य हमारा मंगल करें । प्राणियों को

जल से तृप्त करने वाले पर्जन्य हमारे लिए कल्याणमयी वृष्टि करें ॥ १० ॥

अहानि शं भवन्तु नः शᳫं रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शन्न ऽ इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न ऽ इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शन्न ऽ इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥११॥
शन्नो देवीरभिष्टय ऽ आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ १२ ॥
स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

दिन-रात्रि हमारा कल्याण करे । इन्द्राग्नि अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारा मंगल करें । इन्द्र और वरुण हमारे लिए सुखदाता हों । अन्नोत्पादक इन्द्र और पूषा हमें सुखी करें । इन्द्र और सोम श्रेष्ठ गमन के लिए कल्याण-विधायक हों ॥ ११ ॥

दिव्य जल हमारे अभिषेक और पान के निमित्त कल्याणमय हों । यह जल हमारे रोग तथा भय को दूर करे ॥ १२ ॥

हे पृथिवी ! तुम हमारे लिए सुखासन रूप कण्टक-हीना होओ । हमारा कल्याण करो ॥ १३ ॥

हे जलो ! तुम सुखकारी होओ । तुम हमें रमणीय दृश्य देखने वाले नेत्रों सहित स्थापित करो ॥ १४ ॥

हे जलो ! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस इस लोक में है, हमको उसका भागी बनाओ जैसे स्नेहमयी माता अपने शिशु को दुग्ध पान कराती है ॥ १५ ॥

तस्मा ऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥
दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥
दृते दृꣳह मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥१९॥
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽ अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते ऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥२०॥

हे जलो ! हम उस रस की शीघ्र प्राप्ति के लिए गमन करें, जिस रस से तुम विश्व को तृप्त करते हो और जिस के द्वारा हमको उत्पन्न करते हो ॥ १६ ॥

स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी शान्ति रूप हों। जल, औषधि, वनस्पति, विश्वेदेवा, ब्रह्मरूप ईश्वर और सब संसार शान्ति रूप हों। जो साक्षात् शान्ति है, वह भी मेरे लिए शान्ति करने वाली हो ॥ १७ ॥

हे देव ! मुझे सुदृढ़ करो। सभी प्राणी मुझे मित्र के समान देखें और मैं भी सब प्राणियों को मित्र रूप से देखूँ ॥ १८ ॥

हे देव ! मुझे दृढ़ता दो। मैं तुम्हारी कृपादृष्टि में रहता हुआ चिरकाल तक जीवित रहूँ। तुम्हारे दर्शन करता हुआ मैं दीर्घजीवी होऊँ ॥ १९ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी तेजस्विनी ज्वालाओं को नमस्कार है। पदार्थों को प्रकाशित करने वाले तुम्हारे तेज को नमस्कार है। तुम्हारी ज्वालाएँ हमारे शत्रुओं को संतप्त करें। वे हमारे लिये शोधक और कल्याण करने वाली हों ॥२०॥

नमस्ते ऽ अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥
यतो यतः समीहसे ततो नो ऽ अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥
सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥
✓तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः
शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च
शरदः शतात् ॥२४॥

हे भगवन्! तुम्हारे विद्युत रूप को नमस्कार है। तुम्हारे गर्जन-शील रूप को नमस्कार है। तुम हमारे लिए स्वर्गीय सुख देने की इच्छा करते हो इसलिए तुम्हें बारम्बार नमस्कार है ॥२१॥

हे प्रभो! जिस रूप से तुम हमारा पालन करना चाहते हो, उस रूप के द्वारा हमें अभय प्रदान करो। हमारी सन्तान के लिए कल्याण-कारी होओ और हमारे पशुओं के लिए भय, रोग रहित करने वाले बनो ॥ २२ ॥

जल और औषधियाँ हमारे लिए मित्र रूप हों। हमसे द्वेष करने वाला या हम जिससे द्वेष करते हैं उसके लिए यह जल और औषधियाँ शत्रु के समान हो जाँय ॥ २३ ॥

✓ वह देवताओं द्वारा धारण किये गये चक्षु रूप सूर्य पूर्व में उदित होते हैं। उनकी कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवित रहें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक दीनता-रहित रहें, सौ शरद् ऋतुओं को पूर्ण करते हुए अधिक काल तक स्थित रहें ॥ २४ ॥

॥ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—दध्यङ्ङाथर्वण, श्यावाश्व, कण्व, दीर्घतमा, अथर्वण ।

देवता—सविता, द्यावापृथिव्यौ, यज्ञ ईश्वर, विद्वान्, विद्वांसः, पृथिवी, अग्नि, ।

छन्द—उष्णिक्, जगती, गायत्री, पंक्ति, यष्टि, धृति, शक्वरी, कृति, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, बृहती ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आ ददे नारिरसि ॥१॥

युञ्जते मन ऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक ऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥२॥

देवी द्यावा पृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥३॥

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥४॥

इयत्यग्र ऽ आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥५॥

हे अभ्रे ! सवितादेव की अनुज्ञा में स्थित, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों द्वारा तुम्हें ग्रहण करता हूँ । तुम शत्रुओं से रहित होओ ॥ १ ॥

महिमा वाले ज्ञानी ब्राह्मण यजमान के ऋत्विज आदि अपने मन को यज्ञ कर्म में लगाते हैं और अपनी बुद्धि को भी यज्ञ कार्य में युक्त करते हैं ।

सबके ज्ञाता एकाकी ईश्वर ने इन ब्राह्मणों को समर्थ किया है। उन सवितादेव की स्तुति भी महिमामयी है ॥ २ ॥

हे दिव्यता युक्त द्यावापृथिवी ! देव यज्ञ वाले स्थान में आज तुम्हारी अंश रूप मृत्तिका और जल को ग्रहण कर यज्ञ का शिर सम्पादित करता हूँ। हे मृत्पिण्ड ! तुझे यज्ञ के मुख्य कार्य के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

हे उपजिह्विकाओ ! तुम प्राणियों से प्रथम उत्पन्न हुई हो। तुमको ग्रहण कर देव पूजन स्थान में यज्ञ के शिर रूप का सम्पादन करता हूँ। तुमको यज्ञ के प्रमुख कार्य के लिए शिर रूप से तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ ४ ॥

प्रारम्भ में यह पृथिवी प्रादेश मात्र थी अब तुमको ग्रहण कर देव-याग स्थान में यज्ञ के शिर का सम्पादन करता हूँ। यज्ञ के निमित्त तुम्हारा ग्रहण करते हुए तुम्हें यज्ञ के मुख्य कार्य के लिए लेता हूँ ॥ ५ ॥

इन्द्रस्यौजः स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥६॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥

मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥८॥
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥९॥

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥१०

हे मृत्तिकाओ ! तुम इन्द्र के ओज रूप हो। तुम्हें लेकर पृथिवी के देवार्चन स्थान में यज्ञ के शिर रूप से सम्पादित करता हूँ। यज्ञ के मुख्य कार्य सम्पादनार्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे दुग्ध ! तुम्हें यज्ञ कार्य के लिए ग्रहण करता हूँ। यज्ञ के शिर रूप से तुम्हारा ग्रहण करता हूँ। हे गवेधुकाओ ! तुम्हें यज्ञ के लिए स्पर्श करता हुआ, यज्ञ के शिर रूप से स्पर्श करता हूँ ॥ ६ ॥

ब्रह्मणस्पति हमारे यज्ञ के सामने आवें। दिव्य रूपा सत्य वाणी यहाँ आवे। देवगण हमारे शत्रुओं के नाशक हों। मनुष्यों के हितकारी पंक्तियाग को प्राप्त करें। हे सम्भारो ! तुम्हें यज्ञ के लिए ग्रहण करता हूँ और इस स्थान में यज्ञ के शिर रूप से स्थापित करता हूँ। हे सम्भारो ! तुम्हें कार्य के लिए एकत्र करता हूँ और यज्ञ के शिर रूप से स्थापित करता हूँ। हे महावीर ! यज्ञ के निमित्त तथा शिर रूप प्रधान कार्य के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

हे महावीर तुम यज्ञ के शिर के समान हो, मैं तुम्हें यज्ञ के शिर रूप कार्य के लिए स्पर्श करता हूँ। हे महावीर तुम यज्ञ के शिर रूप को स्पर्श करता हूँ। हे महावीर ! तुम यज्ञ के शिर रूप हो, तुम्हें यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए स्पर्श करता हूँ। हे महावीर ! यज्ञ के निमित्त तुम यज्ञ के

शिर रूप को चिकना करता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के शिर समान तुम्हें प्रधान कार्य के लिए चिकना करता हूँ। हे महावीर! तुम्हें यज्ञ के प्रधान कार्य के निमित्त चिकना करता हूँ ॥ ८ ॥

हे महावीर! पृथिवी के देवार्चन स्थान में तुम्हें यज्ञ के शिर रूप स्थापित करता हूँ और धूप देता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के प्रमुख कार्य के लिए तुम्हें धूप देता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए तुम्हें धूप देता हूँ। हे महावीर! यज्ञ कर्म के लिए तुम्हें पकाता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के प्रधान कर्म के निमित्त तुम्हें पक्व करता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के हेतु यज्ञ के शिर रूप कार्य के लिए तुम्हें पक्व करता हूँ ॥ ९ ॥

हे महावीर! ऋतु देवता की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें पका कर उद्धृत करता हूँ। हे महावीर! अन्तरिक्ष स्थित वायु की प्रसन्नता के लिए तुम्हें पका कर निकालता हूँ। हे महावीर! पृथिवी और उसमें स्थित अग्नि की प्रसन्नता के लिए तुम्हें पक्व कर निकालता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के के लिए तुम्हें अजा दुग्ध से सींचता हूँ। हे महावीर! तुम्हें यज्ञ के लिए सींचता हूँ। हे महावीर! यज्ञ के शिर रूप तुम्हें बकरी के दूध से सींचता हूँ ॥ १० ॥

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे ।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳ स्पृशस्पाहि ।
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥११॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य ऽ आयुर्मे दाः ।
पुत्रवती दक्षिणत ऽ इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः ।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः ।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः ।
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ऽ ओजो मे दाः ।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥१२॥

स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व दिवः सᳬ स्पृशस्पाहि ।
मधु मधु मधु ॥१३॥
गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् ।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सᳬ सूर्य्येण रोचते ॥१४॥
समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा सᳬ सूर्य्येणारोचिष्ट ।
स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सᳬ सूर्य्योणारूरुचत ॥१५

हे महावीर ! यम की प्रसन्नता के लिए तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ। हे महावीर ! यज्ञ कार्य सिद्ध करने के लिए मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। हे महावीर ! सूर्य के तेज के लिए तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ। हे महावीर ! सवितादेव तुम्हें घृत से लपेटें। हे रजत ! महावीर को पृथिवी के निवासी राक्षसों से रक्षित कर। हे महावीर ! तुम आभा रूप, तेज रूप और तप रूप हो ॥ ११ ॥

हे पृथिवी ! पूर्व दिशा में राक्षसों से अहिंसित रहती हुई तुम अग्नि की रक्षा में स्थित रह कर मेरे निमित्त आयु दायिनी बनो। हे पृथिवी ! दक्षिण में स्वामित्व में स्थित हुई तुम पुत्रवती हो, अत मेरे लिए अपत्य देने वाली बनो। हे पृथिवी ! पश्चिम में सवितादेव के स्वामित्व में स्थित हुई तुम सुख देने वाली हो, अत मेरे लिए चक्षुदात्री बनो। हे पृथिवी ! तुम उत्तर में धाता देवता के स्वामित्व में रहती हुई यज्ञ योग्य हो, अत. मेरे लिए धन और पुष्टि की देने वाली बनो। हे पृथिवी ! ऊर्द्ध्व दिशा में बृहस्पति के स्वामित्व में रहती हुई तुम धारण करने वाली हो, मेरे लिए बलदात्री बनो। हे दक्षिण भूमि ! हिंसक शत्रुओं से हमारी रक्षा करो। हे उत्तर भूमि ! तुम मनु की घोड़ी रूप, कामनाओं के वहन करने वाली हो ॥ १२ ॥

हे घर्म ! तुम स्वाहाकार रूप हो, अत मरुद्गण तुम्हें आश्रय दें। ! हे सुवर्णस्वर्ग के देवताओं के पालक बनो। इस घर्म में प्राण, उदान और व्यान को मधु रूप में स्थापित करता हूँ ॥ १३ ॥

दिव्य महावीर सवितादेव से सुसंगत होता है। दिव्य, ग्राहक, बुद्धियों का पालक, प्रजापति घर्म सूर्य से सुसंगत होकर प्रकाशित होता है ॥ १४ ॥

अग्नि के समान घर्म अग्नि से सुसंगत होकर सवितादेव से एकाकार करता है और सूर्य रूप से प्रकाशित होता है। स्वाहाकार युक्त घर्म तेज से सङ्गति करता हुआ सविता रूप होकर सूर्य के साथ प्रकाशित होता है॥ १५ ॥

धर्त्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ।
वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान ऽ आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७॥
विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।
देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये ।
मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ॥ १८ ॥
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा ।
ऊर्ध्वो ऽ अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥ १९ ॥
पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते ऽ अस्तु मा मा हिꣳसीः ।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाह ꣳ सह पत्या भूयासम् ॥ २० ॥
अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१॥

दिव्य तेज वाला, देवताओं का धर्त्ता, अविनाशी, तप द्वारा प्रकट घर्म भूमि पर सुशोभित होता है। वह हमारे लिए, यज्ञ में देवताओं को प्राप्त कराने वाली वाणी को धारण करे ॥ १६ ॥

अनेक दिशाओं का धारक वह देवता लोकों के मध्य में स्थित होकर आता है, उसे पालक अन्तरिक्ष में अच्युत रूप से स्थित और देवमार्गों से आते जाते हुए देखता हूँ ॥ १७ ॥

सब लोकों के पालक, सब के मनों के स्वामी, सब की वाणियों के प्रेरक, देवताओं में प्रख्यात हे घर्म रूप देव ! तुम देवताओं का पालन करो। हे अश्विद्वय ! इस यज्ञ में देवताओं को तृप्त करने वाला घर्म तुम्हें तृप्त करे। तुम्हें मधु सक्तक मधु की इच्छा वाले मधु कहा है, अत तुम्हारे लिए मधु है ॥ १८ ॥

हे देव ! हृदय की स्वस्थता के लिए तुम्हारा स्तव करता हूँ। मन की स्वच्छता के लिए स्वर्ग प्राप्ति के लिए और सूर्य की तृप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम इस यज्ञ को देवताओं में स्थापित करो ॥ १९ ॥

हे देव ! तुम ही हमारे पिता हो। तुमने हम प्रेरणा दी है अत तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। मुझे हिंसित न करो ॥ २० ॥

दिन में कर्म से युक्त प्रीति वाला होकर अपने तेज से श्रेष्ठ तेजस्विनी यह हवि प्राप्त हो। रात्रि कर्म से युक्त प्रीति वाली होकर अपने तेज से श्रेष्ठ तेज वाली यह हवि प्राप्त हो ॥ २१ ॥

॥ अथत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—अथर्वण, दीर्घतमा ।

देवता—सविता, सरस्वती, पूषा, वाक् अश्विनौ, वात, इन्द्र, वायु, यज्ञ, द्यावापृथिवी, पूषादयो लिङ्गोक्ता, रुद्रादय अग्नि, आप, ईश्वर ।

छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती, पंक्ति, जगती, अष्टि, अनुष्टुप, उष्णिक, शक्वरी ।

देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आ ददेऽदित्यै रास्नासि ॥ १ ॥

इड ऽ एह्यदित ऽ एहि सरस्वत्येहि ।
असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥
अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽ उष्णीषः ।
पूषासि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥
अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व ।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥

हे रज्जु ! सवितादेव की आज्ञा में स्थित अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों से तुझे ग्रहण करता हूँ । तू अदिति रूपा धेनु की मेखला है ॥ १ ॥

हे इडा और अदिति रूपिणी धेनु ! इधर आओ । हे वाणी रूपिणी गौ इधर आओ । हे अमुक नाम वाली धेनु ! यहाँ आओ ॥ २ ॥

हे रस्सी ! तू अदिति रूपिणी गौ की मेखला है । तू अदिति रूपिणी गौ के शिर में पगड़ी के समान स्थित है ॥ ३ ॥

हे दुग्ध ! अश्विद्वय के निमित्त क्षरित होओ । सरस्वती और इन्द्र के निमित्त क्षरित होओ ॥ ४ ॥

हे सरस्वती रूपिणी गौ तुम्हारा थन सुख पूर्वक शयन कराने वाला है। जो कल्याणकारी, धन धारक है और ऐश्वर्य का कारण है वह श्रेष्ठ फल देने वाला है। वह थन दुग्ध-पान के निमित्त ही रचा गया है ॥५॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि ।
इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् ।
स्वाहा सूर्य्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥ ६ ॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा । सरिराय त्वा वाताय स्वाहा ।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा । अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा ।
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा । अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभि-
मातिघ्ने स्वाहा ।
सवित्रे त्व ऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्व-
देव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥
यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ।
स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्म. पित्रे ॥ ६ ॥
विश्वाऽआशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह ।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥ ११ ॥

हे संडासी ! तुम गायत्री छन्द के समान हो। हे द्वितीय संडासी ! तुम त्रिष्टुप् छन्द रूप हो। हे महावीर ! द्यावापृथिवी की प्रसन्नता के लिए तुमको ग्रहण करता हूँ। हे घर्म ! इस महावीर रूप आधार में तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र ! हे अश्विद्वय ! हे वसुगण इस मधुरस के समान दुग्ध के घर्म की रक्षा करो। वषट्कार युक्त स्वाहुत हो । वृष्टिदायिनी रश्मियों के लिए यज्ञ करो ॥ ६ ॥

हे घर्म ! प्राणियों के उत्पन्न करने वाले वायु देव तुम्हें सुहुत करते हैं। हे घर्म ! सचेष्ट करने वाले वायु के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं। हे घर्म अपराजित वायु के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं । हे घर्म ! रक्षाकारी वायु के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं। हे घर्म ! संताप-नाशक वायु की प्रसन्नता के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं ॥ ७ ॥

हे घर्म ! वसुयुक्त और रुद्रयुक्त इन्द्र के निमित्त स्वाहुत हो। आदित्यवान् इन्द्र के लिए स्वाहुत हो । हे घर्म ! शत्रु नाशक इन्द्र के लिए स्वाहुत हो। हे घर्म ! ऋभु, विभु और वाज युक्त सविता के लिए स्वाहुत हो। हे घर्म ! विश्वेदेवात्मक बृहस्पति के लिए स्वाहुत हो ॥८॥

हे घर्म ! अङ्गिराओं और पितरों से युक्त यम के लिए स्वाहुत हो। घर्म प्रस्तुत करने के लिए यह आज्य आहुति स्वाहुत हो । पितरों की तृप्ति के निमित्त यह घर्म स्वाहुत हो ॥ ९ ॥

इस यज्ञ स्थान में, दक्षिण की ओर बैठे हुए अध्वर्यु ने सब दिशाओं और सब देवताओं का पूजन किया । अतः हे अश्विद्वय ! स्वाहाकार के पश्चात् मधुर घर्म को पिओ ॥ १० ॥

दिवि धा ऽ इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः ।
स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥
अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथि ीभ्याम् ॥ १२ ॥
अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी ऽ अमꣳसाताम् ।
इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥
इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावा पृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।
धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥ १४ ॥
स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः ।
स्वाहा पितृभ्य ऽ ऊर्ध्वबर्हिभ्यो घर्मपावभ्य स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥१५॥

हे महावीर ! इस यज्ञ को भले प्रकार स्वर्गलोक में स्थापित करो । यज्ञ-हितैषी अग्नि के लिए स्वाहुत हो । सब यजुमंत्रों के द्वारा हमारा कल्याण हो ॥ ११ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम इस घर्म को दिन-रात्रि की रक्षाओं से रक्षित करो । सूर्य और द्यावापृथिवी को नमस्कार है ॥ १२ ॥

अश्विद्वय इस धर्म की रक्षा करें । द्यावापृथिवी इसका अनुमोदन करें । इस स्थान में हमें धन प्राप्त हो ॥ १३ ॥

हे घर्म ! वृष्टि और अन्न के लिए पुष्ट हो । जल वृद्धि के लिए पुष्ट हो । ब्राह्मणों की वृद्धि के लिए पुष्ट हो । क्षत्रियों की वृद्धि के लिए पुष्ट हो । द्यावापृथिवी के विस्तार के लिए पुष्ट हो ॥ १४ ॥

स्नेही पूषा के निमित्त स्वाहुत हो । मरुतों के लिए स्वाहुत हो । शब्दवान् प्राणों के निमित्त स्वाहुत हो । उर्द्ध बर्हि वालों, धर्मपायी पितरों के लिये स्वाहुत हो । द्यावापृथिवी के लिए स्वाहुत हो । विश्वेदेवों के लिए स्वाहुत हो ॥१५॥

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।
अहः केतुना जुषता ᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
रात्रिः केतुना जुषता ᳪ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
मधु हुतमिन्द्रतमे ऽ अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते ऽ अस्तु
मा मा हि ᳪ सीः ॥१६॥

अभीम महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः ।
उत श्रवसा पृथिवी ᳪ स ᳪ सीदस्व महाँ ऽ असि रोचस्व
देववीतमः । वि धूममग्ने ऽ अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त
दर्शतम् ॥१७॥

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्या ᳪ हविर्धाने ।
सा त ऽ आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।
या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे । सा त ऽ आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा । या ते घर्म पृथिव्या ᳪ शुग्या जगत्या ᳪ सदस्या । सा त ऽ आ प्यायतान्निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥१८॥

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि ।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो ऽ अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥

स्तुत रुद्र के लिए स्वाहुत हो। ज्योति से ज्योति सुसंगत हो। दिन और प्रज्ञा से युक्त तेज अपने तेज से युक्त हो। रात्रि और प्रज्ञा से युक्त तेज, विशिष्ट तेज से संगत हो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे घर्म देवता! इन्द्रात्मक अग्नि में हुत हुआ तुम्हारे माधुर्य का भक्षण करते हैं। तुम्हें नमस्कार है। हमें किसी प्रकार भी हिंसित न करना ॥ १६ ॥

हे अग्ने! तुम्हारी विस्तार वाली महिमा इस पृथिवी और स्वर्ग को यश से व्याप्त करती है। तुम देवताओं के तृप्त करने वाले और महान् हो। अतः भले प्रकार विराजमान और दीप्त होओ। हे अग्ने! यज्ञ के योग्य और श्रेष्ठ तुम अपने दर्शनीय, क्रोध-रहित धूम का त्याग करो ॥१७॥

हे घर्म! स्वर्ग में प्रसिद्ध, गायत्री छन्द और यज्ञ में प्रविष्ट तुम्हारी दीप्ति वृद्धि को प्राप्त हो, अतः यह आहुति स्वाहुत हो। हे घर्म! अन्तरिक्ष, त्रिष्टुप् छन्द और आग्नीध्र स्थान में प्रविष्ट, तुम्हारी दीप्ति प्रवृद्ध हो। तुम्हारे लिए स्वाहुत हो। हे घर्म! पृथिवी, सभास्थल और जगती छन्द में व्याप्त तुम्हारी दीप्ति बढ़े, इसलिए स्वाहुत हो ॥ १८ ॥

हे घर्म! क्षत्रियों की बल वृद्धि के निमित्त हम तुम्हारा अनुगमन करते हैं। तुम ब्राह्मणों के शरीरों की भी रक्षा करो। यज्ञ के धारण और उसकी फल सिद्धि के लिए हम तुम्हारा अनुगमन करते हैं ॥१९॥

वह चारों दिशा रूप तथा सत्य और यज्ञ की नाभि रूप और आयु देने वाले हमको पूर्ण आयुष्य करें। वह हमें सब प्रकार समृद्ध करें। हमसे द्वेष भाग और जन्म-मरण रूप दुःख दूर हों। हम मनुष्य कर्म से भिन्न वाले ईश्वर की सेवा करते हुए सायुज्य को पावें ॥ २० ॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥

सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधय सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि य च वयं द्विष्म ॥ २३ ॥
उद्वयन्तमगस्परि स्व पश्यन्त ऽ उत्तरम् ।
देव देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २४ ॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

हे घर्म ! यह तुम्हारा पुष्टिकारक अन्न है । उसके द्वारा तुम वृद्धि को प्राप्त होओ । तुम्हारी कृपा से हम भी वृद्धि को प्राप्त होते हुए पुष्ट हों ॥२१॥

महान् मित्र के समान दर्शनीय, वृष्टि का कारण रूप, हरित वर्ण वाला, शब्दकारी, जलों का निधि रूप सूर्य के समान प्रकाशित होने वाला है ॥ २२ ॥

जल और औषधि हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र हों । हमसे जो द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, उसके लिये यह जल औषधि शत्रु के समान हो जाँय ॥ २३ ॥

अन्धकार युक्त इस लोक मे परे उत्तम स्वर्ग लोक को देखते हुये हम सूर्य का दर्शन करते हुये श्रेष्ठ ब्रह्मरूप को प्राप्त हुये ॥ २४ ॥

हे समिधे ! तुम दीप्ति वाली हो, मैं तुम्हारी कृपा से धनादि से समृद्ध होऊँ ॥ २५ ॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥
मयि त्यदिन्द्रिय बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतु ।
घर्मस्त्रिशुग्वि राजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥२७॥
पयसो रेत ऽ आभृत तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तरा समाम् ।
त्विष सवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुत ।
इन्द्रपीतस्य प्रजापति भक्षितस्य मधुमत ऽ उपहुत ऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

हे इन्द्र ! जितनी द्याव पृथिवी है तथा जितने परिमाण में सप्तसिन्धु

विस्तृत हैं, उतने ही अक्षय वल वाले ग्रह को अन्न सहित ग्रहण करता हूँ। जिस प्रकार मैं अक्षुण्ण रहूँ, उसी प्रकार तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥२६॥

तीन दीप्ति वाला घर्म अत्यन्त सुशोभित तेज के सहित ब्रह्म-ज्योति से सुसंगत हो, मुझ में प्रतिष्ठित हो । वह महान् वल, श्रेष्ठ संकल्प और संकल्प की सिद्धि मुझ में स्थित हो ॥२७॥

जलों के सार ने दधिघर्म रूप को पाया। उत्तरोत्तर वर्षों में हम इसका पूर्ण फल लाभ प्राप्त करें। हे कान्तिप्रद ! हे सुखकारी घर्म ! अग्नि में हुत और उपहूत, संकल्प के पूर्ण करने वाले, सुख रूप, इन्द्र द्वारा पिये गए और प्रजापति द्वारा भक्षित तुम्हारे मधुर अंश का भक्षण करता हूँ। इन्द्र के पान से अवशिष्ट, प्रजापति के भक्षण से अवशिष्ट तुम्हारे भाग का भक्षण करता हूँ ॥ २८ ॥

॥ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—दीर्घतमाः ।

देवता—प्राणादयो लिङ्गोक्ताः, दिगादयो लिङ्गोक्ताः, वागादयो लिङ्गोक्ताः, श्रीः, प्रजापतिः, सवित्रादयः, मरुतः, अग्न्यादयो लिङ्गोक्ताः, उग्रादयो लिङ्गोक्ताः, अग्नि ।

छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्, बृहती, कृतिः, धृतिः, गायत्री, अष्टिः, जगती, त्रिष्टुप् ।

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः ।
पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा ॥ १ ॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा ।
नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा ।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा ।

श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ।। ३ ।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूनाᳬं रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ।। ४ ।।
प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः सᳬंसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज ऽ उद्यत ऽ आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन् ।
मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण ऽ आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ।। ५ ।।

सर्वाधिपति हिरण्यगर्भ के सहित वर्तमान प्राणों के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। अग्नि की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। अंतरिक्ष के लिए स्वाहुत हो। वायु के लिए स्वाहुत हो। स्वर्गलोक को पाने के लिए स्वाहुत हो। सूर्य के निमित्त स्वाहुत हो ।।१।।

दिशाओं की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। नक्षत्रों की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। जलों की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। वरुण की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। नाभि देवता की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। शोधक देवता की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो ।। २ ।।

वाणी देवता के निमित्त स्वाहुत हो। प्राण की प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो। प्राण की प्रीति के लिये स्वाहुत हो। चक्षुओं की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो। चक्षुओं की प्रीति के लिए स्वाहुत हो। श्रोत्रों की प्रीति के लिए स्वाहुत हो। श्रोत्रों की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो ।। ३ ।।

मैं मन की इच्छा पूर्ति को पाऊँ। वाणी के सत्य व्यवहार की क्षमता मुझे प्राप्त हो। पशु से गृह की शोभा, अन्न से श्रेष्ठ स्वाद, लक्ष्मी और सुयश यह सब मेरे आश्रित हों ।।४।।

सम्भ्रियमाण अवस्था वाले महावीर के देवता प्रजापति हैं। सम्भृत महावीर के देवता सम्राट् हैं। संसन्न महावीर के देवता विश्वेदेवा हैं।

प्रवृक्त अवस्था वाले महावीर का देवता घर्म है । उद्यतावस्था वाले महावीर का देवता तेज हैं । अजादुग्ध द्वारा सिंचित होने पर महावीर के देवता अश्विद्वय हैं । दुग्ध में घृत प्रेक्षण के समय घृत के बाहर निकलने पर महावीर के देवता पूषा हैं । दूध में घी मिलाने के समय महावीर के देवता मरुद्‌गण हैं । दुग्ध की चिकनाई में वृद्धि को प्राप्त महावीर के देवता मित्र हैं । चिकनाई से घर्म लाने के समय महावीर के देवता वायु हैं । हूयमान महावीर के देवता अग्नि हैं । होम के पश्चात् महावीर के देवता वाक् हैं ॥ ५ ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय ऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः ।
पञ्चम ऽ ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे वृहस्पतिरष्टमे ।
मित्रो नवमे वरुणो दशम ऽ इन्द्र ऽ एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥६॥
उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥
अग्निँ हृदयेनाशनिँ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना ।
शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥८॥

प्रथम दिन महावीर के देवता सविता है । द्वितीय दिवस महावीर के देवता अग्नि हैं । तीसरे दिन महावीर के देवता वायु हैं । चौथे दिन आदित्य हैं । पाँचवे दिन चन्द्रमा हैं । छठवें दिन महावीर के देवता ऋतु हैं । सातवें दिन मरुद्‌गण हैं । आठवें दिन वृहस्पति हैं । नौवें दिन मित्र हैं । दशम दिवस वरुण हैं । एकादश दिवस इन्द्र हैं । द्वादश दिवस के देवता विश्वेदेवा हैं ॥ ६ ॥

विकराल, भीम, घोर शब्द वाले, कम्पित करने वाले, सबको तिरष्कृत करने में समर्थ, सब पदार्थों में संगत होने वाले, सबके उपकारी वायु देवता की प्रसन्नता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ७ ॥

हृदय के द्वारा अग्निदेव को प्रसन्न करता हूँ। हृदयाग्र के द्वारा अशनि देवता को प्रसन्न करता हूँ। सम्पूर्ण हृदय से पशुपति देवता को प्रसन्न करता हूँ। यकृत्काल खण्ड से भग देवता को प्रसन्न करता हूँ। मतस्न नामक, हृदय की अस्थि विशेष से शर्म देवता को प्रसन्न करता हूँ। क्रोधाधार से ईशान देवता को प्रसन्न करता हूँ। पार्श्व अस्थि से महादेव को प्रसन्न करता हूँ। स्थूल आंत से उग्र देवता को प्रसन्न करता हूँ ॥८॥

उग्रं लोहितेन मित्रᳬ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा ।
भवस्य कण्ठᳬ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥९॥

लोमभ्य स्वाहा लोमभ्य. स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा माᳬसेभ्यः स्वाहा माᳬसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा ।
रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥१०॥

लोहित से उग्र देवता को प्रसन्न करता हूँ। श्रेष्ठ गति आदि कर्म वाले से मित्र देवता को प्रसन्न करता हूँ। शरीर के रक्त को दुर्व्रत्य करने में प्रवृत्त से रुद्र को प्रसन्न करता हूँ। क्रीडा समर्थ रक्त से इन्द्र को प्रसन्न करता हूँ। बल प्रकाशक रक्त से मरुद्गण को प्रसन्न करता हूँ। प्रसन्नताप्रद कर्म द्वारा साध्य देवों को प्रसन्न करता हूँ। कण्ठ में होने वाले पदार्थ से भव देवता को प्रसन्न करता हूँ। अन्तर्पार्श्व द्वारा रुद्र को प्रसन्न करता हूँ। यकृत रक्त द्वारा महादेव को प्रसन्न करता हूँ। स्थूल आँत से शर्व देवता को प्रसन्न करता हूँ। हृदयाच्छादिका नाड़ी से पशुपति देवता को प्रसन्न करता हूँ।

लोमों के लिए सुहुत हो। व्यष्टि लोमों के लिए सुहुत हो। त्वचा के

लिए सुहुत हो। व्यष्टि त्वचा के लिए सुहुत हो। लोहित के लिए सुहुत हो। लोहित के लिए स्वाहुत हो। मेद के लिए सुहुत हो। मेद के लिए स्वाहुत हो। मांस के लिए सुहुत हो। मांस के लिए स्वाहुत हो। स्नायुओं के लिए सुहुत हो। स्नायु के लिए स्वाहुत हो। अस्थियों के लिए सुहुत हो। अस्थियों के लिए स्वाहुत हो। मज्जा के लिए सुहुत हो। मज्जा के लिए स्वाहुत हो। वीर्य के लिए स्वाहुत हो। गुद के लिए सुहुत हो ॥ १० ॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्म-हत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬं स्वाहा ॥ १३ ॥

आयास देवता के लिए सुहुत हो। प्रयास के लिए सुहुत हो। संयास के लिए सुहुत हो। वियास के लिए सुहुत हो। उद्यास के लिए सुहुत हो। शुच के लिए सुहुत हो। शोचत् के लिए सुहुत हो। शोचमान के लिए सुहुत हो। शोक के लिए सुहुत हो ॥ ११ ॥

तप के लिए सुहुत हो। तप्यत् के लिए सुहुत हो। तप्यमान के लिए सुहुत हो। तप्त के लिए सुहुत हो। घर्म के लिए सुहुत हो। निष्कृति के लिए सुहुत हो। प्रायश्चित्त के लिए सुहुत हो। भेषज के लिए सुहुत हो ॥१२

यम के लिए सुहुत हो। अन्तक के लिए सुहुत हो। मृत्यु के लिए सुहुत हो। ब्रह्म के लिए सुहुत हो। ब्रह्म-हत्या के लिए सुहुत हो। विश्वेदेवों के लिए सुहुत हो। द्यावापृथिवी के सब देवताओं के लिए सुहुत हो ॥१३

॥ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—दीर्घतमा ।

देवता—आत्मा, ब्रह्म ।

छन्द—अनुष्टुप्, जगती, उष्णिक्, त्रिष्टुप् ।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥
असुर्या नाम ते लोका ऽ अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा ऽ आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

ईश्वर द्वारा ही यह प्रत्यक्ष संसार आच्छादनीय है। संसार में जो कुछ भी स्थावर जङ्गमादि के सम्बन्ध हैं उनके त्याग द्वारा ही भोग की प्राप्ति होती है। पराये धन को ग्रहण मत करो ॥ १ ॥

इस लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना कर। इस प्रकार निष्काम कर्म के करने से तू कर्मों से लिप्त नहीं होगा। मुक्ति के लिए इससे अन्य कोई भी मार्ग नहीं है ॥ २ ॥

जो काम्य कर्म में लगे रह कर आत्मा का तिरस्कार करते हैं, वे पुरुष देह त्याग कर उन योनियों में जाते हैं, जिनमें कर्म फल भोगने वाले प्राणी

असुरों के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे अज्ञान से आवृत्त हुए बारम्बार जीवन-मरण प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

जो ब्रह्म अपनी अवस्था में सदा स्थित, एकाकी, मन से अधिक वेगवान् और प्रथम प्रकट हुआ है, उसे चक्षु आदि इन्द्रियाँ नहीं जान सकतीं। आत्मा क्रिया रहित है, वह शीघ्रता से गमन करता हुआ अन्यों का अतिक्रम करता है। उस आत्मतत्व के द्वारा ही वायु अन्तरिक्ष में जलों को धारण करता है ॥ ४ ॥

वह आत्मा शरीर से मिलकर जाने आने वाला लगता है। परन्तु वह स्वयं नहीं चलता फिरता। वह आत्मा अज्ञानियों के लिए दूर और ज्ञानियों के लिए पास है। वही आत्मा इन शरीरों में वास करता है और वही इन सबके बाहर भी है ॥ ५ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥६॥
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक ऽ एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥
अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ सम्भूत्या ँ रताः ॥९॥
अन्यदेवाहुः सम्भवदन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

जो आत्म ज्ञानी सब प्राणियों को आत्मा में ही देखता है, तथा सब प्राणियों में ही स्वयं को देखता है, वह सन्दिग्धावस्था में नहीं पड़ता ॥ ६ ॥

जब आत्म ज्ञानी सब प्राणियों को एक ही जान लेता है, तब उस

एकात्म भाव के देखने वाले को मोह और शोक क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ७ ॥

परमात्मा के साथ अभेद को प्राप्त हुआ वह आत्मा स्वयं प्रकाश वाला और काया रहित है । छिद्र रहित, नाड़ी आदि से रहित और देह रूप उपाधि से भी रहित है । निर्मल और पाप रहित वह आत्मा सर्व व्यापक है ॥ ८ ॥

जो पुरुष माया कर्म वाले देवी देवताओं की उपासना करते हैं, वे अज्ञान अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं और जो व्यसनादि में रत हैं वे उससे भी अधिक घोर अन्धकार में पड़ते हैं ॥ ९ ॥

कार्य ब्रह्म हिरण्यगर्भ की उपासना का अन्य फल कहा है और अव्याकृत उपासना का भिन्न फल कहा है । इसी प्रकार हमने विद्वानों के उपदेश सुने हैं । उन विद्वानों ने उस फल की हमारे निमित्त विवेचना की है ॥ १० ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥
अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ विद्यायाꣳ रताः ॥१२॥
अन्यदेवाहुर्विद्याया ऽ अन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥१४॥
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥१५॥
अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम ऽ उक्तिं विधेम ॥१६॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ॐ खं ब्रह्म ॥१७॥

जो ज्ञानी संसार का कारण परब्रह्म को और नाशवान् देह को (देह-गत आत्मा को) एक ही जानता है, वह योगी इस नाशवान् शरीर के द्वारा मृत्यु को लाँघता हुआ, आत्म ज्ञान के कारण मुक्ति को पाता है ॥ ११ ॥

जो पुरुष अज्ञानवश फल प्राप्ति वाले सकाम कर्म करते हैं, वे अज्ञान अन्धकार में ही पड़े रहते हैं, और जो ज्ञान युक्त हो कर भी भेदात्मक सकाम उपासना करते हैं, वे उससे भी अधिक अन्धकार में पड़ते हैं ॥ १२ ॥

विद्या रूप आत्म ज्ञान का फल अमृत रूप और अविद्या रूप कर्म का फल पितर लोक रूप कहा गया है। इसी प्रकार का उपदेश उन विद्वानों का हमने सुना है, जिन्होंने हमारे निमित्त ज्ञान रूप कर्म की विवेचना की है ॥१३

विद्या रूप ज्ञान और अविद्या रूप कर्म को जो ज्ञानी एक सङ्ग जानता है, वह अविद्यादि कर्मों से मृत्यु द्वारा ज्ञान युक्त अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

इस समय गमन करता हुआ प्राण वायु अमृत रूप वायु को प्राप्त हो। यह देह अग्नि में हुत होकर भस्म रूप हो। हे प्रणव रूप ब्रह्म ! बाल्या-वस्थादि में किये कर्मों के स्मरण पूर्वक मैं लोकादि की कामना करता हूँ ॥१५

हे अग्निदेव ! तुम हमारे सब कर्मों के ज्ञाता हो। अतः हम निष्काम कर्म करने वालों को मुक्ति रूप धन के लिए श्रेष्ठ मार्ग से प्राप्त करो और विभिन्न पापों को हमसे दूर करो। शरीरान्त के कारण हवनादि कर्म में असमर्थ हम, तुम्हारे लिए अत्यन्त नमस्कारों को करते हैं ॥ १६ ॥

तेजमय आवरण से सत्य रूप ब्रह्म का मुख आच्छादित है। आदित्य रूप में जो यह प्रत्यक्ष पुरुष वर्तमान है, वह मैं ही हूँ। यह प्रणव आकाश के समान व्यापक एवं ब्रह्म है ॥ १७ ॥